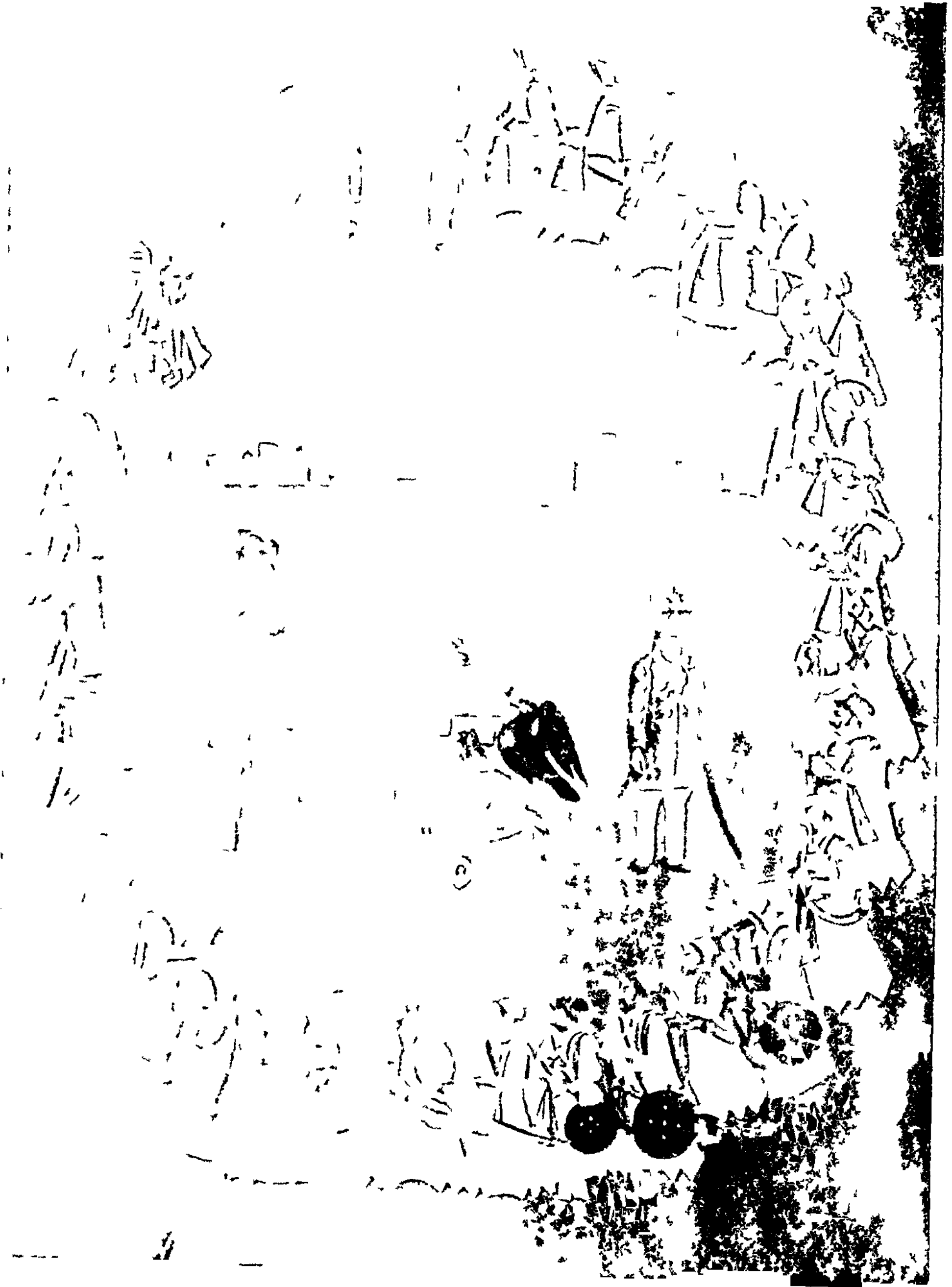


जोधपुर-नरेशों की वंशावली

मारवाड़ का इतिहास

प्रथम भाग

लेखक

पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ

साहित्याचार्य

सुपरिटैंडैंट—आर्कियॉलॉजीकल डिपार्टमैंट

और

सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी

जोधपुर.

[कॉरस्पॉण्डिङ्ग मैम्बर—इण्डियन हिस्टोरिकल रैकर्ड्स कमीशन]



जोधपुर,

आर्कियॉलॉजीकल डिपार्टमैंट

१९३८.

जोधपुर गवर्नमैंट प्रेस मे मुद्रित

प्राक्-कथन ।

मारवाड-राज्य राजपूताने के पश्चिमी भाग में स्थित है और इसका क्षेत्रफल राजपूताने की रियासतो से ही नहीं, किन्तु हैदराबाद और काश्मीर को छोड़कर भारत की अन्य सब ही रियासतो से बडा है । राव सीहाजी के कन्नौज से आने के पूर्व यहा पर अनेक राज-वशो का अधिकार रह चुका था और विक्रम की नवीं शताब्दी में यहा के प्रतिहार-नरेश नागभट (द्वितीय) ने कन्नौज विजय कर वहा पर अपना राज्य स्थापित किया था । परन्तु विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में चक्र मे परिवर्तन हुआ और कन्नौज के राठोड़-नरेश जयचन्द्र के पौत्र सीहाजी ने आकर मारवाड़ में अपना राज्य जमाया ।

यद्यपि वैसे तो राठोड-नरेश पहले से ही पराक्रम और दानशीलता में प्रसिद्ध थे, तथापि मारवाड़ के आधिपत्य मे इनका प्रताप-सूर्य फिर से पूरी तौर से चमक उठा ।

इसी वश में राव मालदेव-से पराक्रमी, राव चन्द्रसेन-से स्वाधीनताभिमानी और महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम)-से भारत सम्राट् औरगजेब तक की अवहेलना करने-वाले नरेश हो गए हैं ।

इसी से किसी कवि ने कहा है

> बल हठ बका देवडा, करतब बका गोड़ ।
> हाडा बका गाढ में, रणबका राठोड ॥

चारणो की कविताओ से प्रकट होता है कि जिस प्रकार इस वश के नरेश वीरता में अपना जोड़ नहीं रखते थे, उसी प्रकार दानशीलता में भी बहुत आगे बढ़े हुए थे । इनके सम्मान और दान मे दिए गावो के कारण इस समय मारवाड़-राज्य का प्रतिशत ८३ भाग जागीरदारो और शासनदारो के अधिकार में जा चुका है ।

इनके अलावा इस इतिहास के पृष्ठ ३६२-३६३ पर दी हुई अपूर्व घटना तो, जिसमें महाराजा रामसिंहजी की सेना ने अपने विरोधी जुल्फिकार की भटकती हुई

प्यासी सेना को युद्ध-स्थल में ही पानी पिलाकर सकुशल अपने शिविर में लौट जाने की अनुमति दी थी, पुराण-कालीन नरेशों के धर्म-युद्ध की याद दिलाती है।

युद्ध-भूमि के बीच रक्त के प्यासे शत्रुओं की तृषा को शीतल जल से शान्त कर उन्हें बिना बाधा के अपने शिविर में लौट जाने का मौका देने का वर्णन शायद ही किसी अन्य राज्य के इतिहास मे मिल सकता है। यह राठोड-वीरो की ही महती उदारता का उदाहरण है, और इनके लिये 'सहरुल मुतारवरीन' के लेखक सैयद गुलामहुसेन ने राजपूत-वीरो की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है। अपने ऐसे वीर और उदार पूर्वजो का, तथा उनके वर्तमान मुख्य राज्य—मारवाड का इतिहास लिखवाकर प्रकाशित करने के लिये ही जोधपुर-दरबार ने, वि० स० १९४४ (ई० स० १८८८) में, 'इतिहास-कार्यालय' की स्थापना की थी और इसके कार्य-सचालन के लिये मुशी देवीप्रसादजी आदि कुछ इतिहास-प्रेमी विद्वानो की एक 'कमेटी' बना दी थी। इसके बाद वि० स० १९५२ से १९६८ (ई० स० १८९५ से १९११) तक इस कार्यालय का कार्य पाल-ठाकुर रणजीतसिंहजी के और फिर वि० स० १९७६ (ई० स० १९१९) तक ठाकुर गुमानसिंहजी खीची के अधिकार मे रहा। इसके बाद यह महकमा रीवा-ठाकुर विजयसिंहजी को सौंपा गया। परन्तु वि० स० १९८३ (ई० स० १९२६) के करीब उनके इस कार्य से अवसर ग्रहण करलेने पर इसी वर्ष के आश्विन (अक्टोबर) मे जिस समय आर्किऑलॉजीकल डिपार्टमेन्ट (पुरातत्त्व-विभाग) की स्थापना की गई, उस समय उक्त 'इतिहास-कार्यालय' भी उसी मे मिलाया जाकर लेखक के अधिकार में दे दिया गया।

यद्यपि उस समय तक राजकीय 'इतिहास-कार्यालय' को स्थापित हुए करीब ३९ वर्ष हो चुके थे और राज्य का लाखो रुपया उस पर खर्च हो चुका था, तथापि वास्तविक कार्य बहुत ही कम हुआ था। उस समय के 'रिवैन्यू-मिनिस्टर' के राजकीय काउंसिल मे पेश किए विवरण से ज्ञात होता है कि उस समय तक केवल ६ राजाओ का इतिहास लिखा गया था और वह भी प्राचीन ढग से लिखा होने के कारण राजकीय काउंसिल ने अस्वीकार कर दिया था। इसके अलावा उस समय तक मारवाड़ में राठोड-राज्य के सस्थापक राव सीहाजी से लेकर राव चूडाजी तक के नरेशो के समय का निर्णय भी न हो सका था।

ऐतिहासिक सामग्री के सग्रह का यह हाल था कि जो कुछ काम की सामग्री इकट्ठी की जाती थी वह इस महकमे के अहलकारो के निजी सग्रह की शोभा बढ़ाती

थी और महकमे में व्यर्थ की सामग्री का ढेर बढ़ रहा था। अहलकार लोग जागीरदारों से लेकर छोटे से छोटे खेत के मालिक तक को अपना इतिहास पेश करने के लिये दबाते थे, और वे लोग वास्तविक इतिहास के अभाव में, उन्हीं अहलकारों से मन-माना इतिहास लिखवाकर महकमे मे पेश कर देते थे।

यद्यपि स्वर्गवासी प्रख्यात वयोवृद्ध राठोड वीर महाराजा सर प्रतापसिंहजी की अपने वीर पूर्वजों के इतिहास को लिखवाकर प्रकाशित करवाने की प्रबल इच्छा थी और इसी से उन्होंने कुछ वर्षों के लिये इस 'इतिहास-कार्यालय' को अपने निज के स्थान पर भी रक्खा था, तथापि उनकी वह इच्छा उनकी जीवितावस्था में पूरी न हो सकी।

वि० स० १९७९ (ई० स० १९२२) के करीब स्व० महाराजा प्रतापसिंहजी ने, उस समय के 'इतिहास-कार्यालय' के अध्यक्ष रीयां-ठाकुर राओ बहादुर विजयसिंहजी की उपस्थिति मे ही इस इतिहास के लेखक को मारवाड़ का इतिहास तैयार करने में सहायता करने की आज्ञा दी थी। परन्तु इसके बाद शीघ्र ही आपका स्वर्गवास हो जाने से इस विषय मे विशेष कार्य न हो सका।

इसके बाद जिस समय यह महकमा लेखक को सौंपा गया, उस समय इसकी यही दशा थी, और यद्यपि इस इतिहास के लेखक को इतिहास-कार्यालय के अलावा, 'सरदार म्यूज़ियम' (अजायबघर), 'सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी,' 'आर्कियॉलॉजीकल डिपार्टमैंट,' 'पुस्तक प्रकाश' (Manuscript Library) और 'चण्डू-पञ्चाङ्ग' के कार्यों का भी निरीक्षण करना पड़ता था, तथापि ईश्वर की कृपा से केवल दो वर्षों मे ही इस राजकीय इतिहास की रूप-रेखा तैयार कर ली गई, और वि० स० १९८६ के ज्येष्ठ (ई० स० १९२९ के जून) से इतिहास-कार्यालय के पुराने अमले मे कमी की जाकर दरबार के खर्च में ४,६०० रुपये सालाना की बचत कर दी गई।

वि० स० १९८५ (ई० स० १९२९) में जब उस समय का आय-सचिव (Revenue Member) मिस्टर डी. ऐल. ड्रेकब्रोकमेन (I C S, C. I E), जो आर्कियॉलॉजीकल महकमे का भी 'कण्ट्रोलिंग मैंबर' था, अपना यहां का कार्यकाल समाप्त कर 'युनाइटेड प्रौविंसेज़' मे वापस जाने लगा, तब उसकी विदाई के भोज में स्वय महाराजा साहब ने फरमाया था.

" I must too mention the despatch with which Mr Drake Brockman has been able to push through the compilation of the long awaited History of Marwar, a task which the Historical Department through its life of three generations showed no signs of accomplishing."

अर्थात्-"मैं यह प्रकट करना भी आवश्यक समझता हूं कि मारवाड़ का वह इतिहास, जिसकी बहुत समय से प्रतीक्षा की जा रही थी और जिसको सरकारी 'इतिहास-कार्यालय' तीन पीढ़ी बीत जाने पर भी तयार नहीं कर सका था, मिस्टर ड्रेकब्रोकमैन की प्रेरणा से शीघ्र ही तैयार हो गया।"

इसके बाद वि० सं० १९९० (ई० स० १९३३) में 'आर्किऑलॉजीकल' महकमे की तरफ से 'History of Rashtrakutas (Rathodas)' और इसके अगले वर्ष उसी का हिन्दी संस्करण 'राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का इतिहास' प्रकाशित किया गया। उनमें राव सीहाजी के मारवाड़ में आने से पूर्व का दक्षिण, लाट (गुजरात) और कन्नौज के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का इतिहास दिया गया था। अब यह उसी का अगला भाग इतिहास-प्रेमियों के सामने उपस्थित किया जाता है। इसमें मारवाड़ के संक्षिप्त प्राचीन-इतिहास के साथ-साथ राव सीहाजी के मारवाड़ में आने से लेकर अब तक का इतिहास दिया गया है।

इस इतिहास को इस रूप में प्रस्तुत करने के कारण जिन लोगों के स्वार्थों में बाधा पहुँचती थी, उनकी तरफ से लेखक पर अनुचित दबाव डालने और शिकायतों के नाम से नोटिस-बाजी करने में भी कमी नहीं की गई। इसी सिलसिले में एक समय ऐसा भी आ गया, जब राज्य के कुछ प्रभावशाली लोगों ने षड्यन्त्र रच लेखक को राजकीय सेवा से हटा देने तक का प्रयत्न किया। परन्तु लेखक ने परिणाम की परवा न कर अपना कर्तव्य पालन करने में यथासाध्य त्रुटि न होने दी। अन्त में ईश्वर की कृपा से विरोधियों का सारा ही प्रयत्न विफल हो गया और जिस समय इस घटना की सूचना महाराजा साहब को मिली, उस समय आपने लेखक को बुलवाकर और सब मामले की जाँच कर अपनी प्रसन्नता और सहानुभूति प्रकट की।

यहां पर यह प्रकट कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि इस इतिहास का अधिकांश भाग ई० स० १९२७ से ही समालोचना के लिये हिन्दुस्तानी, सरस्वती, सुधा, माधुरी, विशालभारत, वीणा, चाँद, क्षत्रियमित्र आदि हिन्दी की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध

पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाने लगा था, इसी से इस पुस्तक के संपादन में विकल्प-रूप से लिखे जानेवाले शब्दों में कहीं कहीं भिन्नता रह गई है।

इसके अलावा इस इतिहास में कहीं-कहीं पुरानी ख्यातों में मिलने वाले श्रावणादि (श्रावण मास से प्रारम्भ होनेवाले) संवतों को चैत्रादि (चैत्र सुदि से प्रारम्भ होने वाले) संवतों में परिवर्तन कर लिखना छूट गया था, इसी से शुद्धि पत्र नं० १ में यह संशोधन दे दिया गया है। परन्तु इसमें के राजाओं के चित्रों के नीचे जो राज्यवर्ष दिए गए हैं वे चैत्रादि संवतों में ही हैं।

इस इतिहास के लिखने में जिन-जिन मुद्रित और अमुद्रित ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उनके अवतरण और नाम आदि यथास्थान टिप्पणी में देने का प्रयत्न किया गया है।

यद्यपि वर्तमान मारवाड़-नरेश के राजत्वकाल का इतिहास इसके 'प्रथम परिशिष्ट' में दिया गया है, तथापि वह इस इतिहास का ही एक अङ्ग है। इसके अलावा उन बातों का उल्लेख भी, जो मारवाड़ राज्य के इतिहास से गौणरूप से सम्बन्ध रखती हैं, अन्य परिशिष्टों में दे दिया गया है। हमारा विचार इस इतिहास के साथ ही मारवाड़ का संक्षिप्त भौगोलिक वर्णन भी जोड़ देने का था, परन्तु कई कारणों से ऐसा न हो सका।

इसके प्रकाशन में जोधपुर गवर्नमेंट-प्रेस के सुपरिन्टेंडेंट मिस्टर चैनपुरी और अन्य कर्मचारियों ने जिस तत्परता से सहायता दी है, उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

आर्कियॉलॉजिकल डिपार्टमेंट,
जोधपुर
आषाढ सुदि १४ वि० सं० १९९५.

विश्वेश्वरनाथ रेउ.

जोधपुर-नरेश के कनिष्ठ भ्राता महाराज श्री अजीतसिंहजी साहब

का

वक्तव्य[1]।

मारवाड़ और उसके विख्यात नरेशों का यह विशद इतिहास पूरी विद्वत्ता और छानबीन के साथ लिखा गया है, और इस श्रमसाध्य कार्य को पूर्ण करने के लिये इसके लेखक पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ बधाई के पात्र हैं।

यह पुस्तक स्वय ही श्रीयुत रेउ की पूरी खोज और अध्ययन का प्रमाण है।

अजीतसिंह महाराज,
सभापति,
परामर्शदात्री सरदार सभा,
और
मुख्य परामर्शदात्री सभा

(1) This comprehensive History of Marwar and its illustrious rulers has been written with scholarly care and thoroughness and its author Pandit Bisheshwar Nath Reu, is to be congratulated on the accomplishment of a laborious task The work evidences a good deal of research and study done by Mr Reu

AJIT SINGH MAHARAJ,
President,
Consultative Committee of Sardars
and
Central Advisory Board

Jodhpur,
21-6-1939

जोधपुर-राज्य के प्रधान मन्त्री सर डोनाल्ड फील्ड (सी. आइ. ई.)

का

वक्तव्य[1]।

इस विशद और सर्वाङ्ग-पूर्ण इतिहास को ऐसी सफलता के साथ लिखकर प्रस्तुत करने के कारण मैं पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ को हार्दिक बधाई का अधिकारी समझता हूं।

यह इतिहास, परम्परागत धारणाओं के ऐतिहासिक आधार को ढूंढ निकालने में की गई, लेखक की सावधानतापूर्ण और यथार्थ खोजका स्वयं ही प्रमाण है और साथ ही, अन्य बातों में, वीर राठोड-वंश पर लगाए गए कलङ्कों का ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा मूलोच्छेदन करने में भी पण्डित विश्वेश्वरनाथ ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

लेखक ने उस कार्य को, जिसे जोधपुर-राजकीय इतिहास-कार्यालय के पहले के तीन अधिकारी केवल प्रारम्भ ही कर सके थे, पूरी योग्यता से समाप्त किया है और मेरी सम्मति में उसका इस कार्य को सम्पूर्ण करने में सफल होने के कारण सच्चा गौरव अनुभव करना ठीक ही है।

उन विद्वानों ने भी, जो इतिहास पर सम्मति देने के पूर्ण अधिकारी हैं, पण्डित विश्वेश्वरनाथ के लिखे इतिहास की सहानुभूति-पूर्ण समालोचना की है और मेरे विचार मे यह इतिहास राजकीय कागज-पत्रों में भी एक अमूल्य वस्तु समझा जायगा।

मैं इस संक्षिप्त वक्तव्य को भूमिका के रूप में लिखने में बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करता हूं।

डी. एम. फील्ड,
लैफ्टिनैन्ट कर्नल,
चीफ मिनिस्टर,
गवर्नमेन्ट ऑफ जोधपुर.

(१) Pandit Bisheshwar Nath Reu deserves in my opinion warm congratulations on the accomplishment of a detailed and exhaustive History of Marwar. The work affords evidence of careful and accurate research in an effort to discover a historical basis for the facts alleged, and Pt. Bisheshwar Nath has, amongst other things, been successful in dispelling certain false ideas which have in the past been promulgated about the brave dynasty of the Rathors. He has accomplished with marked ability a task that was no more than begun by three of his predecessors in the History Department of the Jodhpur State and he can I think claim a legitimate pride in the accomplishment of his task.

Pandit Bisheshwar Nath's History has earned favourable criticism by scholars well qualified to pronounce an opinion on the subject, and I think that this history will be a most valuable acquisition to the State records.

I have great pleasure in writing this brief foreword by way of introduction.

D. M. FIELD,
Lt. COLONEL,
Chief Minister,
Govt. of Jodhpur.

JODHPUR,
March 23, 1939.

जोधपुर-राज्य के गृह-सचिव (होम मिनिस्टर)
का
वक्तव्य।

मुझे पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ के लिखे मारवाड़ के इतिहास को आदि से अन्त तक अवलोकन करने का अवसर मिला। मैं इस देश का निवासी होने के कारण इसके प्राचीन गौरव से अवगत होने का दावा कर सकता हूं। यह करीब आठ सौ वर्षों का लम्बा इतिहास है और इसके तयार करने में लेखक की आयु का श्रेष्ठ भाग व्यतीत हुआ है। निस्सन्देह उसने इसकी सामग्री एकत्रित करने, अनेक साधनों द्वारा उनकी सत्यता जाँचने और फिर सच्ची घटनाओं को सुचारु और समुचित रूप से उपस्थित करने में अत्यन्त परिश्रम उठाया है।

समय समय पर श्रीयुत रेउ का कार्य अवश्य ही कठिन और अप्रिय प्रतीत हुआ होगा। परन्तु उसने सच्चे ऐतिहासिक के कर्तव्य को कभी न भुलाया, और बिना किसी भय या पक्षपात के वास्तविक घटनाओं और उनके सच्चे परिणामों का उचित रूप से चित्रण किया है।

मारवाड़ के राठोड़ों के इस गौरवमय इतिहास के साथ-साथ इसके लेखक का नाम भी अनन्तकाल तक बना रहेगा।

महकमा खास
जोधपुर,
ता० २८ अक्टोबर १९३८.

माधोसिंघ.
होम मिनिस्टर, जोधपुर गवर्नमेंट,
(प्रेसिडेन्ट हिस्टोरिकल कमेटी).

---

(१) I have had the privilege and pleasure of revising the History of Marwar written by Pt. Bisheswar Nath Reu. I belong to this place and claim to know something of its ancient glory. It is a long record covering a period of about 800 years and its compilation has taken the writer the best part of a life time. He has no doubt taken infinite pains in collecting material, verifying the contents from various sources and then presenting the proved facts in an interesting and proper form.

At times Mr. Reu's task must have been irksome and unpleasant but he has always adhered to the true historian's principle and has without fear or favour presented facts and their consequences in correct perspective.

With this proud record of Rathors in Marwar will go down the name of its writer to the end of time.

Mehkma Khas,
JODHPUR,
Dated October 28, 1938

MADHO SINGH,
Home Minister,
Government of Jodhpur
(President, Historical Committee)

विषय-सूची ।

जोधपुर-राज्य के गृह-मन्त्रि (होम मिनिस्टर) [illegible]

मुझे पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ के लिखे मारवाड़ के इतिहास [illegible] तक अवलोकन करने का अवसर मिला। [illegible] प्राचीन गौरव से [illegible] का लम्बा [illegible] और [illegible] हुआ है। [illegible] सत्यता जाँचने और [illegible] करने में अत्यन्त परिश्रम उठाया है।

समय समय पर श्रीयुत रेउ का [illegible] होगा। परन्तु उनने सच्चे ऐतिहासिक के [illegible] भय या पक्षपात के वास्तविक घटनाओं और उनके [illegible] चित्रण किया है।

मारवाड़ के राठोड़ों के इस गौरवमय इतिहास [illegible] नाम भी अनन्तकाल तक बना रहेगा।

मेहरमा [illegible]
जोधपुर,
ता० २८ अक्टोबर १९३८.

माधोसिंघ.
होम मिनिस्टर, जोधपुर गवर्नमेंट,
(प्रेसीडेन्ट हिस्टोरिकल [illegible])

(१) I have had the privilege and pleasure of [illegible] the History of Marwar written by Pt. Bisheswar Nath Reu. [illegible] of [illegible] glory. It is a long record covering a period of [illegible] the writer the best part of [illegible] time. He has [illegible] material, verifying the contents from various sources [illegible] in an interesting and proper form.

At times Mr. Reu's task must have been [illegible] adhered to the true historian's principle [illegible] and their consequences in correct perspective.

With this proud record of Rathors in Marwar [illegible] to the end of time.

Mehkma Khas,
JODHPUR,
Dated October 28, 1938

MADHO SINGH,
Home Minister
Government of Jodhpur
(President, Historical [illegible])

विषय-सूची ।

चित्र-सूची ।

मारवाड़ का इतिहास

स्थिति और विस्तार

यह देश राजपूताने के पश्चिमी भाग में है और इसका विस्तार यहा के सब राज्यो से अधिक है। इसकी लंबाई ईशानकोण से नैर्ऋत्यकोण तक ३२० मील और चौडाई उत्तर से दक्षिण तक १७० मील है।

इसके पूर्व मे जयपुर, किशनगढ़ और अजमेर, अग्निकोण में मेरवाडा और उदयपुर (मेवाड), दक्षिण में सिरोही और पालनपुर, नैर्ऋत्यकोण में कच्छ का रण, पश्चिम में थरपाकर और सिंध, वायव्यकोण में जैसलमेर तथा उत्तर में बीकानेर और ईशानकोण में शेखावाटी है।

यद्यपि आजकल यह देश २४ अंश ३६ कला उत्तर अक्षांश से लेकर २७ अंश ४२ कला उत्तर अक्षांश तक, तथा ७० अंश ६ कला पूर्व देशांतर से लेकर ७५ अंश २४ कला पूर्व देशांतर तक फैला हुआ है, और इसका क्षेत्रफल ३५०१६ वर्गमील है, तथापि कर्नल टॉड के मतानुसार किसी समय मरुदेश का विस्तार समुद्र से सतलज

१ कुछ लोग "मरु' और "माड़' देशों के नामों के मिलने से "मारवाड़" नामकी उत्पत्ति होना अनुमान करते हैं। 'माड़ जैसलमेर के पूर्वी भाग का नाम है और यह मरुदेश के पश्चिमी भाग से मिला हुआ है। उन के मतानुसार कालान्तर में इसी 'माड शब्द का 'वाड़' के रूप में परिवर्तन होगया है।

तक था। अबुलफज़ल ने इसकी लंबाई १०० कोस और चौड़ाई ६० कोस लिखी है और अजमेर, जोधपुर, नागोर, सिरोही और बीकानेर, को इसके अंतर्गत माना है। उसने इसके प्रसिद्ध किलों के नाम इस प्रकार दिए हैं: अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, जेसलमेर, अमरकोट और [illegible]।

पौराणिक-काल

इसकी उत्पत्ति के विषय में वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार लिखा है:

"लंका पर चढ़ाई करने की इच्छा से जब श्रीरामचन्द्र समुद्र के किनारे पहुँचे, तब जल में मार्ग पाने की इच्छा से उन्होंने उसकी अभ्यर्थना आरम्भ की। परन्तु समुद्र ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इससे क्रुद्ध हो राम ने समुद्र को सुखा देने के लिये आग्नेयास्त्र का अनुसंधान किया। यह देख समुद्र भयभीत हो उठा और उसने प्रकट होकर श्री रामचन्द्र से उस बाण को अपने द्रुमकुल्य नामक उत्तरी भाग पर

* उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित्पुण्यतरो मम।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान् ॥ २९ ॥
उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः।
आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम ॥ ३० ॥
तैर्न तत्स्पर्शनं पापं सहेयं पापकर्मभिः।
अमोघः क्रियतां राम तत्र तेषु शरोत्तमः ॥ ३१ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मनः।
मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात् ॥ ३२ ॥
तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां किल विश्रुतम्।
निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः ॥ ३३ ॥
ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता।
तस्माद्व्रणमुखात्तोयमुत्पपात रसातलात् ॥ ३४ ॥
स बभूव तदा कूपो व्रण इत्यभिविश्रुतः ॥
रामो [illegible]।
वरं तस्मै ददौ विद्वान्मरवेऽमरविक्रमः ॥ ३७ ॥
पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः।
बहुस्नेहो बहुक्षीरः सुगन्धिर्विविधौषधिः ॥ ३८ ॥
एवमेतैश्च संयुक्तो बहुभिः संयुतो मरुः।
रामस्य वरदानाच्च शिवः पन्था बभूव ह ॥ ३९ ॥
(युद्धकाण्ड, सर्ग २२)

चलाने की प्रार्थना की। उन्होंने भी उसके विनीत वचन सुन उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। राम के आग्नेयास्त्र के प्रभाव से द्रुमकुल्य का जल सूख गया और वहां पर मरुदेश की उत्पत्ति हुई, तथा जहां पर वह तीर गिरा था वहां पर गढे से पानी निकलने लगा।[1]"

रामायण की कथा से यह भी प्रकट होता है कि पहले उक्त स्थान पर आभीर आदि जंगली (अनार्य) जातियां रहती थीं। परंतु इस घटना के बाद से वहां का मार्ग निष्कंटक हो गया और आर्य लोग उधर आने-जाने और बसने लगे। अब तक भी मारवाड के अन्य प्रदेशों से उस प्रदेश में गाय आदि (दूध देनेवाले पशु) अधिक होती हैं।

मारवाड के पश्चिमी प्रदेश में अर्धपाषाणरूप मे परिवर्तित शंख, सीप आदि के मिलने से भी पूर्वकाल में वहां पर समुद्र का होना सिद्ध होता है और प्राकृतिक कारणों से उसके हट जाने से वहां पर रेतीली पृथ्वी निकल आई है।

यह भी अनुमान होता है कि वहां पर किसी समय सतलज की एक धारा बहती थी। लोग उसे हाकडा नदी के नाम से पुकारते थे और उसके किनारों पर गन्ने की खेती करतेथे। परंतु अब उधर की पृथ्वी के कुछ ऊँची हो जाने के कारण उस धारा का पानी मुलतान की तरफ मुडकर सिंधु में जा मिला है। मारवाड़-राज्य का एक प्रांत अब तक हाकडा के नाम से प्रसिद्ध है और 'वह पानी मुलतान गया' की एक कहावत भी यहाँ पर प्रचलित है।

'भागवत'[2] से ज्ञात होता है कि कंस का वैर लेने के लिये उस के श्वशुर (मगध के राजा) जरासंध ने सत्रह बार मथुरा पर विफल चढाइयाँ की थीं। इसके बाद उक्त नगरी पर कालयवन का हमला हुआ। यह देख श्रीकृष्ण ने सोचा कि यदि इस मौके पर कहीं फिर जरासंध चढ आया तो यदु लोग निरर्थक ही मारे जायँगे। इसी से उन्होंने यदु लोगों को द्वारकापुरी की तरफ भेज दिया।

इससे अनुमान होता है कि संभवत इसी समय (अर्थात्-महाभारत के समय के पूर्व ही) से मारवाड़ का गुजरात की तरफ का दक्षिणी भाग आबाद होने लगा होगा[3]।

१ कुछ लोग बीलाडा नामक गांव की 'बाण गंगा' के कुण्ड को उक्त बाण के गिरने का स्थान अनुमान करते हैं। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

२. श्रीमद्भागवत, दशमस्कंध, अध्याय ५०।

३. श्रीमद्भागवत में लिखा है "मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयो परान्।"
(भागवत, स्कन्ध १, अ० १०, श्लो० ३५)

पहले मारवाड़ का उत्तरी भाग और उसके [illegible] का भाग कुरु-जांगल देश कहलाता था और उसकी राजधानी [illegible] (नागोर) थी। महाभारत से पता चलता है कि उस समय यहाँ पर [illegible] का अधिकार था।

ऐतिहासिक-काल

इसके बाद से मौर्यवंशी नरेश चन्द्रगुप्त के पूर्व तक का यहाँ का विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता है। परन्तु [illegible] मौर्य [illegible] का राज्य नर्मदा से अफगानिस्तान तक फैला हुआ था। [illegible] था। उसने सुदूर दक्षिण का [illegible] अफगानिस्तान और बलूचिस्तान पर अधिकार कर लिया था। [illegible] (गिरनार) में उसका एक स्तम्भलेख मिला है। इससे [illegible] होता है कि मौर्य [illegible] और उसके पौत्र अशोक के समय मारवाड़ भी मौर्य-राज्य [illegible] रहा होगा।

विक्रम सं० ९७ से २८३ (ईसवी सन् ४० से २२६) तक [illegible] के पश्चिमी प्रदेशों पर कुशानवंशी राजाओं का अधिकार रहा था, इन्होंने [illegible] से आगे बढ़कर धीरे-धीरे काबुल, कन्धार, [illegible], सिन्ध और [illegible] का [illegible] भाग दबा लिया था। इनमें कनिष्क विशेष प्रतापी राजा हुआ। [illegible] उत्तर पश्चिमी भारत और दक्षिण का [illegible] तक का प्रदेश इसके राज्य में था। इसलिये मारवाड़ के कुछ भाग पर इस वंश के नरेशों का अधिकार भी अवश्य रहा होगा।

इससे अनुमान होता है कि [illegible] और [illegible] दो भिन्न [illegible] थे। [illegible] लेखानुसार ये दोनों [illegible] को [illegible] में इन दोनों शब्दों [illegible] स्थान पर न [illegible] जाता। इससे अनुमान होता है कि शायद मारवाड़ का [illegible] होगा।

¹ [illegible] राज्य [illegible] कुरुजांगला।

(उद्योगपर्व अध्याय ५४, श्लोक [illegible])

([illegible] स्थान पर सिंधु से [illegible] तक के भूभाग को [illegible] है।)

² मौर्यों के बाद उनके [illegible] शुंगवंशी राजाओं के [illegible] था। इस वंश के संस्थापक पुष्यमित्र के समय, वि० सं० से ९९ (ई० स० [illegible]) [illegible] नरेश मिनेंडर ने राजपूताने पर चढ़ाई की थी और [illegible] (चित्तौड़ से ६ मील उत्तर) तक जा पहुँचा था। नहीं [illegible] कि उस [illegible] मारवाड़ में भी उसका प्रवेश हुआ था या नहीं?

वि० स० १७६ (ई० स० ११९) के करीब गुजरात, काठियावाड, कच्छ आदि प्रदेशो पर पश्चिमी क्षत्रप नहपान का राज्य था। इससे मारवाड के दक्षिणी भाग का भी इसके अधिकार में होना पाया जाता है। इसके जामाता ऋषभदत्त (उषवदात) ने पुष्कर में जाकर बहुतसा दान दिया था। वि० स० १८१ के कुछ काल बादही नहपान का राज्य आन्ध्रवशी गौतमीपुत्र शातकर्णी ने छीन लिया था। इसपर मारवाड़ का दक्षिणी भाग भी उसके अधिकार में चला गया होगा।

शक सवत् ७२ (वि० स० २०७) के जूनागढ से मिले पश्चिमी क्षत्रप रुद्रदामा प्रथम के लेख से पता चलता है कि श्वभ्र (उत्तरी गुजरात), मरु (मारवाड़), कच्छ और सिंधु (सिंध) प्रदेशो पर उसका अधिकार हो गया था।

समुद्रगुप्त का पुत्र चद्रगुप्त द्वितीय था। इसको विक्रमादित्य भी कहते थे। इसने वि० स० ४४५ के करीब पश्चिमी क्षत्रपो के राज्य की समाप्ति कर अपने राज्य का और भी विस्तार किया था। गुप्त सवत् २८८ (वि० स० ६७४) का एक शिलालेख मारवाड के गोठ और मागलोद की सीमा पर के दधिमती देवी के मदिर से मिला है।[1] ये दोनो गॉव नागोर से २४ मील उत्तर-पश्चिम में हैं। मारवाड की प्राचीन-राजधानी मडोर के विशीर्ण-दुर्ग में एक तोरण के दो स्तभ खडे हैं। उन पर श्रीकृष्ण की बाललीलाऐं खुदी हैं। इनमें के एक स्तभ पर गुप्त लिपि का लेख था, जो अब करीब-करीब सारा ही नष्ट हो गया है। इन सब बातो से सिद्ध होता है कि इस देश के कुछ भागो पर गुप्त राजाओ का अधिकार भी रहा होगा।

वि० स० ५२७ (ई० स० ४७०) के करीब हूणो ने स्कदगुप्त के राज्य पर (दुबारा) चढाई की। इससे गुप्त-राज्य की नीव हिल गई और उसके पश्चिमी प्रात पर हूणो का अधिकार हो गया। सम्भवत. उस समय मारवाड़ का कुछ भाग भी अवश्य ही उनके अधिकार में चला गया होगा।[2]

१ एपिग्राफिया इडिका, भाग ८, पृ० ३६

२ वि० स० ५४१ (ई० स० ४८४) मे हूणों ने पर्शिया (ईरान) के राजा फीरोज को मारकर वहा का खजाना लूट लिया था। इसी से वहा के ससेनियन सिक्को का भारत में प्रवेश हुआ। ये सिक्के अठन्नी के बराबर होते थे और इन पर सीधी तरफ राजा का मस्तक और उलटी तरफ अग्निकुण्ड बना रहता था, जिसके दोनों तरफ आदमी खडे होते थे। ये आजकल के सिक्को से बहुत पतले होते थे। ये सिक्के हूणों का राज्य नष्ट हो जाने पर भी गुजरात, मालवा और राजपूताने में विक्रम सवत् की बारहवीं शताब्दी के

इसी प्रकार वि० स० ४४५ के आसपास पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य के नष्ट होने पर मारवाड़ के कुछ भाग पर गुर्जरों ने अधिकार कर लिया था। इसी से धीरे-धीरे मारवाड़ का पूर्व की तरफ का (दक्षिण से उत्तर तक का) सारा भाग गुर्जर-राज्य के अंतर्गत हो गया था और गुर्जरत्रा (गुर्जर या गुजरात) कहाता था।

चीनी यात्री हुएन्तसग, जो वि० स० ६८६ में चीन से रवाना होकर भारत में आया था, भीनमाल को गुजरात की राजधानी लिखता है। वि० स० ९०० के सिवा गॉव (डीडवाना प्रात) से मिले प्रतिहार भोजदेव प्रथम के दानपत्र से उस प्रदेश का भी एक समय गुर्जर-प्रात में रहना सिद्ध होता[1] है।

यही बात कालिंजर से मिले विक्रम की नवीं शताब्दी के लेख से भी प्रकट होती[2] है।

वि० स० ५८९ (ई० स० ५३२) के मंदसोर से मिले यशोवर्मा के लेख में उसके राज्य का विस्तार पूर्व में ब्रह्मपुत्र से पश्चिम में समुद्र तक और उत्तर में हिमालय से दक्षिण में महेन्द्र पर्वत तक होना लिखा है। परंतु अबतक न तो उसके पूर्वजों का ही पता चला है न उत्तराधिकारियों का ही। सभव है उस समय गुर्जर लोग उसके सामंत होगए हों[3]।

वि० स० ६८५ मे भीनमाल के रहनेवाले ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्मस्फुटसिद्धात' की रचना की थी। उस समय वहॉ पर चावडा वंश के व्याघ्रमुख नामक राजा का राज्य था।

भीनमाल के प्रसिद्ध कवि माघ ने अपने 'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य के कवि-वंश-वर्णन मे अपने दादा को राजा वर्मलात का मंत्री लिखा है। वसंतगढ (सिरोही-राज्य) से, वि० स० ६८२ का, इस वर्मलात का एक शिला-लेख मिला है।

पूर्वार्ध तक प्रचलित थे। परंतु क्रमश इनका आकार छोटा होने के साथही इनकी मुटाई बढती गई और धीरे धीरे इसमे का राजा का चेहरा ऐसा भद्दा हो गया कि वह गधे के खुर के समान दिखाई देने लगा। इसी से इसका नाम गधिया (गधैया) हो गया। इस प्रकार के सिक्के मारवाड के अनेक प्रदेशों से मिले हैं।

१ एपिग्राफिया इंडिका, भाग ५, पृ० २११ (गुर्जरत्राभूमौ डेण्डवानकविषय०)

२ एपिग्राफिया इंडिका, भाग ५, पृ० २१०, नोट ३ (श्रीमद्गुर्जरत्रामंडलान्त पातिमंगलानक०)

३ विक्रम की छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के करीब वैसवंशी प्रभाकरवर्धन ने सिंध और गुजरात-वालों से युद्ध कर उन्हें हैरान कर दिया था, ऐसा 'श्रीहर्षचरित' से पाया जाता है। इसका छोटा पुत्र हर्षवर्धन भी बडा प्रतापी था। उसने उत्तरापथ के राजाओं पर चढाई कर उधर के देशों को जीत लिया था। यह बात विजयभट्टारिका के दानपत्र और हुएन्त्संग के लेखों से प्रकट होती है।

इसके और ब्रह्मगुप्त-रचित 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' के रचना-काल के बीच केवल तीन वर्ष का अंतर होने से विद्वान् लोग वर्मलात को व्याघ्रमुख का पिता या उपनाम अनुमान करते हैं।

इससे ज्ञात होता है कि गुर्जरों के बाद मारवाड़ का दक्षिणी भाग चावड़ों के अधिकार में रहा था। कलचुरी संवत् ४९० (वि० सं० ७९६) के (लाटदेश के) सोलंकी पुलकेशी के दानपत्र से प्रकट होता है कि उस समय के पूर्व ही अरब लोगों की चढ़ाई से चावड़ों का राज्य नष्ट हो गया था। फारसी के 'फतूहुल् बुलदान' नामक इतिहास से ज्ञात होता है कि खलीफा हशाम के समय सिंध के शासक जुनैद की सेना ने मारवाड़ और भीनमाल पर चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई से चावड़े कमजोर हो गए और कुछ ही काल बाद उनका राज्य पड़िहारों ने दबा लिया।

जोधपुर नगर की शहरपनाह से वि० सं० ८९४ का मंडोर के राजा बाउक का एक लेख मिला है। यह शायद मंडोर के किसी वैष्णव-मंदिर के लिये खुदवाया गया था। इसी प्रकार वि० सं० ९१८ के दो शिला-लेख बाउक के भाई कक्कुक के घटियाला (जोधपुर से २० मील उत्तर) से मिले हैं। इनमें का एक प्राकृत का और दूसरा संस्कृत का है। इनसे प्रकट होता है कि हरिश्चंद्र के पुत्रों ने वि० सं० ६७० के करीब मंडोर के किले पर अधिकार कर वहाँ पर कोट बनवाया था। इसके बाद इनके प्रपौत्र नागभट ने मेड़ता नगर में अपनी राजधानी कायम की और मंडोर में अपने नाम पर नागभटस्वामिदेव का एक मंदिर बनवाया। नागभट के बड़े पुत्र तात ने

१ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २११ नोट २३

२ जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८९४), पृ० ४-९। इनमें बाउक का 'लवणी' और 'वल्लमण्डल' पर अधिकार करना लिखा है। अनुमान से ज्ञात होता है कि उस समय मारवाड़ का वायव्य कोण का जो जैसलमेर से मिला मंडोर की तरफ का भाग 'लवणी' और पहाड़ों की तरफ का भाग 'वल्ल' कहलाता था। इसी लेख में बाउक का मयूर को मारना भी लिखा है। इन लोगों का अनुमान है कि उस समय मंडोर के पश्चिमी प्रान्त पर मौर्य क्षत्रियों का राज्य था और यह मयूर उन्हीं का वंशज होगा। कुछ काल बाद पड़िहारों ने इस वंश के राजाओं को सिंध की तरफ भगा दिया था। इस समय उनके वंशज सिंध और मुलतान में मोर के नाम से प्रसिद्ध हैं। परन्तु इन्होंने इसलाम धर्म ग्रहण कर लिया है।

३. जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८९५), पृ० ५१७-१८

४ पृथ्वीराजरासे में मंडोर के नाहड़राव पड़िहार और पृथ्वीराज चौहान के युद्ध की जो कथा लिखी है वह बिलकुल कल्पित ही है।

अपने छोटे भाई भोज को राज्य देकर माण्डव्य के आश्रम (मंडोर) में स्थापित किया। इसी भोज की छठी पीढ़ी में कक्क हुआ। जिस समय कन्नौज और भीनमाल के पड़िहार राजा वत्सराज[1] ने मुंगेर के गौड़ राजा पर चढ़ाई की, उस समय यह कक्क भी, सामन्त की हैसियत से, वत्सराज के साथ था। परन्तु जिस समय इस वत्सराज ने मालवे पर चढ़ाई की, उस समय मान्यखेट का राष्ट्रकूट राजा ध्रुवराज मालवे वालों की सहायता को जा पहुँचा। इससे वत्सराज को भागकर मारवाड़ में आना पड़ा। श० सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) में जिनसेन ने 'हरिवंशपुराण' लिखा था। उसमें वत्सराज को पश्चिम (मारवाड़) का राजा लिखा है[2]।

इसका पुत्र नागभट द्वितीय था। पुष्कर का घाट बनवानेवाला प्रसिद्ध नाहड़ यही होगा। इसके समय का वि० सं० ८७२ का एक लेख बुचकला (बीलाड़ा परगने) से मिला है। इसी ने अपनी राजधानी भीनमाल से हटाकर कन्नौज में स्थापित की थी।

उपर्युक्त कक्क का पुत्र बाउक हुआ। इसके बाद इसके भाई कक्कुक ने मारवाड़ और गुजरात के लोगों से मित्रता की, घटियाले (रोहिंसकूप) में बाजार बनवाया और मंडोर तथा घटियाले में जयस्तम्भ खड़े किए[3]। वि० सं० ९९३ का एक लेख प्रतिहार (पड़िहार) बाउक का भी चेटर्ड (जोधपुर-नगर) से मिला है।

वि० सं० १२०० के करीब तक तो मंडोर पर पड़िहारों का ही राज्य रहा। परन्तु इसके करीब नाडोल के चौहान रायपाल ने यहाँ पर अपना अधिकार कर लिया और पड़िहार लोग छोटे-छोटे जागीरदारों की हैसियत से रहने लगे।

वि० सं० १२०२ की समाप्ति के करीब का चौहान रायपाल के पुत्र सहजपाल का एक टूटा हुआ लेख मंडोर से मिला है[4]। उससे भी इस बात की पुष्टि होती है।

१ हांसोट (भड़ौच जिले) से चौहान भर्तृवड्ड [द्वितीय] का वि० सं० ८१३ का एक दानपत्र मिला है। उसमें उसने पड़िहार नागावलोक का सामन्त लिखा है। यह नागावलोक ही वत्सराज का पितामह था। इसके राज्य का उत्तरी भाग मारवाड़ और दक्षिणी भाग भड़ौच तक फैला हुआ था। इसके वंशज भोजदेव की ग्वालियर की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसने अपने राज्य पर सिंध की तरफ से हमला करनेवाले म्लेच्छों को हरा दिया था। (आर्किऑलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (१९०३-४), पृ० २८०

२ 'वत्साधिराजे परा' (बॉम्बे गैजेटियर, जि० १, भा० २, पृ० १९८, नोट २

३ एपिग्राफिया इंडिका, भा० ९, पृ० १९९-२००

४ आर्किऑलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (१९०९-१०) पृ० १०२-३। यद्यपि इस लेख में संवत् नहीं लिखा है, तथापि सहजपाल के पिता रायपाल का वि० सं० १२०२

वि० स० १३१६ के, सूँधा से मिले, चाचिगदेव के लेख से भी उसके पिता चौहान उदयसिंह (वि० स० १२६२ से १३०६) का मडोर पर अधिकार होना पाया जाता है। इसके बाद वि० स० १२८४ मे वहा पर शम्सुदीन अल्तमश का अधिकार होगया। परतु कुछ काल बाद मुसलमानो की कमजोरी से मडोर फिर पडिहारो के अधिकार में चला गया। इस पर वि० म० १३५१ में जलालुद्दीन फीरोजशाह खिलजी ने चढ़ाई कर पडिहारो को वहा से भगा दिया।

वि० स० १४५२ के करीब मुसलमानो से तग आकर ईदा शाखा के पडिहारो ने फिर एकबार मडोर पर अधिकार कर लिया। परतु उसकी रक्षा करना कठिन जान उन्होने उसे राठोड राव चूडाजी को दहेज मे दे दिया, जो अब तक उन्हीं के वशजो के अधिकार में है।

वि० म० ७४३ के करीब चौहान वासुदेव ने अहिच्छत्रपुर से आकर शाकमरी (सामर) में अपना राज्य कायम कर लिया था। इसी से ये (चौहान) शाकमरीश्वर (साभरीराज) कहाए और इनके राज्य का प्रदेश, जिसमे नागोर आदि के प्रान्त भी थे, 'सपादलक्ष' या 'सवालख' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वि० स० १०३० का साभर के चौहान राजा विग्रहराज के समय का एक लेख शेखावाटी (जयपुर-राज्य) के हर्षनाथ के मदिर से मिला है। उससे ज्ञात होता है कि उस समय तक चाहान लोग कन्नौज के पडिहारो के सामत थे। परतु उसके बाद धीरे-धीरे स्वतंत्र हो गए। 'पृथ्वीराजविजय काव्य' के लेखानुसार वि० स० ११६५ (ई. स ११०८) के करीब चौहान अजयदेव ने अजमेर बसाकर उसे इस वश की राजधानी बनाया। वि० स० १२५१ तक तो वहा पर इसी वश का अधिकार रहा, परतु इसके बाद प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान के भाई हरिराज की मृत्यु के बाद उस पर मुसलमानो का पूरी तौर से अधिकार हो गया।

इसी वश की एक शाखा ने वि० म० १०१७ (ई स ९६०) के करीब नाडोल का राज्य कायम किया था। परतु वि० स० १०७८ के बाद ही इस शाखा के

तक की प्रशस्तियों के मिलने से यह लेख उस समय के बादका ही प्रतीत होता है।

१ वि० स० १२७४ मे एकबार मडोर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। परन्तु शीघ्र ही चौहान उदयसिंह ने वहा पर फिर स अधिकार कर लिया।

२. वि० स० १२४९ मे पृथ्वीराज शहाबुद्दीन गोरी द्वारा मारा गया था।

चौहानो को सोलंकियो की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। वि० स० १२५९ (ई स १२०२) के करीब कुतुबुद्दीन ने इन चौहानों के राज्य पर हमला कर उसे नष्ट कर दिया।

वि० स० १२१८ के करीब चौहानो की उसी शाखा के (केल्हण के छोटे भाई) कीर्तिपाल ने पँवारो से जालोर छीनकर सोनगरा[2] नाम की प्रशाखा चलाई थी। इस शाखा की राजधानी जालोर थी। वि० स० १४८२ के करीब राव रणमल्लजी ने, राजधर को मार, इसकी समाप्ति कर दी[3]। इसी प्रकार वि० स० १४४४ में नाडोल से निकली साचोर के चौहानो की भी एक शाखा का पता चलता है।

पोकरण से वि० स० १०७० का एक लेख मिला है। इससे उस समय वहा पर परमारो (पँवारो) का अधिकार होना पाया जाता है।

किराडू से वि० स० १२१८ का परमार सोमेश्वर के समय का एक लेख मिला है। उसमे परमार सिंधुराज[4] को मारवाड का राजा लिखा है। इसका समय वि० स० ९५९ के करीब होगा और इसने मडोर के पडिहारो की कमजोरी से मारवाड के कुछ प्रदेशो पर अधिकार करलिया होगा। जालोर का सिंधुराजेश्वर का मदिर भी इसी ने बनवाया था। इसकी चाथी पीढी मे धरणीवराह हुआ। वि० स० १०५३ के, हथूँडी (गोडवाड परगने) के, राठोड राजा धवल के लेख से ज्ञात होता है कि

१ यह बात वि० स० ११७४ के, जालोर के तोपखाने के, लेख स भी सिद्ध होती है। उस लेख मे परमारो की ७ पीढी दी हुई ह। (आजकल यह लेख जोधपुर के अजायबघर मे रक्खा है।)

२ लेखो मे जालोर के पर्वत का नाम काचन-गिरि (सुवर्ण-गिरि) लिखा है। अनुमान होता है कि वहा पर मिलनेवाली सुवर्ण के समान चमकीली धातु के कारण ही (जो शायद कुछ धातुओं का मिश्रण है) इस पर्वत का नाम काचन गिरि या सुवर्ण-गिरि होगया होगा, और इस पर्वत के नाम से ही चौहानो की इस शाखा का नाम सोनगरा हुआ होगा।

३ सूँधा पहाडी वाले मदिर के वि० स० १३१९ के लेख मे सोनगरा शाखा के उदयसिंह को नाडोल, जालोर, मडोर, बाडमेर, साचोर, गुडा खेड, रामसेन भीनमाल और रतनपुर का स्वामी लिखा है। इसीके समय रामचद्र ने 'निर्भयभीम व्यायोग' और जिनदत्त ने 'विवेक विलास' बनाया था। इस उदयसिंह का प्रपौत्र कान्हडदेव बडा वीर था फरिश्ता लिखता है कि उसने खुद ही बादशाह अलाउद्दीन को अपने किले पर चढाई करने का निमत्रण दिया था और ऐसी युद्ध में वि० स० १३६६ (हि० स० ७०९) मे वह मारा गया। इस से कुछ दिन के लिये जालोर और सिवाना चौहानो से छूट गया।

४ 'सिंधुराजो महाराज समभून्मरुमण्डले।'

जिस समय सोलंकी मूलराज ने इस (धरणीवराह) पर चढाई की थी, उस समय इसने उक्त राठोड़ धवल का आश्रय लिया था। मारवाड मे किसी कवि का बनाया एक छप्पय प्रचलित है। उससे प्रकट होता है कि धरणीवराह ने अपने नौ भाइयो मे अपना राज्य बाट दिया था और इसी से यह देश 'नौ कोटी मारवाड' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परतु अजमेर चौहान अजयदेव के समय बसा था, जिसका समय वि० स० ११६५ के करीब आता है। ऐसी हालत मे उक्त छप्पय के अनुसार धरणीवराह का अपने एक भाई को अजमेर देना सिद्ध नहीं हो सकता।

धरणीवराह की पाचवी पीढी मे कृष्णराज द्वितीय हुआ। भीनमाल से इसके समय के दो लेख मिले है। एक वि० स० १११७ का है[1] और दूसरा वि० स० ११२३ का।[2] इस कृष्ण से दो शाखाऍ चलीं। एक आबू की और दूसरी किराडू की। इस कृष्णराज को गुजरात के सोलंकी भीमदेव प्रथम ने कैद कर लिया था। परतु नाडोल के शासक चौहान बालप्रसाद ने इसे छुडवा दिया।

वि० स० १२८७ मे, गुजरात के सोलंकी भीमदेव का सामत, परमार सोमसिंह आबू का राजा था। इसने अपने पुत्र कृष्ण तृतीय (कान्हडदेव) को (गोडवाड परगने का) नाणा गाव दिया था।

वि० स० १३६८ के करीब तक तो परमार ही आबू के शासक रहे, परतु इसी के आसपास वहा पर चौहानो का अधिकार हो गया।

किराडू से मिले, वि० स० १२१८ के, लेख मे किराडू की शाखा के पॅवार-नरेशो के तीन नाम दिए हुए है। ये गुजरात के सोलंकी नरेशो के सामत थे।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के कुछ लेख (नागोर परगने के) रोल नामक गाव से मिले है। इनसे उस समय वहा पर भी परमारो का अधिकार रहना सिद्ध होता है।

पौकरण से विक्रम की दसवी शताब्दी के करीब का एक लेख मिला है। उसमे गुहिलवश का उल्लेख है। आबू के अचलेश्वर के लेख से गुहिलराजा जैत्रसिंह[3] का नाडोल को नष्ट कर तुरको को भगाना लिखा है।

१ बॉंबे गजेटियर जि० १, भा० १, पृ० ४७२-४७३
२ बॉंबे गजेटियर जि० १, भा० १, पृ० ४७३-४७४
३ जैत्रसिंह वि० स० १२७० से १३०६ तक विद्यमान था और वि० स० १२५६ के बाद नाडोल पर कुतुबुद्दीन का अधिकार हो गया था। इसलिये जैत्रसिंह ने इसके बाद ही चढ़ाई की होगी।

वि० सं० १०५१ के सोलंकी मूलराज के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि उसने सॉचोर के पवॉरो को हराकर उक्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया था और वे इसके सामंत हो गए थे। इसी प्रकार वि० सं० १०७८ के करीब नाडोल के चौहानो ने भी सोलंकी भीमदेव की सामंती स्वीकार कर ली थी। साभर से सोलंकी जयसिंह के समय का एक लेख मिला है। इससे वि० सं० ११५० और ११९९ के बीच वहाँ पर उसका अधिकार होना पाया जाता है।

वि० सं० १२०७ के करीब सोलंकी कुमारपाल ने सॉभर पर चढाई कर वहाँ के चौहान राजा अर्णोराज को हराया और नाडोल पर भी अपना हाकिम नियत कर दिया। इस कुमारपाल का वि० सं० १२०९ का एक लेख पाली के सोमेश्वर के मंदिर मे भी लगा है।

वि० सं० १२१८ के किराडू के लेख से ज्ञात होता है कि किराडू के परमार शासक सोलंकियो के सामंत थे।

आबू के परमार सोमसिंह के, वि० सं० १२८७ के, लेख से पता चलता है कि वह गुजरात के सोलंकी भीम का सामंत था। उस समय गोडवाड की तरफ का देश भी इसी सोमसिंह के अधिकार में था।

इसी प्रकार कुछ काल के लिये देसूरी पर भी सोलंकियो का अधिकार रहा था।

ख्यातो मे लिखा है कि एक समय मारवाड (खास कर मंडोर और नागोर) पर नाग-वंशियो का राज्य भी रहा था। नागकुंड, नागादरी, नागोर, नागाणा आदि नामो मे पहले नाग शब्द लगा होने से लोग इनका नामकरण उसी वंश के संबन्ध से हुआ मानते है और उनका अनुमान है कि मंडोर का पर्वत भी उन्हीं के सम्बन्ध से 'भोगिशैल'[२] कहाता है।

इसी प्रकार जोहिया (यौधेय), दहिया और गौडवंशी राजपूत भी इस देश के अधिकारी रह चुके है। इनमे से जोहिया लोग बीकानेर की तरफ थे। दहियो के दो लेख किनसरिया (पर्बतसर से ४ मील उत्तर) के केवाय माता के मंदिर से मिले है। इनमें का एक वि० सं० १०५६ का और दूसरा वि० सं० १३००

१ इसके बाद साभर के चौहान राजा वीसलदेव (विग्रहराज द्वितीय) ने सोलंकी मूलराज पर चढ़ाई कर उसे कच्छ की तरफ़ भगा दिया था।

२ संस्कृत साहित्य मे भोगि शब्द भी नाग का पर्यायवाची है।

का है। तीसरा लेख मगलाना (परबतसर परगने) से मिला है। यह वि० स० १२७२ का है। ये लोग चौहानो के सामंत थे। कहते हैं कि गोड़वाड़ में गौड-वंशियो का अधिकार रहा था। लोग इस प्रदेश का नामकरण इसी वंश के पीछे होना अनुमान करते हैं। इसी प्रकार मारोठ के आसपास का प्रदेश भी इन्हीं के अधिकार में रहने के कारण गौडावाटी कहाता था। परन्तु वि० स० १६८६ मे मेडतिया रघुनाथसिंह ने इन से यह प्रदेश छीन लिया।

मुसलमानों के हमले

आगे मारवाड पर होने वाले मुसलमानो के आक्रमणो का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

हि० स० १०५ से १२५ (वि० स० ७८१ से ८००=ई० स० ७२४ से ७४३) तक हशाम अरब का खलीफा था। पहले लिखे अनुसार इसके समय इसके भारतीय प्रदेशों के शासक जुनैद की सेना ने मारवाड, भीनमाल, अजमेर, गुजरात आदि पर चढाई की। यह बात कलचुरी संवत् ४९० (वि० स० ७९६= ई० स० ७३९) के चालुक्य पुलकेशी के दान-पत्र से भी प्रकट होती है।

हासोट (भडोच जिले) से चौहान भर्तृवड्ढ द्वितीय का एक दान-पत्र मिला है। यह वि० स० ८१३ (ई० स० ७५६) का है। इससे ज्ञात होता है कि पडिहार नागभट्ट (प्रथम) के समय उसके राज्य (मारवाड़ के दक्षिणी भाग) पर बलोचो ने चढाई की थी। परतु उन्हें सफलता नहीं मिली।

सिंध और मारवाड की सीमा मिली हुई होने से समय-समय पर मुसलमानो के ऐसे अनेक आक्रमण यहा पर होते रहते थे।

हि० स० ५१२ (वि० स० ११७६=ई० स० १११९) मे मुहम्मद बाहलीम बागी हो गया और उसने नागोर का किला बनवाया। इस पर बहरामशाह ने उसपर चढाई की। परतु इसी बीच मुहम्मद बाहलीम के मर जाने से वह लौट गया।

वि० स० १०८२ (हि० स० ४१६=ई० स० १०२५) मे जिस समय महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर चढाई की थी, उस समय वह नाडोल की तरफ से होता हुआ उधर गया था। इसके बाद भी मौका पाकर गजनवी-वंश के हाकिमो की सेनाएं लाहौर से आगे बढ मारवाड के भिन्न भिन्न प्रदेशो पर हमला करती रहती

' तबकाते नासिरी (इलियट्स हिस्ट्री ऑफ इंडिया), भा० २, पृ० २७६

थी और उन्हीं के एक हमले में सांभर का चौहान राजा दुर्लभराज मारा गया था। परन्तु उस का वंशज अजयदेव और उसका पुत्र अर्णोराज इन आक्रमण-कारियों को मार भगाने में समर्थ हुए। अर्णोराज का छोटा पुत्र विग्रहराज (वीसलदेव) चतुर्थ था। देहली के अशोक के स्तंभ पर (जिसको फीरोजशाह की लाट कहते हैं) इसका वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) का एक लेख खुदा है। उससे ज्ञात होता है कि इसने आर्यावर्त से मुसलमानों को भगा दिया था। उस समय तक तो इधर की तरफ मुसलमानों के पैर नहीं जमे और वे लूट-मारकर के ही लौटते रहे। परन्तु इसके बाद सुलतान शहाबुद्दीन के आक्रमण शुरू हुए। पहले पहल मारवाड़ में नाडोल पर उसका हमला हुआ। परन्तु उसमें उसे सफलता नहीं मिली। वि० सं० १२४७ (ई० स० ११९१) में उसका और अजमेर के चौहान पृथ्वीराज का पहला युद्ध हुआ। इसमें उसे बुरी तरह से घायल होकर भागना पड़ा। इस पर वि० सं० १२४८ (ई० स० ११९२) में उस (शहाबुद्दीन) ने पहली हार का बदला लेने के लिये दूसरी बार पृथ्वीराज पर चढ़ाई की। उस समय आपस की फूट के कारण पृथ्वीराज मारा गया और अजमेर, सवालक आदि पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। तथा वहाँवाले उनको कर देने लगे। वि० सं० १२५२ (ई० स० ११९५) में कुतुबुद्दीन ने पृथ्वीराज के भाई हरिराज से अजमेर छीनकर वहां पर पूर्ण तौर से अधिकार कर लिया। इसी वर्ष गुजरात के सोलंकी भीमदेव ने मेरों की सहायता से कई महीनों तक कुतुबुद्दीन को अजमेर में घेरे रक्खा। अंत में गजनी से नई सेना के आ जाने पर घेरा उठाना पड़ा। इसके बाद शहाबुद्दीन ने गुजरात पर चढ़ाई की। परन्तु इसमें उसे घायल होकर लौटना पड़ा। इसीसे दूसरे वर्ष (वि० सं० १२५३ में) इस हार का बदला लेने के लिये उस (कुतुबुद्दीन) ने दुबारा चढ़ाई कर गुजरात को लूटा। इस बार विजय उसके हाथ रही। ये दोनों युद्ध कायद्रा में (आबू के पास) हुए थे। इस पिछली चढ़ाई में उसकी सेना अजमेर से नाडोल और पाली (वाली?) की तरफ होती हुई गई थी, और वहाँ के लोग उसके डर से किले खाली कर भाग खड़े हुए थे।

१. यदि दुलभराज को दुर्लभराज प्रथम मानें तो यह वृंद का समकालीन होता है और यदि इसे दुलभ तृतीय मानें तो इस घटना का गजनी के खुसरो या उसके पुत्र खुसरो मलिक के समय होना पाया जाता है।

वि० स० १२६७ (ई० स० १२१०) मे दिल्ली के बादशाह शम्सुद्दीन अल्तमश ने जालोर विजय किया और वि० स० १२७४ (ई० स० १२१७) मे लाहौर के सूबेदार नासिरुद्दीन महमूद ने मडोर पर अधिकार कर लिया। परतु कुछही दिनो मे वह उसके हाथ से निकल गया। इसपर वि० स० १२८४ (ई० स० १२२७) में उसके पिता शम्सुद्दीन अल्तमश ने दुबारा उसे विजय किया। इसके अलावा स्वालक और साँभर पर भी उसका अधिकार हो गया।

वि० स० १२९९ (ई० स० १२४२) मे अलाउद्दीन की गद्दीनशीनी के समय मडोर, नागोर और अजमेर मल्लिक इजुद्दीन के अधिकार मे आए।

इसके बाद वि० स० १३५१ (ई० स० १२९३) मे मडोर पर फीरोजशाह द्वितीय का आक्रमण हुआ। उस समय की बनी मसजिद इस समय भी वहाँ पर विद्यमान है और उसमे उसका एक खडित शिला-लेख लगा है। सम्भवत उस समय मडोर पर सोनगरा चौहान सामन्तसिंह का अधिकार होगा।

वि० स० १३६५ (ई० स० १३०८) मे अलाउद्दीन खिलजी ने चौहान शीतलदेव (सातल) से सिवाना और वि० स० १३६८ (ई० स० १३११) मे चौहान कान्हडदेव से जालोर छीन लिया।

वि० स० १४६४[1] मे जफरखाँ गुजरात का स्वतत्र बादशाह बन बैठा और उसने अपने भाई शम्सखा को नागोर की हुकूमत दी। यह हुकूमत यद्यपि राव चूडाजी, राव रणमल्लजी आदि की चढाइयो के कारण बीच-बीच मे छूटती रही, तथापि वि० स० १५९५ तक समय-समय पर वहाँ पर इस वश के शासको का अधिकार होता रहा।

वि० स० १४५० मे जालोर पर विहारी पठानो का अधिकार होगया था।

इनके अलावा मारवाड के प्रदेशो पर इधर-उधर के मुसलमान-शासको के और भी अनेक साधारण हमले हुए थे।

१ 'तबकाते अकबरी' (पृ० ४४८) मे इस घटना का समय हिजरी सन् ८०८ के बाद लिखा है। इस हिसाब से वि० स० १४६४ ही होना ठीक प्रतीत होता है।

जोधपुर के राष्ट्रकूट नरेशों और उनके वंशजों का प्रताप

इस इतिहास के प्रथम खण्ड में पहले के राष्ट्रकूट नरेशों के प्रताप के विषय में, उनकी प्रशस्तियों और समकालीन लेखकों की पुस्तकों से, प्रमाण उद्धृत किए जा चुके हैं, इसलिये यहां पर राव सीहाजी के वंशजों के प्रताप के विषय में कुछ प्रमाण दिए जाते हैं।

वि० सं० १५६१ के महाराणा रायमल के घोसुंडी (मेवाड़) से मिले लेख में लिखा है -

“श्रीयोधक्षितिपतिरसिप्रधारानिर्घातप्रकटपठानपारसीकः ॥ ५ ॥
पूर्वानताप्सीद्गयया विमुक्तया काश्यां सुवर्णैर्विबुधानतर्पयत् ।

अर्थात्—राव जोधाजी ने अपनी तलवार से पठानों और पारसीवालों (मुसलमानों) को हराया, और गया के यात्रियों पर लगनेवाला कर छुड़ाकर अपने पूर्वजों को और काशी में बहुतसा सुवर्ण दान कर विद्वानों को तृप्त किया।

फरिश्ता (मुहम्मद कासिम) ने वि० सं० १६७१ के करीब 'तारीख फरिश्ता' नामक इतिहास लिखा था। उस में लिखा है कि जोधपुर के राव मालदेव के साथ के युद्ध में स्वयं बादशाह शेरशाह ने कहा -

“खुदा का शुक्र है कि, किसी तरह फतह हासिल हो गई, वरना मैंने एक मुट्ठी भर बाजरे के लिये हिन्दुस्तान की बादशाहत ही खोदी थी।”

“अकबर नामा” नामक इतिहास में राव मालदेवजी को हिन्दुस्तान के तमाम दूसरे रावों और राजाओं में बड़ा लिखा है, और “तुज़ुक जहांगिरी” में उन्हें सेना और राज्य की विशालता में महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) से भी बड़ा बतलाया है। राव मालदेवजी की सेना में ८०,००० सिपाही थे।

१ जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी भा० ५६, अ० १ नं० २
२ (जिल्द १, मिकाला २, पेज २२८)
३ जिल्द २, पेज १६०
४ दिबाचा (भूमिका), पेज ७

राव मालदेवजी के पुत्र राव चन्द्रसेनजी के विषय मे किसी कवि ने लिखा है —

"अणदगिया तुरी ऊजला असमर, चाकर रहण न डिगियौ चीत ।
सारे हिन्दुस्थान तणौ सिर पातल नै चन्द्रसेण प्रवीत ।

अर्थात्—उस समय महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन दोनो ने न तो शाही अधीनता ही स्वीकार की और न अपने घोडो पर शाही निशान का दाग ही लगवाया ।

इसके अलावा स्वय महाराणा प्रताप ने भी राव चन्द्रसेन द्वारा अंगीकृत मार्ग का ही (दस वर्ष वाद) अनुसरण किया था ।

"आलमगीर नामे" मे महाराजा जसवतसिंहजी प्रथम को "रुक्ने रकीने दौलत व सितूने कवीमे सल्तनत" (अर्थात्—रौब—दाब मे सबसे बढकर और बादशाही सल्तनत का स्तम) लिखा है ।

"मआसिरुल उमरा" में महाराजा जसवन्तसिंहजी को फौज और सामान की अधिकता से हिन्दुस्तान के राजाओ में सबसे बड़ा बतलाया है ।

इन महाराजा ने औरंगजेब के समय ही बहुत सी मसजिदे गिरवाकर उनके स्थान पर मन्दिरैं बनवा दिए थे । महाराजा जसवन्तसिंहजी के जीते जी बादशाह औरंगजेब की हिम्मत हिन्दुओ पर 'जजिया' लगाने की नहीं हुई । इसीसे इनके मरने पर उसने फिर से 'जजियां' लगाया था ।

जोधपुर-नरेश महाराजा अजितसिंहजी ने सैय्यद भ्राताओं से मिलकर बादशाह फर्रुखसीयर को मरवा डाला, और फिर क्रमश तीन बादशाहो को देहली के तख्त पर बिठाया ।

राठोड वीर दुर्गादास की कुशलता और वीरता की प्रसिद्धि आज तक चली आती है।

महाराजा रामसिंहजी की राठोड वाहिनी ने सम्मुख-रण में प्रवृत्त अपने शत्रु 'अमीरुल उमरा' (जुल्फिकार जग) की सेना को मौके पर पानी पिलाकर अपनी उदारता का परिचय दियां था ।

१ पृ० ३२
२ जिल्द ३, पृ० ६०३
३ सरकार लिखित-हिस्ट्री ऑफ औरगजेब, भाग ३ पृ० ३६८-३६६
४ वी० ए० स्मिथ की ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ४३८
५ सहरुल मुताखरीन, भाग ३, पृ० ८८५

कर्नल टॉड ने अपने 'राजस्थान के इतिहास' में महाराजा अजितसिंहजी को राजस्थान (राजपूताने) में होनेवाले नरेशों में सर्वश्रेष्ठ और आदर्श नरेश माना है।

कर्नल टॉड ने अपने इतिहास में एक स्थान पर यहां तक लिखा है कि—

"मुगल बादशाह अपनी विजयों में से आधी के लिये राठोड़ों की एक लाख तलवारों के एहसानमंद थे।"[2]

इस बीसवीं शताब्दी के यूरोपीय महायुद्ध में भी, अन्य राठोड़-वीरों की सहायता के अलावा, जोधपुर-नरेश महाराजा सुमेरसिंहजी ने अपनी १६ वर्ष की अवस्था में और ईडर-नरेश महाराजा प्रतापसिंहजी ने अपनी ६८ वर्ष की आयु में रण-स्थल में पहुंच, जो क्षत्रियोचित आदर्श उपस्थित किया था, वह भी किसी से छिपा नहीं है।[3]

इससे प्रकट होता है कि राष्ट्रकूट (राठोड़) सदा से ही प्रतापी और वीर होते चले आए हैं, और इसी से ये राजस्थान में 'रणबंका राठोड़' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

आगे राष्ट्रकूटों की वैयक्तिक वीरताओं के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं

अकबर नामे में लिखा है कि—'राव मालदेव के राज्य में जिस समय अकबर की सेना ने मेड़ता नामक नगर पर चढ़ाई की, उस समय जतावत राठोड़ देवीदास ने अपने ४०० सवारों के साथ किले से निकल विशाल शाही सेना का ऐसी वीरता से मुकाबला किया कि रुस्तम का नाम और निशान दुनिया से मिटा दिया।'[4]

उसी इतिहास से प्रकट होता है कि अकबर के चढ़ाई करने पर जब महाराणा उदयसिंह को पहाड़ों में जाना पड़ा, तब चित्तोड़ के किले की रक्षा का भार मेड़तिया राठोड़ जैमल ने ग्रहण किया और अपने जीते जी अकबर को सफल न होने दिया। परन्तु उसके मारे जाते ही किला बादशाह के अधिकार में चला गया।[5]

१ (क्रुक संपादित) भा० २ पृ० १०५७

2 The Moghul Emperors were indebted for half their conquests to the 'Lakh Tarwar Rathoran,' the 1,00,000 swords of the Rathors (Annals and Antiquities of Rajasthan (edited by W Crooke), Vol I, pp 10?—108

३ जोधपुर नरेशों के प्रताप और वीरता का पूरा-पूरा विवरण उनके इतिहास में यथास्थान मिलेगा।

४. दफ्तर २, पृ० १६२

५. 'अकबरनामा', दफ्तर २, पृ० ३२०-३२१,

बीसवीं शताब्दी के यूरोपीय महायुद्ध के समय भी जोधपुर के रिसाले ने जो वीरता दिखलाई थी, उस की ब्रिटिश और भारत गवर्नमेंट ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। उदाहरणके लिये ई० सन् १९१८ की २३ सितंबरकी घटनाका विवरण ही पर्याप्त होगा।

उस समय टर्की के शत्रु पक्ष में मिल जाने से मिस्र (इजिप्ट) के रणस्थल में भीषण युद्ध हो रहा था। इसी से ई० सन् १९१८ के मार्चमें जोधपुर-रिसाले को पश्चिम के रणक्षेत्र से हटाकर पूर्व के रणक्षेत्र में भेजा गया। जिस समय यह रिसाला हैफा के सामने पहुंचा, उस समय उस नगर को टर्की के युद्ध विशारदों ने पूर्ण रूप से सुरक्षित कर रक्खा था और वे इस रिसाले को देखतेही वहां के सुरक्षित मोरचों में बैठ भीषण नाद के साथ आग उगलनेवाली अपनी तोपों से इस पर गोले बरसाने लगे। वहां पर जोधपुर रिसाले के और हैफा के बीच नदी की प्राकृत बाधा होने से शत्रु की स्थिति और भी सुरक्षित हो रही थी। यह देख अनुभवी और कुशल ब्रिटिश सेनापति भी एका एक आगे बढ़ने की हिम्मत न करसके। परन्तु मारवाड के वीरों को शत्रु के सामने पहुँच पीछे पैर रखना सह्य न हुआ। इसी से इन्होंने अपने सेनापति की अधिनायकता में अपने चमचमाते हुए भालों को सम्हाल कर शत्रु पर आक्रमण कर दिया। इन्हें इस प्रकार मृत्यु को आलिंगन करने के लिये आगे बढ़ते देख, शत्रु ने इन्हें नदी के उस पार रोक रखने के लिये, अपनी गोला-वृष्टि को और भी तीव्रतम कर दिया। परन्तु जोधपुर-रिसाले ने इसकी कुछ भी परवाह न की और कुछ ही देर में नदी, शत्रु की गोला-वृष्टि और उसके सुदृढ मोरचों की बाधाओं को पार कर हैफा नगर पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में राजपूतों के भालों से अनेक तुर्क-योद्धा मारे गए और करीब ७०० जिन्दा पकड़े गए।

इसी प्रकार ई० स० १९१८ की १४ जुलाई के जार्डन की घाटी के युद्ध में भी जोधपुर के रिसाले ने अद्भुत वीरता दिखलाई थी[1]।

---

[1] इन कार्यों का उल्लेख ब्रिटिश सेनापतियों के खलीतों (Despatches) में और भारत के उस समय के वाइसराय लार्ड चैम्सफोर्ड की २० नवंबर १९२० की जोधपुर की वक्तृता में विशद रूपसे मिलता है। वाइसराय ने अपने भाषण में कहा था कि—

"By their exploits at Haifa and in the Jorden Valley recalled the deeds of their ancestors who fought at Tonga, Merta and Patan The reputation which they have gained is well worthy of the glorious annals of Marwar"

जोधपुरके राष्ट्रकूट नरेशोंका विद्याप्रेम और उनकी दानशीलता ।

जोधपुर (मारवाड़) के राठोड नरेश भी अपने पूर्वजो के समान ही विद्वानो और कवियो के आश्रयदाता थे और अपने समय के कवियो आदि का दान और मान से सत्कार करते रहते थे। इसके अलावा इनमे के कुछ नरेश स्वय भी अच्छे विद्वान थे और उनके या उनके वशजो के बनाएं या बनवाएं ग्रन्थ इस समय तक भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

प्राचीन ख्यातो और प्राचीन काव्यों से प्रकट होता है कि राजा गजसिंहजी ने अपने समय के १४ कवियो को 'लाख पसावँ' दिया था। इन्हीं के समय हेम कवि ने 'गुण भाषाचित्र' और गाडण शाखा के चारण कवि केशवदास ने 'गुण रूपक' नामक काव्य लिखे थे। ये दोनो काव्य डिंगल भाषा के हैं और इनमे राजा गजसिंहजी के वीर-चरित्र का वर्णन है। उपर्युक्त कवियो में से पहले कवि को कितना पुरस्कार मिला यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। परन्तु दूसरे कवि को १५०० रुपये वार्षिक आय की जागीर मिली थी।

राजा गजसिंहजी के उत्तराधिकारी महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथम विद्वानो के आश्रयदाता होने के साथ ही स्वय भी विद्वान थे। इनके लिखे भाषा-ग्रन्थो के नाम इस प्रकार हैः—

(१) भाषाभूषण — अलङ्कार

अर्थात्–जोधपुर के वीरो ने हैफा और जार्डन मे किए अपने वीरतापूर्ण कार्यों से अपने पूर्वजो के तुङ्गा, मेडता और पाटन मे किए युद्धों की याद करवा दी। इस रिसाले के वीरों ने जो प्रशसा प्राप्त की है, वह मारवाड की वीरतापूर्ण प्राचीन गाथाओं के अनुकूल ही है।

१ जोधपुर बसाने वाले राव जोधाजी की प्रपौत्री (राव दूदाजी की पौत्री और रत्नसिंहजी की पुत्री) मीराबाई के भजन और नरसीजी का मायरा आदि सर्व प्रसिद्ध हैं। इनका विवाह मेवाड के राणा सग्रामसिंह (प्रथम) के ज्येष्ठ पुत्र भोजराजजी के साथ हुआ था।

२ राव वीरमजी और उनके पुत्र गोगादेव के यशोवर्णन मे ढाढी जाति के कवि बहादर ने डिंगल भाषा का "वीरमायण" नामक काव्य लिखा था।

३ राजस्थान मे कवियों को 'लाख पसाव' देने का यह नियम था कि, जिसे यह पुरस्कार दिया जाता था, उसे वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोडा और कमसे कम एक हजार से पाच हजार तक वार्षिक आयकी जागीर दी जाती थी।

४ हेम कवि ने 'गुणरूपक' नाम का एक अन्य काव्य भी लिखा था।

५ यह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस द्वारा प्रकाशित हुआ है।

(२) आनन्दविलास
(३) अनुभवप्रकाश
(४) अपरोक्षसिद्धान्त
(५) सिद्धान्तबोध
(६) सिद्धान्तसार

वेदांत[1]

(इनमें के चार ग्रन्थ पद्यमय हैं और 'सिद्धान्त-बोध' में गद्य और पद्य दोनों हैं।)

(७) चन्द्रप्रबोध — (यह नाटक संस्कृत के 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक नाटक का अनुवाद है।)

(८) धूली जसवन्त संवाद और
फुटकर दोहे और कुण्डलिये — वेदान्त विषयक।

(९) आनन्दविलास — यह संस्कृत पद्यों में है, और इसका विषय भी भाषा के 'आनन्दविलास' के समान वेदान्त ही है।

इनके अलावा नायिका भेद पर भी महाराज की लिखी एक पुस्तक बतलाई जाती है।

महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथम के पुत्र महाराजा अजितसिंहजी के समय के तीन काव्य मिले हैं। इनमें से दीक्षित बालकृष्ण रचित 'अजितचरित्र' और भट्ट जगजीवन कृत 'अजितोदय' संस्कृत के और 'अजितचरित' भाषा का है। महाराज ने ब्राह्मणों और चारणों को करीब २५ गाँव दान दिए थे[2]।

स्वयं महाराजा अजित के बनाए भाषा के दो ग्रन्थ मिले हैं। एक 'गुणसार'[3] और दूसरा 'भाव विरही'[4]।

मिश्रबन्धु विनोद[5] में इनके बनाए अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार मिलते हैं :—

दुर्गापाठ भाषा, राजरूप का ख्याल, निर्वाणी दोहा, ठाकुरों (आदि) के दोहे, भवानी सहस्रनाम और फुटकर दोहे।

---

१ जोधपुर दरबार की आज्ञा से इस इतिहास के लेखक ने, इन पाँचों ग्रन्थों को संपादित कर (वेदान्तपंचक के नाम से) गवर्नमेंट प्रेस, जोधपुर से प्रकाशित करवाया है।

२ इन्हीं के समय पण्डित श्यामराम ने 'ब्रह्माण्डवर्णन' नामक काव्य लिखा था।

३ प्रथम वरण शृङ्गार को, राजनीति निरधार।
जोग जुगति यामें सबै, ग्रन्थ नाम गुणसार॥

४ यह साहित्य का ग्रन्थ है।

५. भाग २, पृ. ५५६–५५७

अजितसिंहजी के पुत्र महाराजा अभयसिंहजी के समय के बने तीन काव्यों मे से भट्ट जगजीवन का बनाया 'अभयोदय' संस्कृत मे और कविया शाखा के चारण करणीदान का बनाया 'सूरजप्रकाश' और रतनू शाखा के चारण वीरभाण का बनाया 'राजरूपक' डिंगल भाषा में हे। सूरजप्रकाश के कर्त्ता ने ही अपने काव्य के आशय को १२६ पद्धरी छन्दो मे लिख कर उसका नाम 'विडदसिणगार' रख दिया था। इन्हीं दोनो काव्यो के पुरस्कार मे महाराजा ने करणीदान को २००० रुपये वार्षिक आय की जागीर दी थी। परन्तु अभाग्यवश वीरभाण को शीघ्र ही मारवाड छोड कर चला जाना पडा और इसीसे उसका काव्य महाराजा अभयसिंहजी के सामने पेश न होसका। अन्त मे करीब १०० वर्ष बाद जब महाराजा मानसिंहजी ने उस काव्य को देखा, तब उन्होने कवि के आभार मे उऋण होने के लिये वीरभाण के वशज का पता लगवाकर, उसके अशिक्षित होने पर भी, उसे ५०० रुपये वार्षिक आय की जागीर दी।

'सूरजप्रकाश' के एक छुप्पयं से प्रकट होता है कि महाराजा अभयसिंहजी ने १४ 'लाख पसाव' दिए थे।

इन्हीं के समय सादू शाखा के चारण कवि पृथ्वीराज ने 'अभयविलास' नाम का भाषा-काव्य लिखा था।

महाराजा बखतसिंहजी की डिंगल भाषा मे लिखी एक देवीस्तुति और कुछ भजन मिले है।

महाराजा भीमसिंहजी के समय रामकर्ण कवि ने 'अलङ्कारसमुच्चय' नामक भाषा-ग्रन्थ लिखा था।

ऊपर जिन महाराजा मानसिंहजी का उल्लेख आ चुका है, वह भी विद्वानो और कवियो के आश्रयदाता होने के साथ ही स्वयं भी संस्कृत और भाषा के

१ 'बारठ नरहर बगस एक लख प्रथम उजागर।
कवि आढा किशन नू अव लख दुवौ क्रीतवर॥
अभग खेम बधवाड दोय लख हाथ दीधा।
हरि सढायच हेक लाख अब बहु जस लीधा॥
लह हेक लाख महड वलू लख नथ सादू नाथ लह।
आढा महेस हू रीझ अति पाच लाख दीधा सुपह॥ १॥

अच्छे विद्वान् थे। उनके बनाए ग्रन्थों के नाम आगे दिए जाते हैं—

(१) नाथ चरित्र (संस्कृत गद्यात्मक काव्य।)
(२) विद्वज्जनमनोरंजनी (संस्कृत मुण्डकोपनिषद् की टीका प्रथम खंड[2]।)
(३) कृष्णविलास[3] (भागवत के दशम स्कन्ध का भाषा में पद्यात्मक अनुवाद।)
(४) टीका[4] (भागवत की मारवाड़ी भाषा की टीका।)
(५) चौरासी पदार्थ नामावली } भाषापद्यात्मक (इसमें न्याय, साहित्य, संगीत, वैद्यक, आदि अनेक विषय हैं।)

(६) जलधरचरित
(७) नाथचरित
(८) जलधरचन्द्रोदय
(९) नाथपुराण
(१०) नाथस्तोत्र
(११) सिद्धगंगा, मुक्ताफल, संप्रदाय आदि
(१२) प्रश्नोत्तर
(१३) पदसंग्रह
(१४) शृङ्गार रस की कविता
(१५) परमार्थ विषय की कविता (भाषा की स्फुट कविता का बड़ा संग्रह)
(१६) नाथाष्टक
(१७) जलधर ज्ञानसागर
(१८) तेजमञ्जरी
(१९) पद्मावली
(२०) स्वरूपों के कवित्त
(२१) स्वरूपों के दोहे
(२२) सेवासार
(२३) मानविचार
(२४) आराम रोशनी
(२५) उद्यानवर्णन

१ मिश्रबन्धु विनोद में इनके कुछ अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार मिलते हैं:—रागारों जीलो, विहारी सतसई की टीका, रागसागर, श्रीनाथजी रा दोहा, नाथप्रशंसा, वंशावली (?), नाथजी की वाणी, नाथकीर्तन, नाथमहिमा, नाथसंहिता, रामविलास, फुटकर कवित्त, सवैये, दोहे आदि। (भा० २, पृ० ८६१–८६२)

२ इन्हीं महाराजा मानसिंहजी की आज्ञासे श्रीकृष्ण शर्मा ने उक्त उपनिषद् के द्वितीय और तृतीय खण्डों की 'सारग्राहिणी' (संस्कृत) टीका और भीष्मपति ने उक्त उपनिषद् की भाषा टीका बनाई थी। यह पिछली टीका अपूर्ण है।

३ जोधपुर दरबार की आज्ञा से इस इतिहास के लेखक ने इसके ३२ अध्यायों को संपादित कर गवर्नमेंट प्रेस, जोधपुर से प्रकाशित करवाया है।

४ इस समय इसका तीसरा और पांचवा स्कन्ध ही उपलब्ध है।

आपकी भटियानी रानी प्रताप कुंवरिजी ने भी भगवद्भक्तिपूर्ण अनेक छोटे छोटे ग्रन्थ लिखे[1] थे ।

इन्हीं महाराज के समय बांकीदास आदि अनेक कवियों ने 'मानजसोमण्डन' आदि अनेक कवित्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर एकाधिक बार पुरस्कार प्राप्त किया था।[2]

महाराजा मानसिंहजी के उत्तराधिकारी महाराजा तख्तसिंहजी ने भी अनेक पदों की रचना की थी । आपकी जाडेजा वंश की रानी प्रतापकुंवरिजी (प्रतापबाला) ने 'हरिपदावली' और 'रामपदावली' नाम के दो ग्रन्थ लिखे थे। इनमें भक्तिरस भरे सुन्दर भजन हैं ।[3]

१. आप के बनाए ग्रन्थों का संग्रह उन की महारानी रघुवंशी ने प्रकाशित करवाया है । उसमें उनके बनाए निम्नलिखित ग्रन्थ हैं — १ ज्ञानसागर २ ज्ञानप्रकाश, ३ प्रतापपचीसी, ४ प्रेमसागर ५ रामचन्द्र नाम महिमा, ६ रामगुणसागर, ७ रघुवर स्नेह लीला, ८ रामप्रेम सुखसागर, ६ राम सुजस पचीसी, १० पत्रिका ११ रघुनाथजी रे कवित्त १२ भजन पद हरिजस १३ प्रताप विनय १४ श्रीरामचन्द्र विनय, १५ हरिजस गायन ।

(मारवाड़ी भजन सागर,-कवियों का परिचय, पृ० १६—१७)

२. महाराजा मानसिंहजी के समय में बने कुछ अन्य ग्रन्थ —

कवि रामदत्त कृत 'नाथचन्द्रोदय' 'जलन्धरचन्द्रोदय' और 'नाथमानप्रबोध', पण्डित सदानन्द त्रिपाठी कृत 'अवधूतगीता' की संस्कृत टीका गीतार्थ सिद्धान्तसिद्धि नामकी संस्कृत टीका और 'जलधराष्टक' की 'आत्मदीप्ति' नामकी (संस्कृत) टीका, पण्डित शिवराम कृत गोविन्द सहस्र-नाम' की टीका 'भेदमाला' (संस्कृत पद्यात्मक), भीष्म भट्ट कृत 'सिद्धसार' की 'योगितोषिणी' टीका, मूलचन्द्र यति कृत 'मानसागरी महिमा', नाथचरित्र, सेवग नेतराम कृत 'जलधर-गुण रूपक', शिवनाथ कवि कृत जलधर जस वर्णन, सेवग लालचन्द कृत 'जलधर जस भूषण', और 'मानसिंह जस रूपक', कवि बांकीदास कृत 'नाथस्तुति', चारण चैना कृत 'जलधरस्तुति', व्यास ताराचन्द कृत 'नाथानन्द प्रकाशिका', मीर हैदर अली कृत 'जलधरस्तुति', सुकालनाथ कृत 'नाथ आरती', सेवग पन्ना कृत 'नाथ उत्सव माला', चारण नेणीदान और भण्डारी पीरचन्द कृत नाथस्तुति, और विप्र गुमान कृत भागवत दशम स्कन्ध के ८६ से ६० तक के अध्यायों का भाषा पद्यानुवाद आदि। इनके अलावा महाराजको प्रसन्न करने के लिए बहुत से अन्य कवियों ने अनेक नाथाष्टक, जलधराष्टक और फुटकर गीत, कवित्त, दोहे आदि भी लिखे थे।

महाराजा मानसिंहजी की एक परदायत तुलछराय भी भगवद्भक्ति-पूर्ण भजन-रचना में प्रवीण थी। (मारवाड़ी भजन सागर 'कवियों की जीवनी' पृ० ११—१२)

३ आपकी कविताओं का 'संग्रह प्रतापकुंवरि पद-रत्नावली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है ।

(मारवाड़ी भजन सागर, कवियों की जीवनी, पृ० १०—११)

आपकी बघेल वंश की रानी रणछोड़कुंवरि जी भी भक्ति-पूर्ण पदों के बनाने में प्रवीण थीं।

महाराजा तखतसिंहजी के उत्तराधिकारी महाराजा जसवन्तसिंहजी[1] द्वितीय के समय महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदान ने 'यशवन्त-यशो-भूषण' नाम का ग्रन्थ लिखा था, और इसके संस्कृत और भाषा के दो-दो संस्करण[2] तैयार किए गए थे। इस पर महाराजा ने कवि को लाख पसाव में पांच हजार रुपये वार्षिक आय की जागीर देकर सम्मानित किया था।

इनके अलावा इन नरेशों के समय अनेक कवियों ने इनकी प्रशंसा में सैकड़ों गीत, कवित्त, दोहे आदि बनाए थे और इन्होंने भी अपनी गुण-ग्राहकता दिखलाने में कमी नहीं की थी। कई ऐसे भी अवसर आए थे जब कवि की एक छोटी सी उक्ति से प्रसन्न होकर इन नरेशों ने उन्हें अच्छी आय के अनेक गांव दे डाले थे। इन नरेशों की दान और मान में दी हुई सैकड़ों जागीरें इस समय भी कवियों और वीरों के वंशजों के अधिकार में चली आती हैं।

महाराजा मानसिंहजी ने काशी, नेपाल आदि अनेक नगरों से संस्कृत के और राजपूताने के अनेक स्थानों से डिंगल आदि भाषाओं के ग्रन्थ अथवा उनकी नकलें मँगवाकर जोधपुर के किले में 'पुस्तकप्रकाश' नामक पुस्तकालय की स्थापना की थी। यद्यपि उनके स्वर्गवास के बाद उसकी तरफ़ विशेष ध्यान नहीं दिया जाने से वहां की बहुतसी पुस्तकें इधर-उधर हो गई हैं, तथापि इस समय भी उनमें १६७८ संस्कृत की और १०६४ डिंगल आदि भाषाओं की

इन्हीं की समकालीन मीरा के बनाए कृष्ण-भक्ति से पूर्ण कुछ भजन मिलते हैं। परन्तु इसका जोधपुर राजघराने से क्या संबंध था यह अज्ञात है।

(मारवाड़ी भजन सागर कवियों की जीवनी, पृ० २१)

१ महाराजा जसवन्तसिंहजी (द्वितीय) के छोटे भ्राता महाराजा प्रतापसिंहजी की भटियानी रानी रतनकुंवरिजी और महाराज किशोरसिंहजी की बघेल रानी विष्णुप्रसादकुंवरिजी भी हरि भक्ति पूर्ण पद बनाने में कुशल थीं।

बघेलीजी ने १ अवधविलास, २ कृष्णविलास और ३ राधा-राम-विलास नाम के ग्रन्थ बनाए थे।

(मारवाड़ी भजन सागर कवियों की जीवनी, पृ० ३५, १६)

२. एक मझला और दूसरा बड़ा।

हस्तलिखित पुस्तके विद्यमान है। जिस प्रकार संस्कृत की पुस्तको में वेद, पुराण, दर्शन, साहित्य, काव्य आदि सब विषयो की पुस्तके होने पर भी योग विषयक ग्रन्थो की संख्या अधिक है, उसी प्रकार भाषा मे भी अन्य विपयो के ग्रन्थों से योग-विषयक ग्रन्थ अधिक हैं। इसका कारण महाराजा मानसिंहजी का इस विषय से अधिक प्रेम होना ही सिद्ध होता है।

इस 'पुस्तकप्रकाश' में महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथम रचित ग्रन्थो का संग्रह होने से अनुमान होता है कि इस पुस्तकालय का सूत्रपात उनके समय (अर्थात् विक्रम की १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ) से ही हो चुका था। वि० सं० १७७६ से १७८९ (ई० स० १७१९ से १७३२) के बीच नकल किए गए महाभारत, पुराण और काव्य-ग्रन्थो से प्रकट होता है कि महाराजा अजितसिंहजी और महाराजा अभयसिंहजी के समय भी इस संग्रह में वृद्धि हुई थी। इसी प्रकार वल्लभ संप्रदायके ग्रन्थो की संख्या से पता चलता है कि इनका संग्रह महाराजा विजयसिंहजी के समय किया गया होगा। परंतु इसकी वास्तविक उन्नति महाराजा मानसिंहजी के समय ही हुई थी।

इसके अलावा 'पुस्तकप्रकाश' मे जो लेखक नियत थे वे अन्य कार्य न होने पर वहा की पुस्तको की नकले तैयार किया करते थे। इससे इन नकलो की संख्या को मिला देने से संस्कृत पुस्तको की संख्या १६७८ से ३०५७ और हिंदी पुस्तको की संख्या १०९४ से १८४१ तक पहुच जाती है। परंतु यह भी सम्भव है कि महाराजा मानसिंहजी की तरफ से समय-समय पर इस प्रकार तैयार की गई अनेक विषयो के ग्रन्थो की नकले प्रेस के अभाव में विद्या प्रचार के लिये विद्वानो और विद्यार्थियो मे बांटी जाती हो और इसीसे कुछ लेखक नियत किए गए हो। 'पुस्तकप्रकाश' मे सब से पुरानी पुस्तक वि० सं० १४७२ (ई० स १४१५) की लिखी हुई है।

जोधपुर के राष्ट्रकूट (राठोड़) नरेशों का धर्म।

जोधपुर-नरेशों की कुलदेवी चामुण्डा है, जो प्राचीन विश्वास के अनुसार श्येन का रूप धर इनके राज्य की रक्षा करती है। इसी से इन राजाओं के झण्डे या निशान पर श्येन-पक्षी का चिह्न बना रहता है। परन्तु इन नरेशों ने समय-समय पर वैष्णव और शैव मतों को भी बड़ी श्रद्धा से आश्रय दिया था। जोधपुर नरेश महाराजा विजयसिंहजी परम वैष्णव थे। उनके राज्य समय जोधपुर नगर में मांस[1] और मदिरा का प्रचार बिलकुल बन्द करदिया गया था। इस आज्ञा के उल्लंघन करने वाले को, चाहे वह कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो, कठोर से कठोरतर दण्ड दिया जाता था[2]। इनके दिए अनेक गाँव इस समय तक भी वल्लभ-सम्प्रदाय वालों के अधिकार में चले आते हैं।

महाराजा मानसिंहजी के समय शैवमत[3] के अन्तर्भूत नाथ-सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव रहा और उक्त सम्प्रदाय के आचार्य उस समय में मिले अनेक गाँवों आदि का उपभोग अब तक करते चले आरहे हैं।

इन राठोड़ नरेशों के समय उपर्युक्त पौराणिक मतों के अलावा जैन मत को भी अच्छा अवलम्ब मिला था। इसी से मारवाड़ में इस सम्प्रदाय का अच्छा प्रचार चला आता है।

---

१. उस समय पशुवध का निषेध होने से कसाइयों को मकानों के छतों की पट्टियां (छीने) और बड़े-बड़े पत्थर उठाने का काम सौंपा गया था। उनके वंशज इस समय तक भी वही काम करते हैं और 'चॅवालिये' कहलाते हैं।

२. महाराज ने आउवा ठाकुर जैतसिंह के इस आज्ञा का उल्लंघन करने पर उसे प्राण दण्ड दिया था।

३ राजा शूरसिंहजी ने चांदपोल दरवाजे के बाहर रामेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया था। उसके पुजारियों को राज्य की तरफ से जागीर मिली हुई है।

जोधपुर के राष्ट्रकूट (राठोड़) नरेशों का कलाकौशल-प्रेम।

इन नरेशों का कला-कौशल की उन्नति पर भी विशेष ध्यान रहा है। इसका प्रमाण जोधपुर के सुन्दर और सुदृढ किले को, जिसकी स्थापना राव जोधाजी ने वि० स० १५१६ (ई० स० १४५९) में की थी, देखने से आपही आप मिल जाता है। इस में जोधाजी के और उनके बाद होने वाले उनके उत्तराधिकारियों के बनवाए, अनेक सुन्दर महल आदि विद्यमान हैं।[1]

जोधपुर नगर की शहरपनाह पहले पहल राव मालदेवजी ने बनवाई थी। परन्तु महाराजा बखतसिंजी ने शहर के घेरे के बढ़ जाने से इसका विस्तार किया। इसके अलावा मारवाड़ राज्य के वैभव की उत्तरोत्तर वृद्धि और उसके साथ साथ यहां के नरेशों की क्रमशः बढ़ती हुई कला-कौशल की अभिरुचि का प्रमाण यहां के कुछ राजाओं पर बने मंडोर के देवल (Cenotaphs) हैं। इनको देखने से अनुमान होता है कि जिस प्रकार राव मालदेवजी, राजा उदयसिंहजी, सवाई राजा शूरसिंहजी, राजा गजसिंहजी, महाराजा जसवन्तसिंहजी और महाराजा अजितसिंहजी के समय मारवाड़ राज्य की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई, उसी प्रकार उनके नाम पर बने देवलों (Cenotaphs) के आकार और उनकी स्थापत्य कला में भी वृद्धि होती गई।

इनके अलावा महाराजा अजितसिंहजी के समय का बना मंडोर का एक-थंभिया महल, पहाड़ काटकर बनवाई वीरों आदि की मूर्तियां और उनके उत्तराधिकारी महाराजा अभयसिंहजी के समय पहाड़ काट कर तैयार की गई देवताओं आदि की मूर्तियां भी विक्रम की अठारहवीं शताब्दी की मारवाड की स्थापत्य-कला के अच्छे नमूने हैं।[2]

---

१. कहते हैं कि किले पर का प्रसिद्ध मोतीमहल सवाई राजा शूरसिंहजी ने, फतैमहल और दौलतखाना महाराजा अजितसिंहजी ने और फूलमहल महाराजा अभयसिंहजी ने बनवाया था। इसी प्रकार शृङ्गार चौकी, जिस पर नवीन महाराजाओं का राज तिलक होता है, महाराजा विजयसिंहजी ने बनवाई थी।

२. इस समय इन मूर्तियों पर चूने की कली की हुई होने से इनकी असली कारीगरी नहीं देखी जासकती।

मारवाड़ के नरेशो ने अनेक नए किले और महल बनवाए थे, और बहुत से पुराने किलो की मरम्मत करवा कर उनमे कई नवीन स्थान आदि तैयार करवाए थे। इनमे राव मालदेवजी का बनवाया अजमेर के किले मे बींटली का कोट और चश्मे से किले मे पानी चढ़ाने का मार्ग और (राव अमरसिंहजी और) महाराजा बखतसिंहजी के बनवाए नागोर के किले मे के महल सराहनीय है। नागोर के किले का 'आवहवामहल, दिल्ली या आगरे के शाही महलो से बहुत कुछ समानता रखता है।

महाराजा सरदारसिंहजी के समय बना महाराजा जसवतसिंहजी (द्वितीय) का सगमरमर का देवल (Cenotaph) विक्रम की बीसवीं शताब्दी का अत्युत्तम नमूना है। इसी प्रकार जोधपुर का जुबली कोर्ट्स (Jubilee Courts) नाम का न्यायालय भी इसी शताब्दी का सुन्दर भवन है।

मारवाड़ के वर्तमान नरेश महाराजा उम्मैदसिंहजी साहब के समय बना विण्ढम अस्पताल, विलिङ्गडन बगीचा, उसमे का अजायबघर और पुस्तकालय का भवन और बालसमद और मण्डोर के बगीचो को दिया गया नया दर्शनीय रूप भी बहुत ही सुन्दर है। इनके अलावा महाराजा साहब का छीतर नामक पहाडी पर का भव्य भवन भी, जो इस समय बन रहा है, जब तैयार हो जायगा, तब राजपूताने भर मे एक अपूर्व महल होगा।

मारवाड नरेशो के आश्रय के कारण यहा के कारीगर भी बडे ही सिद्धहस्त होते थे। उनकी बनाई विशाल तोपे, और बदूके इस समय भी देखने वालो को आश्चर्य में डाल देती है।

इन सब के अलावा महाराजा मानसिंहजी के समय बने चित्रो का सग्रह भी अपूर्व है। यह इस समय राजकीय अजायबघर मे रक्खा हुआ है। इसमे अन्य अनेक चित्रो के अलावा करीब ४८६ चित्र, जिनमे से प्रत्येक की लबाई करीब ४ फुट और चौडाई करीब १ $\frac{१}{२}$ फुट के है ऐसे हैं, जिन पर समग्र रामायण, दुर्गाचरित, शिवपुराण आदि हिन्दू-धर्म के ग्रन्थो की कथाऐ चित्रित है। इसके अलावा ७३४ चित्रो मे जो करीब १ फुट लबे और आध फुट चौडे है, सूरजप्रकाश नामक इतिहास का कुछ अश, भागवत के दशमस्कन्ध का पूर्व भाग, पचतत्र और ढोला मारवण की कथाए अकित है।

इस संग्रह की प्रशंसा इसको देखने वाले बड़े-बड़े विद्वानों ने की है। महाराजा मानसिंहजी, जिनके समय में यह संग्रह तैयार करवाया गया था, स्वयं अनेक कलाओं के भी मर्मज्ञ थे। इसी से उनके विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है—

जोध बनायो जोधपुर, व्रज कीनो व्रजपाल।
लखनेऊ काशी दिली, मान कियो नेपाल॥

अर्थात्—राव जोधाजी ने जोधपुर बनाया, महाराजा विजयसिंहजी ने वैष्णवमत में दृढ भक्ति होने से उसे व्रज बनादिया। (उनके समय यहां पर वल्लभ-सम्प्रदाय के अनेक मन्दिर बन गए थे।) परन्तु महाराजा मानसिंहजी ने उसे लखनेऊ, काशी, दिल्ली, और नेपाल बनादिया। (उनके समय उनकी गुणग्राहकता के कारण यहां पर बहुत से गायक, संस्कृत के पंडित, गवैये, और योगी या नाथ-सम्प्रदाय के लोग इकट्ठे हो गए थे।)

मारवाड़ के राठोड़ नरेश



राव सीहाजी

इस इतिहास के प्रथम भाग (राष्ट्रकूटो के इतिहास) में लिखा जाचुका है कि इतिहास-प्रसिद्ध राठोड-नरेश जयचन्द्र (जयच्चन्द्र) के शहाबुद्दीन गोरी के हमले मे मारे जाने पर भी कन्नौज के आस-पास का प्रदेश उस (जयच्चन्द्र) के पुत्र हरिश्चन्द्र के अधिकार मे ही रहा था। सम्भवत इसी हरिश्चन्द्र की उपाधि या दूसरा नाम वरदायीसेन[1] था। परन्तु वि० स० १२५३ के बाद जब मुसलमानो के आक्रमणो से हरिश्चन्द्र का रहा-सहा राज्य भी जाता रहा, तब वरदायीसेन के पुत्र

१ यह भी सम्भव है कि वरदायीसेन हरिश्चन्द्र का छोटा भाई हो। परन्तु रामपुर और खिमसेपुर के इतिहासों मे सीहाजी को प्रहस्त का पौत्र लिखा है। यह प्रहस्त शायद हरिश्चन्द्र का ही बिगडा हुआ रूप है। इसीसे हम भी हरिश्चन्द्र और वरदायीसेन को एक ही व्यक्ति अनुमान करते हैं।

जिस प्रकार जयचन्द्र की उपाधि "दलपुंगल" थी उसी प्रकार हरिश्चन्द्र की उपाधि "वरदायी-सैन्य" होना भी सम्भव है।

सेतराम और सीहाजी खोर (शम्साबाद) की तरफ चले गए और कुछ दिन बाद मोधा की तरफ होते हुए महुई[1] में जा रहे। परन्तु जब उक्त प्रदेश में भी मुसलमानों का उपद्रव प्रारम्भ हो गया, तब इन्हें और सेतराम को मारवाड़ की तरफ आना पड़ा। सम्भव है, विदेश में आ जाने पर सेतराम ने अपने छोटे भाई सीहाजी को ही अपना दत्तक पुत्र मान लिया हो।

१ महुई गाँव फर्रुखाबाद जिले में है। वहाँ पर काली नदी के किनारे बने सीहाजी के निवासस्थान के खंडहर अब तक विद्यमान हैं और लोग उन्हें 'सीहा राव का खेड़ा' के नाम से पुकारते हैं।

२ शम्सुद्दीन अल्तमश पहले बदायूं का शासक था। (क्रॉनॉलॉजी ऑफ इंडिया, पृ० १७६।) परन्तु वि० सं० १२६८ (ई० स० १२११) में वह दिल्ली के तख्त पर बैठा और उसके बाद उसकी सेना ने खोर विजय किया। खोर (शम्साबाद) की तरफ के लोग इस घटना का समय वि० सं० १२७१ की चैत्र (सुदि) ३ का अनुमान करते हैं। परन्तु श्रीयुत आर० डी० बैनर्जी शम्सुद्दीन के कन्नौज-विजय करने का समय वि० सं० १२८३ (ई० स० १२२६) मानते हैं। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी भा० १२ नं० ११, पृ० ७६६)

मारवाड़ की ख्यातों में सीहाजी का वि० सं० १२१२ में मारवाड़ में आना लिखा है। परन्तु जब कन्नौज-नरेश जयचन्द्र स्वयं ही वि० सं० १२५० में मारा गया था तब उसकी सन्तान का इस घटना से ३८ वर्ष पूर्व मारवाड़ में आना कैसे सम्भव हो सकता है?

कर्नल टॉड ने अपने 'ऐनल्स ऐण्ड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान' नामक इतिहास (भा० २, पृ० ६४०) में सीहाजी के, कन्नौज छोड़ कर, मारवाड़ में आने का समय वि० सं० १२६८ (ई० स० १२१२) लिखा है। जनरल कनिंघम इस घटना का वि० सं० १२८३ (ई० स० १२२६) में होना मानते हैं। (कनिंघम की आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भा० ११ पृ० १२३)

विक्रम की १७ वीं शताब्दी के लेखक मुहणोत नैणसी ने अपने इतिहास में एक स्थल पर सीहाजी का विवाह सोलंकी जयसिंह की कन्या से होना लिखा है। यदि उसका लिखना ठीक हो तो यह जयसिंह (जयन्तसिंह) द्वितीय की कन्या ही होगी। इस जयसिंह द्वितीय का वि० सं० १२८० की पौष सुदि ३ (२६ दिसम्बर १२२३) का, एक ताम्रपत्र कडी से मिला है। (इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ६, पृ० १९६) इसने इसी समय के करीब गुजरात-नरेश सोलंकी भीमदेव द्वितीय के राज्य पर कुछ समय के लिये अधिकार कर लिया था।



१ राव सीहाजी

वि० स० १२६८-१३३० (ई० स० १२१२-१२७३)

वि० स० १६५० (ई० स० १५९३) का बीकानेर के महाराजा रायसिंहजी का

इस घटना से भी जनरल कनिङ्गहम के मत की पुष्टि होती है। परन्तु मारवाड की सारी ही ख्यातों मे सीहाजी के पुत्र आसथानजी का जन्म उनके मारवाड मे आने के बाद होना लिखा मिलता है। यदि यह सत्य हो तो सीहाजी का मारवाड मे वि० स० १२६८ (ई० स० १२१२) के करीब आना ही मानना होगा, क्योंकि हम आसथानजी का जन्म वि० स० १२६९ (ई० स० १२१२) के करीब मान लेने को वाध्य हैं। इसके बिना मारवाड के राठोडों का सारा का सारा प्रारम्भिक इतिहास गड़बड़ हो जाता है। हमारे मतानुसार जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र से लेकर राव चूँडाजी तक के नरेशों के जन्म-सवत् इस प्रकार मानने होगे.

जयचन्द्र

- हरिश्चन्द्र [जन्म वि० स० १२३२—जयचन्द्र के ताम्रपत्रों के आधार पर]
  - सेतराम [जन्म वि० स० १२५०]
- वरदायीसेन [या तो यह हरिश्चन्द्र का ही उपनाम होगा या उसका छोटा भाई होगा। पिछली हालत मे इसका जन्म वि० स० १२३३ मे माना जा सकता है।]
  - राव सीहा [जन्म वि० स० १२५१]
    - राव आसथान [जन्म वि० स० १२६९]
      - राव धूहड [जन्म वि० स० १२८७]
        - राव रायपाल [जन्म वि० स० १३०५]
          - राव कनपाल [जन्म वि० स० १३२३]
            - राव जालणसी [जन्म वि० स० १३४१]
              - राव छाडा [जन्म वि० स० १३५९]
                - राव तीडा [जन्म वि० स० १३७७]
                  - राव कान्हड [जन्म वि० स० १३९५]
                  - राव त्रिभुवनसी [जन्म वि० स० १३९६]
                  - राव सलखा [जन्म वि० स० १३९७]
                    - रावल मल्लिनाथ [जन्म वि० स० १४१५]
                    - राव वीरम [जन्म वि० स० १४१६]
                      - राव चूँडा [जन्म वि० स० १४३४-ख्यातों के आधार पर]

(सम्भव है, बीच के सम्वतों मे एक-दो वर्षों का अन्तर हो। सीहाजी के मारवाड़ की तरफ आने का कारण बदायूँ के शासक शम्सुद्दीन का दबाव ही प्रतीत होता है।)

एक लेख मिला है। इस में श्री नारायण से विजयचन्द्र के पूर्व तक की पीढ़ियाँ भाटों के आधार पर लिखी हुई प्रतीत होती हैं। इसीसे ये लेखों की पीढ़ियों से नहीं मिलतीं। इस लेख में आगे लिखा है:

तस्माद्विजयचन्द्रोऽभूज्जयचन्द्रस्ततोऽभवत ।
वरदायीसेननामा तत्पुत्रोऽतुलविक्रम
तदात्मज सीतरामो रामभक्तिपरायणा ।
सीतरामस्य तनयो नृपचक्रशिरोमणि ।
राजा सीह इति ख्यात शौर्यौदार्यसमन्वित ।

अर्थात्—उसका पुत्र विजयचन्द्र हुआ और विजयचन्द्र का जयचन्द्र। जयचन्द्र का पुत्र वरदायीसेन था और उसका सीतराम हुआ। इसी सीतराम का पुत्र सीहा था।

इस लेख में जयचन्द्र के पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र न देकर वरदायीसेन दिया है। इससे ज्ञात होता है कि या तो इस वंश का सम्बन्ध हरिश्चन्द्र के छोटे भाई वरदायीसेन से था या हमारे अनुमान के अनुसार हरिश्चन्द्र का ही उपनाम वरदायीसेन था। इसीसे उक्त लेख में हरिश्चन्द्र का नाम नहीं लिखा गया है।

कर्नल टॉड ने अपने इतिहास में सीहाजी को कहीं जयचन्द्र का पुत्र, कहीं भतीजा और कहीं पौत्र तथा सेतराम का भाई लिखा है। परन्तु मारवाड़ की ख्यातों और सीहाजी के वि० सं० १३३० के लेख में इन्हें सेतराम का पुत्र लिखा है।

'आईने अकबरी में लिखा है कि मोइनुद्दीन साम (गोरी) ने जब राय पिथोरा की लड़ाई से फुरसत पाई तब वह कन्नौज के राजा जयचन्द्र के मुकाबले को चला। जयचन्द्र हार कर भागा और गङ्गा में डूब गया। उसका भतीजा सीहा भी, जो शम्साबाद में रहता था बहुत से आदमियों के साथ मारा गया। इसके बाद सीहा के तीनों बेटे सोनग अश्वत्थामा (आसथान) और अज गुजरात की तरफ जाते हुए पाली में आकर ठहरे। कुछ दिन बाद इन्होंने गोहलों से खेड़ छीन लिया। इसके बाद सोनग ने ईडर में और अज ने बगलाने में अपना अधिकार जमाया। (भा० २, पृ० ५०७।)

परन्तु सीहाजी का उस समय मारा जाना सिद्ध नहीं होता।

१ जर्नल बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी (ई० सन् १६२०), भा० १६, पृ० २५६

२. ऐनाल्स ऐण्ड ऐण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० १०५, भा० २, पृ० ३० और भा० २, पृ० ६४०

इतिहास से ज्ञात होता है कि जिस समय सीहाजी करीब २०० साथियो के साथ मड़ुई से पश्चिम की तरफ चले थे, उस समय इनका विचार द्वारका की तरफ जाने का था। परन्तु मार्ग मे जब यह पुष्कर मे ठहरे, तब वही पर इनकी भेट तीर्थ—यात्रार्थ आए हुए भीनमाल (मारवाड के दक्षिणी प्रान्त के एक नगर) के ब्राह्मणो से हो गई। उन दिनो मुलतान की तरफ के मुसलमान अक्सर भीनमाल पर आक्रमण कर लूट—मार किया करते थे। इसीसे उन ब्राह्मणो ने सीहाजी को अपने दल-बल सहित देख कर इनसे सहायता की प्रार्थना की। सीहाजी ने भी इसको सहर्ष स्वीकार कर लिया और भीनमाल जाकर आक्रमणकारी मुसलमानो के मुखियाओ को मार डाला।

इस विषय का यह दोहा मारवाड मे अब तक प्रसिद्ध है—

भीनमाल लीधी भडै, सीहै सेल बजाय।
दत दीन्हो सत सग्रह्यो, ओ जस कदे न जाय॥

अर्थात्—वीर सीहाजी ने भाले के जोर से भीनमाल पर अधिकार कर लिया और इसके बाद उसे (ब्राह्मणो को) दान देकर पुण्य का सञ्चय किया। इनका यह यश सदा ही अमर रहेगा।

इस प्रकार भीनमाल के ब्राह्मणो का कष्ट दूर कर सीहाजी ने द्वारका (गुजरात) की यात्रा की और वहाँ से लौटते हुएँ कुछ दिन पाटन (अनहिलवाडे) मे ठहरे। वहाँ पर उस समय सोलकियो का राज्य था।

ख्यातो मे लिखा है कि सीहाजी ने पाटन के राजा मूलराज सोलकी की सहायता कर कच्छ के राजा लाखा फूलानी को मारा था और इसके एवज

१ ख्यातों मे यह भी लिखा है कि सीहाजी ने द्वारका से लौटते समय भुज के सामा भाटी, यिराठ के शासक, सॉचोर के चौहान, पीलूडा गॉव के कोली मेघा, करडा पर्वत के करतर (जाति के) हरदास छोगाला, और भीलडा गॉव के डाभी आसा (ईडर के दीवान) को भी दण्ड दिया था।

ख्यातों मे सीहाजी का द्वारका को जाते समय भी पाटन होकर जाना लिखा है।

२ मुहणोत नैणसी ने पाटन के राजा मूलराज को चावडा जाति का लिखा है।

में मूलराज ने इन्हें अपनी कन्या ब्याह दी थी। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जैनाचार्य हेमचन्द्र रचित 'द्वयाश्रय काव्य'[1] के पाँचवें सर्ग में लिखा है –

तौ गूर्जरत्राकच्छस्य द्वारकाकुण्डनस्य नु।
नाथौ शरोर्मिमालाभिर्गगनाम्भोधि प्रचक्रतुः ॥ १२१ ॥
× × ×
कुन्तेन सर्वमर्माण्यभिन्दल्लक्षं चुलुक्यराट् ॥ १२७ ॥

अर्थात् गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज और कच्छ के राजा लाखा के बीच भीषण युद्ध हुआ। अन्त में सोलंकी मूलराज प्रथम ने लाखा को मार डाला।

सांभर (मारवाड़) में मिले सोलंकियों के एक शिलालेख[2] में लिखा है –

वसुनन्दनिधौ वर्षे व्यतीते विक्रमार्कतः।
मूलदेवनरेशस्तु चूडामणिरभूद्भुवि ॥ १ ॥

अर्थात्–वि० सं० ९९८ के बीत जाने पर मूलदेव राजा हुआ।

इससे ज्ञात होता है कि मूलराज प्रथम ने वि० सं० ९९८ (ई० स० ९४१) के बाद ही गुजरात विजय कर वहां पर अपना राज्य स्थापित किया था। इसकी प्रशस्तियों से प्रकट होता है कि यह वि० सं० १०५१

---

1 यह काव्य वि० सं० १२१७ (ई० सन् ११६०) के करीब बनाया गया था। इसमें लिखा है कि जिस समय सौराष्ट्र देश के राजा ग्रहरिपु ने पाटण पर चढ़ाई की, उस समय कच्छ देश का राजा लाखा भी उसके साथ था। इसी युद्ध में गुजरात के राजा मूलराज ने बर्छे (कुन्त) का प्रहार कर लाखा को मारा था।

वि० सं० १२८२ (ई० स० १२२५) के करीब की बनी सोमेश्वर की 'कीर्ति कौमुदी' में भी लाखा का मूलराज प्रथम के हाथ से मारा जाना लिखा है –

महेच्छकच्छभूपाल लक्षं लक्षीचकार यः।

वि० सं० १३६२ (ई० स० १३०५) की बनी मेरुतुङ्ग की 'प्रबन्धचिन्तामणि' से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है –

कच्छपलक्षं हत्वा महमाधिकं कम्पजालमायातम्।
सङ्गरसागरमध्ये धीवरता दर्शिता येन ॥

डफ की 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ इण्डिया' में ग्रहरिपु का समय ई० स० ९१६ और ९५९ (वि० स० ९७३ और १०१६) के बीच लिखा है।

2 सरदार म्यूजियम और सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर की ई० स० १९२५-२६ की रिपोर्ट, पृ० २, और इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ५८ पृ० २३४-२३६।

(ई० स० ९९४) तक जीवित था। ऐसी हालत में इसकी मृत्यु सीहाजी के मारवाड में आने से करीब २१६ वर्ष पूर्व हुई होगी। इसलिये मूलराज और उसके समकालीन लाखा का सीहाजी के समय विद्यमान होना और उस लाखा का सीहाजी के हाथ से मारा जाना असम्भव ही प्रतीत होता है।

ख्यातो मे लिखा है कि जब सीहाजी पाटन से लौट कर पाली (मारवाड) पहुंचे, तब वहाँ के पल्लीवाल ब्राह्मणो ने भी इनसे सहायता की प्रार्थना की। उस समय पालीनगर व्यापार का केन्द्र हो रहा था और फारस, अरब आदि पश्चिमी

१ प० गौरीशङ्करजी ओझा के लिखे 'राजपूताने के इतिहास' मे गुजरात के सोलकी मूलराज प्रथम का समय १०१७ से १०५२ लिखा है (भा० २, पृ० २१५)। परन्तु उपर्युक्त नवीन लेख के मिल जाने से वह ठीक नहीं हो सकता। सोलकियों के वंश मे एक मूलराज द्वितीय भी हुआ है। परन्तु एक तो उस (मूलराज द्वितीय) का समय वि० स० १२३३ से १२३५ तक माना गया है। दूसरे वह बाल्यावस्था मे ३ वर्ष राज्य करके ही मर गया था। इसीसे वह बाल मूलराज के नाम से प्रसिद्ध था। ऐसी हालत मे उसकी कन्या से सीहाजी का विवाह होना भी असम्भव ही है। वास्तव मे सीहाजी के समय गुजरात पर सोलकी भीमदेव द्वितीय का राज्य था। उसका समय वि० स० १२३५ से १२९८ तक माना गया है। परन्तु पहले लिखा जा चुका है कि मुहणोत नैणसी के इतिहास मे सीहाजी का विवाह सोलकी सिद्धराज जयसिंह की कन्या से होना लिखा है। यदि उसका लिखना ठीक हो, तो यह जयसिंह (जयन्तसिंह) द्वितीय ही हो सकता है, जिसने कुछ समय के लिये सोलकी भीमदेव द्वितीय के राज्य पर अधिकार कर लिया था। परन्तु इस विषय मे भी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

२ कच्छ के जाडेजा नरेशों में लाखा नाम के तीन नरेश मिलते हैं। डफ की 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ इण्डिया' मे इनके नाम और समय इस प्रकार दिए हैं

(१) लाखा गुडारा या टोडरा, ई० स० १२५० (वि० स० १३०७)

(२) लाखा फूलानी, ई० स० १३२० (वि० स० १३७७)

(३) लाखा जाम, ई० स० १३५० (वि० स० १४०७)

इसी पुस्तक मे लाखा फूलानी के विषय मे लिखा है कि वह खेडकोट का राजा था और उसने काठियों को दबा कर काठियावाड के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था। कही पर इसकी मृत्यु का इसके जामाता के हाथ से होना और कहीं पर इसका, अडकोट (काठियावाड) मे मूलजी वाघेला के साथ के युद्ध मे, राठोड सीहाजी के द्वारा मारा जाना लिखा है। परन्तु इसके समय के विषय मे बडी गडबड है। (देखो पृ० २९० और पृ० २१५-२१६)। परन्तु इस पुस्तक मे दिए वृत्तान्त और समय के विषय मे स्वय ग्रन्थ लेखिकाने ही सन्देह प्रकट कर दिया है। कुछ लोग सीहाजी का जैसलमेर के रावल भाटी लाखा से लडना अनुमान करते हैं। उक्त राज्य की ख्यातों मे उसका समय वि० स० १३२७ से १३३० तक लिखा है। (तवारीख जैसलमेर, पृ० ३३)

देशों के माल के यहीं होकर आगे जाने के कारण यहाँ के पल्लीवाल व्यापारी बड़े समृद्धिशाली बन गए थे। परन्तु साथ ही सोलङ्कियों और चौहानों के निर्बल हो जाने से आस-पास के जङ्गलों में रहने वाले मीणा, मेर आदि लुटेरी जातियों के लोग मौका पाते ही उन्हें लूट लिया करते थे। सीहाजी ने उन ब्राह्मणों की और उस प्रदेश की दशा देख उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वहीं पर अपना निवास स्थापित कर आस-पास की लुटेरी जातियों से उन व्यापारी ब्राह्मणों की रक्षा करने लगे। इस सहायता के बदले में उन ब्राह्मणों ने भी इनके खर्च के लिये कुछ लागें नियत कर दीं। कुछ ही काल में आस-पास के प्रदेश पर सीहाजी का अधिकार हो गया।

उस समय खेड़ पर गुहिल राजपूतों का अधिकार था। परन्तु उनके और उनके मन्त्री डाभी राजपूतों के बीच मनोमालिन्य रहा करता था। इसी घर की फूट से लाभ उठाने के लिये सीहाजी ने उनके देश पर चढ़ाई की। परन्तु इसी समय पाली पर मुसलमानों ने हमला कर दिया। इसकी सूचना मिलते ही सीहाजी खेड़ की तरफ से लौट कर मुसलमानी सेना पर टूट पड़े। इससे उसे मैदान छोड़ कर भागना पड़ा। यह देख राठोड़ों ने उसका पीछा किया। परन्तु उनके बीठू नामक गाँव के पास पहुँचते ही मुसलमानों की एक नवीन सेना उधर आ निकली। इससे मुसलमानों का बल बहुत बढ़ गया और उनकी भागती हुई सेना ने मदद पाकर पीछा करती हुई राठोड़-सेना पर प्रत्याक्रमण कर दिया। दोनों तरफ से जी खोल कर युद्ध हुआ। परन्तु थकी हुई अल्पसंख्यक राठोड़-सेना मुसलमानों की बहु-संख्यक ताज़ादम फौज के सामने

१ यह गांव पाली से ७० मील पश्चिम जसोल के पास उजड़ी हुई दशा में अबतक विद्यमान है।

यद्यपि कर्नल टॉड ने सीहाजी का खेड़ राज्य पर अधिकार कर लेना लिखा है और उसकी पुष्टि नगर (मारवाड़) से मिले वि० सं० १६८६ के राठोड़ जगमाल के लेख से भी होती है तथापि ख्यातों से खेड़ पर पहले पहल आसथानजी का अधिकार होना ही पाया जाता है। ऐसी हालत में मानना पड़ता है कि यदि सीहाजी ने खेड़ के कुछ प्रदेशों पर अधिकार किया भी होगा तो भी सम्भवत: उनकी मृत्यु के बाद वे स्थान एकबार फिर राठोड़ों के हाथ से निकल गए होंगे।

अधिक समय तक न ठहर सकी । इससे मैदान मुसलमानो के हाथ रहा और वीरवर सीहाजी इसी युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुएं ।

१ मारवाड़ की ख्यातों मे यह भी लिखा है कि सीहाजी कुछ दिन तक पाली मे रह कर कन्नौज लौट गए थ । वहाँ पर इनकी राजधानी गढ गोयन्दाणे मे थी । इनका पहला विवाह पंचाल-नरेश की राज कन्यासे और दूसरा पाटण के सोलंकी राजा की पुत्री से हुआ था । इनके पहली रानी से ४ पुत्र और दूसरी स ३ पुत्र हुए । सीहाजी ने मारवाड से लौट कर १३ वर्ष तक गढ गोयन्दाणे मे राज्य किया । इनकी मृत्यु के बाद वहाँ का अधिकार पहली रानी के बडे पुत्र को मिला और दूसरी रानी अपने तीनो पुत्रो (आसथान, सोनग और अज) को लेकर पाली (मारवाड) में चली आई । परन्तु यह ठीक प्रतीत नही होता ।

कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास मे सीहाजी का वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है –

"वि० स० १२६८ (ई० स० १२१२) मे जयचन्द्र के पौत्र सेतराम और सीहाजी, दो सौ आदमियों को साथ लेकर कन्नौज स रवाना हुए । जिस समय ये कोलूमढ (आधुनिक बीकानेर नगर से २० मील पश्चिम की तरफ) पहुँचे, उस समय वहाँ पर सोलंकियों का राज्य था । वहाँ के राजा ने इनकी बडी खातिर की । इसी एवज में सीहाजी ने सोलंकियों के शत्रु लाखा फूलानी से युद्ध कर उसे हराया । इसी युद्ध में सेतराम मारा गया । उनकी इस सहायता से प्रसन्न होकर सोलंकी नरेश ने अपनी बहिनका विवाह सीहाजी के साथ कर दिया । वहाँ से चल कर यह (सीहाजी) द्वारका जाते हुए अनहिल पाटन पहुँचे । वहाँ के राजा ने भी इनकी बडी आवभगत की । जिस समय सीहाजी पाटन मे ठहरे हुए थे, उसी समय लाखा फूलानी ने उक्त नगर पर आक्रमण किया । इस बार के युद्ध मे सीहाजी ने लाखा को मार कर अपने भाई का बदला ले लिया । उधर से लौटकर जब सीहाजी लूनी के किनारे पहुँचे तब इन्होंने डाभियो से मेहवा और गुहिलों से खेड छीन लिया । इसके बाद यह पाली आए और इन्होंने वहाँ पर होने वाले मेर व मीणों के उपद्रव को शान्तकर पल्लीवाल ब्राह्मणों की रक्षा की । परन्तु कुछ समय बाद इन्होंने पल्लीवाल ब्राह्मणों को मारकर वहाँ पर भी अधिकार कर लिया । इसके एक वर्ष बाद वहीं पर इनका स्वर्गवास हुआ । (ऐनाल्स ऐण्ड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४०-९४३) । परन्तु यह सारी कथा कपोल-कल्पित है क्योंकि पल्लीवाल ब्राह्मण पाली के शासक न होकर व्यापारी ही थे । पाली मे स्थित सोमनाथ के मन्दिर से मिले वि० स० १२०९ के लेख मे प्रकट होता है कि उस समय वहा पर सोलंकी कुमारपाल का राज्य था और उसकी तरफ से बाहडदेव वहा का शासक था । वि० स० १३१९ के सूधामे मिले चौहान चाचिगदेव के लेख से ज्ञात होता है कि इस चाचिगदेव का पिता उदयसिंह नाडोल, जालोर, मडोर, बाहडमेर, रत्नपुर, साँचोर, सराचद, राडधड़ा, खेड, रामसीन और भीनमाल आदि का शासक था । उदयसिंह के वि स० १२६२ से १३०६ तक के लेख मिले है । इससे अनुमान होता है कि सोलंकियों के बाद पाली पर चौहानो का अधिकार हुआ होगा । ऐसी हालत मे सीहाजी का वहाँ के पल्लीवाल व्यापारियोंको मारकर उनस पाली छीनना बिलकुल असगत ही है ।

सीहाजी के स्वर्गवास का, वि० स० १३३० (ई० स० १२७३) का, एक लेख वीठू (मारवाड का एक गॉव, जो पाली से ६ कोस के अन्तर पर है) से मिला है,

इस लेख से प्रकट होता है कि वि० स० १३३० की कार्तिक वदि १२ सोमवार (ई० स० १२७३ की ९ अक्टूबर) को करीब ८० वर्ष की अवस्था मे सीहाजी

---

१ उक्त लेख में लिखा है –

(१) "ओं ॥ सॉ (स) वछ (त्) १३३०

(२) कार्तिक वदि १२ सोम–

(३) वारे रठड़ा श्री सेत–

(४) कवर सुत (त) सीहो दे–

(५) वलोके गत मो [ल–]

(६) क पारवति (र्ती) तस्यार्थे देव-

(७) ली स्थ (स्था) पिना (ता) क (का) गयि (पि) त (ना) मु (तु) भ भवतु (तु)।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी भा० ४० पृ० ३८१)

इस लेख के ऊपर घोडे पर चढी सीहाजी की मूर्ति बनी है और सामने उनकी रानी हाथ जोडे खडी है। घोडे के पैरों के नीचे एक मुसलमान पड़ा है।

हमारे मतानुसार इस लेख मे इतनी बातें विचारणीय है

१—सीहाजी के मस्तक पर पगडी या साफा नहीं है। उनके घुंघराले बाल आगे से साफ दिखाई देते हैं।

२—सीहाजी की मूर्ति का कमर तक का भाग खुला है (परन्तु रानी शायद कचुकी पहने हुए है।) दोनों के कन्धों पर से केवल एक एक दुपट्टा लटकता हुआ बना है।

३—सीहाजी के कमर के नीचे के भाग मे वस्त्र और पैरों मे घुटनों तक के बूट (फाडोले) बने हैं। (रानी के पहनने को चुन्नटदार घोती है और उसकी नाभि से पैरों तक बोनों की चुन्नत या कपड़नी की लम्बी लड़ी लटकती है।)

४—सीहाजी की शकल और दाढी मुसलमानी ढङ्ग की है।

५—इस लेख के सम्वत् १३३० के बीच के दोनों अक (३ ३) आधुनिक शैली के प्रतीत होते हैं।

६—लेख मे सीहाजी को 'सतकॅवर सुत लिखा है। (इसलिए या तो 'सेतराम के लिये ही 'सेतकॅवर शब्द का प्रयोग किया गया है या इससे उसका छोटा पुत्र होना प्रकट होता है। पूरब मे आजकल भी राजाओं और जमींदारों के छोटे पुत्र या उनकी सन्तान अपने नामों के आगे कुॅवर की उपाधि लगाती है।)

का स्वर्गवास हुआ था और उसी दिन इनकी सोलकी वश की पार्वती[1] नामक रानी इनके साथ सती हुई थी।

परन्तु इस लेख के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, क्योंकि इसके लाने वाले के बताए स्थान पर इतिहास कार्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष ने स्वय जाकर पूछ-ताछ की थी। फिर भी इसके वहाँ से लाए जाने का कुछ पता नहीं चला।

पाली की रोदावाव नामक पुरानी बावली के पास एक चबूतरा[2] बना है। कुछ लोग उसे सीहाजी का चबूतरा बतलाते हैं। सम्भव है, इनके वशजो ने इनके निवास-स्थान पर पीछे से, यादगार की तौर पर, यह चबूतरा बनवाया हो।

इनके तीन[3] पुत्र थे आसथान, सोनग और अज।

१ मारवाड की ख्यातों में सीहाजी की सोलकी वशकी रानी का नाम राजलदे लिखा है और उसे सोलकी मूलराज की पुत्री माना है। यदि वास्तव मे यह ठीक हो तो यह कोई तीसरा ही मूलराज होगा, क्योंकि पहले लिखे अनुसार प्रथम और द्वितीय मूलराज की पुत्री का विवाह तो सीहाजी से होना असम्भव सिद्ध हो चुका है।

२ यह चबूतरा इस समय टूटी फूटी दशा मे है। कुछ ख्यातों में इसको आसथानजी का चबूतरा भी लिखा है।

३ इनके एक भीम नामक चौथे पुत्र का उल्लेख भी मिलता है। परन्तु उसका हाल न मिलने से अनुमान होता है कि वह बालकपन मे ही मर गया होगा।

२. राव आसथानजी

यह राव सीहाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे, और उनके युद्ध में वीरगति प्राप्त कर लेने पर उनके उत्तराधिकारी हुए। यह भी अपने पिता के समान ही वीर और साहसी थे।

ख्यातों में लिखा है कि यद्यपि उस समय पाली पर इन्हीं का अधिकार था, तथापि इन्होंने अपना निवास वहाँ से ५ कोस दक्षिण के गूंदोच नामक गाँव में कर रक्खा था। इसके बाद जब इनके पास धन-जन का अच्छा जमाव हो गया, तब इन्होंने, डाभी राजपूतों को अपनी तरफ मिलाकर, गुहिल क्षत्रियों से खेड़ का राज्य छीन लिया।

---

१ जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, रतलाम, सीतामऊ, सैलाना, झाबुआ और ईडर के राठोड़ नरेश इन्हीं के वंशज हैं।

२ हमारे मतानुसार इनका जन्म वि० सं० १२९६ (ई० सन् १२३९) में हुआ होगा। इनके पिता राव सीहाजी की मृत्यु का समय स्मारक लेख से वि० सं० १३३० की कार्तिक वदी १२ (ई० सन् १२७३ की ९ अक्टोबर) आता है। इसके अनुसार राव आसथानजी का राज्याभिषेक भी उसी समय हुआ होगा।

३ डाभियों का निवास पाली से ३६ कोस पश्चिम के गाँव में था।

४. ख्यातों में लिखा है कि उस समय खेड़ के गुहिल नरेश का प्रधान मंत्री डाभी-क्षत्रिय भावसी था। परन्तु उन दोनों के बीच मनोमालिन्य हो जाने से बदला लेने की इच्छा से वह आसथानजी से मिल गया। यद्यपि उसी की प्रेरणा से खेड़ के गुहिल नरेश ने अपनी कन्या का विवाह आसथानजी से करना निश्चित किया था, तथापि उस (मंत्री) ने आसथानजी को समझाया कि विवाहोत्सव के समय जब गुहिल वंशी एक तरफ और डाभी लोग दूसरी तरफ बैठे हों, तब आप गुहिलों को मारकर खेड़ पर अधिकार कर लें और बाद में उनके राज्य का आधा हिस्सा मुझे दे दें। यह सुन आसथानजी ने सोचा कि जब यह इस समय हमसे मिलकर अपने वर्तमान स्वामी को धोखा देने को तैयार है तब सम्भव है किसी समय तीसरे पुरुष से मिलकर हमारे साथ भी ऐसा ही बर्ताव करे। ऐसा सोच उस समय तो यह चुप हो रहे परन्तु समय आने पर इनके इशारे से इनके साथ के सरदारों ने डाभी और गुहिल दोनों ही जातियों के मुखियाओं को मार डाला। इसी घटना के कारण मारवाड़ में यह कहावत चली है—"डाभी डावा ने गोहिल जीवणा" अर्थात् किसी स्थान पर इकट्ठे हुए दाएं और बाएं दोनों ही तरफ के लोग अविश्वसनीय या शत्रु हैं। कहते हैं कि इस घटना के बाद बचे हुए गुहिल काठियावाड़ की तरफ चले गए, क्योंकि वहाँ पर इस वंश के लोग पहले से ही अधिकार प्राप्त कर चुके थे। भावनगर, लाठी, पालीताना और वल के राजवंश गुहिल वंश की ही संतान हैं।

RAO ASTHAN

२ राव आसथानजी

वि० सं० १३३०-१३४९ (ई० स० १२७३-१२९२)

इनके इसी खेड नगर मे पहले पहल यथानियम अपनी राजधानी स्थापित करने के कारण इनके वशज 'खेडेचा' कहाने लगे।

कुछ काल बाद राव आसथानजी ने ईडर (गुजरात) के (कोली-जाति के) राजा सामलिया सोड के मत्री से मिलकर उक्त नरेश को मार डाला, और वहाँ का राज्य अपने छोटे भाई सोनग को दे दिया।[1]

ईडर के राजा होने के कारण ही सोनग के वशज ईडरिया राठोड[2] कहाए।

ख्यातो से ज्ञात होता है कि उस समय खेड-राज्य मे ३४० गाँव थे।

१ यद्यपि कर्नल टॉड ने उस समय ईडर पर डाभियों का राज्य होना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, क्रुक सपादित, भा० २, पृ० ९४३) तथापि मिस्टर फॉर्ब्स ने वहाँ के, उस समय के, राजा का परिचय सामलिया सोड लिखकर दिया है (रासमाला, भा० १, पृ० २६४)। उसी मे यह भी लिखा है कि यह (कोली-जाति का नरेश) अपने मत्री (जो जाति का नागर ब्राह्मण था) की रूपवती कन्या पर आसक्त हो गया, और उसका विवाह अपने साथ कर देने का आग्रह करने लगा। इस पर मत्री ने सोचा कि यदि मैं इस समय इनकार कर दूँगा, तो यह कन्या को जबरदस्ती पकडकर ले जायगा। इस वास्ते कुछ समय के लिये इसको टाल देना ही उचित है। इसी के अनुसार उसने विवाह का प्रबध करने के लिये ६ मास की मियाद माँग ली। इसके बाद वह सामेतरा मे जाकर सोनगजी से मिला, और ईडर का राज्य दिलवाने का वादा कर उन्हे अपनी सहायता के लिये तैयार कर लिया। इस प्रकार सब प्रबध कर लेने पर उसने सामलिया को विवाह के लिये आने का निमत्रण भेजा। परतु जिस समय विवाह मे इकट्ठे हुए कोली लोग शराब पीकर मस्त हो गए, उस समय सोनगजी के साथवालो ने अपनी छिपने की जगह से निकल उन पर हमला कर दिया। यद्यपि सामलिया स्वय इनके पजे से निकल भागा, तथापि किले के द्वार के पास पहुँचते-पहुँचते वह भी आहत होकर गिर पडा। इसके बाद उसने अपने बचने की आशा न देख स्वय अपने हाथ से ही सोनगजी के ललाट पर ईडर का राज-तिलक लगा दिया, और इनसे प्रार्थना की कि मेरी यादगार बनाए रखने को जब-जब आपके वश के नरेश पहली बार गद्दी पर बैठे, तब-तब मेरी जातिवाले को ही राजतिलक करने का अधिकार रहे। सोनगजी ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार करली (रासमाला, भा० १, पृ० २६३-२६४)। यह घटना वि० स० १३३१ (ई० सन् १२७४) के करीब या इससे कुछ समय बाद हुई होगी। वहाँ पर इनके वशजों का राज्य वि० स० १७७५ (ई० सन् १७१८) के कुछ काल बाद तक रहा था।

२ कर्नल टॉड ने सोनग के वशजो का हथूडिया राठोड के नाम से प्रसिद्ध होना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४३)। परतु यह ठीक नही है, क्योकि बीजापुर (गोडवाड-मारवाड) मे मिले वि० स० १०५३ के लेख

रावजी के तीसरे भाई अज ने ओखामंडल (रखोद्धार-द्वारका के निकट) के स्वामी चावड़ा भोजराज[1] को मारकर वहाँ पर अधिकार कर लिया।

अज ने स्वयं अपने हाथ से वहाँ के राजा का मस्तक काटा था, इसलिये उसके वंश के लोग वाढेल[2] राठोड़ के नाम से प्रसिद्ध हुए।

वि० सं० १३४७ (ई० सन् १२९०) में[3] जलालुद्दीन (खिलजी) ने शम्सुद्दीन को मार डाला और खुद फीरोजशाह द्वितीय के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा। इसी के अगले वर्ष उसकी फौज ने पाली पर चढाई की। जैसे ही यह सूचना आसथानजी को मिली, वैसे ही वह खेड़ से रवाना होकर पाली आ पहुँचे, और वहीं पर शाही सेना से युद्ध कर १४० राजपूत वीरों के साथ वीरगति को प्राप्त हुए। यह घटना वि० सं० १३४८ की वैशाख सुदी १५ (ई० सन् १२९१ की १५ एप्रिल) की है[4]।

राव आसथानजी के ८ पुत्र[5] थे।

म प्रकट होता है कि उक्त स्थान के पास जो हस्तिकुंडी (हथूंडी) नामक नगरी थी, वहाँ पर तो विक्रम की दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही राष्ट्रकूटों की एक शाखा का राज्य था।

इसी तरह सीहाजी के मारवाड़ में आने के पूर्व यहां पर (मारवाड़ में) राठोड़ों की और भी कुछ शाखाएँ विद्यमान थीं। यह बात वि० सं० १२१३ के लेख में प्रकट होती है (यह लेख जोधपुर के अजायबघर में रक्खा है)।

१ 'गुजरात राजस्थान' में यही नाम है। परन्तु कर्नल टॉड ने उसका नाम भीमसी लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४३)।

२ इस शाखा के राठोड़ इस समय भी वहाँ पर पाए जाते हैं।

३ किसी-किसी तवारीख में इस घटना का समय वि० सं० १३४५ (ई० सन् १२८८) भी लिखा मिलता है।

४ परन्तु यदि यह आषाढादि संवत् हो, तो इसमें एक वर्ष का अंतर आवेगा। इसके अनुसार वि० सं० १३४६ की वैशाख सुदी १५ (ई० सन् १२९२ की २ मई) को इस घटना का होना मानना होगा।

वि० सं० १३५१ (ई० सन् १२९३) का फीरोजशाह द्वितीय के समय का एक खंडित-शिलालेख उसकी बनवाई मंडोर में की मसजिद में अब तक विद्यमान है।

५ किसी किसी ख्यात में इनके पुत्रों में मूपा और गुडाल इन दो के नाम और भी मिलते हैं। कर्नल टॉड ने आसथानजी के पुत्रों के नाम इस प्रकार लिखे हैं—१ धूहड़, २ जोपसी, ३ खीपसा, ४ भोपसू, ५ धाँधल, ६ जेठमल, ७ बादर और ८ ऊहड़ (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४३)।

१ धूहड, २ धाँधल, ३ चाचक, ४ आसल, ५ हरडक (हरखा), ६ खींपसा, ७ पोहड और ८ जोपसा।

१ धाँधल ने कोलू के चौहानो को हराकर वहाँ पर अधिकार कर लिया था। इसी के छोटे पुत्र का नाम पावू था। यह बडा वीर और दृढ-प्रतिज्ञ था। एक बार जायल (नागोर-प्रात) के स्वामी खीची जीदराव ने ऊदा चारण से उसकी एक घोडी माँगी। परतु उसने वह घोडी उसे न देकर पावू को देदी। इससे जीदराव मन ही मन कुढ गया। इसके बाद जिस समय पावू ऊमरकोट के सोढा परमारो के यहाँ विवाह करने को गया, उस समय जीदराव ने अपने पुराने अपमान का बदला लेने के लिये ऊदा की गाए छीन ली। यह देख ऊदा की स्त्री देवल पावू के पास सहायता माँगने पहुँची। यद्यपि उस समय वह विवाह-मडप मे था, तथापि देवल की प्रार्थना सुन तत्काल गायो को छुडवाने के लिये चल दिया। मार्ग मे उसने अपने बडे भाई बूडा को भी साथ ले लिया। युद्ध होने पर ये दोनो भाई मारे गए। ख्यातो मे इस घटना का समय वि० स० १३२३ लिखा है, परतु यह सदिग्ध है। अत मे बूडा के पुत्र झरडा ने (जो इस घटना के समय मातृ-गर्भ में था, बडे होने पर) जींदराव को मारकर अपने पिता और चाचा के वैर का प्रतिशोध किया।

मारवाड के लोग विवाह-मडप मे उठकर गो और शरणागत रक्षा के निमित्त प्राण देने के कारण पावू की और पितृ-भक्ति तथा साहस के कारण झरडा की अब तक पूजा करते है।

कोलू (फलोदी-प्रात) के पावू के मदिर मे के पढे गए लेखो मे सबसे पुराना लेख वि० स० १४१५ का है। उसमे धाँधल सोभ के पुत्र सोहड द्वारा पावू का मदिर बनवाने का उल्लेख है।

३. राव धूहड़जी

यह राव आसथानजी के बड़े पुत्र थे, और उनके युद्ध मे मारे जाने पर उनके उत्तराधिकारी हुए। इन्होने अपनी वीरता से अपने पैतृक राज्य की और भी वृद्धि की, और आस-पास के १४० गावो पर विजय प्राप्त कर उन्हे अपने राज्य मे मिला लिया।

१ इनका राज्याभिषेक वि० स० १३४८ या १३४९ (ई० सन १२९१ या १२९२) के ज्येष्ठ मे हुआ होगा।

२ पहले लिखा जा चुका है कि ख्यातों के अनुसार सीहाजी की मृत्यु के समय उनके गढ़ गोयंदाने (कन्नौज के पास) के राज्य पर उनकी बड़ी रानी के पुत्रों ने अधिकार कर लिया था, इससे आसथानजी को पाली (मारवाड़) की तरफ लौट आना पड़ा। इसी का बदला लेने के लिये राव धूहड़जी ने गढ़ गोयंदाने पर चढ़ाई की। यद्यपि वहांवालों को मुसलमानों की मदद मिल जाने से धूहड़जी सफल न हो सके, तथापि लौटते समय यह कर्नाट से अपनी कुलदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति ले आए और उसे नागाना नामक गाव मे एक नीम के वृक्ष के नीचे स्थापित कर दिया। इसी से इनके वंशज (राठोड़) नीम को पवित्र मानने लगे। यह भी प्रसिद्ध है कि नागाना गाव के संबंध के कारण ही उस देवी का नाम नागनेची हुआ। कर्नल टॉड ने भी धूहड़जी की कन्नौज पर की इस चढ़ाई का उल्लेख किया है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान भा० २ पृ० ९४३)। परतु यह कथा कल्पित ही प्रतीत होती है।

किसी किसी ख्यात मे इस मूर्ति का कल्याणी (कोंकन दक्षिण मे) से लाया जाना भी लिखा है। साथ ही उक्त देवी (नागनेची) के नाम के पीछे दक्षिण में प्रयुक्त होनेवाला 'ची' प्रत्यय लगा होने से भी इस मत की पुष्टि होती है। परतु ऐतिहासिक इस कल्याणी से कन्नौज के कल्याण कटक (बांबे गजेटियर भा० १, खड १, पृ० १५०) का तात्पर्य ही लेते हैं, क्योंकि षष्ठी विभक्ति का बोधक यह 'ची' या 'चा' प्रत्यय राजस्थानी भाषा में भी प्रयुक्त होता आया है, जैसे –

(१) खेड़ के संबंध से राव आसथानजी के वंशजों (राठोड़ों) का खेड़ेचा के नाम से प्रसिद्ध होना।

(२) "हे जगत-जननी, पुत्र तुमचो, मेरु मजन वर करो,
उच्छ्वास तुमचे वलिय थापिस, आतमा पुण्ये भरो।"

(जिन पूजा-पद्धति)

इस देवी के पुजारी भी राठोड़ ही हैं, जो नागनेचिया राठोड़ कहाते हैं। किसी-किसी ख्यात मे लिखा मिलता है कि जयचंदजी ने जब चित्तौड़ विजय किया था, तब वहाँ पर भी अपनी कुलदेवी (नागनेची) का मंदिर बनवाया था।



३. राव धूहड़जी

वि० सं० १३४९-१३६६ (ई० स० १२९२-१३०९)

राव धूहड़जी ने पड़िहारो को हराकर मडोर पर भी अधिकार कर लिया था। परंतु उन्होने मौका पाकर शीघ्र ही मडोर वापिस छीन लिया। यह देख इन्होने उन पर दुबारा चढाई की। परंतु मार्ग में थोभ[3] और तरसींगड़ी नामक गावो के बीच इनका पड़िहारो से सामना हो गया, और यह उनके साथ के युद्ध में मारे गऐ।

इनकी यादगार में तरसींगडी के तालाव पर जो चबूतरा बनाया गया था, उस पर की पुतली का लेख घिस जाने के कारण अब पढा नही जा सकता।

तरसींगडी से ही इनका वि० स० १३६६ (ई० सन् १३०९) का एक अन्य लेख[5] भी मिला है। कहा जाता है कि नागाने का नागनेचिया देवी का मदिर इन्होने ही बनवाया था[6]।

जोधाजी के ताम्रपत्र की नकल से प्रकट होता है कि राव धूहडजी के समय लुबऋषि नाम का सारस्वत ब्राह्मण कन्नौज मे राठोडो की कुलदेवी चक्रेश्वरी (आदि पक्षिणी) की मूर्ति लेकर मारवाड मे आया था। इसके बाद जब उक्त देवी ने राव धूहडजी को नाग के रूप मे दर्शन देकर वर दिया, तब वह नागनेचियाँ के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस सेवा के बदले मे धूहडजी ने लुबऋषि को अपना पुरोहित नियत कर एक ताम्रपत्र लिख दिया था। उसी को देखकर जोधाजी ने भी उसके वशज को एक नवीन ताम्रपत्र लिख दिया।

यह नागना गाव खेड से १५ कोस ईशान कोण और जोधपुर से १६ कोस नैर्ऋत्य कोण मे है।

नगर (मल्लानी प्रात के एक गाव) से मिले महारावल जगमाल के वि० स० १६८६ (ई० सन् १६३०) के लेख मे लिखा है "सूरिजवशी कनौजिया राठोड सीहा सोनग इए खे (खे) ड गोहिलॉ पासे खडग बले लीधी आस्थान पु धूहड नि (ने) देवी नागणेची अविचल राज दीधु ।"

१ इस घटना के समय राव धूहडजी ने एक पडिहार राजपूत को पकडकर जबरदस्ती अपना ढोली (नक्कारची) बना लिया था। उसके वशज देघडा कहाते हैं।

२ उस समय खेड राज्य की सीमा थोब तक थी। यह खेड से ६ कोस ईशान कोण मे है।

३ यह स्थान खेड से ११ कोस ईशान कोण मे और पचपदरे से ७ कोस ईशान कोण मे है।

४ कर्नल टॉड ने धूहडजी का मडोर के युद्ध मे मारा जाना लिखा है (ऐनाल्स ऐड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४३)। इसी प्रकार किसी-किसी ख्यात मे लिखा है कि यह चौहान आना के थोब पर आक्रमण करने के समय उससे लडकर वीरगति को प्राप्त हुए थे।

५ उक्त लेख का पढा गया अश—"ओं सम्वत् १३६६ आसथान सुत धूहड ."
(इडियन ऐंटिक्वेरी, भा० ४०, पृ० ३०१)।

६ ख्यातों मे लिखा है कि राव धूहडजी ने निम्नलिखित ३ गॉव दान दिए थे
१ बसी (पाली परगने का) आसिया-जाति के चारण को, २ मेघावस (पचपदरा परगने का) पुरोहित को, ३ समराखिया (पचपदरा परगने का) पुरोहित को।

इनके ७ पुत्र थे[1]—१ रायपाल, २ कनपाल, ३ केहड़, ४ पेथड़, ५ जोगा, ६ खेतपाल और ७ कनड़ ।

४. राव रायपालजी

यह राव धूहड़जी के बड़े लड़के थे और उनके रणभूमि में वीर-गति प्राप्त करने पर खेड़ की गद्दी पर बैठे । यह वीर होने के साथ ही दयालु और उदार स्वभाव के थे । इन्होंने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये पड़िहारों को हराकर मंडोर पर अधिकार कर लिया । परन्तु कुछ समय बाद ही वह नगर फिर पड़िहारों के हाथ में चला गया ।

इसके बाद राव रायपालजी ने बाहड़मेर की तरफ के पवारों को परास्त कर उनके अधिकृत प्रदेश[2] को अपने राज्य में मिला लिया । इससे महेवे का सारा प्रान्त इनके शासन में आ गया । यही प्रान्त आजकल मालानी के नाम से प्रसिद्ध है ।

ख्यातों में लिखा है कि जिस समय खींची जींदराव और राठोड़ पाबू के बीच युद्ध हुआ था उस समय पाबू[3] की मृत्यु भाटी फरजा के हाथ से हुई थी । इसलिये रायपालजी ने उसे मार कर उसके ८४ गावों पर भी अधिकार कर लिया । उनमें यह भी लिखा है कि इन्होंने जैसलमेर के (बुध शाखा के) भाटी (यादव) मांगा[4] के पुत्र चन्दे को बहुतसा द्रव्य देकर, जबरदस्ती, अपना पोलपात (राजद्वार पर दान लेने वाला) बना लिया था ।

एक बार वर्षा न होने से जब रावजी के राज्य में अकाल पड़ा तब इन्होंने राजकीय भण्डार से अन्न बाँट कर प्रजा की सहायता की, इसीसे लोग इन्हें 'महिरेलण' (इन्द्र) के नाम से पुकारने लगे ।

---

१ कर्नल टॉड ने इनके पुत्रों के ७ नाम इस प्रकार लिखे हैं—

१ रायपाल, २ कीरतपाल, ३ बेहड़, ४ पीथल ५ जुगेल ६ जालू और ७ बेगड़ (ऐनाल्स एंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान भा० २, पृ० ९४३) । इसीप्रकार कहीं कहीं इनके पुत्रों के कुछ अन्य नाम भी मिलते हैं ।

२ ख्यातों के अनुसार उस समय उसमें ५६० गाँव थे ।

३ यह रायपालजी का चचेरा भाई था ।

४ यह माँगा की चारण जाति की स्त्री के गर्भ से पैदा हुआ था । इसके वंशज रोहड़िया बारहठ कहलाते हैं ।



४ राव रायपालजी

वि० स० १३६६ और १३७० (ई० स० १३०९ और १३१३) के बीच ?

इनके १४ पुत्र थे.-१ कनपाल, २ सूडा, ३ केलण, ४ लाखणसी, ५ थांथी, ६ डागी, ७ रादा, ८ जूंझण, ९ राजा, १० हथूडिया (हसत), ११ राणा, १२ मूहणा[2], १३ वूला और १४ वीकम।

५. राव कनपालजी

यह राव रायपालजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए। उस समय महेवे का सारा प्रान्त इनके अधिकार में होने से इनके राज्य[3] की और जैसलमेर राज्य की सीमाऐं मिली हुई थीं। इसीसे बहुधा जैसलमेर वाले इनके राज्य में घुसकर लूट-खसोट किया करते थे। परन्तु इनकी आज्ञा से इनके बडे पुत्र भीम ने, उन्हे दण्ड देकर, काक नदी को खेड और जैसलमेर राज्य के बीच की सीमा नियत कर दिया[4]। यद्यपि इससे एक बार तो जैसलमेर वाले शान्त हो गए, तथापि कुछ काल बाद मुसलमानो की मदद मिल जाने से वे फिर उपद्रव करने लगे। यह देख भीम ने फिर दुवारा उन पर चढाई की। परन्तु इस बार के युद्ध में भीम के मारे जाने से भाटी और भी उच्छृखल हो उठे और वे खेड राज्य के भीतरी प्रान्तो तक में घुसकर लूट मार करने लगे। उनके इस प्रकार बढते हुए उपद्रव को देख राव कनपालजी को स्वय उन पर चढाई करनी पडी। परन्तु मार्ग में अचानक भाटियों और मुसलमानो की सम्मिलित सेना से घिर जाने के कारण यह, वीरता से शत्रु का सामना कर, मारे गए।

इनके ३ पुत्र थे:—१ भीम, २ जालणसी, और ३ विजपाल।

१. इन १४ पुत्रों में कहीं जूँझण और राणा के नाम लिखे मिलते हैं तो कहीं उनके स्थान पर छाजड और मोपा के नाम पाए जाते हैं।

२. मुहणोत ओसवाल (वैश्य) भी इसी मूहणा की सन्तान हैं।

३. ख्यातों के अनुसार उस समय इस राज्य मे ६८४ गाँव थे।

४. इस विषय का यह सोरठा प्रसिद्ध है.

> आधी धरती भीम, आधी लोदरवै धणी।
> काक नदी छै सीम, राठोडॉ नै भाटियॉ॥

(लोदरवा जैसलमेर के भाटियों की पहली राजधानी थी।)

६. राव जालणसीजी

यह राव कनपालजी के द्वितीय पुत्र थे और अपने बड़े भाई भीम के, पिता के जीतेजी निस्सन्तान, मारे जाने के कारण खेड़ के स्वामी हुए।

एक साधारण घटना के कारण इनके और उमरकोट के सोढ़ों के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। परन्तु युद्ध होने पर सोढे हार गए और उन्होंने नियत दण्ड देने का वादा कर इनसे सुलह करली।

इसके बाद यह सिंध और थट्टे की तरफ के यवन-शासित प्रदेशों को लूटते हुए मुलतान की तरफ पहुँचे। इनके पिता जिस युद्ध में मारे गए थे, उसमें भाटियों की तरफ से मुलतान के शासक की सेना ने भी भाग लिया था। इसी वैर का बदला लेने के लिये इन्होंने वहाँ वालो को हरा कर उनसे दण्ड वसूल किया।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि जिस समय इन्होंने अपने पिता के वैर का बदला लेने के लिये भाटियो पर चढाई की, उस समय भीनमाल के सोलङ्कियों को भी अपना साथ देने के लिये कहलाया था। परन्तु उन्होंने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। यह देख उस समय तो यह चुप हो रहे, परन्तु अवकाश मिलते ही इन्होंने भीनमाल पर चढाई करदी। सोलङ्की घबरा गए और उन्हें, अपनी असमर्थता के कारण, इनसे माफ़ी माँगनी पडी।

ख्यातो में यह भी लिखा है कि इनके चचा को सराई जाति के हाजी मलिक ने मारा था। इसलिये इन्होंने उसे मार इसका बदला लियाँ।

१ राव जालणसीजी ने चाँदणी गाँव के एक वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, टहनी आदि तोड़ने की मनाई कर रक्खी थी। परन्तु सोढों (पवारों की एक शाखा) ने जान बूझ कर उसका उल्लंघन कर डाला। इसीसे यह झगड़ा हुआ था।

२ रावजी ने इस युद्ध में सोढा राजपूतों के मुखिया का साफा छीन लिया था। उसी दिन से, अपनी इस विजय की यादगार में, राठोड़ साफा बाँधने लगे।

३ इस अवसर पर सोढ़ा दुर्जनसाल ने कुछ घोड़े भेट करने का वादा किया था। परन्तु राव जालणसीजी की मृत्यु समय तक भी वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका। इसीसे अपने स्वर्गवास के समय रावजी ने राजकुमार को इस भेट के वसूल करने की, खास तौर से, ताकीद कर दी थी।

४ किसी किसी ख्यात में इनका पालनपुर पहुँच हाजी मलिक को मारना लिखा है।



५. राव कनपालजी

वि० स० १३७० और १३८० (ई० स० १३१३ और १३२३) के बीच ।

इनके इस प्रकार बढ़ते हुए प्रताप को देख जब भाटियो और मुसलमानों की सम्मिलित सेना ने इन पर चढ़ाई की, तब उसी का मुकाबला करते हुए यह युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए[1]।

इनके ३ पुत्र थे:—१ छाडा, २ भाकरसी और ३ डूंगरसी।

७. राव छाडाजी

यह राव जालणसीजी के बड़े पुत्र थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए[2]। कुछ दिन बाद ही इन्होने उमरकोट के सोढो पर चढाई कर उन से दण्ड में घोड़े लिए[3] और जैसलमेर के भाटियो को कहला भेजा कि यदि वे लोग किले के बाहर नगर बसावेगे तो उन्हे कर (खिराज) देना होगा। परन्तु वहा के भाटी नरेश ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। यह देख छाडाजी ने जैसलमेर पर चढाई की। यद्यपि एकवार तो भाटियो ने भी इनका बड़ी वीरता से सामना किया, तथापि अन्त में हार कर उन्हे अपने वंश की एक कन्या रावजी को व्याहनी पडी। इस प्रकार भाटियो से सुलह हो जाने के बाद रावजी ने पाली, सोजत, भीनमाल और जालोर पर चढाई कर उन प्रदेशो को लूटा। परन्तु जिस समय यह इस युद्ध यात्रा से लौटते हुए जालोर प्रान्त के रामा नामक गाव मे पहुँचे, उस समय सोनगरों[4] और देवडा[5] चौहानो ने मिलकर इन

१ यह घटना वि० स० १३८५ (ई० स० १३२८) की है।

२ ख्यातों मे लिखा है कि मुलतान के यवन सेनापति की चढाई के कारण छाडाजी को कुछ दिन के लिये महेवा छोडना पडा था। परन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाने से इन्होंने उस पर फिर अधिकार कर लिया।

३ अपने पिता राव जालणसीजी की अन्तिम आज्ञा के अनुसार ही इन्होंने सोढा दुर्जनसाल पर चढ़ाई कर उसे अपने पहले किए वादे से चौगुने घोड़े देने को बाध्य किया था।

४ सम्भवतं उस समय सोनगरों का मुखिया वनवीरदेव या उसका पुत्र रणवीरदेव होगा (भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १, पृ० ३१३)। ख्यातों मे राव छाडाजी का सोनगरों के मुखिया सामतसिंह के हाथ से मारा जाना लिखा है। परन्तु जालोर के सोनगरा नरेश सामतसिंह के लेख वि० स० १३३६ से १३५६ (ई० स० १२८२ से १३०२) तक के मिले हैं। इसलिये वह तो इनका समकालीन हो ही नही सकता। परन्तु यदि ख्यातों में का यह नाम ठीक हो तो मानना होगा कि यह कोई दूसरा ही सामन्तसिंह था।

५ ये सिरोही की तरफ के थे।

पर अचानक हमला कर दिया। इसी हमले में यह शत्रुओं का मुकाबला करते हुए स्वर्ग को सिधारे। यह घटना वि० स० १४०१ (ई० स० १३४४) की है।

इनके ७ पुत्र थे। १ तीडा, २ खोखर, ३ वानर, ४ सीहमल, ५ रुद्रपाल, ६ खीमसी और ७ कानडदेव।

८. राव तीडाजी

यह राव छाडाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद महेवे की गद्दी पर बैठे। इन्होंने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये सोनगरा चौहानों पर चढ़ाई कर उन्हे हराया और भीनमाल पर अधिकार कर लिया।

कुछ दिन बाद इन्होंने देवडों, (लोद्रवा के) भाटियों, बालेचा चौहानों और सोलंकियो पर चढाइया कर उनसे भी दण्ड के रूप में रुपये वसूल किए।

सिवाने के शासक चौहान सातल और सोम तीडाजी के भानजे थे। इसलिये जिस समय मुसलमानो ने चढाई कर उनकी राजधानी को घेर लिया, उस समय रावजी भी अपने दलबल के साथ अपने भानजो की मदद को जा पहुँचे और वहा पर मुसलमानो से लड़ते हुए वीर-गति को प्राप्त हुए।

इनके ३ पुत्र थे। १ कान्हडदेव[3], २ त्रिभुवनसी और ३ सलखा।

---

१. ख्यातों में लिखा है कि उक्त गाँव में जहाँ पर इनका दाह हुआ था, वहाँ पर एक चबूतरा भी बनाया गया था।

२ ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० स० १४१४ (ई० स० १३५७) में हुई थी।

३ (९) राव कान्हडदेवजी—यह राव तीडाजी के बड़े पुत्र होने के कारण उनके बाद महेवे के राव हुए। सिवाने से लौटती हुई मुसलमानी सेना ने इनके राज्य पर भी हमला करदिया। यद्यपि मुख्य-मुख्य राठोड वीरों के पहले ही राव तीडाजी के साथ सिवाने के युद्ध मे हताहत हो जाने के कारण उस समय इनके पास सैनिकों की सख्या बहुत ही कम थी, तथापि इन्होंने बड़ी वीरता से शत्रुदल का सामना किया। परन्तु अन्त मे अपनी सख्याधिकता के कारण महेवे पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया।

कुछ समय बाद जब कान्हडदेवजी के पास फिर धन जन का सग्रह हो गया, तब इन्होंने मुसलमानों को निकाल कर खेड पर कब्जा कर लिया और अपने अन्त समय तक यह वहाँ पर शासन करते रहे।



६. राव जालणसीजी

वि० सं० १३८०-१३८५ (ई० स० १३२३-१३२८) के बीच।

९. राव सलखाजी

यह राव तीडाजी के छोटे पुत्र थे। जिस समय इनके बडे भाई कान्हड़देवजी गद्दी पर बैठे उस समय उन्होने इन्हे एक गाव जागीर में दिया था। यह गाव सलखाजी की जागीर में रहने के कारण 'सलखा-वासनी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इसके बाद जब कान्हडदेवजी के समय महेवे पर मुसलमानो का अधिकार हो गया, तब मौका पाकर इन्होने महेवे का कुछ भाग उन (मुसलमानो) से छीन लिया[1] और मिरडकोट मे रहकर अपने अधीनस्थ प्रदेश का शासन करने लगे। इन्होने चौहानो को परास्त कर भीनमाल को भी लूटा था। इनके इस प्रकार बढते हुए प्रताप को देखकर मुसलमानो ने इन पर अचानक चढाई कर दी। इसी मे राव सलखाजी मारे गए[2]।

इनके ४ पुत्र थे। १ मल्लिनाथजी[3], २ जैतमालजी, ३ वीरमजी और ४ शोभितजी।

(१०) **राव त्रिभुवनसीजी** यह राव कान्हडदेवजी के छोटे भाई थे और उनकी मृत्यु के बाद खेड की गद्दी पर बैठे। परन्तु शीघ्र ही इनके छोटे भ्राता सलखाजी के पुत्र मल्लिनाथजी ने, मुसलमानों की सहायता प्राप्त कर, इन पर चढाई कर दी। युद्ध मे घायल हो जाने के कारण त्रिभुवनसीजी हार गए और कुछ ही दिन बाद इनकी मृत्यु हो गई।

ख्यातों मे लिखा है कि मल्लिनाथजी ने अपने बन्धु पद्मसी को आधे राज्य का प्रलोभन देकर उसके द्वारा त्रिभुवनसी के घावों मे नीम के पत्तों के साथ विष का प्रयोग करवा दिया था। इससे शीघ्र ही इनकी मृत्यु हो गई। परन्तु कार्य हो जाने पर मल्लिनाथजी ने अपनी प्रतिज्ञा तोड दी और उसे केवल दो गॉव देकर ही टाल दिया। त्रिभुवनसीजी के तीन पुत्र थे।

किसी किसी ख्यात मे यह भी लिखा है कि राव तीडाजी के बाद पहले त्रिभुवनसीजी और उनके बाद कान्हडदेवजी गद्दी पर बैठे थे, तथा मल्लिनाथजी ने, जालोर के मुसलमान शासकों की सहायता से, इन्ही कान्हडदेवजी को राज्यच्युत किया था। परन्तु यह क्रम ठीक प्रतीत नहीं होता।

१. कुछ ख्यातों मे इनका वि० स० १४२२ (ई० स० १३६५) मे, मडोर के पडिहारों की सहायता मे, मुसलमानों को हरा कर महेवे पर अधिकार करना लिखा है।

२ किसी किसी ख्यात मे इस घटना का समय वि० स० १४३१ (ई० स० १३७४) दिया है।

३ (११) **रावल मल्लिनाथजी** यह सलखाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और पिता की मृत्यु के बाद अपने तीनों छोटे भाइयों को साथ लेकर अपने चचा राव कान्हडदेवजी के पास जा रहे। थोडे ही दिनों मे इनकी कार्य कुशलता से प्रसन्न होकर उन्होंने राज्य का सारा प्रबन्ध इन्हें सौंप दिया। परन्तु कुछ दिन बाद इन्होंने महेवे पर अधिकार कर लेने का विचार किया और इसके लिये मुसलमानों की सहायता प्राप्त करना आवश्यक समझा, यह उसकी तलाश

१०. राव वीरमजी

यह सलखाजी के पुत्र और रावल मल्लिनाथजी के छोटे भाई थे। यद्यपि मल्लिनाथजी

मे चल दिए। इसी समय इनके बड़े चचा कान्हडदेवजी का स्वर्गवास हो गया और छोटे चचा त्रिभुवनसीजी महेवे की गद्दी पर बैठे। जैसे ही इस घटना की सूचना मल्लिनाथजी को मिली, वैसे ही यह यवन-सेना के साथ वहा आ पहुँचे और त्रिभुवनसीजी को युद्ध में आहत कर खेड के स्वामी बन बैठे।

रावल मल्लिनाथजी एक वीर पुरुष थे। इससे जब इन्होंने मडोर, मेवाड, आबू और सिंध के बीच लूट मारकर मुसलमानों को तग करना शुरू किया, तब उनकी एक बडी सेना ने इनपर चढाई की। उस सेना मे तेरह दल थे। परन्तु मल्लिनाथजी ने इस बहादुरी से उसका सामना किया कि यवन-सेना को मैदान छोड कर भाग जाना पडा। इस विषय का यह पद मारवाड मे अबतक प्रचलित है:-

'तेरह तुगा भागिया माले सलखाणी'

अर्थात्-सलखाजी के पुत्र मल्लिनाथजी ने सेना के तेरह दलो को हरा दिया। ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० स० १४३५ (ई० स० १३७८) मे हुई थी। इस पराजय का बदला लेने के लिये मालवे के सूबेदार ने स्वय इन पर चढाई की। परन्तु मल्लिनाथजी की वीरता और युद्ध-कौशल के सामने वह भी कृतकार्य न हो सका।

मल्लिनाथजी ने सालोडी गाव अपने भतीजे (वीरमजी के पुत्र) चूडाजी को जागीर मे दिया था और उनके नागोर पर चढाई करने के समय उनकी सहायता भी की थी।

रावलजी ने सिवाना मुसलमानों से छीन कर अपने छोटे भाई जैतमाल को, खेड वीरमजी को (किसी किसी ख्यात मे भिरडकोट लिखा है) और ओसिया शोभितजी को जागीर मे दी थी। वास्तव मे ओसिया पर उस समय पॅवारो का अधिकार था और मल्लिनाथजी की अनुमति से शोभितजी ने उन्हे हरा कर वहा पर अधिकार कर लिया था।

रावल मल्लिनाथजी का स्वर्गवास वि० स० १४५६ (ई० स० १३९९) मे हुआ। मारवाड के लोग इनको सिद्ध पुरुष मानते हैं। लूनी नदी के तट पर बसे तिलवाडा नामक गाव मे इनका एक मन्दिर बना है और वहा पर चैत्र मास मे एक मेला लगा करता है। इसमे घोडे, बैल, ऊँट और गायों की लेवा-बेची होती है। इस अवसर पर बाहर के भी बहुत से खरीददार आया करते हैं।

इनके ५ पुत्र थे। १ जगमाल, २ कूपा, ३ जगपाल, ४ मेहा और ५ अडवाल।

(१२) रावल जगमालजी-यह मल्लिनाथजी के बडे लडके थे और उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने मल्लिनाथजी की जीवित अवस्था मे ही गुजरात की मुसलमानी सेना को हरा कर उसके अधिनायक की कन्या गींदोली को छीन लिया था।

किसी किसी ख्यात मे लिखा है कि एक बार गुजरात के यवन-शासक का पुत्र, सावन मे झूला झूलने को नगर से बाहर इकट्ठी हुई, महेवे की कुछ लडकियों को ले भागा था। इसका बदला लेने के लिये ही जगमालजी व्यापारी का वेष बना कर उसके राज्य मे पहुँचे और ईद के दिन मौका पाकर उन



७. राव छाडाजी

वि० सं० १३८५ १४०१ (ई० स० १३२८-१३४४)

ने इन्हे खेड़[1] की जागीर दी थी, तथापि जोहिया दला की रक्षा करने के कारण इनके और मल्लिनाथजी के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ।[2] इससे इन्हे खेड़ छोड़ देना पड़ा।

कन्याओं को मय बादशाह की लड़की के ले आए। इसी से वहा के शासक ने महेवे पर चढाई की। परन्तु युद्ध में जगमालजी की मार से घबरा कर उसे अपने शिविर मे घुस जाना पड़ा। उस समय का यह दोहा मारवाड़ में अब तक प्रसिद्ध है —

"पग पग नेजा पाड़िया, पग पग पाड़ी ढाल।
बीबी पूछे खानने, जग केता जगमाल॥"

अर्थात्—जगमाल के कदम-कदम पर शत्रुओं के नेजे तोड़ कर गिराने और कदम कदम पर उनकी ढालें गिराने का हाल सुन कर बीबी खान से पूछती है कि यह तो बताओ, आखिर, दुनिया मे कितने जगमाल हैं?

जगमालजी ने राज्याधिकार प्राप्त करने के पूर्व ही सिवाना हस्तगत कर लेने की इच्छा से अपने चचा जैतमालजी को मारडाला था। परन्तु सिवाने पर इनका अधिकार न हो सका।

रावल जगमालजी की मृत्यु के बाद इधर इनका राज्य तो इनके पुत्रों मे बट गया और उधर इनके चचा वीरमजी के पुत्र राव चूडाजी ने मंडोर पर अधिकार कर नया राज्य स्थापित किया। इस विषय की यह कहावत मारवाड़ मे अब तक चली आती है —

"माला रा मढ्ढे नै वीरम रा गढ्ढे -"

अर्थात्—मल्लिनाथजी के वशज मालानी की मढियों मे रहे और वीरमजी के वशज किले के मालिक (राजा) हुए।

जगमालजी के १० पुत्र थे। १ लूका, २ वैरीसाल, ३ अज, ४ रिड़मल, ५ ऊगा, ६ भारमल, ७ कान्हा, ८ दूदा, ९ माडलक और १० कुंभा।

१ किसी किसी ख्यात में खेड़ के स्थान पर भिरड़कोट का नाम लिखा है।

२. ख्यातों मे लिखा है कि लखवेरा गाव के कुछ जोहिया (यौधेय) राजपूत मुसलमानी धर्म ग्रहण कर गुजरात के यवन शासक की सेवा मे रहते थे। उनके मुखिया का नाम दला था। एक बार वह बहुतसा माल असबाब और एक बढिया घोड़ी लेकर अहमदाबाद से निकल भागा। परन्तु मार्ग मे जिस समय वह महेवे के पास पहुँचा, उस समय जगमालजी ने वह घोड़ी लेने की इच्छा प्रकट की। इस पर दला भाग कर वीरमजी के पास चला आया। इन्होंने भी शरणागत की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझ उसकी हर तरह से रक्षा की। इस उपकार से प्रसन्न होकर उसने वह घोड़ी वीरमजी को भेट कर दी। जब इसकी सूचना जगमालजी को मिली, तब उन्होंने इनसे वह घोड़ी मागी। परन्तु इन्होंने इस प्रकार भेट में मिली वस्तु को देने से इनकार कर दिया। यही इनके और जगमालजी के बीच मनोमालिन्य का कारण हुआ।

वहा से पहले तो यह सेतरावा[1] की तरफ गए और फिर चूँटीसरा[2] में जाकर कुछ दिन रहे। परन्तु वहा पर भी घटनावश एक-काफिले को लूट लेने के कारण शाही फौज ने इन पर चढ़ाई की। इस पर यह जागलू मे साखला ऊदा[3] के पास चले गए। इसकी सूचना मिलने पर जब बादशाही सेना ने वहा भी इनका पीछा किया, तब यह जोहियावाटी में जोहियो के पास जा रहे। जोहियो के मुखिया दला ने भी इनकी पहले दी हुई सहायता का स्मरण कर इनके सत्कार का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर दिया। परन्तु कुछ ही दिनो में इनके और जोहियो के बीच झगडा हो गया। इसी में वि० स० १४४० (ई० स० १३८३) में यह लखवेरा गाव के पास वीर-गति को प्राप्त हुए। वीरमजी के ५ पुत्र थे।

१ देवराज[6], २ चूंडा, ३ जैसिंह, ४ विजा और ५ गोगादेव[7]।

१ यह गाव वीरमजी ने उसी समय बसाया था। किसी किसी ख्यात में वीरमजी का पहले बरिया नामक पर्वत के पास वीरमपुर बसाकर रहना और वहा से सेतरावे की तरफ जाना भी लिखा है।

२ यह गाव नागोर परगने में है। किसी-किसी ख्यात में इस गाव का नाम चूडासर भी लिखा मिलता है। परन्तु इस समय नागोर प्रान्त मे इस नाम का कोई गाव नहीं है।

३ वीरमजी ने ऊदा को भी मल्लिनाथजी के विरुद्ध शरण दी थी। इसी उपकार का ध्यान कर उसने इन्हें अपने यहा रख लिया।

४ कुछ ख्यातों मे लिखा है कि जिस समय यह सिन्ध में जोहियों के पास पहुँचे उस समय उन्होंने इनके खर्च के लिये सहवान का प्रान्त दे दिया था।

५ ढाढी जाति के बहादर नामक कवि ने 'वीरमायण' नाम का भाषा का एक काव्य लिखा है। इसमे रावल मल्लिनाथजी का और उनके पुत्र जगमालजी का हाल लिख कर वीरमजी का इतिहास दिया है। और अन्त में उनके पुत्र गोगादेव का अपने पिता के वैर का प्रतिशोध कर युद्ध में वीर गति प्राप्त करना वर्णित है।

६ **देवराज**–यह वीरमजी का ज्येष्ठ पुत्र था। पहले लिख चुके हैं कि वीरमजी अपने बडे भाई मल्लिनाथजी से झगडा हो जाने के कारण, सेतरावा नामक गाव बसाकर कुछ दिन वहा रहे थे। परन्तु उसी झगडे के कारण जब वह वहा से नागोर प्रान्त की तरफ चले, तब सेतरावा और उसके आस पास के २४ गाव अपने पुत्र देवराज को देकर उसकी रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर गए थे। इसके बाद वीरमजी का पीछा करनेवाली शाही सेना ने सेतरावे पर भी चढाई की। परन्तु देवराज के रक्षकों ने बडी वीरता से उसका सामना किया।

७ **गोगादेव**–यह वीरमजी का छोटा पुत्र था। इसका जन्म वि० स० १४३५ (ई० स० १३७८) मे हुआ था और यह कुण्डल के शासक भाटी वैरिसाल का दौहित्र था। इसने, आसायच राजपूतों को हराकर, सेखाला और उसके आस पास के २७ गावों पर अधिकार कर लिया था।



૮. રાવ તીડાજી

वि० स० १४०१-१४१४ (ई० स० १३४४-१३५७)

एक बार अनावृष्टि के कारण महेवे की बहुतसी प्रजा को अपनी गायों आदि को लेकर मालवे की तरफ जाना पड़ा। इन्हीं में गोगादेव का कृपापात्र वानर राठोड़ तेजा भी था। अगले वर्ष वर्षा हो जाने पर जिस समय वह वापिस लौट रहा था, उस समय उसके और वासोलिया गाव के स्वामी मोयल माणकराव के बीच झगड़ा हो गया। तेजा ने गोगादेव के पास पहुँच उसकी शिकायत की। यह सुन गोगादेव ने स्वयं ही माणकराव पर चढाई कर दी। युद्ध होने पर माणकराव को हार कर भागना पड़ा।

कुछ दिन बाद ही गोगादेव ने, अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये, जोहियों पर चढाई की। पहली बार तो इसे बिना लड़े ही लौटना पड़ा। परन्तु दूसरी बार के आक्रमण के रात्रि में अचानक किए जाने और उस समय जोहियों के दूसरे मुखिया धीरदेव के पूगल के भाटी राणँगदेव की कन्या से विवाह करने को गए होने से जोहियादला मारा गया। वहा से लौट कर जिस समय यह (गोगादेव) लच्छूसर गाव के पास ठहरा हुआ था, उसी समय, दला के पुत्र के द्वारा उपर्युक्त घटना की सूचना पाकर, धीरदेव और उसका श्वशुर राणँगदेव दोनों अपने दलबल सहित वहा आ पहुँचे, और मौका देख उन्होंने पहले तो जगल में चरने को छोड़े हुए गोगादेव के घोड़ों को दूर भगा दिया और फिर वे एकाएक आगे बढ गोगादेव पर टूट पड़े। इस विषय का यह दोहा प्रसिद्ध है।—

भूका तिसिया थाकड़ा, राखी जे नेडाह।
ढलिया हाथ न आवसी, गोगादे घोडाह॥

यद्यपि इसने भी एक बार तो अपनी (रलतली नामक) तलवार सम्हाल कर जोहियों और भाटियों के सम्मिलित दल का बड़ी वीरता से सामना किया, तथापि कुछ देर बाद यह जाघों के कट जाने से पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसी समय राणगदेव उधर आ निकला। उसे देख गोगादेव से न रहा गया और इसने उस अवस्था में होने पर भी उसे युद्ध के लिये ललकारा। परन्तु वह गोगादेव के पराक्रम से भली भांति परिचित था। इसलिये दूर से ही दुर्वचन कहकर चला गया। इसके थोड़ी देर बाद धीरदेव भी किसी कार्यवश वहा आ पहुंचा और गोगादेव की ललकार को सुन वार करने के लिये इसकी तरफ झपटा। परन्तु अभी वह आगे बढा ही था कि गोगादेव ने उछल कर अपनी तलवार का एक हाथ उस पर जमा दिया। इससे धीरदेव के दो टुकड़े हो गए। इस प्रकार शत्रु से बदला लेकर गोगादेव भी रक्त निकल जाने से वहीं शान्त हो गया। इसने मरते समय कहा था कि जोहियों से तो मैंने अपना बदला आपही ले लिया है, परन्तु भाटियों से बदला लेना बाकी है। आशा है इस कार्य को भी मेरे वंश का कोई न कोई सुपुत्र अवश्य ही पूरा करेगा। यह घटना वि० स० १४५९ की जेठ सुदि ५ (ई० स० १४०२ की ७ मई) की है। (परन्तु ख्यातों में का यह सवत् श्रावणादि हो तो वि० स० १४६० की ज्येष्ठ सुदि ५ को ई० स० १४०३ की २६ मई होगी।)

इस युद्ध में गोगादेव की तरफ का साखला मेहराज का पुत्र आलणसी भी मारा गया था। इसलिये कुछ दिन बाद ही राणँगदेव ने मेहराज पर चढाई करदी। यह देख वह भाग कर राव चूडाजी के पास चला गया। चूडाजी ने उसका बड़ा आदर किया और निर्वाह के लिये जागीर देकर उसे अपने पास रख लिया।

११. राव चूंडाजी

यह राव वीरमदेवजी के द्वितीय पुत्र थे[1]। इनका जन्म वि० सं० १४३४ (ई० सन् १३७७) में हुआ था। इसलिये पिता की मृत्यु के समय इनकी अवस्था केवल ६ वर्ष की थी। इसके बाद ७ वर्ष तक तो यह अपनी माता की इच्छानुसार गुप्त रूप से कालाऊ में आल्हा चारण की देखभाल में रहे[3], और इसके बाद आल्हों ने इन्हें इनके चचा रावल मल्लिनाथजी के पास पहुँचा दिया। वहाँ पर कुछ ही दिनों में इन्होंने अपनी कुशलता से रावलजी को इतना प्रसन्न कर लिया कि उन्होंने सालोडी गाँव इन्हें जागीर में दे दिया, और साथ ही इनकी अवस्था छोटी होने से

ख्यातों में लिखा है कि राव चूंडाजी को दी हुई जागीर की आय, उनकी जैसलमेर वाली पहली जागीर की आय से भी अधिक थी और उसका प्रधान गाँव मूंडेल था। जैसलमेर की ख्यातों में मेहराज को सुरजदे का स्वामी और जैसलमेर नरेश का सामन्त लिखा है। उनमें यह भी लिखा है कि उसका पुत्र जैसा जैसलमेर रावल के भतीजे तणुराव की तरफ से युद्ध कर भाटी रामादेव के हाथ से मारा गया था उसी वैर का प्रतिशोध करने को यह (मेहराज) राव चूंडाजी के पास जा कर रहा था।

१ पहले लिख आए हैं कि इनके पिता ने इनके बड़े भाई देवराजजी को सेतरावा नामक गाँव जागीर में दिया था।

२. यह मारवाड़ के शेरगढ़ परगने का गाँव है।

३ उस समय इनके छोटे भाई ननिहाल में थे। ख्यातों से ज्ञात होता है कि चूंडाजी बचपन से ही होनहार थे और इनकी रुचि भी अधिकतर राजसी खेलों में ही रहती थी।

४. ख्यातों से प्रकट होता है कि जिस समय चूंडाजी मंडोर के स्वामी हुए उस समय इसी आल्हा ने वहाँ पहुँच अपनी की हुई सेवा की याद दिलाने के लिये यह सोरठा पढ़कर सुनाया था।—

चूंडा, नावे चीत काचर कालाऊ तणा।
भूप भयौ भैभीत मंडोवर रै मालियै।

अर्थात्—हे चूंडाजी! इस समय तो आपको कालाऊ के काचरों की याद भी नहीं आती है क्योंकि इस समय आप मंडोर के इस ऊँचे महल में राजा होकर पत्थर की दीवार से बने बैठे हैं (किसी की तरफ देखते तक नहीं)। यह सुन चूंडाजी ने उसे अपने पास बुलवा लिया और दान-मान आदि से संतुष्ट कर घर जाने की आज्ञा दी।

५ ख्यातों में लिखा है कि चूंडाजी की चतुराई से प्रसन्न होकर जिस समय मल्लिनाथजी ने इन्हें सालोडी गाँव जागीर में दिया था उस समय इनसे कहा था कि वहाँ से पूर्व की तरफ का जितना भी प्रदेश हस्तगत करोगे वह सब तुम्हारे ही अधिकार में रहेगा।



६. राव सलखाजी

वि० स० १४१४-१४३१ (ई० स० १३५७-१३७४)

वहाँ के प्रबंध और इनकी निगरानी के लिये ईंदा (पड़िहार) शिखरा को नियुक्त करदिया। यह शिखरा बड़ा चतुर व्यक्ति था। इसलिये कुछ ही दिनों में उसने लूट-खसोट द्वारा बहुतसा माल जमाकर चारों तरफ अपना आतंक जमा लिया। यह देख धीरे-धीरे बहुत से योद्धा भी उसके पास इकट्ठे हो गए। जब इस बात की शिकायत रावलजी के पास पहुँची, तब उन्होंने स्वयं जाकर इसकी जाँच करने का विचार किया। परंतु उनके मंत्री ने, जो चूंडाजी से प्रेम रखता था, सब बातों की सूचना पहले से ही इनके पास भेजदी। इससे शिखरा सावधान हो गया, और उसने मल्लिनाथजी के आने के पहले ही अपने सैनिकों आदि को इधर-उधर भेज दिया। इसलिये मल्लिनाथजी को, स्वयं वहाँ जाने पर भी, इनके वैभव का ठीक-ठीक हाल न मालूम हो सका, और वह चूंडाजी द्वारा किए गए सत्कार से प्रसन्न होकर लौट आए। इसके कुछ दिन बाद ही चूंडाजी के सैनिकों ने एक अरब-व्यापारी के घोड़े लूट लिए। यद्यपि इससे इनका सैनिक बल बहुत बढ़ गया, तथापि इस घटना से मल्लिनाथजी अप्रसन्न हो गए।

जहाँ तक हो, वहाँ से पश्चिम की तरफ के प्रदेश को हस्तगत करने का उद्योग न करना। परन्तु (मल्लिनाथजी के पुत्र) जगमाल को यह बात अच्छी न लगी, और वह चूंडाजी से द्वेष रखने लगा। इसके बाद एक रोज जिस समय जगमाल और चूंडाजी दोनों भाई कुछ साथियों को लेकर शिकार को चले, उस समय मार्ग में इन्हें एक बनैला सुअर मिला, जो इनको देख शीघ्र ही एक तरफ को भाग चला। इस पर यद्यपि सब लोगों ने मिलकर उसका पीछा किया, तथापि खुद शिकार करने की इच्छा से जगमाल ने साथवालों को उस पर प्रहार करने से रोक दिया। परन्तु जब सायंकाल हो जाने पर भी जगमाल उसे अपनी मार में न ला सका, तब चूंडाजी ने आगे बढ़ उसे मार डाला। जगमाल ने इसे अपना अपमान समझा, और वह इनसे अधिक रुष्ट हो गया। इस गृह-कलह को मिटाने के लिये ही मल्लिनाथजी ने चूंडाजी को सालोड़ी में जाकर रहने की आज्ञा दी थी।

१ ख्यातों से मालूम होता है कि जब ही मंडोर के शाही अधिकारी को घोड़ों के लूट जाने की सूचना मिली, वैसे ही उसने मल्लिनाथजी को उनके लौटा देने का प्रबंध करने के लिये कहलाया। परन्तु मल्लिनाथजी की आज्ञा पहुँचने पर चूंडाजी ने जवाब में लिख भेजा कि वे घोड़े तो मैं अपने राजपूत सैनिकों में बाँट चुका हूँ, इसलिये वापस नहीं ले सकता। हाँ, मेरी सवारी का घोड़ा अवश्य मेरे पास है, आप चाहें तो उसे मँगवा सकते हैं। यह उत्तर पाकर मल्लिनाथजी इनसे अप्रसन्न हो गए। परन्तु उन्होंने फिर भी इनसे कुछ न कहा, और शाही अधिकारी को कुछ दे-दिलाकर झगड़े को दबा दिया।

उस समय मंडोर पर मॉडू के सूबेदार का अधिकार था, और वहॉ पर उसकी तरफ से एक अधिकारी रहा करता था। एक वार इसी अधिकारी ने आस-पास मे रहनेवाले ईंदा (पडिहार) राजपूतो से घोडो के लिये घास भेजने को कहलाया। इस आज्ञा से ईंदो ने अपना अपमान समझा, और इसलिये आपस मे सलाहकर सौ गाडियॉ ऐसी तैयार की, जिनमें ऊपर से तो घास भरी हुई मालूम होती थी, परतु भीतर प्रत्येक गाडी मे शस्त्रो से सजे चार-चार योद्धा छिपे थे। इसी प्रकार गाडीवान के स्थान पर भी एक-एक योद्धा बैठा था, और उसके शस्त्र घास के भीतर छिपे थे। जब ये गाडियॉ किले मे पहुची[2], तब इनमे के पॉच सौ आदमियो ने निकलकर वहॉ पर उपस्थित यवन-सैनिको को मार डाला। इससे किले पर ईंदा पडिहारो का अधिकार हो गया। यह घटना वि० स० १४५१ (ई० सन् १३९४) की है। इस कार्य मे ईंदा शिखरा की सलाह से चूडाजी के योद्धाओ ने भी भाग लिया था। इस प्रकार अपने खोए हुए किले के एक वार फिर अपने अधिकार मे आ जाने पर ईंदो ने सोचा कि, यद्यपि इस समय तो हमने इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया है, तथापि जिस समय भागे हुए मुसलमान नागोर और अजमेर से सहायता प्राप्तकर किले पर प्रत्याक्रमण करेंगे, उस समय इसकी रक्षा करना अवश्य ही कठिन हो जायगा। इसलिये यदि चूडाजी मंडोर का अधिकार मिल जाने पर हमारे ८४[1] गॉवों मे हस्तक्षेप न करने की प्रतिज्ञा करले, तो यह किला उन्हे सौंप दिया जाय। इस प्रकार यवनो से इस दुर्ग की रक्षा भी हो जायगी, और इस पर अधिकार करते समय दी हुई चूडाजी की सहायता का बदला भी उतर जायगा। इसके बाद शीघ्र ही सब बातें

---

१ उस समय मंडोर के राज्य मे ३४२ गॉव थे। इनमें से ८४ पर ईंदा पडिहारों का, ८४ पर वालेसों का, ८४ पर आसायचों का, ५५ पर मागलियों का और ३५ पर कोटेचों का अधिकार था।

२ ख्यातों से ज्ञात होता है कि जिस समय ये गाडियॉ किले पर पहुँचीं, उस समय एक मुसलमान सैनिक ने यह मालूम करने के लिय कि इन गाडियों मे अच्छी तरह से घास भरी गई है या नहीं, अपना बरछा एक गाडी मे भरी घास मे घुसेड दिया। यद्यपि उस बरछे की नोक घास के अदर छिपे एक सैनिक की जॉघ मे घुस गई, तथापि उसने बाहर खीचे जाने के पहले ही उसे कपडे से पोंछ लिया। इससे उसमे लगे रुधिर का उस मुसलमान सैनिक को पता न चला। उलटा बरछे के बाहर खीचे जाने मे रुकावट पड़ने से उसने समझा कि गाडी मे घास खूब दबाकर भरी गई है।



RAO VIRAM

१० राव वीरमजी

वि० स० १४३१-१४४० (ई० स० १३७४-१३८३)

तय कर ईंदो ने अपने मुखिया राना उगमसी की पोती (गागदेव की पुत्री) चूडाजी को व्याह दी, और उसके दहेज मे मडोर का किला भी इन्हे दे दिया। इस आशय का यह सोरठा मारवाड मे अब तक प्रसिद्ध है—

ईंदारो उपकार, कमधज मत भूलो कदे।
चूडो चॅवरी चाढ, दी मडोवर दायजे॥

इसके बाद ही राव चूडाजी ने चावडा[3] नामक गॉव मे अपनी इष्टदेवी चामुडा का मदिर बनवाया। यह अब तक विद्यमान है। चूडाजी के मडोर प्राप्त करने की सूचना पाकर रावल मल्लिनाथजी स्वय इनसे मिलने को मडोर आए। चूडाजी ने भी इनका यथायोग्य सत्कार किया। उनके कुछ दिन रहकर लौट जाने पर यह (चूडाजी) बडी तत्परता से अपने अधिकृत किले की रक्षा का प्रबध करने लगे।

उन दिनो दिल्ली पर तुगलको का अधिकार था। परतु उनकी शक्ति के क्षीण हो जाने से चूडाजी को अच्छा मौका मिल गया। कुछ दिनो मे मडोर के प्रबध से छुट्टी पाकर इन्होने आस-पास के मुसलमानो को भी तग करना शुरू किया।

---

१ किसी-किसी ख्यात मे इसका नाम राय धवल लिखा है।

२ कर्नल टॉड ने चूडाजी का पडिहार नरेश को मारकर मडोर पर अधिकार करना लिखा है (ऐनाल्स ऐड ऐटिकिटीज ऑफ् राजस्थान, क्रुक सपादित, भा० १, पृ० १२०, और भा० २, पृ० ९४४), परन्तु यह ठीक प्रतीत नही होता।

३ यह गॉव जोधपुर से ७ कोस वायुकोण मे है।

४. इस मदिर की बगल मे एक पहाडी गुफा है। उसका आधा भाग मदिर मे आ गया है, और आधा खुला है। उसी खुले हुए भाग की एक तरफ की चट्टान पर एक लेख खुदा है, जिसमे केवल निम्नलिखित पक्तियॉ ही पढी जाती है

सवत् १४५१ वर्षे मार्गसिर सुदि ३ त्रि(तृ) ति(ती)या वृहस्पतिवारे उत(त्त)राषाढा नक्षत्रे मध्ये मि(मी)न लग्ने मकरस्थे चन्द्र (न्द्रे) उच(च्च)नक्षत्रे (आगे एक कुडली बनी है। उसके पहले घर मे १२ का अक और 'वृ' लिखा है, दूसरे और तीसरे घरो मे क्रमश ८ और २ के अक खुदे है, और कुडली के बीच मे 'श्री' लिखा है)।

इससे ज्ञात होता है कि चूडाजी ने इस तिथि के पूर्व ही मडोर पर अधिकार कर लिया था। परन्तु किसी-किसी ख्यात मे इस घटना का समय वि० स० १४५२ भी लिखा है। फिर भी उपर्युक्त तिथि ही अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती है।

उपर्युक्त लेख मे की वि० स० १४५१ की मगसिर सुदी ३ को ई० सन् १३९४ की २६ नवबर थी।

इसकी सूचना मिलने पर वि० सं० १४५३ (ई० सन् १३९६=हि० सन् ७९८) में गुजरात के सूबेदार जफरखाँ ने आकर मंडोर के किले को घेर लिया। परन्तु जब एक वर्ष और कुछ महीने घेरे रहने पर भी किले के हाथ आने की आशा नहीं दिखाई दी, तब वह चूंडाजी से आगे मुसलमानों को तंग न करने की नाम-मात्र की प्रतिज्ञा करवाकर ही लौट गया।[1]

उससे निपटकर चूंडाजी ने कोटेचा राठोड़ भान को मार डाला, और उसके अधिकृत प्रदेश[2] को अपने राज्य में मिला लिया।

इस प्रकार इधर तो धीरे-धीरे राव चूंडाजी अपना बल बढ़ा रहे थे, और उधर वि० सं० १४५५ (ई० सन् १३९८=हि० सन् ८०१) के तैमूर के हमले के कारण दिल्ली की बादशाहत कमजोर हो रही थी। इससे वि० सं० १४५६ (ई० सन् १३९९) में इन्होंने खोखर[3] को हराकर नागोर पर भी अधिकार कर लिया।

---

१ 'मिराते-सिकंदरी' में भी इस घटना का उल्लेख मिलता है। परन्तु उसमें भूल से मंडोर के स्थान पर मॉडू लिख दिया गया है (देखो पृ० १३)। उस समय मॉडू पर हिन्दुओं का अधिकार न होकर मुसलमानों का ही अधिकार था।

'मिराते सिकंदरी' के लेखक ने जफरखाँ का जियारत (तीर्थ यात्रा) के लिये मॉडू से अजमेर जाना लिखा है (देखो पृ० १३)।

इससे भी उपर्युक्त अनुमान की ही पुष्टि होती है, क्योंकि अजमेर मंडोर से ही नजदीक पड़ता है।

२ भान का राज्य मंडोर से ५ कोस वायुकोण में केरू के पास था। उसके रहने की जगह आज भी 'भान का भाकर' (पर्वत) के नाम से प्रसिद्ध है। ख्यातों में लिखा है कि एक बार जब चूंडाजी शिकार से लौटते हुए उसके यहाँ पहुँचे, तब उसने अपने घोड़ों के लिये तयार किया हुआ हलुवा इनके सामने लाकर रख दिया। चूंडाजी ने इसमें अपना अपमान समझा और एक नाई को द्रव्य देकर हजामत बनवाते समय उसे मरवा डाला।

३. खोखर के विषय में बड़ा मतभेद चला आता है। किसी ख्यात में उस समय नागोर पर खोखर राठोड़ों का अधिकार होना लिखा है, और उसमें यह भी लिखा है कि वहाँ के उस समय के शासक की चूंडाजी की सौमा (या साली) ब्याही थी। किसी में उस समय वहाँ पर खोखर मुसलमानों का शासन होना प्रकट किया है। फिर किसी में वहाँ पर मॉडू के शासक की तरफ से खॉजादा आजम के हाकिम होने का उल्लेख है। परन्तु यह अंतिम बात संभव नहीं हो सकती, क्योंकि नागोर के खॉजादों का संबंध मॉडू के शासक से न होकर गुजरात के शासक मुजफ्फरशाह प्रथम से था, और पहले-पहल वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४०८) में मुजफ्फर का भाई शम्सखाँ (ददानी) नागोर का हाकिम बनाया गया था।



११ राव चूंडाजी

वि० सं० १४५१-१४८० (ई० सं० १३९४-१४२३)

इस कार्य में इन्हें इनके चचा रावल मल्लिनाथजी ने भी सहायता दी थी। इसके बाद इन्होंने नागोर के उत्तरी प्रदेश को विजयकर वहाँ पर अपने नाम पर चूंडासर[1] गाँव बसाया, और कुछ ही समय में शाही हाकिमों को मारकर खाटू, डीडवाना, साँभर और अजमेर[2] पर भी कब्जा करलिया। इसी तरह कुछ दिनों में नाडोल भी इनके अधिकार में आ गया[3]।

'तबकाते अकबरी' (पृ० ४४८) और 'मिरातेसिकंदरी' (पृ० १७-१८) में लिखा है— "जब तातारखां (महम्मदशाह) मर गया और गुजरात का शासन दुबारा जफ़रखाँ (आजम हुमायूँ मुजफ्फरशाह प्रथम) के हाथ में आया, तब उसने मलिक जलाल खोकर की जगह अपने छोटे भाई शम्सखा दंदानी को नागोर का हाकिम बनाकर भेजा।" उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र से चूंडाजी ने दुबारा नागोर छीना था। ख्यात-लेखकों ने इन दोनों घटनाओं को एक समझकर ही शायद यह गड़बड़ की हैं।

१ यह स्थान (बीकानेर के ईशानकोण में) गजनेर के पास है। यहीं पर इनका बनवाया चूँडासर तालाब भी है। इसके उत्तर की तरफ के टीले पर दो स्तंभ खड़े हैं। कहते हैं, चूँडाजी ने अपने घोड़े की लंबी छलांग की यादगार में ये पाषाण स्तंभ खड़े करवाए थे। इससे यह भी प्रकट होता है कि इन्होंने जांगलू के सांखलों, मोहिलों और भाटियों की कुछ भूमि पर भी अवश्य ही अधिकार कर लिया था। साथ ही इन्होंने जोहियों से भी अपने पिता का बदला अवश्य लिया होगा।

२. इन्होंने अजमेर वि० सं० १४६२ (ई० सन् १४०५) में लिया था। वहां के छतारी गांव में इस समय भी चूँडावत राठोड़ पुराने जागीरदार (भोमियों) के रूप में विद्यमान हैं।

३ (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४४)। 'तवारीख पालनपुर' में लिखा है कि राव चूँडा ने जालोर के मालिक वीसलदेव चौहान को अपनी कन्या के साथ विवाह करने के लिये मंडोर बुलवाया, और जब वह जालोर का किला बिहारी पठान मलिक खुर्रम को सौंपकर वहां गया, तब पहले से किए निश्चय के अनुसार चूँडा के पांचवें पुत्र पूजा ने उसे मार डाला। इसके बाद उन्होंने जालोर पर अधिकार करने का इरादा किया। परंतु मलिक खुर्रम ने वीसलदेव की रानी पोपाबाई को गद्दी पर बिठाकर उनका इरादा पूरा न होने दिया। फिर भी कुछ दिन बाद, लोगों के कहने से, पोपाबाई ने बिहारी पठानों को धोका देकर मरवा डालने का इरादा किया। जैसे ही इस बात का पता मलिक खुर्रम को लगा, वैसे ही उसने पोपा के महल को घेर लिया। परंतु अंत में पोपा के पक्ष वाले हार गए और पोपा किला खाली कर अपने दो पुत्रों के साथ सिरोही के पहाड़ों में चली गई। वहां से जब वह ईडर पहुँची, तब वहां के स्वामी राठोड़ राव रणमल्ल ने उसके पुत्रों को जोरामीरपुर गांव जागीर में दे दिया। पोपाबाई के चले जाने पर जालोर बिहारी पठानों के अधिकार में चला गया (खंड १, पृ० ४-६)। संभव है, जालोर पर की चढ़ाई के समय बिहारियों के कारण वहां पर तो इनका अधिकार न हो सका हो, परंतु नाडोल इनके हाथ लग गया हो।

वि० सं० १४६४ (ई० सन् १४०८=हि० सन् ८१०) में शम्सखाँ ने अपने भाई (गुजरात के शासक मुज़फ्फ़रशाह प्रथम) की सहायता से नागोर पर अधिकार करलिया[1]। इस पर चूंडाजी मंडोर चले आए।

जिस समय राव चूंडाजी ने डीडवाना और साँभर पर चढ़ाई की, उस समय इनके कहने से इनके अन्य भाइयों ने भी इन्हें उस कार्य में यथासाध्य सहायता दी थी। परन्तु इनका भाई जैसिंह चुप बैठ रहा था। इसी से वि० सं० १४६८ (ई० सन् १४११) में इन्होंने सेना भेजकर फलोदी का अधिकार उससे छीन लिया।

शम्सखाँ के मरने पर नागोर पर उसके पुत्र फ़ीरोज़खाँ का अधिकार हो गया। परन्तु वि० सं० १४७८ (ई० सन् १४२१) के करीब इन्होंने उसको भगाकर नागोर पर दुबारा अधिकार कर लिया[2]।

राव चूंडाजी के और पूगल के भाटियों के बीच बहुत दिनों से झगड़ा चला आता था। इसीसे उन्होंने मुलतान के सेनानायक सलीम[3] की सहायता प्राप्तकर नागोर पर चढ़ाई की। जांगलू के साँखलों और जैसलमेर के भाटियों[4] ने भी उनका साथ दिया। जब यह सम्मिलित दल नागोर के पास पहुँचा, तब भाटियों ने धोका देने की नियत से आगे बढ़ चूंडाजी से मेलजोल की बातें शुरू कीं। भाटियों के इस रुख को देख जिस समय चूंडाजी स्वयं उनसे मिलने को नगर से बाहर आए, उसी समय पीछे ठहरी हुई शत्रु-सैन्य ने एकाएक आगे बढ़ इनको घेर लिया। इस पर यद्यपि रावजी ने और उनके साथ के राठोडों ने बड़ी वीरता से शत्रु-दल का सामना किया, तथापि अंत में अपनी संख्याधिकता के कारण शत्रु विजयी हुए, और

१ 'तबकाते-अकबरी' पृ० ४४८ और 'मिराते-सिकंदरी' पृ० १८।

२ हि० सन् ८१६ (वि० सं० १४७४=ई० सन् १४१६) में जिस समय गुजरात के शासक अहमदशाह ने बुरहानपुर पर चढ़ाई की थी, उस समय शम्सखाँ ने उसे एक पत्र लिखा था (मिराते-सिकंदरी पृ० ३३)। इसमें उस समय तक नागोर पर शम्सखाँ का ही अधिकार होना प्रकट होता है।

३ यह शायद देहली के बादशाह की तरफ़ से मुलतान में नियत था। किसी किसी ख्यात में इसे मुलतान के हाकिम का सेनापति लिखा है।

४ उस समय जैसलमेर की गद्दी पर महारावल लखमणजी थे। और, ओडीट के मोहिलों ने भी इस चढ़ाई में भाग लिया था।

राव चूंडाजी सन्मुख रण में वीर-गति को प्राप्त होगए। यह घटना वि० सं० १४८० की चैत्र-सुदी ३ (ई० सन् १४२३ की १५ मार्च) की है[1]।

राव चूंडाजी का, वि० सं० १४७८ का, एक ताम्रपत्र[2] बडली (जोधपुर परगने) से मिला है। उसमें उक्त गांव के दान का उल्लेख है[3]।

---

१ कर्नल टॉड ने चूंडाजी का वि० सं० १४३८ (ई० सन् १३८२) में गद्दी बैठना और वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४१६) में मारा जाना लिखा है। उसने यह भी लिखा है कि बादशाह खिजरखाँ ने भी, जो उस समय मुलतान में था, भाटियों की सहायता की थी (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४५ और ७३३)। परन्तु यह ठीक नहीं है। खिजरखाँ वि० सं० १४७१ (ई० सन् १४१४=हि० सन् ८१७) में दिल्ली के तख्त पर बैठा था, और वि० सं० १४७८ (ई० सन् १४२१=हि० सन् ८२४) में मरा था, ऐसी हालत में वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४०८) में खिजरखाँ की मदद से चूंडाजी का मारा जाना संभव नहीं हो सकता।

२ इस ताम्रपत्र की लिखावट महाजनी होने से इसमें मात्राओं आदि का बहुत कम प्रयोग किया गया है। परन्तु यथास्थान मात्राएँ आदि लगा देने से उसमें का लेख इस प्रकार पढ़ा जाता है —

१ श्री राव चूंडाजी रो दत बडली गांव।
२ प्रोयत सादा नै दीधो संवत् १४ व—
३. रस आठतरो काती सुद पूनम रै।
४ दिन वार सूरज पुष्करजी मांये।
५ पुण्यार्थ कीदो महाराज चूंडाजी।
६ दुवो तेवीस हजार वीगा जमी नी—
७ म सीम समेत ईश्वर प्रीतये
८ गांव दीधो हिंदू नै गऊ मुसलमा [न नै]
९ सूर मातांजी चामुंडाजी सूं वेमुख।
१० आल-औलाद अणारी कोई गोती पोतो।
११ ईश्वर सूं वेमुख प्रोयत सादानै।
१२

(उसमें का पीछे का लेख इस प्रकार है)

१३ राव चूंडाजी रै भंडारी शिवचंद।

३ कहते हैं, राव चूंडाजी ने कई गांव दान किए थे —

१ त्रमोर-पुरोहितां, २ बडली, ३ चावंडा, ४ बाडिया, ५ भैंसेर-चावंडा, ६ भाटेलाई-पुरोहितों का वास, ७ हिंगोला (जोधपुर परगने के) पुरोहितों को और ८ भाडू

राव चूडाजी के १४ पुत्र थे—१ रिडमल (रणमल्ल), २ सत्ता, ३ रणधीर, ४ हरचद, ५ भीम, ६ कान्ह, ७ अडकमल[3], ८ पूना, ९ सहसमल, १० अज,

चारणों, ६ सीयादा (शेरगढ परगने के), १० गडवाडा (पाली परगने का) और कालाऊ (शेरगढ परगने का) की भूमि चारणों को। परन्तु इस विषय में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कह सकते।

१. कर्नल टॉड ने चूडाजी के पुत्रों मे पूना के स्थान में पुजका और हरचद के स्थान मे वाघ का नाम लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिकिटीज ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४५)। इसी प्रकार ख्यातों में इनके पुत्रों मे राजधर, माला, मूला, गोपा और चाचिगदेव के नाम भी दिए हैं। इसी प्रकार कहीं-कहीं इनके पुत्रों मे माडण, डूग और रावत के नाम भी लिखे मिलते हैं।

२ इसने पिता की मृत्यु के बाद नागोर छोटकर अर्वली-पर्वत की उपत्यका में बसे झाडोल नामक गाव मे अपना निवास कायम किया। (यह गाव सारची-मारवाड़ जक्शन मे २१ मील पर मेवाड-राज्य में था।) इस पर जब वहा के स्वामी झाला हम्मीर ने आपत्ति की, तब इसके मत्री (ईदा पडिहार) ऊदा ने कुछ दिन तक तो उसे बातों मे भुला रक्खा। परन्तु जब वह इस पर चढकर आ गया, तब इसने उसे मार डाला। इसी बीच इसके भाई राव सत्ता ने इसे मडोर मे बुलवा लिया। इसलिये इस घटना के बाद यह वहा चला गया।

३. वि० स० १४६१ (ई० सन् १४०४) मे जिस समय इसने दशहरे के दिन चामुडा के बलिदान के लिये लाए हुए महिष की गर्दन तलवार के एक ही वार में काट गिराई, उस समय लोग इसकी प्रशसा करने लगे। परन्तु राव चूडाजी ने कहा कि मैं तो इसे तभी वीर समझूंगा, जब यह पूगल के भाटी राणगदेव से अपने चचा गोगादेव का बदला ले लेगा। यह सुन अडकमल ने इस कार्य को करने की प्रतिज्ञा कर ली। ख्यातों मे लिखा है कि (लाडणू के निकट के) छापर–द्रोणपुर के स्वामी मोहिल (चौहान) माणक राव का विचार पहले अपनी कन्या का विवाह अडकमल से करने का था। परन्तु बाद मे उसने उसे भाटी राणगदेव के पुत्र सादा से व्याह देना निश्चित किया। यद्यपि चूडाजी के भय से राणगदेव स्वय तो इस सबध को करने के लिये सहमत नहीं हुआ, तथापि उसके पुत्र सादा ने यह बात स्वीकार कर ली। कुछ दिन बाद जब सादा विवाह करने को ओडींट की तरफ़ गया, तब मेहराज ने (जिसका पुत्र भाटी राणगदेव के हाथ से मारा गया था) इसकी सूचना अडकमल के पास पहुँचा दी। यह सुन विवाह कर लौटते हुए सादा को मार्ग मे ही दड देने की नियत से अडकमल भी कुछ चुने हुए योद्धाओं और मेहराज को साथ लेकर रवाना हुआ। जिस समय यह जसरासर और सादासर गावों के पास पहुँचा, उस समय इसका सामना नव-वधू को लेकर लौटते हुए सादा से हो गया। युद्ध होने पर सादा मारा गया, और उसकी

११ विजेमल, १२ लुंभा, १३ शिवराज और १४ रामदेव।

नव-विवाहिता पत्नी कोडमदे उसके साथ सती हो गई। उन्हीं में यह भी लिखा है कि चिता प्रवेश के पूर्व कोड़मदे ने अपनी एक भुजा काटकर श्वसुर के चरणों पर रखने के लिये भेज दी थी। राणंगदेव ने उसकी दाह-क्रिया करवाकर उसी में पहने हुए जेवरों से वहाँ पर कोडमदे सर नामक तालाब बनवाया। यह बीकानेर से ८ कोस पश्चिम में है। परन्तु वास्तव में यह तालाब जोधाजी की माता ने बनवाया था। यह बात वहाँ से मिले वि० सं० १५१६ (ई० सन् १४५९) के जोधाजी के लेख से सिद्ध होती है।

उपर्युक्त युद्ध वि० सं० १४६२ (ई० सन् १४०६) में हुआ था (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० ७३२)। अड़कमल की इस प्रतिज्ञा पूर्ति से प्रसन्न होकर चूंडाजी ने उसे डीडवाना जागीर में दे दिया।

कुछ ख्यातों में अड़कमल का इस युद्ध में अधिक घायल हो जाने से छ महीने बाद मर जाना लिखा है। परन्तु कुछ में इसका रणमल्लजी की चाचा और मेरा पर की चढ़ाई के समय उनके साथ रहना और मार्ग में तलवार के एक ही वार में एक शेरनी को मारना लिखा है।

इस घटना के बाद उपर्युक्त वैर का बदला लेने के लिये राणंगदेव ने मेहराज पर चढ़ाई की। यद्यपि इसकी सूचना मिलते ही राव चूंडाजी स्वयं उसकी रक्षा को चले, तथापि इनके पहुँचने के पूर्व ही वह मेहराज को मार और उसकी जागीर के गाँव को लूटकर लौट गया। यह देख चूंडाजी ने उसका पीछा किया, और (जैसलमेर-राज्य के) सिरड़ाँ-नामक गाँव के पास उसे जा घेरा। युद्ध होने पर राणंगदेव मारा गया, और चूंडाजी उसका डेरा लूट वि० सं० १४६२ (ई० सन् १४०६) में ही नागोर लौट आए।

ख्यातों में लिखा है कि इस प्रकार अपने पुत्र और पति के राठोड़ों के हाथ से मारे जाने पर राणंगदेव की स्त्री ने यह निश्चय किया कि जो भाई राव चूंडाजी से इन दोनों का बदला लेगा, उसी को मैं पूगल का राज्य सौंप दूंगी। यह सुन जैसलमेर-रावल केहर का पुत्र केलण, जो अपने बड़े भाई रावल लखमण से मनोमालिन्य हो जाने के कारण बीकमपुर में रहता था, पूगल जाकर राणंगदेव की स्त्री (भटियाणी) से मिला, और वहाँ का अधिकार प्राप्त करने के बाद मुलतान के सेनानायक की सहायता प्राप्त कर चूंडाजी को धोके से मारने में सफल हुआ।

कर्नल टॉड ने राणंगदेव के दो पुत्रों का मुसलमानी धर्म ग्रहण कर खिजरखाँ से सहायता प्राप्त करना और केलण का उनके साथ मिलकर अपनी लड़की का विवाह चूंडाजी से करने के बहाने चूंडाजी को नगर से बाहर बुलवाकर मारना लिखा है (एनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २ पृ० ७३३-७३४)।

१ किसी किसी ख्यात में लिखा है कि इसने जालोर नरेश चौहान वीसलदेव को बाथ (भुजाओं) में पकड़कर मारा था। इसलिये यह 'बाथपचायण' (बाथपचानन=शेर की-सी भुजाओंवाला) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१२. राव कान्हाजी[1]

यह चूंडाजी के पुत्र थे और ज्येष्ठ पुत्र न होते हुए भी, उनकी इच्छानुसार, उनके उत्तराधिकारी हुए। इनका जन्म वि० स० १४६५ (ई० स० १४०८) में हुआ था।

चूँडाजी की मृत्यु के बाद जाँगलू[3] का साखला पुनपाल स्वाधीन बन इधर-उधर लूट मार करने लगा था। यह देख कान्हाजी ने उसे मार कर फिर से उसके अधिकृत प्रदेश पर कब्जा कर लिया और इसके बाद नागोर के आसपास के प्रदेशों को भी, जो चूँडाजी की मृत्यु के कारण राठोड़ों के हाथ से निकल गए थे, दुबारा विजय किया। इस पर उन प्रदेशों के शासक शम्सखाँ के पुत्र खाँजादे फीरोज से मिल कर उसे नागोर पर चढा लाए। युद्ध होने पर नागोर उसके अधिकार में चला गया और कान्हाजी को अपना निवास मंडोर में कायम करना पड़ा। यह करीब ११ महीने राज्य कर वहीं पर स्वर्गवासी हुए[4]।

---

१. राव चूडाजी ने कान्हाजी की माता के आग्रह से ही अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल्लजी की सम्मति लेकर, कान्हाजी को अपना उत्तराधिकारी नियत किया था।

२. राजपूताने के इतिहास में लिखा है कि—'राव चूडा के मरने पर उसका छोटा पुत्र मंडोवर का स्वामी हुआ। (देखो पृ० ५८४) परन्तु वास्तव में उस समय नागोर भी कान्हाजी के ही अधिकार में था। चूडाजी की मृत्यु के बाद शत्रुदल नागोर में केवल लूटमार करके ही लौट गया था।

३ यह प्रदेश नागोर से २५ कोस उत्तर में है। उस समय इसकी सीमा नागोर प्रान्त की सीमा से मिली हुई थी।

४. कुछ ख्यातों में कान्हाजी का करणी नाम की चारण जाति की स्त्री के शाप से नागोर में ही स्वर्गवासी होना लिखा है। उनके लेखानुसार इनकी मृत्यु के बाद वहाँ पर फीरोज का अधिकार हुआ था।

(करणी राजपूतों और चारणों में देवी की तरह पूजी जाती है। इसका जन्म वि० स० १४४४ (ई० सन् १३८७) में हुआ था। यह (फलोदी प्रान्त के) सुवाप निवासी (किनिया शाखा के) चारण मेहा की कन्या थी और साठीका निवासी (वीठू शाखा के) चारण दीपा को ब्याही गई थी।

इसकी मृत्यु का वि० स० १५९५ (ई० स० १५३८), में होना माना जाता है। बीकानेर-नरेश जैतसीजी का बनवाया इसका एक मन्दिर देसणोक (बीकानेर राज्य) में अब तक विद्यमान है।

१३. राव सत्ताजी[1]

यह राव चूँडाजी के द्वितीय पुत्र थे और अपने भाई कान्हाजी की मृत्यु के समय रणमल्लजी के मेवाड मे होने के कारण मडोर की गद्दी पर बैठे[2]। इन्होने अपने भाई रणधीर को, झाडोल (मेवाड राज्य मे) से बुलवा कर, राज्य का सारा काम सौंप दिया था। परन्तु सत्ताजी का पुत्र नरबद इस प्रबन्ध से सन्तुष्ट न था[3]। इस से कुछ ही दिनो मे उसने सत्ताजी को भी उस (रणधीर) से नाराज कर दिया। यह देख रणधीर रणमल्लजी के पास मेवाड पहुँचा और उन्हे समझाने लगा कि पिता की आज्ञानुसार आपने राज्य का अधिकार कान्हाजी को दिया था। परन्तु उनकी मृत्यु हो जाने से अब उस पर आप ही का हक है। सत्ताजी उसमें कुछ भी नहीं मागते। यह बात रणमल्लजी की समझ मे भी आ गई। इसीलिये उन्होने राना मोकलजी से सहायता लेकर मडोर पर चढ़ाई कर दी। युद्ध होने पर नरबद जखमी हुआ और मडोर पर रणमल्लजी का अधिकार हो गया[4]। यह घटना वि० स० १४८४ (ई० स० १४२७) की है।

१ कहते हैं कि इन्होने (जोधपुर परगने का) खारो नामक गॉव एक चारण को दान मे दिया था।

२ किसी-किसी ख्यात मे लिखा है कि राव चूडाजी ने जिस समय कान्हाजी को अपना उत्तराधिकारी नियत किया था, उसी समय सत्ताजी को मडोर जागीर मे दिया था।

३ ख्यातो मे लिखा है कि नरबद ने रणधीर के पुत्र नापा को विष दिलवा कर मरवा डाला था।

४ किसी-किसी ख्यात मे कान्हाजी के मरने पर रणमल्लजी और राना मोकलजी का एक बार पहले भी मडोर पर चढाई करना लिखा है। उनमे यह भी लिखा है कि उस समय तक सत्ताजी ने रणधीर से आधा राज्य देने का वादा कर रक्खा था। इसलिये वह (रणधीर) नागोर जाकर खॉजादा फीरोज को अपनी सहायता मे ले आया और इस प्रकार उसने मेवाड की सेना को सफल-मनोरथ न होने दिया। परन्तु कुछ दिन बाद ही नरबद के कहने से सत्ताजी ने वह आधा राज्य देने का वादा तोड दिया। इसी से रणधीर रणमल्लजी से मिल गया। और उन्हे समझा बुझा कर मडोर पर चढा लाया। परन्तु यह ठीक प्रतीत नही होता। क्योकि यदि ऐसा होता तो रणधीर को रणमल्लजी के पास जाकर कान्हाजी के बाद राज्य पर उन्ही का हक सिद्ध करने की आवश्यकता न होती।

इसके कुछ दिन बाद सत्ताजी और नरबद दोनों मेवाड़ में महाराना मोकलजी के पास चले गए। उन्होंने भी इन्हें निर्वाह के लिये जागीर देकर अपने पास रख लिया।

१४. राव रणमल्लजी

यह मारवाड़-नरेश राव चूंडाजी के बड़े पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४४६ की वैशाख सुदी ४ (ई० सन् १३९२ की २८ अप्रेल) को हुआ था। वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४०८) में यह पिता की आज्ञा से अपना राज्याधिकार छोड़कर जोजावर नामक गांव में जा बसे। ख्यातों के अनुसार उस समय इनके पास करीब ५०० योद्धा थे। कुछ दिन बाद यह (वहां से धणला (सोजत-प्रान्त में) होते हुए) मेवाड़ में महाराणा लाखाजी के पास चले गए। महाराणा लाखाजी ने इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर इन्हें अपने पास रख लिया, और खर्च के लिये धणला के साथ ही अन्य कई गांव जागीर में दिए। इसी समय इन्होंने महाराणा की सेना लेकर अजमेर

---

१ ख्यातों में लिखा है कि युद्ध में नरबद की एक आँख फूट गई थी।

मंडोर विजय हो जाने पर रणमल्लजी ने मेवाड़ की सेना और उनके साथ के सरदारों के लिये किले के बाहर ही ठहरने का प्रबंध करवा दिया था। उनका विचार था कि जब तक किले की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध न होले, तब तक दूसरे राज्य की सेना को किले में घुसने देना उचित न होगा। परन्तु मेवाड़ वाले इससे मन ही मन नाराज हो गए और लौटते समय नरबद को भी अपने साथ मेवाड़ ले गए।

उन्हीं में यह भी लिखा है कि मंडोर पर रणमल्लजी का अधिकार होजाने पर भी सत्ताजी कुछ दिन वहीं रहे और इसके बाद यह आसोप की तरफ चले गए। युद्ध में लगे घावों के ठीक हो जाने पर नरबद भी मेवाड़ से पिता के पास आसोप चला आया और कुछ दिन बाद सत्ताजी को साथ लेकर मेवाड़ लौट गया। वहीं कुछ समय बाद राव सत्ताजी का देहान्त हुआ।

२ राजपूताने के इतिहास में लिखा है कि राना मोकल ने सत्ता और नरबद को एक लाख की कायलाणे की जागीर देकर अपना सरदार बना लिया था। (देखो पृ० ५८४) परन्तु यह घटना राना कुंभा के समय, रणमल्लजी के मारे जाने पर जोधाजी को पैतृक राज्य से वंचित करने का उद्योग करने के समय की प्रतीत होती है।

३ मारवाड़ की ख्यातों में इनका नाम रिडमलजी लिखा है।

४ उस समय यह प्रान्त मेवाड़ राज्य में था, परन्तु इस समय मारवाड़ राज्य में है। सोजत पर उस समय हुल राजपूतों (गहलोतों की एक शाखा) का अधिकार होना पाया जाता है। परन्तु कर्नल टॉडने हुलों को गहलोतों से भिन्न माना है। (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० १४४)

५. कहीं इनकी संख्या ४० और कहीं ५० लिखी है।



१४ राव रणमल्ल (रिडमल्ल) जी

वि० स० १४८५-१४९५ (ई० स० १४२८-१४३८)

पर चढाई की, और वहा पर अधिकार कर उसे महाराणा के राज्य मे मिला दिया। इससे महाराणा इनसे और भी प्रसन्न हो गए। कुछ दिन बाद इन्होने महाराणा लाखाजी के ज्येष्ठ पुत्र चूडा के आग्रह से अपनी बहन हसाबाई का विवाह लाखाजी के साथ कर दिया। परन्तु उस समय महाराना के ज्येष्ठ पुत्र चूडा से यह प्रतिज्ञा ले ली गई कि यदि इस विवाह से राणाजी के पुत्र होगा, तो राज्य का मालिक वही समझा जायगा। इसके करीब एक वर्ष बाद ही हसाबाई के गर्भ से मोकलजी का जन्म हुआ।

रणमल्लजी के उद्योग से ही मेवाड की सेना ने अनेक बार मुसलमानो पर विजय पाई थी, इसीसे राणाजी उनका अत्यधिक सम्मान किया करते थे।

पहले लिख चुके हैं कि हसाबाई के विवाह के समय ही उनके गर्भ से उत्पन्न होनेवाले पुत्र को मेवाड़ का राज्याधिकार दिया जाना निश्चित हो चुका था, इसलिये वि० स० १४७७ (ई० सन् १४२०) के करीब राणा लाखाजी की मृत्यु हो जाने से रणमल्लजी के भानजे राणा मोकलजी मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। उस समय उनकी अवस्था दस-ग्यारह वर्ष की थी। इससे कुछ दिनो तक मेवाड राज्य का सारा प्रबन्ध

---

१ श्रीयुत हरविलास सारडाने रणमल्लजी का, ई० सन् १३९७ और १४०९ (वि० स० १४५४ और १४६६) के बीच, राणा मोकलजी के बाल्यकाल मे, अजमेर विजय करना लिखा है (अजमेर पृ० १५७)। परन्तु राणा लाखाजी के वि० स० १४७५ (ई० सन् १४१८) के कोट सोलकियान वाले लेख के मिलने से मोकलजी के पिता राणा लाखाजी का वि० स० १४७५ (ई० सन् १४१८) तक जीवित रहना सिद्ध होता है (जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बगाल, भाग १२, पृ० ११५)।

२ इस घटना के समय (मारवाड के) राव चूडाजी विद्यमान थे। ऐसी हालत मे कुछ लेखकों का रणमल्लजी को (उस समय) राव लिखना भूल है।

मुहणोत नैणसी ने और कर्नल टॉड ने एक स्थान पर महाराणा लाखाजी का विवाह रणमल्लजी की कन्या से होना लिखा है (देखो, क्रमश हस्तलिखित 'नैणसी की ख्यात', पृ० १६३, और ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० ३२३-३२५)। रतनू रामनाथ ने अपने 'इतिहास राजस्थान' (पृ० ३४) मे, सूर्यमल्ल ने अपने 'वश-भास्कर' (भा० ४, पृ० २६११) मे और 'तोहफ़ए राजस्थान' (पृ० ६१) मे भी यही बात लिखी है। परन्तु यह ठीक नही है। कर्नल टॉड ने दूसरे स्थान पर हसाबाई को रणमल्लजी की बहन लिखा है (ऐनाल्स ऐड ऐन्टिक्विटीज ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४५)। यही ठीक प्रतीत होता है।

'इतिहास राजस्थान' (पृ० ३५) में हसाबाई का महाराणा लाखाजी के साथ सती होना लिखा है। यह भी गलत है।

उनके बड़े भाई रावत चूडा की देखभाल में रहा। परन्तु अन्त मे हसाबाई के चित्त मे उसकी तरफ से सन्देह हो जाने के कारण वह माडू के सुलतान होशंग के पास चला गया।

इसके बाद महाराणा मोकलजी के छोटे होने के[1] कारण मेवाड़ राज्य का सारा प्रबन्ध उनके मामू रणमल्लजी को सौंपा गया। इन्होंने खास-खास पदोंपर विश्वासपात्र लोगो को नियत कर वहा का प्रबन्ध इतने अच्छे ढग से किया कि युवावस्था प्राप्त कर लेने पर भी महाराणा ने उसमें किसी प्रकार के हेर-फेर करने की आवश्यकता नहीं समझी।

इन कामो से निश्चिन्त हो वि० स० १४८० (ई० सन् १४२३) मे रणमल्लजी अपने पिता राव चूडाजी से मिलने को नागोर की तरफ चले। परन्तु उनके वहा पहुँचने के पूर्व ही राव चूडाजी युद्ध मे वीरगति प्राप्त कर चुके थे। इसलिये यह पिताकी आज्ञानुसार अपने छोटे भाई कान्हाजी को वहा की गद्दी देकर, मडोर होते हुए, अपनी जागीर की देखभाल के लिये धणले चले गए। साथ ही इन्होंने पिताकी मृत्यु का बदला लेने के लिये सींधसी को भेज कर, नागोर से अजमेर जाते हुए, सलीम को मरवा डाला।

---

१ मोकलजी की अवस्था का छोटा होना राजपूताने के इतिहास में की इन पंक्तियों से भी सिद्ध होता है —

"इस समय आप (हसाबाई) का सती होना अनुचित है, क्योंकि महाराणा मोकल कम उम्र हैं, अतएव आपको राजमाता बनकर राज्य का प्रबन्ध करना चाहिए।" (पृ० ५८३)

इसके अलावा यदि मोकल की अवस्था छोटी न होती तो पहले कुछ दिन के लिये चूडा को और उसके बाद रणमल्लजी को मेवाड़ के प्रबन्ध करने का अवसर ही क्यों मिलता।

२ कर्नल टॉड ने लिखा है कि राव रणमल्ल अपने दौहित्र राणा मोकल को गोद में लेकर बापा रावल के सिंहासन पर बैठता था (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ३२२)। परन्तु यह ठीक नहीं है। राजपूताने के इतिहास मे उस समय मोकलजी की अवस्था का कमसे कम १२ वर्ष का होना माना है (देखो, पृ० ५८३, टिप्पणी १)। परन्तु हम वि० स० १४६५ (ई० सन् १४०८) में कान्हाजी के जन्म समय रणमल्लजी का राज्याधिकार छोड़कर मेवाड़ जाना, वहा पर उनकी बहन का विवाह महाराणा लाखाजी से होना और इसके बाद अगले वर्ष वि० स० १४६६ (ई० सन् १४०९) म उसके गर्भ मे मोकल का जन्म लेना मानकर वि० स० १४७७ (ई० सन १४२०) के करीब लाखाजी की मृत्युसमय मोकलजी की अवस्था का करीब १०-११ वर्ष की होना अनुमान करते हैं।

- किसी-किसी ख्यात में सलीम का अजमेर से लौटते हुए मारा जाना लिखा है।

रणमल्लजी के बढते हुए प्रताप को देख सोनगरो (चौहानो) के चित्त मे द्वेष ने घर कर लिया था । इसी से उन्होने इनको अपने वश की कन्या के साथ विवाह करने के लिये बुलवाकर मार डालने का इरादा किया । परन्तु बातके प्रकट हो जाने से यह बचकर निकल गए, और कुछ ही दिनो मे इन्होने सोनगरो को मारकर नाडोल पर अधिकार कर लिया । ख्यातो के अनुसार यह घटना वि० स० १४८२ (ई० सन् १४२५) मे हुई थी[1] ।

पहले लिखा जा चुका है कि राव चूडाजी के मारने मे जैसलमेर के भाटियो का भी हाथ था । इसी का बदला लेने के लिये रणमल्लजी ने उनके प्रदेशो को लूटना शुरू किया । यह देख वहा के रावल लक्ष्मणजी घबरा गए, और उन्होने ८७ के रुपये देना स्वीकार कर इनसे सुलह कर ली ।

वि० स० १४८३ (ई० सन् १४२६) मे इनकी सेना ने सींधल राठोडो से जैतारण छीन लिया, और बाद मे हुलो को भगाकर सोजत पर भी अधिकार कर लिया । सोजत पर अधिकार करते समय रणमल्लजी का ज्येष्ठ पुत्र अखेराज भी सेना के साथ गया था, इसलिये वहा की देखभाल का भार उसी को सौपा गया ।

इसी समय राव सत्ताजी के और उनके भाई रणधीर के बीच झगडा हो गया । इसपर रणधीर रणमल्लजी के पास मेवाड चला आया, और उसने समझा-बुझाकर, और कान्हाजी के बाद राज्य पर इन्हीं का हक बतलाकर[2], इन्हे मडोर पर चढाई करने के लिये तैयार कर लिया । इसके बाद रणमल्लजी ने अपनी और मेवाड़ की सम्मिलित सेना लेकर मडोर पर चढाई की । नजदीक पहुँचने पर इनका और राव सत्ताजी के पुत्र नरबद का मुकाबला हुआ । यद्यपि नरबद ने बडी वीरता से इनका सामना किया, तथापि उसके घायल हो जाने से मडोर पर रणमल्लजी का अधिकार हो गया । यह घटना वि० स० १४८५ (ई० सन् १४२८) की है ।

१ किसी-किसी ख्यात मे इस घटना का वि० स० १४८० (ई० सन् १४२३) मे होना लिखा है ।

२ रणधीर ने इन्हे समझाया कि आपने पिता की आज्ञा से कान्हाजी को राज्याधिकार दिया था । परन्तु उनके अपुत्र मरने पर अब उसपर आपका ही हक है । छोटे होने के कारण सत्ताजी का उसपर अधिकार कर बैठना बिलकुल अनुचित है ।

इस प्रकार मंडोर का राज्य प्राप्त कर लेने पर भी यह कुछ दिन के लिये मेवाड़ जाकर राजकाज की देखभाल में महाराणा मोकलजी को सहायता दिया करते थे। जिस समय मोकलजी ने नागोर के शासक फीरोजखाँ पर चढ़ाई की, उस समय भी यह उनके साथ थे[1]। इसी प्रकार इन्होंने मोकलजी को सपादलक्ष, जालोर, साभर, जहाजपुर आदि की चढ़ाइयों में और मुहम्मद (गुजरात के शासक अहमदशाह के पुत्र) के साथ के युद्ध में भी सहायता दी थी[2]।

वि० सं० १४८७ (ई० सन् १४३०) में राव रणमल्लजी ने एक बार फिर जैसलमेर पर चढ़ाई की। इसपर वहां के महारावल लक्ष्मणजी ने एक चारण के[3] द्वारा सन्धि का प्रस्ताव भेज, अपनी कन्या इन्हें व्याह दी।

---

१ ख्यातों में उसी समय राव रणमल्लजी का नागोर पर अधिकार कर लेना भी लिखा है, परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

२ इसका पिता अहमदशाह वि० सं० १४९९ (ई० सन् १४४२) तक जीवित था, परन्तु सम्भवतः उसने इसे नागोर के शासक फीरोजखां की सहायता को भेजा होगा।

३ ख्यातों में इस चारण का नाम मोजा लिखा है। उसने आकर रणमल्लजी को यह छप्पय सुनाया था—

"तै गंजे पीरोज ढाल गो महमँद टाले
तै गंजे चहुवाँण धरा चावडा डुलाले।
तै गंजे भाटियाँ कोट जाजपुर मझार
तै गंजे पतिसाह नहीं गंजिया अपार।
सो सीख एक साभल सवण तू आरंभ आप बल,
रिडमल अगंजी गंजिया केवी गंजि अगंजि बल।

अर्थात्—तूने (नागोर के शासक) फीरोजखाँ को हराया, तेरे सामने (गुजरात के शासक अहमद का पुत्र) मुहम्मद भाग खड़ा हुआ, तूने (नागोर के मानगरा) चौहानों को परास्त किया, तेरे प्रताप से चावडों के राज्य की पृथ्वी कांपती है, तूने भाटियों को मारा, जहाजपुर के किले को नष्ट किया, और (सलीम को मारकर) मुलतान के गर्व को तोड़ा। परन्तु तूने कभी साधारण लोगों को कष्ट नहीं दिया। हे रिडमल (रणमल्ल)! तू मेरी एक बात सुन। तू सब काम स्वयं अपने ही भरोसे पर करता है। तूने सिर उठानेवालों को ही दबाया है और आगे भी तुझे ऐसा ही करना चाहिए। (अर्थात्—जब भाटी तेरा सामना करने को तैयार नहीं हैं, तब उन पर क्रोध करना व्यर्थ है।)

इसके बाद यह अपने पुत्र जोधाजी और काधल को साथ लेकर गंगा और गया की यात्रा को गए और लौटते हुए कुछ दिन आंबेर में ठहर मंडोर चले आए।

उस समय इनका अधिकार मंडोर, पाली, सोजत, जैतारण और नाडोल पर था। परन्तु मेवाड के निकट होने के कारण यह अधिकतर सोजत में ही रहा करते थे।

जालोर का शासक बिहारी पठान हसनखाँ उन दिनो आसपास के प्रदेशो में उपद्रव करने लगा था। यह देख रणमल्लजी की आज्ञा से इनके सेनापति राठोड़ ऊदा ने उस पर चढाई की। कुछ दिनो तक तो हसनखाँ भी किले का आश्रय लेकर राठोड-सेना का सामना करता रहा, परन्तु अन्त में रसद आदि का पूरा प्रबन्ध न हो सकने के कारण उसे हार मानकर संधि करनी पडी।

वि० स० १४९० (ई० सन् १४३३) में मेवाड नरेश महाराणा मोकलजी को (उनके दादा महाराणा खेताजी की पासवान के[1] पुत्र) चाचा और मेरा ने मदारिया नामक स्थान के पास मारडाला, और इसके बाद ही मेवाड राज्य पर अधिकार कर लेने की इच्छा से चित्तौड के किले को जा घेरा। उस समय कुम्भाजी की अवस्था करीब ६ वर्ष की थी, इसलिये उनके पक्षवालो ने शीघ्र ही इस घटना की सूचना राव

१ मुख्य उपपत्नी।

२ इतिहास से सिद्ध होता है कि वि० स० १४६५ (ई० सन् १४०८) मे कान्हाजी का जन्म हुआ था, और उसी समय रणमल्लजी पिता की आज्ञा से राज्याधिकार छोडकर मेवाड चले गए थे। वही पर इनकी बहन हंसाबाई का विवाह महाराणा लाखाजी के साथ हुआ। ऐसी हालत मे मोकलजी का जन्म जल्दी-से-जल्दी वि० स० १४६६ (ई० सन् १४०९) मे हुआ होगा, और वि० स० १४९० (ई० सन् १४३३) मे, मृत्यु के समय, उनकी अवस्था अधिक से अधिक २४ वर्ष की रही होगी। साथ ही यदि महाराणा मोकलजी की १७–१८ वर्ष की आयु मे उनके पुत्र कुंभाजी का जन्म होना मान लिया जाय, तो पिता (महाराणा मोकलजी) की मृत्यु के समय (वि० स० १४९०=ई० सन् १४३३ मे) वह ६-७ वर्ष से अधिक के न रहे होंगे। ऐसी हालत मे राजपूताने के इतिहास में लिखी ये पंक्तियाँ कि—"महाराणा कुंभाने गद्दी पर बैठते ही सबसे पहले अपने पिता के मारनेवालों से बदला लेना निश्चय कर, चाचा, मेरा आदि के छिपने की जगह का पता लगते ही उनको मारने के लिये सेना भेजने का प्रबन्ध किया—" (देखो, पृ० ५९२–५९३)-ठीक प्रतीत नही होती। 'राजपूताने के इतिहास' मे राज्य पर बैठते समय—महाराणा मोकलजी की अवस्था का १२ वर्ष की होना लिखा है (देखो पृ० ५८३, टिप्पणी १)। ऐसी हालत मे महाराणा लाखाजी का स्वर्गवास वि० स० १४७८ (ई० सन १४२१) मे मानना होगा। परन्तु यदि

रणमल्लजी के पास भेज कर इन्हें सहायता के लिये बुलवाया। यह खबर पाकर रणमल्लजी[1] तत्काल चुने हुए ५०० वीरों के साथ मेवाड़ जा पहुँचे। परन्तु उनके आनेकी सूचना मिलते ही चाचा और मेरा पाई कोटड़ा के पहाड़ों में जा छिपे। इस पर राव रणमल्लजी ने वहां भी उनका पीछा किया, और ६ महीने तक उक्त पहाड़ को घेरे रहने के बाद वहां के भीलों की सहायता से चाचा और मेरा को, मय उनके साथियों के, मार डाला।[2] परन्तु महपा पंवार, जो इस षड्यन्त्र में सम्मिलित था, पहले से ही स्त्री का भेस बनाकर निकल भागा, और महाराणा मोकलजी के ज्येष्ठ भ्राता रावत चूंडा की सहायता से माडू के सुलतान के पास जा पहुँचा। इसके बाद राव रणमल्लजी चाचा और मेरा के पक्ष के स्वामिद्रोही सीसोदियों की कन्याओं को लेकर देलवाड़े आए, और उन्हें अपने साथ के राठोड़ वीरों को ब्याह दिया।

इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाने पर वे चित्तौड़ लौट आए और बालक महाराणा कुम्भाजी के पास रह कर मेवाड़ का प्रबन्ध करने लगे।[3] कुछ ही दिनों में इन्हें रावत चूंडा के छोटे भाई राघवदेव पर भी शक हो गया। इसलिये इन्होंने राजपक्ष के लोगों से सलाह कर उसे दरबार में बुलवाया, और वहां महाराणा कुम्भाजी के सामने ही उसे मरवा डाला।

लाखाजी की मृत्यु जल्दी मान ली जाय (वि० सं० १४७६ (ई० सन १४१९) में मानकर उस समय ही मोकलजी की अवस्था १२ वर्ष की मानली जाय और उनकी १७-१८ वर्ष की आयु में (अर्थात् वि० सं० १४८१-८२=ई० सन १४२४-२५ में) कुम्भाजी का जन्म होना स्वीकार करलिया जाय, तो भी महाराणा मोकलजी की मृत्यु के समय (वि० सं० १४९०=ई० सन १४३३ में कुम्भाजी की अवस्था ८-९ वर्ष से अधिक नहीं हो सकती।

१ ख्यातों में लिखा है कि राव रणमल्लजी ने मोकलजी के मारे जाने का समाचार सुन अपने सिर से पगड़ी उतार कर साफा बाँध लिया था, और यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक हत्याकारियों को दंड न दे लूँगा तब तक सिर पर पगड़ी न बाँधूँगा।

२ मारवाड़ की ख्यातों के अनुसार इसी अवसर पर रणमल्लजी के भाई अड़कमल ने तलवार के एक ही वार से, एक शेरनी को मारा था।

३ कर्नल टॉड ने लिखा है कि—"यद्यपि मोकलकी हत्या का कारण केवल व्यंग्य वचन ही कहा जाता है, तथापि उसके उत्तराधिकारी बालक कुम्भा के लिए अपनी रक्षा के प्रबन्ध को देख, मानना पड़ता है कि यह अवश्य ही एक गहरे षड्यन्त्रका प्रारम्भ था। स्वामिद्रोही लोग माद्री के निकटके सुरक्षित स्थान में चले गए, और कुम्भाने इस आवश्यकता के समय मारवाड़-नरेश की मित्रता और सहायता पर विश्वास किया।

इसके बाद जैसे ही रणमल्लजी को महपाके माडूके सुलतान महमूद खिलजी (प्रथम) के निकट होने की सूचना मिली, वैसे ही इन्होंने दूत भेजकर उसे कहलाया कि या तो वह महाराणा के अपराधी महपा को मेवाड भेज दे, या युद्ध की तैयारी करे। परन्तु जब इसका सन्तोषजनक उत्तर न मिला, तब वि० स० १५६४ (ई० सन् १५३७) के करीब इन्होंने मेवाड और मारवाड की सम्मिलित सेना लेकर माडू पर चढाई की। यद्यपि इसकी सूचना मिलते ही महमूद भी इनके मुकाबले को, सारगपुर के पास तक, आगे बढ आया, तथापि युद्ध में राजपूतो की मार न सह सकने के कारण उसकी सेना भाग चली। इसलिये महमूद को हार माननी पडी। इस विजय के कारण मेवाड में राव रणमल्लजी का प्रभाव और भी बढ गया। परन्तु जिन लोगो के स्वार्थ-साधन में इससे बाधा पहुँचती थी, वे लोग इनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे।

उस विश्वास का बदला भी उसे अच्छा ही मिला।" (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३२)

उन्होंने यह भी लिखा है कि—" (मेवाड के) कवि लोग अपने नरेश (कुभा) के पिता की मृत्यु का बदला लेने के कार्य को अपने राज्य की रक्षा के कार्य के समान समझ कर, सहयोग करने के लिये मारवाड नरेश की बहुत कुछ प्रशसा करते हैं (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३४)।

मेवाड के इतिहास से ज्ञात होता है कि महाराणा मोकलजी के मारे जाने पर सिरोही नरेश महारावल ससमलजी ने अपने राज्य की सीमा में मिला मेवाड का कुछ प्रदेश दबा लिया था। परन्तु रणमल्लजी ने सेना भेज कर उक्त प्रदेश के साथ ही आबू और उसके आसपास के प्रदेश मेवाड-राज्य मे मिला लिए।

१ कर्नल टॉड ने इस युद्ध में महमूद का कैद किया जाना लिखा है। (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३५) 'वीरविनोद' मे लिखा है कि "सुलतान भागकर माडू के किले मे जा रहा, और उसने महपा को वहा से चले जाने को कहा। जिस पर वह गुजरात की तरफ चला गया। कुभाने माडू का किला घेर लिया। अन्त मे सुलतान की सेना भाग निकली, और महाराणा महमूद को चित्तौड ले आए। फिर छै महीने तक कैद रखा, और कुछ भी दड न लेकर उसे छोड दिया—' (राजपूताने का इतिहास, पृ० ५६८-५६६)। अस्तु, जसा कुछ भी हुआ हो, परन्तु यह सब राव रणमल्लजी की ही वीरता और रणकुशलता का फल था, क्योकि कुभाजी की अवस्था उस समय करीब १०-११ वर्ष की थी।

२ 'वीरविनोद' में लिखा है कि "चाचा और मेरा को मारने और महमूद को कैद करने से रणमल्ल का अख्तियार दिन दिन बढता ही गया।' इससे प्रकट होता है कि मेवाड दरबार के ऐतिहासिक भी इन कार्यों का श्रेय राव रणमल्लजी को ही देते हैं।

उन्हीं लोगो के सहारे से महाराणा मोकलजी के हत्याकारी चाचा का पुत्र आका और पँवार महपा भी कुछ ही दिनो में मेवाड लौट आए, और रणमल्लजी के विरोध करने पर भी, लोगो के आग्रह से, महाराणा कुम्भाजी ने उनके अपराध क्षमा कर दिए। इसके बाद एक रोज महपा ने, रणमल्लजी के मेवाड राज्य को दबा बैठने का भय दिखलाकर, कुम्भाजी को इनके विरुद्ध भड़काना चाहा। परन्तु जब यह वार खाली गया, तब आकाने एक नई युक्ति सोच निकाली। एक दिन वह लेटे हुए महाराणा के पैर दबाते हुए रोने लगा। टागो पर आसुओ के गिरने से चौंककर जब महाराना ने उससे इसका कारण पूछा, तब उसने कहा कि राव रणमल्लजी के मेवाड़-राज्य पर अधिकार कर बैठने के गुप्त षड्यन्त्र की तरफ आपका ध्यान न देख मातृभूमि के दुःख से मेरे आसू निकल पडे हैं। यह सुनकर बालक महाराणा कुम्भाजी[1] उसके बहकावे में आ गए और उन्होने राव रणमल्लजी को धोके से मार डालने की आज्ञा दे दी। इसके बाद षड्यन्त्रकारियो ने रावत चूडा को भी माडू से वहा बुला लिया।

इधर यह कपटजाल बिछाया जा रहा था और उधर इसकी कुछ भनक रणमल्लजी के कानो तक भी पहुँच चुकी थी। इसलिये उन्होंने अपने पुत्र जोधाजी आदि को बतला दिया कि आजकल लोग हमारे विरुद्ध महाराणा को भड़का रहे हैं। सम्भव है, सासारिक अनुभव के अभाव से वह उनके कहने में आ जाय। इनसे तुमको सावधान किए देता हूँ कि यदि किसी दिन मैं राणाजी के आग्रह से तुम लोगोको किलेमें आनेके लिये कहला भी दू, तो भी तुम टाल जाना। इसके बाद सचमुच ही महाराणा ने जोधाजी आदि को किले मे बुलवा लेने का आग्रह करना शुरू किया। परन्तु जब रणमल्लजी के एक दो-बार कहलाने पर भी वे न आए, तब षड्यन्त्रकारियों को अपनी गुप्त मन्त्रणा के प्रकट हो जाने का सन्देह होने लगा। इसलिये वि० स० १४९५ की कार्तिक वदि ३० (ई० सन् १४३८ की २ नवम्बर) की रातको उन्होने बेखबर सोते हुए राव रणमल्लजी को पलग से बाधकर इनका वध कर डाला।[2]

१ उस समय कुम्भाजी की अवस्था हमारे मतानुसार केवल ११-१२ वर्ष की और राजपूताने के इतिहास के अनुसार १३-१४ वर्ष की थी।

२ 'वीरविनोद' मे इस घटना का वि० स० १५०० (ई० सन् १४४३) मे होना लिखा है। परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि राणपुर (गोडवाड) के जैन-मदिर से मिले वि० स० १४९६ (ई० सन् १४३९) के महाराना कुम्भा के लेख से उस समय के पूर्व ही मडोर पर कुभाजी का अधिकार हो जाना सिद्ध होता है (आर्कियॉलॉजीकल सर्वे ऑफ

राव रणमल्लजी उदार[1], चतुर[2] और वीर[3] पुरुष थे। इन्होंने पिता की आज्ञा से पैतृक राज्य तक छोड दिया था। इन्हीं की कुशलता और वीरता से महाराणा मोकलजी और विशेषकर कुम्भाजी की विपत्ति के समय मेवाड-राज्य की रक्षा हुई थी।

इंडिया की १९०७-१९०८ की वार्षिक रिपोर्ट, पृ० २१४)। कर्नल टॉड और सूर्यमल्ल ने राव रणमल्लजी का महाराणा मोकलजी के समय मारा जाना लिखा है। (देखो क्रमशः ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३२, और 'वंशभास्कर', भा० ३, पृ० १८७२) यह भी ठीक नहीं है।

'वीरविनोद' और मुहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि महपा आदि के आक्रमण करते ही रणमल्लजी चारपाई से बंधे होने पर भी उसको लिए हुए उठ खडे हुए, और कई शत्रुओं को मारकर वीरगति को प्राप्त हुए। कहीं कहीं उनका लेटे लेटे ही कई शत्रुओं को मारकर स्वर्ग सिधारना लिखा है।

१ कहते हैं कि राव रणमल्लजी ने निम्नलिखित गांव दान दिए थे — १ कुंवारडा (जालोर परगने का), २ धर्मद्वारी ३ पुनायता (पाली परगने के) पुरोहितों को और ४ बीसावास (जोधपुर परगने का) चारणों को।

२ प्रसिद्धि है कि रणमल्लजी ने अपने राज्य-भर में एक ही प्रकार के नाप और तोल का प्रचार किया था।

३ इनकी वीरता का प्रमाण राणपुर (गोडवाड) से मिला वि० सं० १४९६ (ई० सन् १४३९) का महाराणा कुंभाजी का लेख है। उसमें महाराणा कुंभाजी के प्रथम सात वर्षों के कार्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उन्होंने सारंगपुर (मालवा), नागोर, गागरोन, नराणा (जयपुर), अजमेर, मंडोर, मांडलगढ, बूंदी, खाटू, चाटसू (जयपुर) आदि विजय किए थे। परन्तु वास्तव में इस लेख के लिखे जाने तक भी कुंभाजी की अवस्था करीब १२-१३ वर्ष की ही थी। इसलिये मंडोर को छोडकर, जहां पर रणमल्लजी की मृत्यु के बाद रावत चूडा ने अधिकार किया था, बाकी सब स्थानों की वि० सं० १४९५ (ई० सन् १४३८) तक की, विजयों का श्रेय, मेवाड के एक मात्र निरीक्षक राव रणमल्लजी को ही देना होगा। इसकी पुष्टि राजपूताने के इतिहास में की इन पंक्तियों से भी होती है —

"चूंडा के चले जाने पर रणमल्ल ने राज्य का सारा काम अपने हाथ में कर लिया और सैनिक विभाग में राठोडों को उच्च पद पर नियत करता रहा।"

(पृ० ५८४)

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि रणमल्लजी के समय उनके नियत किए इन्हीं राठोड-सेनापतियों ने उनकी अधीनता में अनेक प्रदेशों को जीत मेवाड़-नरेश को गौरवशाली बनाया था।

राव रणमल्लजी के २६ पुत्र थे। १ अखैराज, २ जोधाजी, ३ कांधल, ४ चांपा, ५ लाखा, ६ भाखरसी, ७ डूंगरसी, ८ जैतमाल, ९ मंडला, १० पाता, ११ रूपा, १२ करण, १३ सांडा, १४ मांडण, १५ ऊदा, १६ बैरा, १७ हापा, १८ अडवाल, १९ जगमाल, २० नाथा, २१ करमचन्द, २२ सीधा, २३ तेजसी, २४ सायर, २५ सगता और २६ गोयन्द।

---

१ इनकी मुख्य जागीर बगडी है।

२ इसने अपने भतीजे राव बीकाजी को बीकानेर का नया राज्य स्थापन करने में सहायता दी थी।

३ मंडोर से १५ कोस पूर्व का कापरडा नामक गांव इसी ने बसाया था। राव रणमल्लजी के मारे जाने के समय यह भी चित्तौड में था। इसके बाद वहां से मंडोर होता हुआ काहूनी नामक गांव में पहुँच, जोधाजी के साथ हो लिया। इसने उन्हें मंडोर पर अधिकार करने और चित्तौड पर सफल आक्रमण करने में भी सहायता दी थी। वि० सं० १५१६ (ई० सन् १४५९) में गोडवाड-प्रान्त के सींधल, बालिया और सोनगरों ने मिल कर इसकी गाएँ पकड ली। परन्तु इस ने उनके सम्मिलित दल को हराकर उन्हें वापस छुडवा लिया। वि० सं० १५२२ (ई० सन् १४६५) में इस ने, गुजरात होकर दिल्ली जाते हुए, मांडू के सुलतान महमूद खिलजी से, पूनागर की पहाडी के पास, बहादुरी से युद्ध किया था।

वि० सं० १५३६ (ई० सन् १४७९) में महाराणा रायसिंहजी की सहायता से सींधल राजपूतों ने इस पर चढाई की। मणियारी के पास युद्ध होने पर उसी में यह मारा गया।

४ ख्यातों में लिखा है कि इसके पुत्र बाला ने जोधाजी की मेवाड की चढाई के समय वहां के सेठ पदमशाह को पकडने में भाग लिया था। वहां से लौट कर जब जोधाजी खेरवा नामक गांव में पहुँचे, तब उस सेठने बहुतसा द्रव्य भेट कर रिहाई हासिल कर ली। सेठ से मिले हुए द्रव्य से ही जोधपुर का किला बनना प्रारम्भ हुआ था। इसी से जोधाजी ने उसी के पास सेठ के नाम पर पदमसर नामक एक तालाब बनवा दिया। चांपा के मारे जाने के समय भी यह उसके साथ था, और अन्त में इसी ने सींधलों को भगा कर अपने चचा का बदला लिया।

५ इसने भी अपने भतीजे बीकाजी को बीकानेर का नया राज्य स्थापन करने में सहायता दी थी।

६ रणमल्लजी के मारे जाने पर जब मेवाड की सेना ने जोधाजी का पीछा किया, तब इसने कपासण के मुकाम पर उसका सामना कर उसे रोका। इसी युद्ध में घायल होने से इसकी मृत्यु हुई।

७ इसीके वंश में राठोड-वीर दुर्गादास उत्पन्न हुआ था।

८ यह बाल्यावस्था में ही मर गया था। कहीं-कहीं इसके भाई सायर और सगता का भी बाल्यावस्था में मरना लिखा है।

राव रणमल्लजी की मृत्यु के कारण पर विचार ।

मेवाड के कुछ इतिहास-लेखक महाराणा कुम्भाजी की गलती को छिपाने के लिये राव रणमल्लजी पर कुम्भाजी को मार कर मेवाड-राज्य पर अधिकार कर लेने के इरादे का दोष लगाते हैं, और इसीके आधार पर उनके मारे जाने को न्याय्य सिद्ध करते हैं। परन्तु यह कहा तक ठीक है, इसका निर्णय नीचे लिखे दो पहलुओं पर विचार करने से हो सकता है —

१ महाराणा लाखाजी की मृत्यु के समय मोकलजी की अवस्था किसी भी हालत मे ग्यारह-बारह वर्ष से अधिक न थी और रावत चूडा के शीघ्र ही नाराज होकर माडू चले जाने पर मेवाड-राज्य का सारा प्रबन्ध कई वर्षों तक रणमल्लजी के ही हाथो मे रहा था। इसके बाद महाराणा मोकलजी के मारे जाने के समय उनके पुत्र कुम्भाजी केवल छै-सात वर्ष के थे और मेवाड में अराजकता भी फैल गई थी। परन्तु रणमल्लजी के कठिन परिश्रम से चाचा और मेरा मारे गए और कुम्भाजी को वहा की गद्दी मिली। इसके बाद भी रणमल्लजी ने लगातार पाच वर्षोंतक मेवाड राज्य का जैसा कुछ प्रबन्ध किया, उसका हाल राणपुर (गोडवाड) से मिले, वि० स० १४९६ (ई० सन् १४३९) के, महाराणा कुम्भाजी के समय के लेख से प्रकट हो जाता है। यदि सचमुच में ही रणमल्लजी का मेवाड राज्य पर अधिकार कर लेने का विचार होता, तो वे मोकलजी के समय अथवा उनके मारे जाने से उत्पन्न हुई विकट परिस्थिति के समय, अपनी इच्छा पूर्ण कर सकते थे। कुम्भाजी के युवा होने तक ठहरे रहना तो इस कार्य के लिये उलटा हानिकारक था।

२ इतिहास से सिद्ध है कि जिस समय महाराणा लाखाजी का विवाह हसाबाई के साथ हुआ था, उस समय वह वृद्ध हो चुके थे। ऐसी हालत मे सम्भव है कि विमाता के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले भाई के लिये अपना राज्याधिकार छोडने की प्रतिज्ञा करते समय (लाखाजी के ज्येष्ठ पुत्र) चूडा के चित्त मे मोकल के उत्पन्न होने की सम्भावना ही न रही हो। फिर यह भी सम्भव है कि उसके उत्पन्न हो जाने से, पूर्व प्रतिज्ञानुसार, राज्याधिकार छोड देने को बाध्य होने पर भी उसके चित्त मे उसे फिर से प्राप्त कर लेने की इच्छा उत्पन्न हो गई हो। इसके बाद जब मोकलजी के मारने का

षड्यन्त्र करने पर भी राव रणमल्लजी के कारण उसे सफलता न हुई (जैसा इतिहास से प्रकट होता है), तब उसने कम-से-कम उनसे बदला लेने और अपने पैतृक-राज्य मे लौट कर बसने के लिये ही इनको मरवाने का उद्योग किया हो। यह हमारा अनुमानमात्र है। परन्तु नीचे उद्धृत घटनाओं से इसकी पुष्टि होती है—

राजमाता का चूडा से राजकार्य ले लेना, इसके बाद चूडा का मेवाड के सहज-शत्रु माडू के सुलतान के पास जाकर रहना, मोकल की हत्या होने पर भी चूडा, उसके भाई राघवदेव और मेवाड के सरदारों का चुपचाप बैठ रहना, मोकलजी के हत्याकारियों मे से महपा का भागकर चूडा के पास माडू जाना और उसके द्वारा वहा के सुलतान का आश्रय पाना, महपा के कारण कुम्भाजी और सुल्तान के बीच विरोध होने पर भी चूडा का सुलतान के पास ही रहना आदि।

इनके अलावा 'वीरविनोद' (भा० १, पृ० ३२३–२४) और 'राजपूताने के इतिहास' (भा० २, पृ० ६०३) मे लिखा है—"जोधा की यह दशा देखकर महाराणा की दादी हसाबाई ने कुम्भा को अपने पास बुलाकर कहा कि मेरे चित्तौड ब्याहे जाने मे राठोडों का सब प्रकार से नुकसान ही हुआ है। रणमल्लने मोकल को मारनेवाले चाचा और मेरा को मारा, मुसलमानों को हराया और मेवाड का नाम ऊँचा किया, परन्तु अन्त मे वह भी मरवाया गया, और आज उसी का पुत्र जोधा निस्सहाय होकर मरुभूमि मे मारा-मारा फिरता है। इस पर महाराणा ने कहा कि मै प्रकट रूप से तो चूडा के विरुद्ध जोधा को कोई सहायता नहीं दे सकता, क्योंकि रणमल्ल ने उसके भाई राघवदेव को मरवाया है, आप जोधा को लिख दें कि वह मडोवर पर अपना अधिकार कर ले, मै इस बात पर नाराज न होऊँगा।"

इससे भी स्पष्ट होता है कि राव रणमल्लजी ने षड्यन्त्रकारियों से मेवाड की रक्षा करने के साथ ही माडू के सुलतान महमूद खिलजी प्रथम को हराकर हर तरह से महाराणाओं का उपकार ही किया था। परन्तु महाराणा कुम्भाजी ने चूडा के पक्षवालों के बहकाने मे आकर उन्हे छल से मरवा डाला। यद्यपि इसके बाद शीघ्र ही महाराणा को अपनी गलती मालूम हो गई, तथापि उस समय तक वह चूडा के दबाव मे जा चुके थे। ऐसी हालत मे राव रणमल्लजी पर झूठा दोष लगाना सूर्यपर धूल उछालने के समान ही प्रतीत होता है।

राव जोधाजी

यह राव रणमल्लजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४७२ की वैशाख वदी ४ (ई० सन् १४१५ की २९ मार्च) को हुआ था।

वि० सं० १४८४ (ई० सन् १४२७) में जिस समय रणमल्लजी ने राव सत्ताजी से मंडोर का अधिकार छीना, उस समय जोधाजी की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी। परन्तु फिर भी यह पिता के साथ रणस्थल में गए थे। इसके बाद वि० सं० १४९० (ई० सन् १४३३) में जब राव रणमल्लजी महाराना मोकलजी की हत्या का बदला लेने को मेवाड़ गए, तब भी यह उनके साथ थे।

वि० सं० १४९५ की कार्तिक वदी ३० (ई० सन् १४३८ की २ नवम्बर) की रात में जैसे ही इन्हें राव रणमल्लजी के धोके से मारे जाने का समाचार मिला, वैसे ही यह अपने भाइयों और ७०० राठोड़-योद्धाओं को साथ लेकर चित्तौड़ से मारवाड़ की तरफ चल दिए। परन्तु इनके चीतरोडी पहुँचते-पहुँचते पीछा करनेवाली मेवाड़ की सेना भी वहाँ आ पहुँची। उस विशाल सेना का संचालक, महाराना कुंभाजी का चचा, स्वयं रावत चूंडा था। इस प्रकार शत्रु के एकाएक आ पहुँचने से दिन-भर तो दोनों तरफ से मारकाट होती रही, परन्तु रात्रि के अंधकार में युद्ध बंद होते ही राठोड़ों ने मारवाड़ का मार्ग लिया। यह देख मेवाड़ की सेना भी इनके पीछे चली। यद्यपि मार्ग में दोनों के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं, तथापि कपासण पहुँचने पर एक बार फिर दोनों तरफ से जमकर तलवार चलाई गई। इसी युद्ध में आहत हो जाने से वरजांग मेवाड़ वालों के हाथ पड़ गया। इस प्रकार शत्रु से लड़ते-भिड़ते

---

१ कर्नल टॉड ने इनका जन्म वि० सं० १४८४ (ई० सन् १४२७) में होना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड एंटिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान भा० २, पृ० ९४७)। परन्तु यह ठीक नहीं है।

२ ख्यातों में लिखा है कि उस समय जोधाजी का चचा (राव चूंडाजी का पुत्र) भीम नशे में होने से पीछे छूट गया। इसका विवाह महाराना के कुटुम्ब में हुआ था। इससे सरदारों ने इसे कैद कर लिया। परन्तु कुछ दिन बाद जोधपुर-राजस्थान के पुरोहित दमा ने पहुँच इसे [illegible] छुड़वा लिया।

३ इसी युद्ध में जोधाजी का भाई पाता मारा गया।

४ यह जोधाजी का चचेरा भाई और भीम का पुत्र था।

गढ़ाऊ—और जिस समय सोमेश्वर की नाल (मार्ग) के पास पहुँचे, उस समय इनके ६०० योद्धा मारे जा चुके थे। परन्तु फिर भी सेनावालों ने पीछा न छोड़ा। यह देख राठोड़ों ने भी वहाँ की तंग घाटी का आश्रय ले एक बार फिर सीसोदियों की सेना का सामना किया, और उसके बहुसंख्यक योद्धाओं को मारकर स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुए।

ख्यातों से प्रकट होता है कि मेवाड़ से चले राठोड़ों के दल में से जोधाजी सहित केवल आठ व्यक्ति ही भिन्न-भिन्न मार्गों से मारवाड़ तक पहुँच सके थे।

इस युद्ध के बाद मेवाड़ की सेना को मंडोर पर अधिकार करने में बाधा देने वाला कोई न रहा। इसी से रावत चूंडा ने आगे बढ़ वहां पर अधिकार कर लिया, और उसकी रक्षा के लिये गोडवाड़ से लेकर मंडोर तक अपनी चौकियाँ बिठा दीं।

उधर जिस समय मेवाड़वाले मंडोर पर अधिकार करने को बढ़े चले आ रहे थे इधर उस समय जोधाजी के माडल पहुँचने पर उनकी भेंट उनके भाई काँधल से हो गई। इसके बाद जोधाजी मय अपने अन्य साथियों के, जो इधर-उधर से आकर साथ हो लिए थे, सोजत और मंडोर की तरफ होते हुए काहूनी (जाँगलू के एक गाँव) की तरफ चले, और वहाँ पहुँचने पर अवकाश मिलते ही इन्होंने अपने पिता राव रणमल्लजी का और्ध्वदैहिक कर्म आदि किया।

जोधाजी के उस तरफ जाने के अनेक कारण थे। इनमें से पहला उस प्रदेश का रेतीला और निर्जल होना था क्योंकि इससे वहां पर शत्रुओं के आक्रमण का भय बहुत कम था। दूसरा चूंडासर आदि आसपास के कुछ प्रदेशों पर पहले से ही

१ ख्यातों में यह भी लिखा है कि यहीं पर चौहान [illegible] (बलू का पुत्र) [illegible] ३०० वीरों के साथ आकर राठोड़ों के शरीक हो गया था। परन्तु इस युद्ध में वह अपने २०० वीरों के साथ मारा गया। इसके बाद उसका पुत्र नरा अपने बचे हुए १०० आदमियों को साथ लेकर मार्ग में जोधाजी से आ मिला और इन्हीं के [illegible] गया। इसी सेवा के कारण जोधाजी ने मंडोर पर अधिकार [illegible]



१५ राव जोधाजी

वि० सं० १५१०-१५४६ (ई० स० १४५३-१४८९)

राठोडो का अधिकार चला आता था। तीसरा जॉगलू के साखले और पूगल के भाटी आदि इनके संबंधी थे।

जब रावत चूडा ने मंडोर का प्रबंध अच्छी तरह कर लिया, तब उसने महाराना कुंभाजी को लिखा कि वह सोजत पर सेना भेज कर मारवाड को सदा के लिये मेवाड-राज्य में मिला सकते हैं। इसी के अनुसार महाराना ने जोधाजी के चचेरे भाई राघवदेव[1] को, सोजत जागीर में देकर, वहाँ पर अधिकार करने के लिये भेज दिया, और उसे यह लालच भी दिया कि यदि वह वहाँ का प्रबंध अच्छी तरह से कर लेगा, तो मंडोर भी उसी के अधिकार में दे दिया जायगा। इस पर राघवदेव ने शीघ्र ही मेवाड की सेना के साथ जाकर सोजत[2], बगडी, कापरड़ा आदि पर अधिकार कर लिया, और विपक्षियो के आक्रमण से उनकी रक्षा करने के लिये चौकडी और कोसाना पर सैनिक-चौकियाँ कायम कर दीं।

इसके बाद नरबद[3] ने, मेवाडवालो की सहायता से, काहुनी पर चढाई की। परन्तु पहले से सूचना मिल जाने के कारण जोधाजी वहाँ से और भी आगे के निर्जल और रेतीले प्रांत में घुस गए। यह देख नरबद को वापस लौटना पडा, और उसके निराश होकर लौटते ही जोधाजी फिर काहुनी चले आए।

कुछ समय बाद जब संबधियों और बांधवो की सहायता से जोधाजी के पास काम के लायक योद्धा एकत्रित हो गए, तब यह शत्रु के अधिकृत गाँवो को लूट कर धन-संग्रह करने लगे, और जैसे-जैसे इनका धन-जन का संग्रह बढता गया, वैसे-ही-वैसे

१ यह मारवाड-नरेश राव चूडाजी का पौत्र और सहसमल का पुत्र था।

२ सोजत का लक्ष्मीनारायण का मन्दिर राघवदेव ने ही बनवाया था।

३ यह राव सत्ताजी का पुत्र था। ख्यातों म लिखा है कि जिस समय नरबद मेवाड मे था, उस समय उसकी दान-वीरता की प्रशंसा सुन महाराना कुंभाजी ने उसकी परीक्षा लेने का विचार किया। इसी से एक दिन उन्होंने अपना आदमी भेज नरबद से उसकी आँख निकाल कर भेज देने को कहलाया। यद्यपि नरबद की एक आँख युद्ध मे पहले ही फूट चुकी थी, और महाराना की इच्छा भी वास्तव में उसकी दूसरी आँख निकलवाकर उसे अंधा करने की न थी, तथापि उसने तत्काल अपनी आख निकालकर महाराना के भेजे नौकर को दे दी। इसकी सूचना मिलने पर महाराना को बडा दुःख हुआ।

इसके बाद महाराना ने नरबद को कायलाने की जागीर दी। यह जागीर संभवत मंडोर पर उनका अधिकार होने के बाद ही दी गई होगी।

यह नवीन उत्साह के साथ अपने विपक्षियों को तंग करने लगे। इसी बीच जोधाजी का चचेरा भाई वरजांग भी महाराना की कैद से निकलकर काहुनी चला आया था।[1]

इस प्रकार लगातार १५ वर्षों के निज के परिश्रम, भाई-बंधुओं के उद्योग और संबंधियों की सहायता से जब जोधाजी का बल खूब बढ़ गया,[2] तब इन्होंने मंडोर पर अधिकार करने का निश्चय किया। इसके लिये सेना के तीन भाग किए गए। एक भाग वरजांग के साथ मंडोर की तरफ भेजा गया। दूसरे भाग ने चाँपा की अधीनता

१ ख्यातों में लिखा है कि युद्ध में जख्मी होकर बेहोश हो जाने के कारण वरजांग को मेवाड़वालों ने कैद कर लिया था। परन्तु वहाँ पर वह अपने जख्मों पर बाँधी जानेवाली पट्टियों को इकट्ठा करता रहता था। जब उसके घाव भर गए, और उसके पास काफी पट्टियाँ जमा हो गईं, तब वह उनकी रस्सी बटकर उसी के द्वारा जेल के बाहर निकल गया, और मार्ग में अपना विवाह गागरून के स्वामी खीची (चौहान) चाचिगदेव की कन्या से कर जोधाजी के पास चला आया।

२ मंडोर पर अधिकार करने में जोधाजी को इनके भाइयों, बंधुओं मल्लानी के राठोड़ों, सिवाने के जेतमालोतों, पोकरन के पोकरना राठोड़ों, सेतरावा के देवराजोतों, संबंधियों-माँखला हडबू, रूण के सांखलों, ईदावाटी के ईदों, सेखाला (शेरगढ़ परगने) के गोगादे चौहानों, गागरून के खीचियों, बीकपुर और पूगल के भाटियों, भाटी रानुसाल (रणमल्लजी ने इसे चित्तौड़ का किलेदार बनाया था। इसकी मृत्यु रावत चूंडा के हाथ से हुई थी।) के पुत्र (बादशाही कृपा पात्र) अर्जुन, जैसलमेर रावल केहरजी के पौत्र (कलकर्ण के पुत्र) भाटी जैसा आदि ने सहायता दी थी।

ख्यातों में लिखा है कि यह जैसा हडबू का भानजा और भांयडों का स्वामी था। जोधाजी ने उसकी सहायता की एवज में उसे खास मंडोर को छोड़ उसके साथ के अन्य सारे प्रदेश का चौथा हिस्सा देने का वादा किया था। परन्तु जब उसकी बहन का विवाह जोधाजी के पुत्र सूजाजी से हुआ, तब इन्होंने वह हिस्सा उससे दहेज में माँग लिया। यद्यपि इससे जोधाजी को मंडोर राज्य पर अधिकार कर लेने पर भी उसका चौथा भाग जैसा को न देना पड़ा, तथापि जैसा नाराज होकर महाराना के पास मेवाड़ चला गया, और इनके कई बार बुलवाने पर भी लौटकर न आया। यह देख जोधाजी ने उसके पुत्र जोधा को बालरवा जागीर में दिया।

ख्यातों में यह भी लिखा है कि जिस समय जोधाजी, सेतरावे के स्वामी (देवराज के पुत्र) रावत लूणकर्ण के पास सहायता माँगने गए, उस समय उसने इधर-उधर की बातें कर इन्हें टालना चाहा। परन्तु उसकी स्त्री ने, जो रिश्ते में जोधाजी की मौसी थी, इस बात की सूचना मिलते ही उन्हें जनाने में बुलवा लिया, और जोधाजी को चुने हुए १४० घोड़े देने की आज्ञा चुपचाप बाहर भिजवा दी।

मे कोसाना पर हमला किया, और तीसरा भाग स्वयं जोधाजी के सेनापतित्व में चौकडी पर चला[1]।

कोसाना और चौकडी पर के हमले अर्द्धरात्रि मे अचानक किए गये थे। इससे वहाँ पर की मेवाड की सेनाओ मे शीघ्र ही गडबड मच गई, और वे युद्ध मे मुखियाओ के मारे जाते ही अपना साज-सामान छोड भाग खडी हुई। इसके बाद शीघ्र ही दोनो भाई (जोधाजी और चाँपा) अपने विजित प्रदेशो का प्रबंध कर बरजाँग के पास जा पहुँचे, और प्रातःकाल होने के पूर्व ही तीनो ने मिलकर मडोर पर भी अधिकार करलिया[2]। यह घटना वि० स० १५१० की है।

राव रणमल्लजी की मृत्यु से लेकर मडोर विजय करने तक राठोडो की तरफ से अपने देश की स्वाधीनता के लिये जितने कार्य किए गए थे, उन सबमे जोधाजी ने ही मुख्य भाग लिया था, और इनके १५ वर्ष के लगातार परिश्रम से ही यह विजय प्राप्त हुई थी। इसलिये मडोर के किले पर अधिकार होते ही इनके बडे भ्राता अखैराज ने तत्काल अपने अँगूठे को तलवार से चीरकर उसके रुधिर से जोधाजी के ललाट

१ ख्यातों से ज्ञात होता है कि जिस समय चौकडी पर आक्रमण हुआ था, उस समय राघवदेव भी वही था। परन्तु वह मेवाडवालो की पराजय हो जाने से भागकर सोजत चला गया।

२ मडोर के युद्ध मे राना कुभाजी के चचा रावत चूडा के दो पुत्र कुतल और सूआ, चचा का पुत्र आका और आहाडा हिंगोला आदि मारे गए। हिंगोला पर बनी छतरी बालसमद तालाब पर अब तक विद्यमान हे।

उदयपुर के इतिहासलेखको ने लिखा है कि महाराना कुभाजी ने, अपनी दादी हसाबाई के समझाने से, अपने चचा रावत चूडा से कुछ न कह सकने पर भी, जोधाजी को मडोर पर अधिकार कर लेने का इशारा करवा दिया था। परन्तु उनका यह लिखना केवल महाराना की पराजय को छिपाने का प्रयत्न करना है, क्योंकि वास्तव म यह विजय जोधाजी ने युद्ध के बाद ही प्राप्त की थी।

किसी-किसी ख्यात मे यह भी लिखा है कि राव वीरमजी का एक विवाह मागलिया शाखा के सीसोदियों के यहाँ हुआ था। इसी से मेवाड की देख भाल के लिये वहाँ रहने के समय रणमल्लजी के और मागलिया कल्याणसिंह के बीच घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। इस घटना के समय यही कल्याणसिंह मडोर का कोतवाल था। इसने पुरानी मैत्री का विचार कर मडोर के किले का द्वार खुलवा दिया। इसी से जोधाजी को उस पर अधिकार करने मे अधिक विलम्ब न लगा।

पर राज-तिलक लगा दिया[1]। इस पर जोधाजी ने भी मेवाड़वालों से छीन कर बगडी का अधिकार उसे वापस सौंप देने की प्रतिज्ञा की।

इस प्रकार अपने पैतृक-राज्य को प्राप्त कर राव जोधाजी ने अपने भ्राता चाँपा को कापरडे पर और वरजाँग को रोहट पर अधिकार करने की आज्ञा दी। उन्होंने भी शीघ्र ही दल-बल सहित वहाँ पहुँच उन स्थानों पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद वीर वरजाँग रोहट से आगे बढ पाली, खैरवा आदि विजय करता हुआ नाडोल और नारलाई (गोडवाड-प्रांत) तक जा पहुँचा। इसी युद्ध-यात्रा में मेवाड़ की सेना का सेनापति (रावत चूडा का पुत्र) माँजा मारा गया। इससे शत्रुओं का उत्साह बिलकुल शिथिल पड गया।

इसी बीच स्वयं जोधाजी ने राघवदेव को भगा कर सोजत ले लिया[2], और उस नगर के मेवाड के निकट होने से वहीं पर अपना निवास नियत कर, नए भरती किए सैनिकों द्वारा, मेवाड की तरफ के मार्गों की रक्षा का प्रबंध शुरू किया। इसी अवसर पर इन्होंने, अपनी की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार, बगडी का अधिकार अपने बडे भाई अखैराज को सौंप दिया।

सोजत से भगाए जाने पर राघवदेव ने एक बार फिर मेवाड़ के बिखरे हुए सैनिकों को इकट्ठा कर नारलाई में वरजाँग से लोहा लिया। परन्तु अंत में वरजाँग के साथियों की मार सहने में असमर्थ हो उसे मैदान से भागना पडा। इस युद्ध में वरजाँग स्वयं अधिक घायल हो गया था। इसकी सूचना मिलते ही जोधाजी ने अपने भाई बैरसल को वहाँ के प्रबंध के लिये भेज दिया, और वरजाँग को रोहट जाकर इलाज करवाने की आज्ञा दी। बैरसल ने वहाँ पहुँच मेवाड के मार्गों को रोक दिया, और घाणेराव को उजाड कर वहाँ के निवासियों को गूंदोच में ला बसाया। वरजाँग भी तीन मास में ठीक होकर फिर गोडवाड जा पहुँचा।

---

१ उसी दिन से मारवाड़ में यह प्रथा चली है कि जब कभी किसी महाराजा का स्वर्गवास होता है, तब बगडी जब्त करने की आज्ञा दे दी जाती है, और नए महाराजा के गद्दी बैठने के समय बगडी ठाकुर द्वारा अपना अँगूठा चीरकर रुधिर का तिलक कर देने पर वह आज्ञा वापस ले ली जाती है।

(यह रुधिर से तिलक करने की प्रथा स्वर्गवासी महाराजा सरदारसिंहजी के समय उठा दी गई थी।

२ इसी बीच जोधाजी ने अपने भाई काँधल को मंडत पर अधिकार करने के लिये भेज दिया।

उन दिनों महाराना कुंभाजी और मालवे के सुलतान के बीच झगडा छिडा हुआ था। इसी से मारवाड-राज्य के हाथ आकर निकल जाने पर भी वह उस पर फिर से अधिकार करने के लिये नई सेना न भेज सके[1]।

इसप्रकार गोडवाड तक अपना अधिकार हो जाने से राव जोधाजी ने आगे बढ मेवाड पर हमला करने का इरादा किया। परन्तु इसी बीच वरजॉग के और जसोल के रावल वीदा के बीच घोडों के लिये झगड़ा हो गया। इसमें वीदा और उसका पुत्र मारा गया[2]।

इसके बाद शीघ्र ही सोजत में चुने हुए योद्धाओं की दो सेनाएँ तैयार की गई। उनमें से एक का सेनापतित्व कॉधल को और दूसरी का वरजॉग को सौंपा गया। राव जोधाजी का इरादा सिरियारी के मार्ग से मेवाड पर आक्रमण करने का था, परन्तु इसी समय, गुजरात के बादशाह से धन की सहायता मिल जाने के कारण, नरवद मंडोर पहुँचा, और वहाँ के दुर्ग-रक्षकों को लालच देकर किले में घुस बैठा। इसकी सूचना मिलते ही राव जोधाजी ने कॉधल के दल को मंडोर की तरफ जाने की आज्ञा दी, और साथ ही एक दूत भेजकर मंडोर के दुर्ग-रक्षकों को कहलाया कि हमने मंडोर पर फिर से अधिकार करने को सेना रवाना करदी है। परन्तु उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही तुम्हें सोच लेना चाहिए कि नरवद के समान अंधे स्वामी का आश्रय लेकर तुम लोग अधिक समय तक हमारा विरोध करने में सफल हो सकोगे या नहीं? यह बात उन लोभ में पडे योद्धाओं की समझ में भी आ गई,

१ परन्तु किसी-किसी ख्यात में कुंभाजी का दुबारा मंडोर-विजय करने के लिये चढाई करना और आगे वर्णन की गई राठोडों के गाडियों में बैठकर लडने को जानेवाली घटना का इस अवसर पर होना लिखा है।

२ ख्यातों में लिखा है कि एक बार वरजॉग के कुछ घोडे, जो जंगल में चरा करते थे, रोहट में तलवाडे की तरफ चले गए, और उन्हें जसोल के रावल वीदा के पुत्र ने पकड लिया। इसकी सूचना मिलने पर वरजॉग के आदमी उन्हें ले आने को वहाँ गए। परन्तु रावल के पुत्र ने उन्हें देने से साफ इनकार कर दिया। इस पर वरजॉग को तलवाडे पर चढाई करनी पडी। उस समय रावल वीदा कहीं बाहर गया हुआ था, इससे वरजॉग का मुकाबला उसके पुत्र से हुआ। कुछ देर के युद्ध में कुँवर मारा गया, और विजयी वरजॉग अपने घोडे लेकर वापस चला आया। परन्तु बाहर से लौटने पर जब वीदा को इस घटना की खबर मिली, तब उसने कुँवर का बदला लेने के लिये वरजॉग पर चढाई की। रोहट के पास युद्ध होने पर वीदा भी मारा गया।

और उन्होंने नरबद का साथ छोड़ जोधाजी के सैनिकों को किला सौंप देने में ही अपनी कुशल समझी। उनके इस विचार की सूचना मिलने पर नरबद स्वयं गुजरात को लौट गया। परन्तु वह लौटकर बादशाह के पास न पहुँच सका। मार्ग में ही उसका देहान्त हो गया। कॉंधल के वहाँ पहुँचने पर बिना लूट-मिट के मंडोर का किला उसे सौंप दिया गया। इस पर वह भी वहाँ का प्रबन्ध अधिक विश्वास-योग्य पुरुषों को सौंप सोजत लौट आया।

इसके बाद जोधाजी ने मेवाड़ पर चढ़ाई की। ख्यातों में लिखा है कि इन्होंने रात के समय चित्तौड़ पर आक्रमण कर वहाँ के किले के द्वार को जला दिया।[1] मेवाड़ के गाँवों को लूट पीछोला तालाब (मेवाड़ की आधुनिक राजधानी उदयपुर के पास) तक धावा मारा,[2] और लौटते हुए यह मेवाड़ के सेठ पद्मचन्द को पकड़ लाए।[3]

इस घटना ने महाराना को राव जोधाजी पर चढ़ाई करने के लिये लाचार कर दिया। इसी से वह इस अपमान का बदला लेने के लिये दल-बल-सहित नारलाई (गोडवाड़-प्रांत) में पहुँचे। राव जोधाजी इनके लिये पहले से ही तयार थे। इनसे जैसे ही इन्हें कुंभाजी की चढ़ाई का समाचार मिला, वैसे ही इन्होंने, उनके मुकाबले के लिये, पाली में अपनी सेना इकट्ठी की, और सब प्रबन्ध हो जाने पर यह वहाँ से आगे बढ़ नाडोल (गोडवाड-प्रांत) में जा पहुँचे। उस समय रावजी के साथ करीब बीस हजार रणबाँकुरे राठोड़ योद्धा थे। परन्तु इतने घोड़ों का प्रबन्ध न हो सकने के कारण उनमें से बहुत-से बैल-गाड़ियों पर बैठकर रणक्षेत्र की तरफ गए थे।[4] इन्हें देख मेवाड़वालों को निश्चय हो गया कि ये राठोड़ वीर साधारण मार-काट मचाकर लौट जाने के इरादे से न आकर मरने-मारने का निश्चय करके ही आए हैं। यह देख सॉंखला नापा ने कुंभाजी को समझाया कि इस समय राव जोधाजी

१. 'चीतोड़ तणा चूडाहर किमाड़ा परजालिया।' (प्राचीन छप्पय)

२. 'जोधे जाम आपरा पीछोले पाया।' (रामचन्द्र ढाढी कृत नीसाणी)

३. 'पद्मचंद सेठ लायौ पकड़ दाह मेवाड़ा उरदयौ।' (प्राचीन छप्पय) इस सेठ ने सेवा पहुँचने पर बहुत सा द्रव्य भेंट कर अपना छुटकारा हासिल किया था। इसी धन से जोधपुर का किला बनवाना प्रारंभ किया गया, और सेठ की यादगार में किले के पास पदमसर नामक तालाब बनवाया गया।

४. 'जोधातणी साथुं जाता गाडा बैहाथिया गया।' (प्राचीन गात)

से विरोध बढाना उचित न होकर मेल कर लेना ही अधिक उत्तम है। क्योंकि इधर यह अपने पिता का वैर लेने को तुले हुए हैं, और उधर मालवे के सुलतान से झगडा चल रहा है[1]। ऐसे समय राठोडो से सधि कर लेना ही उचित है। राठोडो के गाडियो मे बैठकर रण-क्षेत्र मे आने से यह तो निश्चय ही है कि वे मरने-मारने का इरादा करके आए है। ऐसी हालत मे हम जीते भी, तो यह विजय बहुत महँगी पडेगी। इसके अलावा इस युद्ध मे हमारे योद्धाओ के हताहत हो जाने से मालवे के सुलतान को मेवाड को विध्वस करने का मौका मिल जायगा। यह बात महाराना कुभाजी की समझ मे भी आ गई। इससे उनके आज्ञानुसार राजकुमार ऊदा (उदयसिंह)जी और सॉखला नापा ने राव जोधाजी के शिविर में पहुँच, बहुत-सी कहा-सुनी के बाद, सधि की शर्तें तय कर डालीं[2]। बॉवल (बबूल) के पेडवाली पृथ्वी जोधाजी को सौंप दी गई, और ऑवलवाली जमीन महाराना के अधिकार मे रही[3]। इस प्रकार आपस मे सधि हो जाने पर कुभाजी लौट कर चित्तौड चले गऍ, और राव जोधाजी ने खेरवा पहुँच सीधल राठोडो पर सेना भेजी[4]। उसने शीघ्र ही उनके पाली-परगने के ३० गॉव छीन लिए।

इसके बाद सब झगडो से निपट जाने पर वि० स० १५१५ (ई० सन् १४५८) में मडोर के किले मे राव जोधाजी का शास्त्रानुसार राज्याभिषेक किया गया, और

१ हि० सन् ८४६ (वि० स० १५००=ई० सन् १४४३) और हि० सन् ८६१ (वि० स० १५१३=ई० सन् १४५६) के बीच की सुलतान महमूद खिलजी की मेवाड पर की चढाइयों मे इसकी पुष्टि होती है।

२ ख्यातों में लिखा है कि सधि के समय महाराना कुम्भाजी ने अपने एक बधु की कन्या का विवाह राव जोधाजी के साथ कर दिया था।

३ किसी-किसी ख्यात मे इस घटना का समय वि०स० १५१२ (ई०सन् १४५५) लिखा है।

४ 'राणा कुम्भा भजिया, वीर खेत चलाया,
'नाडूलाई निदसिया, दम्मामावाया।'
(ढाढी रामचद्र-कृत नीशाणी) इसमे कवि ने कुछ अतिशयोक्ति अवश्य कर दी है।

५ राव जोधाजी की मेवाड पर की चढाई के समय इन्होंने साथ देने से इनकार कर दिया था। इसी से यह सेना भेजी गई थी। ख्यातों के अनुसार यह सेना वीसलपुर के स्वामी जसा पर गई थी।

ख्यातों मे जोधाजी का जैतारण के सीधलों को हराकर उन्हीं को अपनी तरफ से वहा का अधिकार देना भी लिखा मिलता है।

जिन लोगों ने विपत्ति के समय सहायता दी थी, उन सबको यथायोग्य दान और मान से संतुष्ट किया गया। कहते हैं, इसी समय इन्होंने मंडोर के पास अपने नाम पर जोधेलाव-नामक तालाब बनवाया था।

वि० सं० १५१६ की ज्येष्ठ-सुदी ११ शनिवार (ई० सन् १४५९ की १२ मई) को राव जोधाजी ने मंडोर से ६ मील दक्षिण में नया किला बनवाना प्रारंभ किया[1], और उसी के पास अपने नाम पर जोधपुर-नगर आबाद किया।

---

१ ख्यातों में लिखा है कि पहले जोधाजी का विचार मसूरिया नामक पर्वत-शृंग पर किला बनाने का था। परन्तु वहां आसपास जल की कमी होने से वह विचार स्थगित करना पड़ा। उसी समय उस पर्वत-शृंग पर रहनेवाले एक फकीर ने उन्हें चिड़िया नामक पर्वत-शृंग पर किला बनवाने की सलाह दी। यह बात रावजी को भी पसंद आ गई। कहते हैं, इसके एवज में उस फकीर ने रावजी से दो प्रार्थनाएँ की थीं। एक यह कि रामदेवजी के दर्शनार्थ रुणेचा जानेवाले यात्री जोधपुर से निकलने पहले उसके आश्रम पर आवें, और दूसरी यह कि राज्य की तरफ से साल में दो बार उसके आश्रम में भेट भेजी जाय। रावजी ने उसकी ये दोनों प्रार्थनाएँ स्वीकार करलीं।

प्रचलित प्रथा के अनुसार जोधपुर के किले की दीवार के नीचे दो जीवित पुरुष गाड़े गए। ये जाति के चमार थे। इसकी एवज में उनकी सन्तान को कुछ मकान सुविधार्थ और भूमि दी गई। किसी ख्यात में किले की दीवार के नीचे राजिया नामक चमार का गाड़ा जाना लिखा है।

प्रसिद्धि है कि जिस पर्वत पर जोधपुर का किला बनवाया गया है, उस पर के झरने के पास चिड़ियानाथ नामक एक योगी रहा करता था। परन्तु जब उसका आश्रम किले के भीतर ले लिया गया, तब वह आसपास जल का अभाव रहने का शाप देकर यहां से तीन कोस अग्निकोण में स्थित पालासनी गांव में चला गया। वहीं पर उसकी समाधि बनी है। राव जोधाजी को जब योगी के इस प्रकार अप्रसन्न होकर जाने का समाचार मिला, तब इन्होंने (आधुनिक सरदार मारकेट के पास) उसके लिये एक मठ बनवाकर उसे वापस ले आने के लिये अपने आदमी भेजे। परन्तु उसने कुछ दिन बाद आने का वादा कर उन्हें लौटा दिया। अंत में वह आकर कुछ दिन उस मठ में ठहरा, और उसी के पास उसने एक शिवालय बनवाया। उसी योगी के कहने से जोधाजी ने नित्य एक रोट बनवाकर किसी साधु-सन्यासी को देने की प्रथा प्रचलित की थी। (वि० सं० १९७१ [ई० सन् १९१४] में, राज्य की तरफ से, उस शिवालय का जीर्णोद्धार किया गया।)

जिस झरने के पास वह योगी रहा करता था, उसके निकट ही राव जोधाजी ने एक कुण्ड और एक छोटा-सा शिव का मंदिर बनवा दिया था। यद्यपि आजकल यह झरनेश्वर महादेव का स्थान बहुत कुछ सुन्दर बना दिया गया है, तथापि यहां के झरने का जल कम हो गया है।

ख्यातों में वि० सं० १५१५ की ज्येष्ठ-सुदी ८ को बलिदान देकर ज्येष्ठ सुदी ११ को जोधपुर के किले का प्रारंभ करना और ज्येष्ठ सुदी १३ को उसके द्वार की प्रतिष्ठा करना लिखा मिलता है। परन्तु यह श्रावणादि संवत् है। इसलिये उस समय चैत्रादि संवत् १५१६ था।



जोधपुर का किला

यह किला, जो पृथ्वीतल से ४०० फुट ऊँची पहाड़ी पर बना है, राजपूताने का एक सुन्दर दुर्ग है। इसकी दीवारों की ऊँचाई २० से १२० फुट और मुटाई १२ से ७० फुट तक है। इस दुर्ग की लम्बाई ५०० गज और चौड़ाई २५० गज तक है।

इसी समय इनकी एक रानी हाडी जसमादेवी ने किले के पास 'रानीसागर'-नामक तालाब बनवाया¹, और दूसरी रानी सोनगरी (चौहान) चाँदकुँवरी ने एक बावली बनवाई। यह 'चाँदबावडी' (चौहान-बावडी) के नाम से प्रसिद्ध है।

ख्यातो के अनुसार वि० स० १५१६ की आषाढ-सुदी ६ (ई० सन् १४५९ की ९ जून) को इस नवीन किले की प्रतिष्ठा की गई।

इसके बाद राव जोधाजी ने अपने पुत्र सातल को फलोदी और नींबा को सोजत का प्रबंध करने के लिये भेजा।

ख्यातों मे यह भी लिखा है कि किले के द्वार की स्थापना का मुहूर्त निश्चित हो जाने पर, उपयुक्त शिला के समय पर न लाई जा सकने के कारण, वही पास मे स्थित एक ऊँट चरानेवाले के बाडे से द्वार की शिला लाकर स्थापित की गई थी। उस शिला मे बाडे के द्वार को बद करने के लिये लगाए जानेवाले डडों के छेद बने हैं।

यह स्थान जोधाजी के फलसे के नाम से प्रसिद्ध है। घोडे पर बैठकर किले मे जानेवालों में से महाराज लोग लोहापोल के आगे की किलेदार की चौकी के आगे के प्यादबख्शियो के दालान के सामने, रावराजा लोग लोहापोल के पास, सिरायत (लाइन के सिरे पर बैठनेवाले) सरदार जोधाजी के फलसे के आगे (लाठ के पास ?), हाथके कुरबं वाले जोधाजी के फलसे के भीतर, ताजीम और 'बाहपँसाव' वाले, जिनको सामने की 'ओल' (लाइन) मे बैठने और मरने पर रथी के आगे घोडा निकालने का अधिकार है, वे जोधाजी के फलसे के बाहर, अन्य ताजीम और बाहपसाव वाले चौहानों के दालान के पहले कोने क पास या इमरतीपोल के पास, दीवान और बख्शी के दरजे के मुत्सद्दी इमरती पोल की अगली महराब के नीचे और बाकी मुत्सद्दी इसके पीछे घोडे से उतर जाते हैं। परन्तु महाराजा की इच्छानुसार इसमे परिवर्तन होता रहता है।

किसी-किसी ख्यात मे करनीजी नाम की चारणजाति की प्रसिद्ध महिला द्वारा किले का स्थान बताया जाना और उसी के द्वारा उसका शिलारोपण होना भी लिखा है।

१ इस रानी ने एक कुआ भी खुदवाया था।

(१) जिनके झुक कर अभिवादन करने पर महाराजा अपना हाथ अपने सीने तक लाकर अभिवादन ग्रहण करते हैं।

(२) जिनका अभिवादन महाराजा खडे होकर ग्रहण करे। इसके दो भेद हैं। इकहरी ताजीम वालों के आने के समय ही महाराजा खडे होकर अभिवादन ग्रहण करते हैं और दुहेरी ताजीम वालों के आते और जाते दोनों समय महाराजा खडे होते हैं।

(३) जिनके झुक कर पैरों पर हाथ लगाने के समय महाराजा अपना हाथ उनके कधे पर लगाते हैं।

इसी वर्ष जिस समय जोधाजी साँखला नापाजी की सहायता[1] के लिये जांगलू की तरफ गए, उस समय इन्होंने अपनी माता के बनवाए 'कोडमदे-सर'[2]-नामक तालाब की प्रतिष्ठा कर वहाँ पर एक कीर्ति-स्तम स्थापित किया, और वहाँ से लौटकर अपने कुल-पुरोहित को एक नया दानपत्र लिख दिया[3]।

१ कहते हैं, इस सहायता की आवश्यकता बल्लोचों के आक्रमण के कारण पड़ी थी।

२ यह तालाब इनकी माता कोडमदेवी ने बनवाया था। वह बीकूँपुर और पूँगल के स्वामी भाटी केल्हण की कन्या थी, और रणमल्लजी के मारे जाने की सूचना मिलने पर इसी तालाब के तट पर सती हुई थी। वहाँ पर स्थापित कीर्ति-स्तंभ में लिखा है —

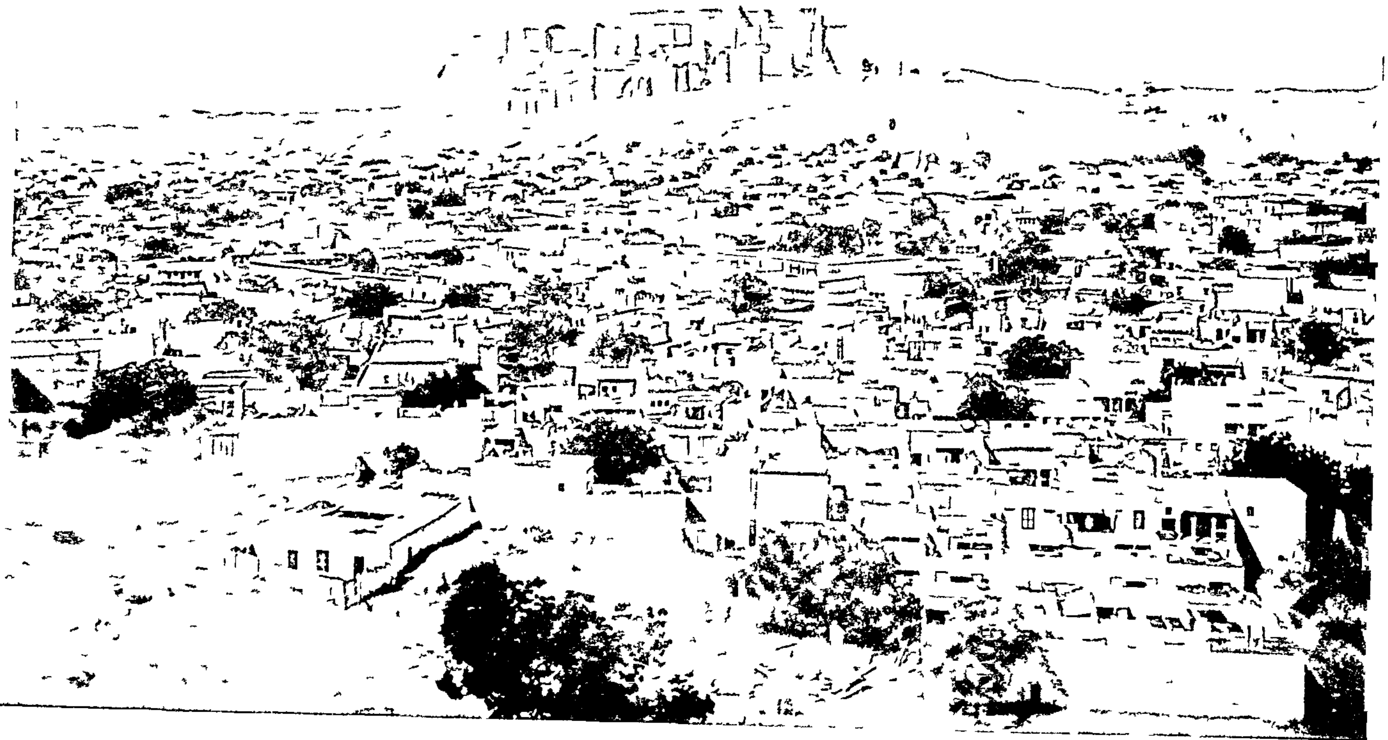
सवत् १५१६ [वर्षे] सा(शा)के १३८ [१]
प्रवर्तमाने (ने) [महा] मागल्य
भाद्रवा सु [दि] [६] सोमदिने
हस्त नि (न) [क्षत्रे] सुक [ल] (शुक्ल) जो
(यो) गे
[कौ] लव [करणे]
राठ [ड] [म] हाधिराय श्री
रा [य श्री] जोधा
राय श्रीरिणमल सु [त] त [डा]
उ [ग] पत्रिस्टा(प्रतिष्ठा)कार (रि) ता। माता श्रीकोडमदे [नि] मिति (त्त) की-
र्रत (र्त्ति) स्तभ [ ] था[पि]ता (स्थापित)
सु (शु)
भ भवतु (तु) कल्यण (ल्याण) म
स्त (स्तु)

(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १३ [ई० सन १६१७] पृष्ठ २१७ २१८)

ख्यातों में जोधाजी द्वारा राव रणमल्लजी के बारहवें दिन के कृत्य का भी इसी तालाब पर किया जाना लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि यह तालाब उस समय के पूर्व ही बन चुका था।

कुछ ख्यातों में इस तालाब का भाटी सादा की स्त्री कोडमदेवी की यादगार में उसके श्वशुर द्वारा बनवाया जाना लिखा है। परन्तु यदि वास्तव में ऐसा होता, तो राव जोधाजी को उसकी प्रतिष्ठा करवाकर वहाँ पर कीर्ति स्तभ स्थापित करवाने की आवश्यकता ही न होती।

३ यद्यपि यह ताम्रपत्र, जिस पर उपर्युक्त दानपत्र लिखवाया गया था, इस समय नष्ट हो चुका है, तथापि राजा उदयसिंहजी की सनद से ज्ञात होता है कि वि० स० १६३५



जोधपुर नगर का ऊपरी दृश्य
इस नगर की स्थापना राव जोधाजी ने वि० स० १५१६ (ई० स० १४५९) मे की थी।

वि० स० १५१७ (ई० सन् १४६०) मे इन्होने मडोर की चामुडा[1] की मूर्ति को मॅगवाकर जोधपुर के किले मे स्थापित किया, और अगले वर्ष (वि० स० १५१८=ई० सन् १४६१ मे) अपने पुत्र वरसिंह और दूदा को मेड़ता नामक नगर पर अधिकार करने के लिये भेजा। उस समय यह नगर और प्रांत अजमेर के सूबेदार[2] के शासन मे था। परन्तु दोनो भाइयो ने वहाँ पहुँच उक्त नगर के साथ ही उस प्रांत के ३६० गॉवो पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद प्राचीन बस्ती के दक्षिण में नया मेड़ता नगर बसाया[3] गया।

इस प्रकार राज्य के कामो से निबट कर इसी वर्ष (वि० स० १५१८=ई० सन् १४६१ मे) राव जोधाजी ने गया की यात्रा की। मार्ग मे जिस समय यह आगरे पहुँचे, उस सयम बादशाह बहलोल लोदी के कृपापात्र राठोड कर्णा[4] ने इन्हे अपना

(ई० सन् १५७६) तक यह विद्यमान था। आगे एक पुरानी वही से इस दानपत्र की नकल उद्धृत की जाती है-

श्रीमहामायाजी — श्रीरामजी

श्रीनागणेचीयाजी — श्रीकीसनजी — सही

महारावजी श्रीजोधाजी वचनायतं तथा कनोज सु सेवग लुवारिसी जातरो सारसुत ओजो ल्होड सेवा लेने आयौ सु राठौड वसरा सेवगाऐ छै ठेठु कदीम सु मुलगा यारो सेवगपणो इणा रो है। पहली वसरै माताजी श्रीआदपखणीजी चक्रेश्वरीजी पछै रावजी श्रीधूहडजी नैं वर दीधो नागरा रूप सु दरसण दीधौ तरे नागणेचिया कहाणी सु धूहडजीरो तांबापत्र ओजा रिषबदेव श्रीपतरा बेटा कने थौ सु वाचने मैं ही तांबापत्र करदीधौ उण मुजब राठौड वसरे सेवग पणारौ लवाजमो जाया परणिया नेग दापौ राजलोक रावलै करै सु वरत वहूलियौ सरवेत इणारो नेग है ने राठौड वस गोतमस गोत्र अकरूर साखारी लार इतरा जणा छै पीरोत सेवड ओजा सेवग लोड मथेरणा रुदरदेवा सो देस परदेस माहरी आल ओलाद पीढी दरपीढी ओजा रिषबदेव रौ आल ओलाद ने सेवग कर मानसी माहरो आल ओलाद असलवस होसी सु इणानु दत देसी। लिखत प। हरीदास आईदासोत महारावजी रा हुकम सु स० १५१६ रा मीगसर सुद २ दुवै श्रीमुख परवानगी राठौड करमसी मुकाम सुखवास जोधपुर। सिलोक। सहदर्त परदत जे लोपर्ती वीसधरा ते नरा नरग जावती जवलग चद दीवाकरा ॥ १ ॥ साख छै॥ दुवो॥ अखरज चापो करमसी सको मायारी साख, राव समप्यो रीत सु उथपै तिका तलाक॥२॥

१. यह पडिहारों की कुल-देवी थी। परतु राठौडों ने भी मडोर का राज्य प्राप्त कर इसकी उपासना प्रारभ कर दी थी।

२. उस समय यह माडू के बादशाह की तरफ से नियत था।

३. ख्यातों म इस घटना का समय वि० स० १५१६ (ई० सन् १४६२) लिखा है।

४ यह कन्नौज के राठोड़-घराने का था, और बहलोल लोदी ने इसे शम्साबाद (खोर) का सूबेदार बना दिया था (तारीख-फ़रिश्ता, पृष्ठ १७४ और १७६)।

बधु समझ हर तरह से इनका आदर सत्कार किया। उसी के द्वारा यह बादशाह से मिले, और समय पर सहायता देने का वादा कर इन्होंने यात्रियों पर लगनेवाला शाही कर माफ करवा दिया।

यहाँ से आगे बढ़ जब यह गया की तरफ चले, तब मार्ग में इनकी मुलाक़ात जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह से हुई। बातचीत के सिलसिले में इन्होंने लौटते समय ग्वालियर के आस-पास के उपद्रवियों को दंड देने का वादा कर गया के यात्रियों पर लगनेवाला कर भी छुड़वा दिया।

घोसूंडी (मेवाड़) से मिले महाराणा रायमल्ल के वि० सं० १५६१ (ई० सन् १५०४) के लेख में लिखा है—

"श्रीयोधक्षितिपतिरुग्रखड्गधारा-
निर्घातप्रहतपठाणपारसीक ॥ ५ ॥
पूर्वानतार्प्सीद्गयया विमुक्तया
कारया सुवर्णैर्विपुलैर्विपश्चित ।"

अर्थात्-जोधाजी की तलवार से अनेक पठान मारे गए। इन्होंने गया के यात्रियों पर लगनेवाले कर को छुड़वा कर अपने पूर्वजों को और काशी में सुवर्ण दान कर वहाँ के विद्वानों को संतुष्ट किया।

ख्यातों के अनुसार इन्होंने प्रयाग, काशी, गया और द्वारका आदि तीर्थों की यात्रा की, और लौटते हुए हुसैनशाह के शत्रुओं की गढ़ियों को नष्ट-भ्रष्ट कर अपनी प्रतिज्ञा निबाही।

इसी बीच भाद्राजन के सींधल आपमल ने राव जोधाजी के कुंवर शिवराज को सिवाना दिलवाने का बहाना कर वहाँ के स्वामी बिजा को मार डाला, और सिवाने पर स्वयं अधिकार कर लिया। परन्तु जैसे ही इसकी सूचना बिजा के पुत्र देवीदास को मिली, वैसे ही उसने जाकर फिर से सिवाना छीन लिया। जोधपुर लौटने पर

रामपुर (एटा-जिले में) की तवारीख में लिखा है कि १५ वीं शताब्दी में जब जौनपुर के बादशाह ने आठवें राजा कर्ण को शम्साबाद से निकाल दिया, तब वह उसेत (बदायूँ-जिले) में किला बनवाकर रहने लगा। वहा पर उसकी तीन पीढ़ी ने राज्य किया।

१. उस समय गया पर हुसैनशाह का अधिकार था।

२. जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० ५६, भ० १, नं० २।

जब रावजी को इस झगड़े का हाल मालूम हुआ, तब यह आपमल से नाराज हो गए। यह देख देवीदास ने भाद्राजन पर चढ़ाई कर दी, और आपमल को मार पिता का बदला लिया।

वि० स० १५२१ (ई० सन् १४६४) मे (बीसलपुर का स्वामी) सींधल जैसा पाली के मवेशी पकड़ ले गया। इसकी सूचना मिलते ही कुँवर नींबा[1] ने सोजत से उस पर चढाई की, और मार्ग में (वटोवड़ा गाँव के पास) उसे जा पकड़ा। यद्यपि युद्ध में सींधल जैसा मारा गया, तथापि अधिक घायल होजाने के कारण पाँच महीने बाद कुँवर नींबा का भी स्वर्गवास हो गया। इस घटना की सूचना से रावजी को बहुत दु ख हुआ। परन्तु अत मे इन्होने ईश्वर की इच्छा ऐसी ही समझ धैर्य धारण किया, और कुँवर सूजाजी[2] को फलोदी से बुलवाकर सोजत का प्रबध करने के लिये भेज दिया।

इसी वर्ष छापर-द्रोणपुर के स्वामी मोहिल अजितसिंह ने अपने मन्त्रियो के बहकाने में आकर[3] मारवाड में उपद्रव करना शुरू किया। कुछ दिन तक तो राव जोधाजी, उसे अपना दामाद समझ, चुप रहे। परन्तु जब मामला बढ़ता ही गया, तब लाचार हो इन्हे उपद्रव को दबाने के लिये सेना भेजनी पड़ी। गगराणे के पास मुक़ाबला होने पर अजितसिंह मारा गया, और उसका भतीजा बछराज छापर-द्रोणपुर का स्वामी हुआ।

१ सोजत का कोट इसी ने बनवाया था।

२ यह अपने बडे भाई सातलजी के पास फलोदी मे रहा करते थे।

३ ख्यातों मे लिखा है कि वि० स० १५२१ (ई० सन् १४६४) मे अजितसिंह अपनी सुसराल जोधपुर आया। परतु जब कई दिन हो जाने पर भी उसने लौटने का इरादा नहीं किया, तब उसके मन्त्रियों ने उसे छापर द्रोणपुर पर जाटों के हमला करने की झूठी खबर कह सुनाई। इस पर वह जोधाजी स मिले विना ही अपने राज्य की रक्षा के लिये तत्काल रवाना हो गया। परतु जिस समय वह अपने राज्य के निकट पहुँचा, उस समय उन मन्त्रियों ने अपनी जान बचाने के लिये उससे कहा कि राठोडों का विचार आपको मारकर आपके अधिकृत प्रदेश को ले लेने का था। इसी से, आपको उनके पजे से बचाने के लिये, हम लोगों ने यह चाल चली थी। अजितसिंह ने उनके कहने को सच मान लिया और इसी का बदला लेने के लिये वह मारवाड मे उपद्रव करने लगा।

वि० सं० १५२२ (ई० सन् १४६५) में राव जोधाजी के पुत्र बीकाजी अपने चचा कांधलजी आदि को साथ लेकर जांगलू की तरफ गए, और कुछ वर्ष बाद वहीं पर उन्होंने अपना नया राज्य कायम किया। इस समय वह बीकानेर राज्य के नाम से प्रसिद्ध है।

वि० सं० १५२३ (ई० सन् १४६६) में छापर-द्रोणपुर के स्वामी बछराज ने अपने चचा का बदला लेने के लिये मारवाड़ में लूटमार शुरू की। इस पर जोधाजी की आज्ञा से इनकी सेना ने बछराज को मारकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। परन्तु कुछ मास बाद बछराज के पुत्र मेघा ने रावजी से मेल कर लिया। इससे प्रसन्न होकर इन्होंने उसका सारा प्रदेश उसे वापस लौटा दिया।

१ ख्यातों में लिखा है कि एक रोज कांधल और बीकाजी दोनों दरबार में बैठे बातें कर रहे थे। इतने में राव जोधाजी वहां आ गए, और इनको बातों में लगा देख हँसी में कहने लगे कि क्या आज चचा-भतीजे मिलकर किसी नए प्रदेश को दबाने की सलाह कर रहे हैं? यह सुन कांधल ने उत्तर दिया कि यह कोई बड़ी बात नहीं है। ईश्वर चाहेगा, तो ऐसा ही होगा। हां, इतना निश्चय हो जाना जरूरी है कि यदि मैं युद्ध में किसी के हाथ से मारा जाऊँ, तो उसका बदला लेने में ढील न की जाय। यह बात जोधाजी ने स्वीकार कर ली।

इसके बाद सांखला नापा और जाट निकोदर की सलाह से ये लोग, कुछ चुने हुए वीरों के साथ, जांगलू की तरफ चले। उस समय उस प्रदेश का बहुत सा हिस्सा जाटों के अधिकार में था, और वे आपस में एक दूसरे से लड़ा करते थे। मार्ग में मंडोर पहुँचने पर बीकाजी ने अपने इष्टदेव भैरव की मूर्ति को भी साथ ले लिया। इसके बाद यह देशणोक पहुँचे। वहां पर करणीजी ने इन्हें सफलता होने का आशीर्वाद दिया। वहां से चलकर कुछ समय तक तो ये लोग चूंडासर में रहे, और फिर इन्होंने कोडमदेसर में जाकर निवास किया। उसी स्थान पर वह भैरव की मूर्ति स्थापित की गई।

धीरे-धीरे करीब २० वर्ष के लगातार परिश्रम से इन लोगों ने आस पास के जाटों, सांखलों और भाटियों को हराकर उनके बहुत से प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वि० सं० १५४२ (ई० सन् १४८५) में बीकाजी ने एक उचित स्थान चुनकर वहां पर नए किले का शिलारोपण किया, और उसी के पास अपने नाम पर बीकानेर नगर बसाया। इस नगर की शहरपनाह वि० सं० १५४५ (ई० सन् १४८८) में बनाई गई थी।

२ किसी किसी ख्यात में जोधाजी का अपने दामाद अजितसिंह को मारकर उसके राज्य पर अधिकार करने का इरादा होना लिखा है। परंतु यदि ऐसा होता, तो मेघा को वह प्रदेश क्यों सौंपा जाता।

वि० स० १५२४ (ई० सन् १४६७) के करीब राव जोधाजी के पुत्र करमसी, रायपाल और वणवीर नागोर के शासक कायमखॉनी फतनखॉ के पास पहुँचे । उसने करमसी को खींवसर और रायपाल को आसोप जागीर मे देकर अपने पास रख लिया । वणवीर अपने वडे भाई करमसी के साथ रहा । परतु जोधाजी को सूचना मिलने पर इन्होने उन्हे फतनखॉ की दी हुई जागीरो को छोडकर वापस चले आने की आज्ञा लिख भेजी । इसलिये तीनो भाई फतनखॉ का साथ छोड वीकाजी के पास चले गए । परतु फतनखॉ ने इसमें अपना अपमान समझा, और इसीसे क्रुद्ध होकर वह रावजी की प्रजा पर अत्याचार करने लगा । यह देख रावजी ने नागोर पर चढाई की । फतनखॉ हारकर झूँझनू की तरफ भागा, और रावजी ने नागोर पर अधिकार करने के बाद अपनी तरफ से, करमसी को, खींवसर और रायपाल को आसोप की जागीर दी ।

वि० स० १५२५ (ई० सन् १४६८) मे, मेडते का प्रबध ठीक हो जाने पर, वरसिंह तो वहा का शासक बना, और दूदा अपने भाई वीकाजी के पास चला गया ।

इसी वर्ष महाराना कुम्भाजी के पुत्र ऊदाजी अपने पिता को मारकर मेवाड की गद्दी पर बैठे । परतु उन्होने सोचा कि जिस तरह रणमल्लजी ने आकर मोकलजी के हत्याकारियो से बदला लिया था, उसी तरह कहीं जोधाजी आकर कुम्भाजी की हत्या का बदला लेने का उद्योग करने लगे, तो मेवाड के सरदारो को, जो मुझसे पहले ही अप्रसन्न हो रहे है, और भी मौका मिल जायगा । यह सोच उन्होने जोधाजी को, शात रखने के लिये, अजमेर और साभर के प्रात सौप दिए[१] ।

छापर-द्रोणपुर के स्वामी मेघा के (वि० स० १५३०=ई० सन् १४७३ मे) मरने पर उसका पुत्र वैरसल वहा का स्वामी हुआ । परतु वह एक निर्बल शासक था । इसी से उसके भाई-बधु, स्वाधीन होकर, इधर-उधर लूट-मार करने लगे । यह देख वि० स० १५३१ (ई० सन् १४७४) में जोधाजी ने उन पर चढाई की । वैरसल

१ अजमेर के लिये मेवाड वालो और मुसलमानो के बीच सदा ही झगडा रहता था । सभव है, ऊदाजी ने इस झझट से छूटने के लिये ही उसे जोधाजी को दे दिया हो । साभर के चौहान शासक अजमेर वालो के अधीन थे । इससे शायद अजमेर के साथ ही वह प्रात भी इनको मिल गया हो ।

ख्यातों मे लिखा है कि वरसिंह ने एक बार साभर के चौहानों को हराया था ।

और उसका छोटा भाई नरबद भागकर फतनखाँ के पास फतेपुर[1] झूँझनू चले गए, और छापर-द्रोणपुर (जोधपुर-राज्य के लाडनूं-प्रांत में) पर राव जोधाजी का अधिकार हो गया।

इसके बाद रावजी ने फतनखाँ पर चढ़ाई की। तीन दिन के भीषण युद्ध के बाद फतनखाँ हार गया, और फतेपुर जला दिया गया। यह देख वैरसल मेवाड़[2] होता हुआ दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी के पास पहुँचा, और नरबद जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह से सहायता प्राप्त करने गया। कुछ ही दिनों में दोनों बादशाहों ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर कुछ फौज उनके साथ कर दी। लौटने पर फतेपुर-झूँझनू के पास उनका जोधाजी से मुकाबला हुआ। इस अवसर पर बीकाजी भी अपनी सेना लेकर पिता की सहायता को आ पहुँचे थे। कई दिनों के भीषण युद्ध के बाद शाही सेनाओं को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। यहां से लौटकर रावजी द्रोणपुर गए, और कुछ दिन बाद वहां का प्रबन्ध अपने द्वितीय पुत्र[4] जोगा को सौंप जोधपुर चले आए। परन्तु जोगा से वहां का प्रबंध न हो सका, इसी से मोहिलों को वहां पर उपद्रव करने का मौका मिल गया। जैसे ही इसकी सूचना[5] राव जोधाजी को मिली, वैसे ही इन्होंने अपने पुत्र बीदा को वहां का प्रबंध करने के लिये भेज दिया। उसने वहां पहुँच शीघ्र ही मोहिलों के उपद्रव को दबा दिया।[6]

वि० सं० १५३५ (ई० सन् १४७८) में जालोर के शासक उसमानखाँ और सिरोही के रावल[7] लाखाजी ने मारवाड़ में लूट-मार शुरू की। इस पर जोधाजी ने

१ जोधाजी ने नरबद को, अपने भाई कांधल का दौहित्र समझ, कहलाया था कि यदि वह उनके पास आ जाय, तो उसे छापर का राज्य दिया जा सकता है। परन्तु उसने यह बात स्वीकार नहीं की।

२ कहते हैं, फतनखाँ ने वि० सं० १५१० (ई० सन् १४५३=हि० सन ८५७) में अपने नाम पर यह नगर बसाया था।

३ कहते हैं, वैरसल महाराना कुम्भाजी का दौहित्र था। इसी से वह सहायता प्राप्त करने को वहां गया। परन्तु महाराना रायमलजी ने जोधाजी से विरोध करना अंगीकार नहीं किया।

४ रावजी के बड़े पुत्र नीबा का स्वर्गवास पहले ही हो चुका था।

५ ख्यातों में लिखा है कि रावजी को वहां का प्रबंध ठीक न हो सकने की सूचना पहले पहल स्वयं उनकी पुत्र वधू (जोगा की स्त्री) ने ही भिजवाई थी।

६. इसी से वह प्रदेश जो पहले मोहिलवाटी कहलाता था, बीदावाटी कहलाने लगा।

७. चौहानों की एक शाखा।

अपने चचेरे भाई वरजांग को उनके मुकाबले को भेजा। कुछ ही दिनो मे बिहारियो और देवड़ों[1] को राठोडो से सधि करनी पडी।

वि० स० १५४३ (ई० सन् १४८६) मे आमेर-नरेश चद्रसेनजी ने साभर पर अधिकार करने के लिये सेना भेजी। परतु राव जोधाजी के समय पर उसकी रक्षा का प्रबध कर देने से वह सफल न हो सकी।

वि० स० १५४४ (ई० सन् १४८७) मे जोधाजी की आज्ञा से उनके पुत्र दूदा ने जैतारण के सीधल मेघा[2] पर चढाई की। युद्ध होने पर मेघा मारा गया।

इसी वर्ष (जोधाजी का भाई) काधल अपने भतीजे बीकाजी की तरफ से एक प्रदेश के बाद दूसरा प्रदेश विजय करता हुआ, हिसार तक जा पहुँचा। उस समय वहा पर बहलोल लोदी का अधिकार था, और उसकी तरफ से सारंगखॉ उस प्रदेश की देख-भाल करता था। काधल की चढाई के कारण जब वहा पर अराजकता फैलने लगी, तब सारंगखॉ ने एक रोज अचानक हमला कर उसे मार डाला। इसकी खबर मिलते ही जोधपुर से जोधाजी ने और बीकानेर से बीकाजी ने सारंगखॉ पर चढाई की। यद्यपि युद्ध के समय उसकी तरफ से भी खूब दृढता से मुकाबला किया गया, तथापि अत मे उसके मारे जाने से उसकी फौज को मैदान छोडकर भागना पडा। इसके बाद लौटते[3] समय राव जोधाजी बीकानेर मे ठहरे, और बीकाजी को बीकानेर का और बीदा को छापर-द्रोणपुर[4] का स्वतत्र शासक बना दिया। साथ ही बीकाजी को

१ वि० स० १५३८ (ई० सन् १४८१) में राव जोधाजी का पुत्र वणवीर अपनी सुसराल सिरोही गया था। परतु उसी समय वहा पर शत्रु के हमला कर देने के कारण वह भी देवडों की तरफ से लडता हुआ युद्ध मे मारा गया।

(इसकी मृत्यु के समय का सूचक एक लेख खीवसर के पूरासर तालाब पर लगा है।)

२. मेघा के पिता नरसिह ने राव सत्ताजी के पुत्र (नरबद के भाई) आसकरन को मारा था। इसी का बदला लेने के लिये यह चढाई की गई थी।

३. ख्यातों में लिखा है कि लौटते समय मार्ग मे एक हकले और तुतले चमार को अपनी तारीफ करते देख जोधाजी ने उसे वहीं आस-पास की कुछ भूमि दे दी। इसके बाद उसी भूमि पर उस चमार ने जोधावास गाव बसाया, जो अब तक उसके वशजों के अधिकार मे है।

४. उस समय जोधाजी ने उस प्रात के लाडनू नामक नगर को जोधपुर राज्य के अतर्गत कर लिया।

राव की पदवी देकर जोधपुर से उनके लिये छत्र, चँवर आदि राज-चिह्नों के भेजने का वादा किया।

इसी समय जैसलमेर नरेश रावल देवीदासजी की आज्ञा से उनकी सेना ने शिव पर अधिकार कर लिया। इसकी सूचना मिलते ही जोधाजी ने वरजांग को उसके मुकाबले को भेजा। उसने वहां पहुँच शीघ्र ही जैसलमेर वालों को भगा दिया, और उसके बाद आगे बढ़ जैसलमेर पर आक्रमण करने का विचार किया। परंतु इसी बीच भाटियों ने दंड के रूप में कुछ रुपए देकर राठोडों से सुलह कर ली।

वि० सं० १५४५ की वैशाख सुदी ५ (ई० सन् १४८८ की १६ अप्रेल) को, ७३ वर्ष की अवस्था में, जोधपुर में, राव जोधाजी का स्वर्गवास हो गया।

राव जोधाजी बड़े उद्योगी, साहसी, वीर, दानी और बुद्धिमान् नरेश थे। अपनी ७३ वर्ष की अवस्था में से २३ वर्ष तक तो यह पिता की सेवा में रहे, १५ वर्ष तक इन्हें घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ा और इसके बाद ३५ वर्ष तक यह अपने राज्य की उन्नति में लगे रहे। इनके समय से पूर्व ही दिल्ली की बादशाहत शिथिल हो चली थी। इसी से गुजरात, मालवा, जौनपुर, मुलतान आदि के सूबेदार स्वतंत्र होकर अपने अधिकार-विस्तार के लिये एक दूसरे से लड़ने लगे थे। उनके इसी गृह-कलह के कारण जोधाजी को भी अपने राज्य-विस्तार का अच्छा मौका मिल गया। उस समय इनके अधिकार में मंडोर, जोधपुर, मेड़ता, फलोदी, पोकरन, महेवा, भाद्राजन, सोजत, गोडवाड का कुछ भाग, जैतारन, शिव, सिवाना, सांभर, अजमेर और

कर्नल टॉड ने लिखा है कि बीका का भाई बीदा भी कुछ आदमियों को साथ ले अपने लिये कोई नया प्रदेश प्राप्त करने को चला। पहले उसका विचार गोडवाड प्रांत को, जो उस समय मेवाड़वालों के अधिकार में था, हस्तगत करने का था। परन्तु वहां पहुँचने पर उसका इतना आदर सत्कार किया गया कि उसे अपना वह इरादा छोड़ उत्तर की तरफ लौटना पड़ा। वहां पर उसने छापर के मोहिलों को धोका देकर मार डाला, और उनके किले पर अधिकार कर लिया। इसके बाद शीघ्र ही जोधपुर से और मदद पहुँच गई। इसी सहायता के एवज में बीदा ने लाडनू और उसके साथ के बारह गांव अपने पिता को सौंप दिए। ये अब तक जोधपुर-राज्य में सम्मिलित हैं (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृष्ठ ११४४)। इसी बीदा के नाम पर उक्त प्रदेश बीदावाटी कहलाता है।

'तवारीख राज श्रीबीकानेर' में बीकाजी का अपने पिता को लाडनू भेट करना लिखा है। (पृष्ठ १०२-१०३)।

१. कहीं-कहीं वैशाख के बदले माघ लिखा मिलता है। परंतु वह ठीक नहीं है।

नागोर प्रांत का बहुत-सा भाग था। बीकानेर और छापर-द्रोणपुर इनके पुत्रों के अधिकार में थे। इस प्रकार इनके राज्य की पश्चिमी सीमा जैसलमेर तक, दक्षिणी सीमा अर्वली तक और उत्तरी सीमा हिसार तक पहुँच गई थी[1]।

रावजी ने अनेक गांव दान किए थे[2]।

राव जोधाजी के २० पुत्र थे–१ नींबा, २ जोगा, ३ सातल, ४ सूजा, ५ बीका, ६ बीदा, ७ वरसिंह, ८ दूदा, ९ करमसी, १० वणवीर, ११ जसवन्त, १२ कूंपा, १३ चांदराव, १४ भारमल, १५ शिवराज, १६ रायपाल, १७ सावंतसी, १८ जगमाल, १९ लक्ष्मण और २० रूपसिंह।

१ कर्नल टॉड ने इनके राज्य का विस्तार ८०,००० मील की लंबाई-चौड़ाई तक होना लिखा है। (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, भा० २, पृष्ठ ९५१)।

२. १ कँवलिया, २ खराडी (जैतारण परगने के), ३ रेपडावास (सोजत परगने का), ४ सारडावास (पाली परगने का), ५ मथाणिया ६ बेवटा ७ बडलिया (जोधपुर परगने के), ८ चांचलवा (शेरगढ परगने का) चारणों को, ९ जाटियावास कला (बीलाडा परगने का), १० धोलेरिया (जालोर परगने का), ११ खांगवेरा १२ बासणी १३ मोडी बडी १४ तोलेश्वासर १५ तिंवरी १६ माडियाई खुर्द १७ बासणी सेपा १८ थोब (जोधपुर परगने के), १९ कोलू पुरोहितों का वास (फलोदी परगने का) पुरोहितों को, २० खोडेचा (बीलाडा परगने का), २१ लूडावास २२ बासणी नरसिंघ (सोजत परगने के) ब्राह्मणों को और २३ साठीका कला (नागोर परगने का) माताजी के मंदिर को दिए थे।

३. इनका जन्म वि० स० १४९७ की प्रथम सावन सुदि १५ (ई० स० १४४० की १४ जुलाई) को हुआ था। बीकानेर की ख्यातों मे इनका जन्म वि० स० १४९५ (ई० स० १४३८) मे होना लिखा मिलता है, परन्तु यह जोधपुर की ख्यातों आदि से सिद्ध नहीं होता।

४ इसके वंशज इस समय झाबुआ (मालवे में) के राजा हैं।

५. इसका जन्म वि० स० १४९७ की आश्विन सुदि १५ को हुआ था। (कहीं-कहीं आषाढ लिखा मिलता है) इसी के पुत्र रत्नसिंह की कन्या प्रसिद्ध मीराबाई थी, जिसका विवाह महाराना सांगाजी (प्रथम) के पुत्र भोजराज से हुआ था।

६. लक्ष्मण और रूपसिंह शायद छोटी अवस्था में ही मर गए थे।

१६. राव सातलजी

यह राव जोधाजी के तृतीय पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १५४५ की ज्येष्ठ सुदी ३ (ई० सन् १४८८ की १४ मई) को गद्दी पर बैठे[1]। इनका जन्म वि० सं० १४९२ (ई० सन् १४३५) में हुआ था। इनकी स्त्री कुंडल के स्वामी भाटी देवीदासजी की कन्या थी[2]। इसी से वि० सं० १५१४ (ई० सन् १४५७) के क़रीब जब देवीदासजी जैसलमेर के रावल हो गए, तब उन्होंने कुंडल[3] का प्रांत अपने दामाद सातलजी को सौंप दिया। इसकी पुष्टि वि० सं० १५१५ (ई० सन् १४५८) के कोलूं (फलोदी[4] परगने) से मिले लेख[5] से भी होती है।

१. राव जोधाजी के ज्येष्ठ पुत्र नींबा की मृत्यु उनके जीते जी हो गई थी। दूसरा पुत्र जोगा, जिसका कुछ हाल पहले लिखा जा चुका है, बड़ा आलसी था। इसी से राजतिलक का समय आ जाने पर भी वह नहाने धोने से फ़ारिग न हो सका। अन्त में मुहूर्त को टलता देख सरदारों ने उसके छोटे भाई सातलजी को गद्दी पर बिठा दिया। इसलिये जोगा को बाद में (खीलाड़े परगने के) खारिया आदि कुछ गाव जागीर में लेकर ही संतोष करना पड़ा। वहीं से मिले एक लेख से जोगा का वि० सं० १५७० (ई० सन् १५१३) में स्वर्गवासी होना प्रकट होता है।

कहते हैं, राव सातलजी ने अपने राज्याभिषेक के समय (जोधपुर परगने का) लूणावा चारणा नामक गाव एक चारण को दान दिया था।

२. राव सातलजी की भटियानी रानी फूलकुंवर ने (वि० सं० १५४७=ई० सन १४९० में) जोधपुर नगर का फुलेलाव-तालाब बनवाया था।

३. यह प्रदेश फलोदी के पास है। पोकरन के पोकरना राठोडों और भाटियों के बीच बराबर लड़ाइयां होती रहती थीं। इसी से तंग आकर देवीदासजी ने उक्त प्रदेश सातलजी को सौंप दिया।

४ वहा पर इस समय धांधल राठोड़ों का अधिकार है।

५ वि० सं० १२३६ (ई० सन् ११७९) के कल्याणरायजी के मंदिर से मिले लेख में उस समय फलोदी-नगर का नाम अजयपुर होना और वहा पर चौहान-नरेश पृथ्वीदेव का राज्य होना प्रकट होता है।

(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० ९३)

६ यह लेख धांधल के पुत्र पाबू के मंदिर के कीर्तिस्तंभ पर खुदा है। उस पर एक तरफ़ तो वि० सं० १५१५ की भादों सुदी ११ (ई० सन् १४५८ की २० अगस्त) को उस कीर्ति-स्तंभ के स्थापन करने आदि का उल्लेख है, और दूसरी तरफ़ 'महाराय जोधासुत राय श्री सातल विजय राज्ये" लिखा है। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० १०८



१६ राव सातलजी

वि० स० १५४६-१५४८ (ई० स० १४८६-१४९२)

राव सातलजी ने पुत्र न होने के कारण अपने भतीजे (सूजाजी के पुत्र) नरा[1] को गोद लेने के विचार से अपने पास रख लिया था[2]। कहते है, पौकरन के पास का सातलमेर शहर राव सातलजी ने ही अपने नाम पर बसाया था[3]।

वि० स० १५४७ (ई० सन् १४९०) मे अजमेर के हाकिम मल्लूखॉ[4] (मलिक यूसुफ) ने राव सातलजी के भाई वरसिंह को अजमेर बुलवा कर धोके से पकड लियाँ[5]। इसकी सूचना मिलते ही जोधपुर से राव सातलजी ने और बीकानेर से राव बीकाजी[6] और दूदाजी ने अजमेर पर चढाई की। इस पर मल्लूखॉ ने उस समय तो वरसिंह को छोड़ दिया, परन्तु शीघ्र ही तैयारी कर इसका बदला लेने के लिये

इसकी लिखावट से ज्ञात होता है कि सातलजी उस समय भी स्वतत्र रूप से वहॉ का शासन करते थे।

१. कर्नल टॉड ने नरा को सूजा का पौत्र (और वीरमदेव का पुत्र) लिखा है। (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९५२) परन्तु यह ठीक नही है।

२. वि० स० १५३२ (ई० सन् १४७५) का एक लेख फलोदी के किले के तीसरे दरवाजे पर खुदा है (जर्नल बगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० ९४)। इससे ज्ञात होता है कि (नरसिंह) नरा ने इसी वर्ष उस किले का जीर्णोद्धार करवा कर यह द्वार बनवाया था। इस लेख मे नरा के पिता का नाम राय सूरजमल लिखा है। इससे प्रकट होता है कि राव सातलजी ने उसे उस समय तक भी गोद नही लिया था।

३. यह नगर इस समय बिलकुल उजड़ी हुई दशा मे है। किसी किसी ख्यात मे इस नगर का नरा द्वारा सातलजी की यादगार मे बसाया जाना भी लिखा मिलता है।

४. किसी किसी ख्यात मे इसका नाम सिरियाखॉ लिखा है।

५. ख्यातों मे लिखा है कि उस वर्ष मारवाड मे अकाल होने के कारण वरसिंह ने मेडते से जाकर सॉभर को लूट लिया। इस पर जब वहॉ के चौहान शासक ने मल्लूखॉ के पास शिकायत लिख भेजी, तब उसने वरसिंह को अजमेर बुलवा कर कैद कर लिया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय अजमेर पर मुसलमानों का अधिकार था, और सॉभर के चौहान अजमेरवालों के अधीन थे।

६. मिस्टर एल० पी० टैसीटोरी ने एक पुराना गीत उद्धृत किया है। उससे प्रकट होता है कि राव सातलजी ने, जेसलमेर रावल देवीदासजी और पूगल के राव शेखा आदि के साथ मिल कर, राव बीकाजी के विरुद्ध चढाई की थी। परन्तु उसमे यह सफल न हो सके (जर्नल बगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १३, पृ० २३५-२३६)। परन्तु इतिहास से इसकी पुष्टि नही होती।

मेड़ते पर चढ़ाई कर दी। यह देख वरसिंह[1] जोधपुर चला आया। मल्लूखाँ भी मेड़ते को लूट जोधपुर की तरफ चला। जैसे ही उसके इस इरादे की खबर राव सातलजी के पास पहुँची, वैसे ही यह भी अपने भाई सूजाजी को साथ ले उसके मुकाबले को चले। मल्लूखाँ मार्ग में पीपाड़[2] को लूटता हुआ कोसाना के पास पहुँचा। वहीं पर उसका और राव सातलजी का मुकाबला हो गया। उस समय तक रावजी का भाई दूदा[3] भी अपने योद्धाओं को लेकर वहाँ आ गया था। इसके बाद राठोड़-सरदारों ने सलाह कर[4] यवन-सेना पर नैश आक्रमण किया। इससे घबराकर वह मैदान से भाग चली, और इसी अचानक विपत्ति में पड़ स्वयं मल्लूखाँ को भी अजमेर की तरफ भागना पड़ा। यद्यपि इस युद्ध में विजय राव सातलजी के ही हाथ रही[5], तथापि

---

१ वरसिंह के मरने पर उसका पुत्र सीहा मेड़ते का स्वामी हुआ। परन्तु उसकी शिथिलता से लाभ उठा कर अजमेर के सूबेदार ने मेड़ते पर अधिकार कर लेने का इरादा किया। यह देख वि० सं० १५५२ (ई० सन् १४९५) में उस (सीहा) के चचा दूदा ने वहाँ का शासन अपने हाथ में ले लिया।

मेड़ते पर दूदा का कब्जा हो जाने से सीहा रायां चला गया। परन्तु फिर उसने वहाँ से अजमेर की तरफ जाकर वि० सं० १५५४ (ई० सन् १४९७) में भिनाय पर अधिकार कर लिया, और २५ वर्ष तक वह वहाँ का शासन करता रहा। इसी सीहा के चौथे वंशज केशवदासजी को बादशाह जहाँगीर ने वि० सं० १६६४ (ई० सन् १६०७) में काबुआ जागीर में दिया था।

२. ख्यातों में लिखा है कि मल्लूखाँ जिस समय पीपाड़ पहुँचा, उस समय वहाँ की कई सुहागन स्त्रियाँ गौरी की पूजा करने को नगर के बाहर आई हुई थीं। इसलिये मुसलमानों ने उन्हें पकड़ लिया। परन्तु राव सातलजी ने कोसाने के पास रात को हमला कर उन्हें छुड़वा लिया।

३ इस युद्ध में दूदा ने बड़ी वीरता से शत्रु का मुकाबला किया था।

४ ख्यातों में लिखा है कि आक्रमण करने के पहले राव जोधाजी का चचेरा भाई वरजाँग स्वयं भेस बदलकर शत्रु-सैन्य का भेद जान आया था।

५. ऐसा प्रसिद्ध है कि जोधपुर में चैत्र वदी ८ को जो 'घुड़ले' का मेला होता है, वह इस युद्ध में मारे गए एक यवन-सेनापति (घुड़ले) की यादगार में प्रचलित किया गया था। उस दिन औरतें कुम्हार के यहाँ से एक चारों तरफ छेदवाली मटकी लाकर और उसमें दीपक जलाकर गीत गाती हैं। चैत्र सुदी ३ को वह मटकी तोड़ या पानी में डुबा दी जाती है। मटकी के छेदों से शायद घुड़ले के शरीर में लगे बाणों का बोध करवाया जाता है और दीपक से उसकी जीवात्मा का।

अत्यधिक घायल हो जाने के कारण उसी रात को इनका स्वर्गवास हो गया। यह घटना वि० स० १५४८ की चैत्र सुदी ३ (ई० सन् १४९१ की १३ मार्च) की है[२]।

१७. राव सूजाजी

यह राव सातलजी के छोटे भाई थे और उनके बाद वि० स० १५४८ की वैशाख सुदी ३ (ई० सन् १४९१ की १२ अप्रेल) को, ५२ वर्ष की अवस्था में, उनके उत्तराधिकारी हुए। इनका जन्म वि० स० १४९६ की भादो बदी ८ (ई० सन् १४३९ की २ अगस्त) को हुआ था। वि० स० १५२१ (ई० सन् १४६४) में राव जोधाजी ने सोजत का प्रबन्ध इन्हे सौप दिया था। इससे वि० स० १५४५ (ई० सन् १४८८) में जब वहाॅ पर मुसलमानो ने आक्रमण किया, तब इन्होने बडी वीरता से उनका सामना कर उस प्रदेश की रक्षा की।

राव सातलजी ने इनके पुत्र नरा को गोद लेने के इरादे से अपने पास रख लिया था। परन्तु उन (सातलजी) की मृत्यु के बाद यह तो उनके उत्तराधिकारी के रूप में जोधपुर की गद्दी पर बैठे, और नरा को, समझाकर, फलोदी का प्रान्त जागीर में दे दिया। इसके बाद वि० स० १५५५ (ई० सन् १४९८) में जब बाहड़मेर के राठोडो की सहायता से पौकरनों[३] राठोड़ो ने नरा को मार डाला, तब राव सूजाजी ने चढाई कर बाहडमेर, कोटडा आदि को लूट लिया।

१ कर्नल टॉड ने सातलजी का सहरिया (सराई) जाति के खॉ को मारकर मरना, इस घटना का वि० स० १५७२ (ई० सन् १५१६) मे राव सूजाजी के समय होना और इस युद्ध मे उन (सूजाजी) का मारा जाना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० ९५० और ९५२), परन्तु यह ठीक नहीं है।

२ जोधपुर-राज्य की तरफ से पहले चैत्र सुदी ३ को गौरी और ईश्वर दोनों की मूर्तियों का पूजन किया जाता था। परन्तु सातलजी के उस दिन स्वर्गवास करने के बाद से केवल गौरी की मूर्ति का ही पूजन होता है।

३ ख्यातों मे लिखा है कि तुंवर अजमाल के पौत्र (रामसी के पुत्र) रामदेव ने तुंवरावाटी (जयपुर-राज्य) की तरफ से आकर पौकरन पर अधिकार कर लिया था। कुछ वर्ष बाद जब उसने अपनी भतीजी (या कन्या) का विवाह रावल मल्लिनाथजी के पौत्र (जगमाल के पुत्र) हम्मीर से किया, तब पौकरन उसे दहेज मे दे दिया, और स्वय वहाॅ से ५ मील उत्तर रुणेचे मे जा बसा। वहीं पर उसकी और उसके पूर्वजों की

ख्यातो से ज्ञात होता है कि राठोड भीम के पुत्र वरजाँग की साजिश से बीकानेर के राव बीकाजी ने जोधपुर पर चढाई की थी। परन्तु अन्त में, लोगो के समझाने से, दोनो भाइयो मे मेल हो गया और बीकाजी बिना लड़े-भिड़े ही वापस लौट गए[1]।

इसके बाद राव सूजाजी की आज्ञा से इनके पुत्र शेखा ने रायपुर के सींधलें खगार पर चढाई की[2]। यद्यपि शुरू मे उसने भी बड़ी वीरता से शेखा का सामना किया, तथापि १८ वे दिन, रसद आदि के समाप्त हो जाने से, उसे हार माननी पड़ी, और उसने इस चढाई का खर्च देकर रावजी की अधीनता स्वीकार कर ली। इस

समाधिया बनी हैं। उनमें से एक पर कुरान की आयत खुदी है। इसमें ईश्वर की सर्व-शक्तिमत्ता का वर्णन है। भादों सुदी ११ को वहाँ पर बड़ा मेला लगता है, और दूर-दूर से लोग यात्रार्थ आते हैं। यह रामदेव रामसापीर के नाम से प्रसिद्ध है, और उसके वशज मरने पर जलाए जाने के बजाय गाड़े जाते हैं।

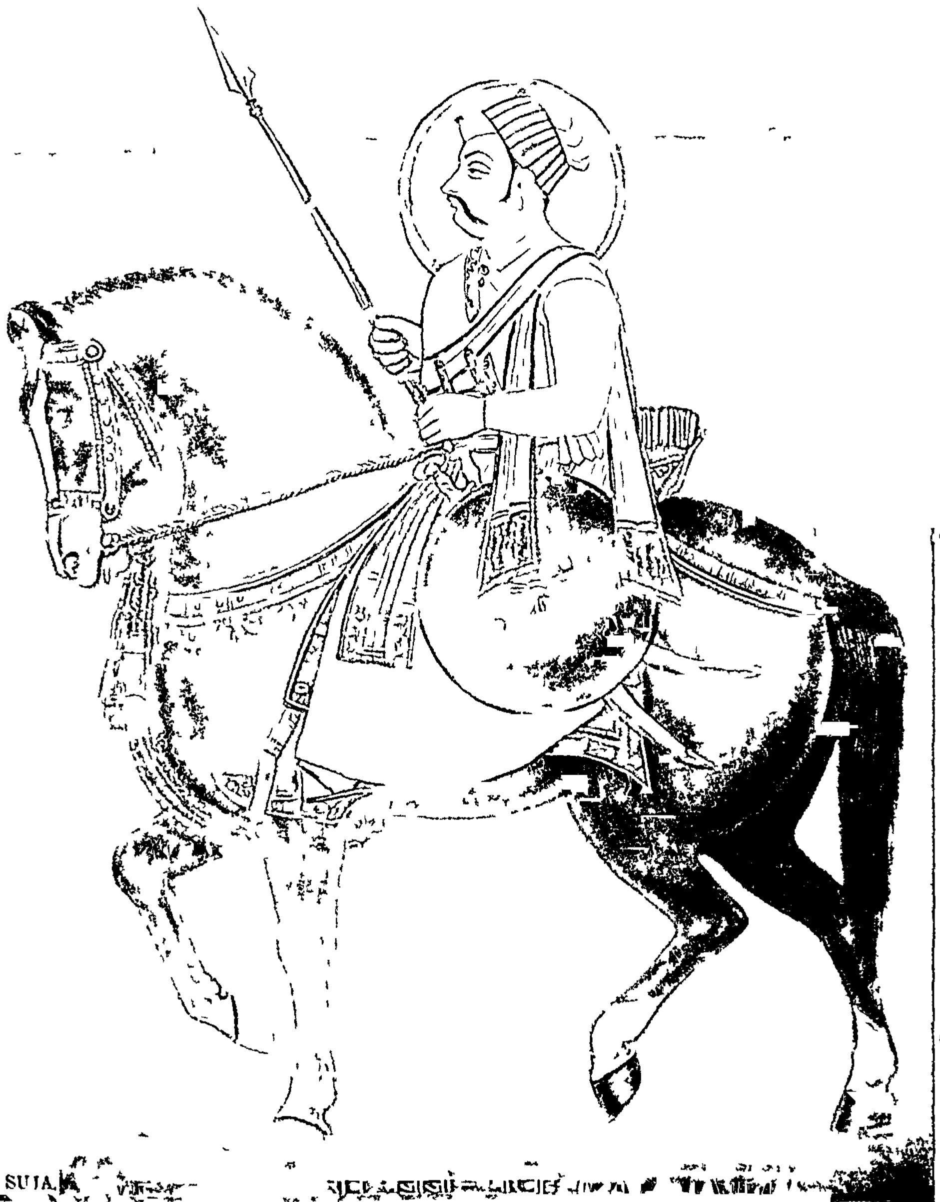
ऊपर जिस हम्मीर का उल्लेख किया गया है, उसके वशज, पौकरन के शासक होने के कारण, पौकरना राठोड कहाए। वि० स० १५५१ (ई० सन् १४९४) में नरा ने अचानक जाकर पौकरन पर अधिकार कर लिया था। इसी से वि० स० १५५५ (ई० सन् १४९८) में, बाड़मेर के राठोडों की सहायता स, पौकरना राठोड़ खींवा और उसका पुत्र लूका पौकरन के मवेशी पकड़ कर ले गए। इसकी सूचना मिलते ही नरा ने उनका पीछा किया, परन्तु मार्ग में सामना होने पर नरा मारा गया। इसके बाद राव सूजाजी ने नरा के पुत्र गोविन्ददास को पौकरन और हम्मीर[1] को फलोदी जागीर मे दी। इसके बाद इन्होंने (रावजी ने) खींवा और लूका को भी कुछ गाव जागीर मे देकर शान्त कर दिया।

वि० स० १५७३ (ई० सन् १५१६) का एक लेख फलोदी के किले के बाहर के द्वार पर खुदा है। उससे वहाँ पर, उस समय, हम्मीर का अधिकार होना पाया जाता है। (जर्नल बगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० ९५)

१ ख्यातों से ज्ञात होता है कि राव जोधाजी ने जिस समय अपने पुत्र बीकाजी को राव की पदवी देकर बीकानेर का स्वतत्र शासक बनाया था, उस समय उनके लिये जोधपुर से छत्र, चँवर आदि राज्य-चिह्न भेजने की प्रतिज्ञा की थी। इसी के अनुसार राव बीकाजी ने राव सूजाजी के समय उन वस्तुओं के ले आने को अपना आदमी भेजा। परन्तु सूजाजी के देने से इनकार करने पर उन्होंने जोधपुर पर चढाई करदी। इसी बीच लोगों ने बीच-बचाव कर दोनों भाइयों मे मेल करवा दिया।

२ ख्यातों मे लिखा है कि रायपुर के सींधलों ने राव सत्ताजी के पुत्र नरबद की मान-हानि की थी। इसका बदला लेना भी इस चढाई का एक कारण था।

(१) हम्मीर की रानी ने फलोदी का रानीसर तालाव बनवाया था।



१७. राव सूजाजी

वि० स० १५४६-१५७२ (ई० स० १४६२-१५१५)

युद्ध में चाणोद के सींधलो ने भी रायपुर वालो का साथ दिया था। इसी का बदला लेने के लिये वि० स० १५६० (ई० सन् १५०३) मे उनपर सेना भेजी गई। पॉच दिन तक तो चाणोदवालो ने भी उसका सामना किया, परन्तु छठे दिन उनका सरदार सूजा स्वय आकर रावजी की सेना मे उपस्थित हो गया, और उनके साथ ही जोधपुर चला आया। यह देख राव सूजाजी ने चाणोद की जागीर उसे ही लौटा दी।

राव सूजाजी के बड़े राजकुमार का नाम बाघाजी था। इनका जन्म वि० स० १५१४ की वैशाख वदी ३० (ई० सन् १४५७ की २३ अप्रेल) को हुआ था। वि० स० १५६७ (ई० सन् १५१०) मे जिस समय महाराना सागाजी ने सोजत पर अधिकार करने के लिये सेना भेजी, उस समय रावजी की आज्ञा से बाघाजी ने उसे मार्ग से ही मार भगाया।

वि० स० १५७१ की भादो सुदी १४ (ई० सन् १५१४ की ३ सितम्बर) को, युवराज अवस्था में ही, बाघाजी का स्वर्गवास हो गया। इससे राव सूजाजी के स्वास्थ्य को बडा धक्का लगा, और वि० स० १५७२ की कार्तिक बदी ९ (ई० सन् १५१५ की २ अक्टोबर) को ७६ वर्ष की अवस्था मे, यह भी स्वर्ग को सिधार गऐ।

राव सूजाजी का अधिकार जोधपुर, फलोदी, पौकरन, सोजत और जैतारन के परगनो पर थाँ।

१. कहीं-कही पोष भी लिखा है।

२. कर्नल टॉड ने इनका ई० सन् १४९१ से १५१६ तक २७ वर्ष राज्य करके पीपाड के युद्ध मे मारा जाना लिखा है (ऐनाल्स ऐड ऐटिक्विटीज ऑफ् राजस्थान, भाग २, पृ० ९५२)। परन्तु यह ठीक नही है। इनके समय का वि० स० १५५२ (ई० सन् १४९५) का एक शिला-लेख आसोप से और वि० स० १५६८ (चैत्रादि सवत् १५६९) की ज्येष्ठ सुदी २, सोमवार (ई० सन् १५१२ की १७ मई) का दूसरा साथीण (बीलाडा परगने) से मिला है।

३ कहते हैं कि राव सूजाजी ने १ डोली-काकाणी २ मोडी-मनाणा (जोधपुर परगने के), ३ बावडी-खुर्द और ४ बावडी-कला (फलोदी परगने के) पुरोहितो को दान दिए थे।

इनके १० पुत्र थे[1]। १ बाघा, २ सेखा, ३ नरा, ४ देवीदास, ५ ऊदा, ६ प्रयागदास, ७ साँगा, ८ नापा, ९ पृथ्वीराज और १० तिलोकसी।

---

१. कर्नल-टॉड ने इनके पाँच पुत्रों के नाम इस प्रकार लिखे हैं—

१ बाघा, २ ऊदा, ३ सागा, ४ प्रयाग और ५ वीरमदेव (ऐनाल्स एंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९५२)।

२ इनके ७ पुत्र थे। १ वीरम, २ गांगाजी, ३ प्रताप, ४ भीम, ५ खेतसी, ६ सींगण और ७ जैतसी।

ख्यातों में लिखा है कि जिस समय कुँवर बाघाजी सख्त बीमार हुए, और उनके बचने की आशा न रही, उस समय उन्होंने अपने पिता राव सूजाजी से अपने स्थान पर अपने पुत्र वीरम को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की प्रार्थना की थी, और सूजाजी ने बाघाजी के छोटे भ्राता शेखा की सम्मति से इसे स्वीकार कर लिया था। इसी के अनुसार समय आने पर सब सरदार वीरम का राज्याभिषेक करने को किले पर इकट्ठे हुए। मुहूर्त में देर होने से जब उनके साथ के लड़कों को, जो उत्सव देखने को किले पर आए थे, भूख लगी, तब सरदारों ने वीरम की माता से उनके लिये भोजन का प्रबन्ध करवा देने की प्रार्थना की। परन्तु उसने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इसके बाद जैसे ही इसकी सूचना गाँगाजी की माता को मिली, वैसे ही उसने ताजा भोजन बनवाकर उन बालकों और सरदारों के लिये भिजवा दिया। इस पर सरदारों ने मुहूर्त के ठीक न होने का बहाना कर वीरम का राज्याभिषेक रोक दिया, और शीघ्र ही गाँगाजी को सेवाड़ से बुलवा कर जोधपुर की गद्दी पर बिठा दिया। इसके बाद वीरम को सोजत का परगना जागीर में मिला। उसी दिन से मारवाड़ में यह कहावत चली है—"रिड़मलां थापिया तिके राजा।" अर्थात् रिड़मलजी के वंशज सरदारों ने जिसे गद्दी पर बिठा दिया, वही राजा हो गया।

३ इसने राव सूजाजी के राज्य-समय सींधलों से जैतारण छीन लिया था।

४ कहीं-कहीं इसके एवज में गोपीनाथ और जोगीदास नाम मिलते हैं।

१८. राव गाँगाजी

यह राव सूजाजी के पौत्र और राजकुमार बाघाजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० स० १५४० की वैशाख सुदी ११ (ई० सन् १४८३ की १८ अप्रैल) को हुआ था, और राव सूजाजी के बाद वि० स० १५७२ की मँगसिर वदी ३ (ई० सन् १५१५ की २५ अक्टोबर) को यह जोधपुर की गद्दी पर बैठे[1]।

वि० स० १५७४ (ई० सन् १५१७) मे महाराणा साँगाजी की प्रार्थना पर यह अपनी सेना लेकर उनकी सहायता को गए, और इन्होने गुजरात के शासक मुजफ्फरशाह द्वितीय के प्रतिनिधिको भगाकर राव रायमलजी को ईडर की गद्दी दिलाने में उनकी सहायता की[2]। इसके बाद वि० स० १५७७ (ई० सन् १५२०) मे

१. कहीं-कहीं इस घटना का समय मँगसिर सुदी १२ (१८ नवम्बर) लिखा मिलता है। ख्यातों मे लिखा है कि उन दिनों महाराणा साँगाजी और गुजरात के सुलतान के बीच, ईडर के लिये, झगड़ा चल रहा था। इसीसे राव सूजाजी ने इन्हें (गाँगाजी को) अपनी सेना साथ देकर राणाजी की सहायता मे मेवाड़ भेज दिया था। सरदारों के बुलाने पर वहीं से आकर यह जोधपुर की गद्दी पर बैठे।

२. कहीं-कहीं इस घटना का समय वि० स० १५७३ (ई० स० १५१६) भी लिखा मिलता है। उस समय ईडर पर (राव सीहाजी के पुत्र) सोनगजी के वंशजों का अधिकार था। जिस समय ईडर-नरेश सूरजमलजी का देहान्त हुआ, उस समय उनके पुत्र रायमलजी गद्दी पर बैठे। परन्तु उनकी अवस्था छोटी होने के कारण उनके चचा भीमजी ने शीघ्र ही उन्हे हटा कर वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया। यह देख रायमलजी महाराणा साँगाजी के पास चले गए। उन्होंने भी अपनी कन्या का विवाह उनके साथ करना निश्चित कर उन्हे अपने पास रख लिया। वि० स० १५७१ (ई० स० १५१४) मे जब राव भीमजी मर गए और उनके पुत्र भारमलजी गद्दी पर बैठे, तब राव रायमलजी ने महाराणा साँगाजी और जोधपुर वालों की सहायता से ईडर पर फिर अधिकार कर लिया। परन्तु अगले वर्ष गुजरात के सुलतान मुजफ्फरशाह द्वितीयने रायमलजी को हटाकर भारमल को वहाँ का अधिकार दिलवा दिया। इसीसे साँगाजी ने रायमलजी को फिर से ईडर का राज्य दिलवाने के लिये डूगरसिंह को भेज कर राव गाँगाजी को भी अपनी सहायता मे बुलवाया था। वि० संवत् १५७४ (ई० सन् १५१७) मे दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी ने मेवाड पर चढाई की थी, और उसमे उसे हार कर भागना पडा था। सम्भव है, वि० स० १५७४ (ई० सन् १५१७) की उपर्युक्त घटना का इसी अवसर से सम्बन्ध हो।

जिस समय महाराणा ने निज़ामुलमुल्क (मुबारिजुल मुल्क) को भगाकर ईडर का अधिकार फिर से राव रायमलजी को दिलवाया, उस समय भी राव गांगाजी ने ७,००० सवारों के साथ पहुँच उनका साथ दिया[1]।

वि० स० १५८२ (ई० सन् १५२५) मे जब सिकन्दरखॉ जालोर की गद्दी पर बैठा, तब गजनीखॉ ने राव गॉगाजी की सहायता प्राप्तकर जालोर पर चढाई की[3]। परन्तु सिकन्दरखॉ ने फौज-खर्च के रुपये देकर जोधपुर की फोज को वापस लौटा दिया।

वि० स० १५८३-८४ (ई० सन् १५२७) में जिस समय महाराना सांगाजी और बाबर के बीच युद्ध हुआ, उस समय भी इन्होने ४,००० सैनिको से[4] महाराना की सहायता की थी[5], परन्तु अनेक कारणो से इस युद्ध में सफलता न हो सकी।

वि० स० १५८५ (ई० सन् १५२६) में (रावजी के चचा) शेखाने[6] नागोर के शासक खॉजादा दौलतखॉ की सहायता से जोधपुर पर चढ़ाई की। जैसे ही इसकी

१. किसी-किसी स्थान पर इस घटना का समय वि० स० १५७६ (ई० स० १५१६) भी लिखा मिलता है।

२. महाराना सागा, पृ० ७६।

३. तारीख पालनपुर, भा० १, पृ० ५६।

४. कहीं-कहीं ३,००० सैनिक लिखे हैं।

५. इस युद्ध मे (राव जोधाजी का पौत्र और राव दूदा का पुत्र) राव वीरम भी मड़ते से ४,००० सैनिक लेकर सॉंगाजी की सहायता को गया था। इसी में राव वीरम के भाई रायमल और रत्नसिंह बड़ी वीरता से लड़ कर मारे गए। ख्यातों में इन दोनों भाइयों (रायमल और रत्नसिंह) का राव गॉंगाजी की सेना के साथ मेवाड़ जाना लिखा है।

कर्नल टॉड ने रायमल को मारवाड़ का राजकुमार (गॉंगाजी का पौत्र) लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० ३५७ और भा० २, पृ० ६५३)। इसी प्रकार श्रीयुत हरविलास सारडाने भी रायमल को एक स्थान पर जोधपुर का सेनापति और दूसरे स्थान पर राज्य का उत्तराधिकारी लिखा है (महाराना सागा, पृ० १४४ और १४८)। परन्तु यह ठीक नहीं है। सम्भवत. दूसरे स्थान पर जिस रायमल का उल्लेख है, वह राव गॉंगाजी का पौत्र और मालदेवजी का पुत्र रायमल हो। परन्तु जब स्वयं मालदेवजी का जन्म वि० स० १५६८ (ई० सन् १५११) में हुआ था, तब वि० स० १५८३—८४ (ई० सन् १५२७) के युद्ध में उनके पुत्रका सम्मुख रण में लड कर मारा जाना असम्भव ही है।

राव वीरम ने वि० स० १५७४ (ई० सन् १५१७) की ईडर की चढाई के समय भी महाराणा सॉंगाजी की सहायता की थी।

६. राजकुमार वाघाजी के इच्छानुसार उनके छोटे भाई शेखा ने अपना हक छोड अपने भतीजे (वाघाजी के ज्येष्ठ पुत्र) वीरम को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की अनुमति दी थी।



१८ राव गांगाजी

वि० स० १५७२-१५८९ (ई० स० १५१५-१५३२)

सूचना गॉगाजी को मिली, वैसे ही इन्होंने सेवकी (गाँव) तक आगे बढ उसका सामना किया[1]। युद्ध होने पर शेखा मारा गया[2], और दौलतखाँ भागकर नागोर चला गया। इस युद्ध मे बीकानेर नरेश राव जैतसीजी ने भी, जो अपनी कुलदेवी के दर्शनार्थ नागाने की तरफ़ गए हुए थे, राव गॉगाजी का पक्ष लिया था। यह घटना वि० स० १५८६ (ई० सन् १५२६) की है।

परन्तु सरदारोंने चुपचाप गांगाजी को गद्दी पर बिठा दिया। इसीसे शेखा राव गॉगाजी से नाराज था। दूसरा वीरम के पक्षवालों को जब जब मौका मिलता था, तब-तब वे उसे राव गांगाजी के विरुद्ध भड़काते रहते थे। किसी किसी ख्यात में सिरोही के राव अखैराजजी की शिकायत पर शेखा की जागीर पीपाड के एक गाव के जब्त किए जानेके कारण और किसी मे ऊहड हरदास द्वारा उकसाए जाने के कारण इस युद्ध का होना लिखा है।

१. ख्यातों में लिखा है कि युद्ध के आरम्भ मे जब सरदारों ने राव गांगाजी को तामजाम में ऊँघते हुए देखा, तब उन्होंने इनसे सचेत हो जाने की प्रार्थना की। इस पर रावजीने उन्हें आश्वासन देकर कहा कि हमने इस गृह कलह म आप लोगों की सहानुभूति किसके पक्षमें है, यह जानने के लिये ही ऐसा अभिनय किया था। किन्तु अब हमें आप लोगों पर विश्वास हो गया है। इतना कहकर ये शीघ्र ही घोडे पर सवार हो लिए और शत्रु के सामने पहुँच उससे युद्ध करने लगे। कुछ ही देर में इनके तीरसे जख्मी होकर दौलतखाँ का एक हाथी भड़क गया, और उसकी सेनाको कुचलता हुआ मेड़ते की तरफ़ भाग चला। उसके वहा पहुँचने पर (दूदा के पुत्र) राव वीरम ने उसे पकडवा कर अपने यहा रख लिया।

राव गॉगाजी ने मेड़ते के राव वीरम को भी इस युद्ध में साथ देने के लिये बुलवाया था। परन्तु उसने इस गृह कलह में भाग लेने से इनकार कर दिया। इससे राव गॉगाजी उससे अप्रसन्न हो गए। इसके बाद जब इन्हें रणक्षेत्र से भागे हुए दौलतखाँ के हाथी के मेडते पहुँचने का समाचार मिला, तब इन्होंने (गांगाजीने) उस हाथी को ले आने के लिये अपने आदमी वहा भेजे। परन्तु वीरमने उसके देने मे इनकार कर दिया। इससे इनकी अप्रसन्नता और भी बढ गई। इसके कुछ दिन बाद, जिस समय राव गांगाजी और राजकुमार मालदेवजी शिकार करते हुए मेडते की तरफ़ जा निकले और वीरमने इन्हें अपने यहा चलकर भोजन करने के लिये कहा, उस समय भी कुँवर मालदेवजी ने उस हाथी के लिये बिना भोजन करना स्वीकार न किया। अन्तमें जब राव गांगाजी और राजकुमार मालदेवजी जोधपुर लौट आए, तब वीरम ने इस झगड़े को शान्त करने के लिये वह हाथी जोधपुर भेज दिया। परन्तु अभाग्यवश वह मार्ग मे ही मर गया। इससे यद्यपि रावजी तो सन्तुष्ट हो गए, तथापि कुँवर मालदेवजी को इसमे राव वीरम के षड्यन्त्र का सन्देह हो जाने से वह उससे और भी अधिक नाराज हो गए।

२ मरते समय शेखाने राव गांगाजी से कहा था कि सूराचन्द के चौहानोंने मेरे एक आदमी को, उधर से जाते समय पकड़कर देवी की बलि चढ़ा दिया था। इसलिये हो सके, तो उनसे इसका बदला ले लेना। इसीके अनुसार कुछ दिन बाद, इन्होंने अपने आदमियों

ख्यातो से ज्ञात होता है कि राव गॉगाजी के और उनके बडे भाई वीरमके बीच बहुधा झगडा चलता रहता था। इसीसे रावजी ने उनकी (सोजत की) जागीर के कई गॉव छीन लिए, और धोलेराव आदि में अपनी चौकियॉ बिठा दीं।

वि० स० १५८७ (ई० सन् १५३१) मे होली के अवसर पर, जिस समय धोलेराव की चौकी के सरदार अपनी-अपनी जागीर के गॉवो मे गए हुए थे, उस समय वीरम के पक्षवालो ने आक्रमण कर उस चौकी को लूट लिया। इसकी सूचना मिलने पर वि० स० १५८८ (ई० सन् १५३१) मे स्वयं राव गांगाजी ने सोजत पर चढाई की। युद्ध होने पर वीरम का प्रधान कर्मचारी मूता रायमल मारा गया, और सोजत पर रावजी का अधिकार हो गया। इसके बाद इन्होंने वीरम को निर्वाह के लिये बाला नामक गॉव जागीर मे देकर उसे वहॉ रहने के लिये भेज दिया। इस घटना के बाद राज्य में पूर्ण शान्ति हो गई।

को समझाकर देवी के मन्दिर की तरफ भेजा। यह देख वहा के चौहानोंने अपने कार्यकर्ताओं को उनके रहने आदि का प्रबन्ध कर देने की आज्ञा दी। परन्तु रावजी के भेजे हुए पुरुषोंने चौहानों के भेजे हुए उन (चौदह) आदमियों को मारकर शेखाके साथके वैरका बदला ले लिया।

किसी-किसी ख्यात में शेखाका युद्ध मे हारकर मेवाड जाना और वहा पर महाराणा की तरफ से किसी युद्ध में लडकर वीरगति प्राप्त करना भी लिखा मिलता है। परन्तु नहीं कह सकते, यह कहा तक ठीक है।

इस युद्ध मे ऊहड हरदास भी मारा गया। यह राजकुमार मालदेवजी से नाराज होकर पहले वीरम के पास सोजत पहुँचा, और उसे राव गाँगाजी के विरुद्ध भडकाने लगा। बादमें इसीने शेखाके पास जाकर उसे रावजी से युद्ध करने के लिये तैयार किया।

१ राव गॉगाजी ने खयाल किया कि जैता की बगडी की जागीर सोजत म होने से कहीं यह भी वीरमदेव से न मिल जाय, इसीलिये उसे बगडी छोडकर पीपाड मे आ जाने की सलाह दी। इसपर उसके प्रधान रेडा ने रावजी का सदेह मिटाने के लिये वीरमदेव के प्रधान मूता रायमल को धोका देकर मारने का उद्योग किया। परन्तु इसमे उसे सफलता नहीं हुई, उलटा रायमल के हाथ से वह खुद मारा गया।

इसके बाद राव गागाजी ने जैताजी के मारफत कूँपाजी को भी जो वीरमजी की तरफ थे अपने पास बुलवा लिया। इससे वीरमदेव का बल बहुत घट गया।

२ ख्यातों मे लिखा है कि वीरम की सहायता के लिये मेवाड से महाराणा रत्नसिंहजी (द्वितीय) ने भी सेना भेजी थी। परन्तु राव गागाजी ने उसे सारण (गॉव) के युद्ध मे हरा दिया। इसके बाद रावजीने मेवाडवालों से गोडवाड का बहुत सा प्रदेश भी छीन लिया।

वि० सं० १५८८ की ज्येष्ठ सुदी ५ (ई० सन् १५३१ की २१ मई) को जिस समय राव गाँगाजी महल की एक खिडकी के पास बैठ शीतल वायु का सेवन कर रहे थे, उस समय कुछ तो अफीम के सेवन के प्रभाव से और कुछ गरमी की मौसम में शीतल वायु के लगने से उन्हें झपकी आ गई, और उसी में वे खिड़की से नीचे गिर पडे[1]। इससे उसी समय इनका देहान्त हो गया।

जोधपुर शहर का 'गाँगेलाव' तालाव और 'गाँगा की बावडी'[2] इन्होने ही बनवाई थी। इनकी रानी पद्मावती[3] सिरोही के राव जगमाल की कन्या थी। उसी के कहने से राव गाँगाजी ने (वि० स० १५७२=ई० सन् १५१५ में) विवाह के समय अपने श्वसुर से श्यामजी की मूर्ति माँग ली थी। यही मूर्ति जोधपुर में, गाँगाजी द्वारा लाई जाने के कारण, गँगश्याम के नाम से प्रसिद्ध हुई[4]।

राव गाँगाजी वडे वीर और दानी थे। कहते हैं, इन्होंने कई गाँव दान किए थे[5]। इनके ६ पुत्र थे—१ मालदेव, २ वैरसल, ३ मानसिंह, ४ किशनसिंह, ५ सादूल और ६ कान्ह।

---

१ ख्यातों मे इनका मालदेवजी के धक्के स गिरना भी लिखा मिलता है।

२ राव गाँगाजी की रानी नानकदेवी ने जोधपुर में अचलेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया था। यह बावड़ी इसी के पास है।

३. सिरोही के इतिहास (पृ० २०५) में लिखा है कि इसी पद्मावती ने जोधपुर का पदमलसर तालाव बनवाया था। परन्तु वास्तव मे यह तालाव मेवाड के सेठ पद्मचन्द के रुपये से बना था, जिसे राव जोधाजी ने मेवाड की चढाई के समय पकडा था। सम्भव है, इस रानीने इसके घाट आदि बनवाए हों। परन्तु किसी किसी ख्यात में इसका महाराणा साँगाजी (प्रथम) की कन्या पद्मावती–द्वारा बनवाया जाना भी लिखा मिलता है। सम्भव है, उसने भी इसमे कुछ सुधार किया हो।

४ कहते हैं कि इस मूर्ति के साथ ही इसके पुजारी भी आए थे। ये सेवग के नाम से प्रसिद्ध हैं। पहले पहल इस मूर्ति की स्थापना जोधपुर के किले मे की गई थी। परन्तु महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम) की मृत्यु के बाद जोधपुर पर औरंगजेब का अधिकार हो जाने से, उक्त सेवगोंने इसे अपने घर में छिपा रक्खा था। परन्तु महाराजा अजितसिंहजी ने, जोधपुर का शासन हाथ मे लेते ही सेवगों के घरों के पास ही एक साथ ५ मन्दिर बनवा कर बीच के मुख्य मन्दिर मे इस मूर्ति की स्थापना की। इसके बाद महाराजा विजयसिंहजी ने वहीं पर की शाही जमाने की बनी मसजिद को गिरवाकर उसी के स्थान पर (वि० स० १८१८=ई स० १७६० मे) एक विशाल मन्दिर बनवाया और उसी में इस मूर्ति को स्थापित किया।

५ १ चारवास २ तालका ३ धूडासणी (सोजत परगने के), ४ खारावेरा (जो पहले जोधाजी ने दिया था), ५ वेवडा ६ सुरपणी आवी, ७ घटियाला (जोधपुर परगने के) पुरोहितों को,

१६. राव मालदेवजी

यह मारवाड-नरेश राव गाँगाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे, और उनके बाद वि० १५८८ की आषाढ़ वदी ५ (ई० सन् १५३१ की ५ जून) को सोजत में गद्दी बैठे। इनका जन्म वि० स० १५६८ की पौष वदी १ (ई० सन् १५११ ५ दिसम्बर) को हुआ था। जिस समय यह गद्दी पर बैठे, उस समय इनका अधि केवल सोजत और जोधपुर के परगनो पर ही था। परन्तु उसी वर्ष इन्होंने भाद्रा के सींधलों पर सेना भेजी। इस पर मेडते के स्वामी वीरमदेव ने भी अपनी सेन साथ आकर इसमे योग दिया। कई दिनों के युद्ध के बाद भाद्राजन का स्वामी मारा गया और वहा पर मालदेवजी का अधिकार हो गया। इसके बाद इसी सेन रायपुर के सींधलो पर चढाई की और वहा के शासक को मारकर उक्त प्रदेश भी अधिकार कर लिया।

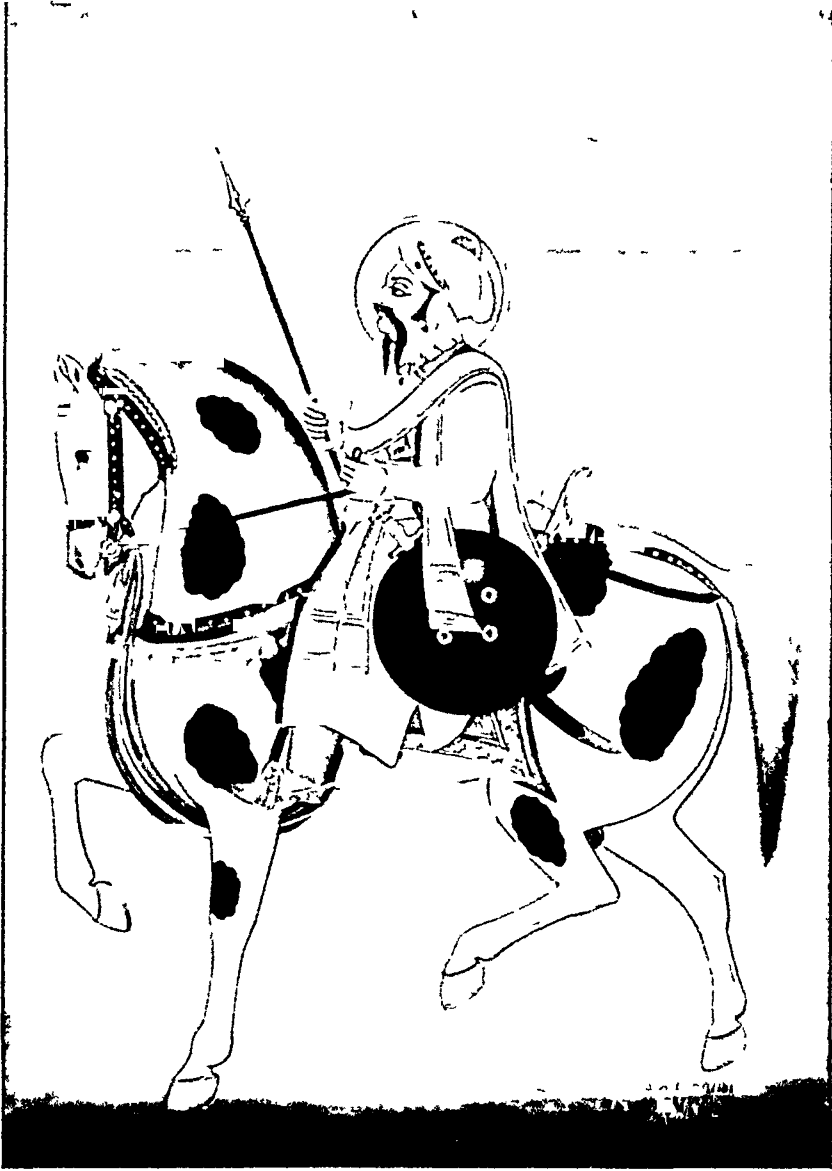
वि० स० १५८९ (ई० स० १५३२) में जिस समय गुजरात के सुल बहादुरशाह ने मेवाड पर चढाई की, उस समय मालदेवजी ने भी अपनी राठोड़-वा को उसके मुकाबले में भेज कर राना विक्रमादित्य की अच्छी सहायता की।

८ चगावडा (जोधपुर परगने का) चारणों को और ९ काकेलाव व्यासों का (जोधपुर परगने क १० अनन्तवासणी (सोजत परगने का) ब्राह्मणों को। इसी प्रकार इनके अन्य गाँवों के दान उल्लेख भी मिलता है। परन्तु इस विषय मे निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

१ उस समय जैतारण, पौकरण, फलोदी, बाड़मेर, कोटडा, खेड, महेवा, सिवाना मेड़ता आदि के स्वामी, समय उपस्थित होने पर केवल सैन्य आदि से जोधपुर की सहायता कर दिया करते थे। परन्तु अन्य सब प्रकार से वे अपने-अपने अधि प्रदेशों के स्वतन्त्र शासक थे।

इसके अलावा भाद्राजन आदि के सींधल तो पहले से ही मेवाडवालों से सम्बन्ध रखने लगे परन्तु इन दिनों मेडतावालों का सम्बन्ध भी उनसे बढ गया था। अजमेर, जालोर और नागो मुसलमानों का अधिकार था।

२ कहीं-कही पर इस सहायता का चित्तौड के 'दूसरे शाके' के समय अर्थात् वि० स० १५ (ई० स० १५३४) मे दिया जाना लिखा है।



१९ राव मालदेवजी

वि० सं० १५८९-१६१९ (ई० स० १५३२-१५६२)

इसके बाद जब नागोर के शासक दौलतखॉं ने मेडते पर अधिकार करने के इरादे से वीरमदेव पर चढाई की, तब राव मालदेवजी ने सेना—सहित हीरावाड़ी मे पहुॅच, वहां पर अपना शिविर क़ायम किया और वहा से आगे बढ नागोर पर

१ जिस समय रावजी के विजयी सैनिकों ने नागोर विजय कर इधर-उधर के गाँवों को लूटना प्रारम्भ किया, उस समय हीरावाडी मे सेनापति जैता का मुकाम होने से वहाॅ पर किसी ने भी गडबड नहीं की। इससे प्रसन्न होकर वहाॅ के मुख्य पुरुषों ने अपनी कृतज्ञता के प्रदर्शनस्वरूप उक्त सेनापति को १५,००० रुपयो की एक थैली भेट की। इसी द्रव्य से रजलानी गॉव के समीप की बावली बनवाई गई थी। यह बावली इस समय भूतो की बावली के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे इसकी समाप्ति के समय का वि० स० १५६७ (ई० स० १५४०) का एक लेख लगा है।

इस लेख के पूर्व भाग मे १७ श्लोक हैं। इनमे देवताओं आदि की स्तुति है। परन्तु दूसरे भाग मे—

"इति श्री विक्रमादीत साके १४४० सवत् १५६७ वषे काती वदि १५ दिने रउबारे राज श्री मालदेवराःराठड रा वारा वावडी रा कमठण ऊधरता राजी श्री रिणमल राठवड गेत्ते (गोत्रे) तत् पुत्र राजी अखैराज, अखैराज सूतन राज श्री पचायण पचायण सूतन राजश्री जेताजी वावड रा कमट (ठा) ऊधता—"

लिखकर आगे जैता के कुटुम्बियों के नाम दिये हैं।

इसके बाद की पंक्तियों से पता चलता है कि इस बावली के कार्य का प्रारम्भ वि० स० १५६४ की मगसिर वदी ५ रविवार को हुआ था। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि इसके बनाने मे १५१ कारीगरों के साथ-साथ १७१ पुरुष और २२१ स्त्रियॉं मजदूरी का काम करती थीं।

इसी लेख मे आगे उक्त बावली के बनवाने मे जो सामान लगा है, उसकी सूची दी है। उसे भी हम यहॉं पर उद्धृत कर देना उचित समझते हैं—

१५ मन सूत, ५२० मन लोहा (पाउओं—Clamps और गोलियों के लिये। ये गोलियॉं खोदनेवालों के हथौडों के मुँह पर लगाई जाती थीं। आज भी यहॉं पर यह रिवाज प्रचलित है। इससे हथौडा खराब नहीं होता।) साथ ही इस लोहे को आडावला (अर्वली) पहाड से उक्त स्थान तक लाने के लिये ३२१ गाडियों की ज़रूरत हुई थी, और २५ मन घी (सामान लानेवाली उक्त गाडियों के पहियों मे देने के लिये) तथा १२१ मन सन (रस्से वगैरह के लिये) काम में लाया गया था। इनके अलावा २२१ मन पोस्त, ७२१ मन नमक, ११२१ मन घी, २५५५ मन गेहूँ, ११,१२१ मन दूसरा नाज और ५ मन अफीम कारीगरों और मजदूरों के खाने मे खर्च हुई थी। इस लेख मे शक सम्वत् १४४० अशुद्ध है। वास्तव मे श० स० १४६२ होना चाहिए। इसी प्रकार कार्त्तिक वदि अमावास्या को रविवार न होकर शुक्रवार था। हॉं, कार्तिक सुदि १५ को रविवार अवश्य था। लेख मे १५ का अक भी पूर्णिमा का ही द्योतक है। आगे इसी लेख में वि० स० १५६४ की मगसिर वदी ५ को रविवार लिखा है। परन्तु वास्तव मे उस रोज़ मगलवार आता है। (लेख की छाप इस समय पास न होने से इस विषय मे कुछ नहीं लिख सकते।)

इसके बाद जब नागोर के शासक दौलतखाँ ने मेडते पर अधिकार करने के इरादे से वीरमदेव पर चढाई की, तब राव मालदेवजी ने सेना-सहित हीरावाँडी मे पहुँच, वहाँ पर अपना शिविर क़ायम किया और वहां से आगे बढ नागोर पर

१ जिस समय रावजी के विजयी सैनिकों ने नागोर विजय कर इधर-उधर के गाँवों को लूटना प्रारम्भ किया, उस समय हीरावाडी मे सेनापति जैता का मुकाम होने से वहाँ पर किसी ने भी गडबड नहीं की। इससे प्रसन्न होकर वहाँ के मुख्य पुरुषों ने अपनी कृतज्ञता के प्रदर्शनस्वरूप उक्त सेनापति को १५,००० रुपयों की एक थैली भेट की। इसी द्रव्य से रजलानी गॉव के समीप की बावली बनवाई गई थी। यह बावली इस समय भूतो की बावली के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे इसकी समाप्ति के समय का वि० स० १५९७ (ई० स० १५४०) का एक लेख लगा है।

इस लेख के पूर्व भाग मे १७ श्लोक हैं। इनमे देवताओं आदि की स्तुति है। परन्तु दूसरे भाग मे—

"इति श्री विक्रमायीत साके १४४० सवत् १५९७ व्रषे काती वदि १५ दिने रउवारे राज श्री मालदेवरा.राठड रा वारा वावडी रा कमठण ऊधरता राजी श्री रिणमल राठवड गेत्ते (गोत्रे) तत् पुत्र राजी अखैराज, अखैराज सूतन राज श्री पंचायण पचायण सूतन राजश्री जेताजी वावड रा कमट (ठा) ऊधता—"

लिखकर आगे जैता के कुटुम्बियों के नाम दिये हैं।

इसके बाद की पंक्तियों से पता चलता है कि इस बावली के कार्य का प्रारम्भ वि० स० १५९४ की मगसिर वदी ५ रविवार को हुआ था। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि इसके बनाने मे १५१ कारीगरों के साथ-साथ १७१ पुरुष और २२१ स्त्रियाँ मजदूरी का काम करती थीं।

इसी लेख मे आगे उक्त बावली के बनवाने मे जो सामान लगा है, उसकी सूची दी है। उसे भी हम यहाँ पर उद्धृत कर देना उचित समझते हैं—

१५ मन सूत, ५२० मन लोहा (पाउओं—Clamps और गोलियों के लिये। ये गोलियाँ खोदनेवालों के हथौडों के मुँह पर लगाई जाती थीं। आज भी यहाँ पर यह रिवाज प्रचलित है। इससे हथौडा खराब नहीं होता।) साथ ही इस लोहे को आडावला (अर्वली) पहाड से उक्त स्थान तक लाने के लिये ३२१ गाडियों की जरूरत हुई थी, और २५ मन घी (सामान लानेवाली उक्त गाडियो के पहियों मे देने के लिये) तथा १२१ मन सन (रस्से वगैरह के लिये) काम मे लाया गया था। इनके अलावा २२१ मन पोस्त, ७२१ मन नमक, ११२१ मन घी, २५५५ मन गेहूँ, ११,१२१ मन दूसरा नाज और ५ मन अफीम कारीगरों और मजदूरों के खाने में खर्च हुई थी। इस लेख मे शक सम्वत् १४४० अशुद्ध है। वास्तव मे श० स० १४६२ होना चाहिए। इसी प्रकार कार्त्तिक वदि अमावास्या को रविवार न होकर शुक्रवार था। हाँ, कार्तिक सुदि १५ को रविवार अवश्य था। लेख मे १५ का अक भी पूर्णिमा का ही द्योतक है। आगे इसी लेख में वि० स० १५९४ की मगसिर वदी ५ को रविवार लिखा है। परन्तु वास्तव मे उस रोज मंगलवार आता है। (लेख की छाप इस समय पास न होने से इस विषय मे कुछ नहीं लिख सकते।)

अधिकार कर लिया। यह सूचना पा दौलतखाँ लौटकर इनके मुकाबले को आया। परन्तु अत मे उसे हारकर अजमेर की तरफ भागना पड़ा। यह घटना वि० स० १५९१ (ई० सन् १५३४) के पूर्व की है।

इस प्रकार नागोर पर कब्ज़ा हो जाने के बाद शत्रु के आक्रमण से उसकी रक्षा करने के लिये उसके इर्द-गिर्द के प्रदेशो मे थाने बिठला दिए गए। यद्यपि इसके कुछ दिन बाद दौलतखाँ ने एक बार नागोर विजय का मार्ग साफ करने के लिये भाॅवडा गाव के थाने पर हमला भी किया[2], तथापि हर समय सावधान रहनेवाली राठोड-सेना के सम्मुख उसे सफलता नहीं मिली।

वि० स० १५९१ (ई० स० १५३५) मे वीरमदेव[3] ने गुजरात के बादशाह बहादुरशाह की तरफ़ के हाकिम शमशेरुलमुल्क को हराकर अजमेर पर अधिकार[4] कर लिया। जब इस बात की सूचना मालदेवजी को मिली, तब इन्होने वीरमदेव से कहलाया कि तुम इस नगर को हमे सौप दो। वरना यदि गुजरात के बादशाह की सेना ने इस पर दुबारा चढाई की, तो तुम्हारे लिये इसकी रक्षा करना कठिन हो जायगा। परन्तु उसने इस बात को न माना। इससे रावजी अप्रसन्न हो गए और इन्होने अपने सेनापति जैता और कूँपा[5] की अध्यक्षता मे मेड़ते पर सेना भेज दी।

इसी लेख मे इस बावडी के बनवाने मे १,२१,१११ फदिए खर्च होना लिखा है और इतिहास मे १५,००० रुपयों का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि उस समय १ रुपये के करीब ८ फदिये आते थे। इस हिसाब से एक फदिया दो आने के करीब माना जा सकता है। परन्तु आजकल साधारणत फदिए को एक आने के बराबर मानते हैं।

१ ख्यातों मे लिखा है कि नीतिचतुर मालदेवजी ने स्वय ही दौलतखाँ को उसके हाथी की याद दिलाकर वीरमदेव को दण्ड देने के लिये उकसाया था। (जब राव गाँगाजी के समय उनके और दौलतखाँ के बीच युद्ध हुआ था, तब दौलतखाँ की सेना का मुख्य हाथी भागकर मेडते चला गया था और वीरमदेव ने उसे पकड लिया था) परन्तु जब दौलतखाँ मेडते पर अधिकार करने की चेष्टा करने लगा, तब वीरम ने मालदेवजी से सहायता की प्रार्थना की और इसी से इन्होने मौका देख नागोर पर अधिकार कर लिया।

२ इस युद्ध मे राठोड अखैराज का पौत्र (पचायण का पुत्र) अचलसिह मारा गया। यह बडा वीर था और नागोर-विजय के समय इसने वहाँ के किले के दरवाजे उतरवाकर जोधपुर भेज दिए थे।

३ इसका जन्म वि० स० १५३४ की मँगसिर सुदि १८ को हुआ था।

४ मुँहणोत नैणसी ने वीरमदेव का परमारों से अजमेर लेना लिखा है। वह ठीक नही प्रतीत होता।

५. इसका जन्म वि० स० १५५६ की मँगसिर सुदी १२ को हुआ था।

यह देख वीरमदेव भी युद्ध के लिये तैयार हो गया। परन्तु अन्त में लोगो के समझाने से वह मेडता छोडकर अजमेर चला गया और मेडते पर मालदेवजी का अधिकार हो गया।

उपर्युक्त घटना के अवसर पर रावजी ने राठोड वरसिंह के पौत्र सहसा[1] को रीयॉ की जागीर दी थी। इससे वीरम उससे असतुष्ट था। एक रोज जिस समय वीरम वींटली (अजमेर) के किले पर खडा था, उस समय उसकी दृष्टि दूर से रीयॉ की पहाडी पर जा पडी और साथ ही पहले की घटना के याद आ जाने से उसके हृदय मे प्रतीकार की आग धधक उठी। इसीसे उसने लोगो के समझाने पर कुछ भी ध्यान न देकर रीयॉ पर चढाई कर दी। परन्तु जैसे ही यह समाचार नागोर में मालदेवजी को मिला, वैसे ही इन्होने अपनी सेना को सहसा की सहायता के लिये भेज दिया। यद्यपि वीरम ने रीयॉ के पास पहुँच वडी वीरता से युद्ध किया, तथापि मालदेवजी की विशाल सेना के आ जाने से वह सफल न हो सका। सहसा सम्मुख रण में मारा गया और वीरम लौट कर अजमेर चला गया।

इस घटना के वाद मालदेवजी ने अपने सेनापति जैता और कूँपा को सेना लेकर अजमेर पर चढ जाने और वीरम को हटा कर वहॉ पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। यद्यपि इन दोनो के वहॉ पहुँचने पर वीरम ने भी वडी वीरता से इनका सामना किया, तथापि अन्त में उसे अजमेर छोडना पडा और वहॉ पर राव मालदेवजी का अधिकार हो गया। ये सारी घटनाऍ भी वि० स० १५९१ (ई० स० १५३५) में ही हुई थीं।

इस प्रकार अजमेर के भी हाथ से निकल जाने पर वीरम डीडवाने की तरफ चला गया। परन्तु रावजी की सेना ने फिर भी उसका पीछा किया। इससे दोनो के वीच फिर एक वार घोर युद्ध हुआ। अत मे डीडवाने पर भी राव मालदेवजी का अधिकार हो गया। इसके वाद वीरम फतेपुर-झूझणूँ की तरफ रवाना हुआ। परन्तु मार्ग में जिस समय वह नराणा नामक गॉव में पहुँचा, उस समय वहॉ के सेखावत (कछवाहा) रायमल ने वीरम का वहुत कुछ आदर-सत्कार कर उसे अपने पास रख लिया। करीव एक वर्ष तक वीरम वहीं रहा। इसके वाद उसने बोयल और वणहडा नाम के गॉवो पर अधिकार कर वहॉ पर अपना निवास कायम किया।

१ वि० स० १५७५ (ई० स० १५१८) का, इसके पिता तेजसी की मृत्यु के समय का एक लेख रीयाँ की गढीवाली पहाडी के उत्तर मे मिला है।

वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) में मालदेवजी का विवाह जैसलमेर के रावल की कन्या से हुआ। यद्यपि इस अवसर पर रावल लूणकरणजी ने इनको मारने

१ इस रानी का नाम उमादे था। यह जैसलमेर के रावल लूणकरणजी की कन्या थी। विवाह की रात्रि को ही घटनावश यह रानी रावजी से रूठ गई और उनके बहुत कुछ अनुनय विनय करने पर भी उसने जीते जी अपना मान नहीं छोड़ा। वि० सं० १५९६ (ई० सन् १५३९) में अजमेर के डेरे पर एक बार रावजी की आज्ञा से बारहठ ईश्वरदास के अत्यधिक अनुनय विनय करने पर उमादे का मान कुछ कम हो गया था। परन्तु उसी अवसर पर रावजी को बीकानेर की चढ़ाई का प्रबन्ध करने के लिये जोधपुर आना पड़ा। अतः वह बात वहीं रुक गई। इसके बाद वि० सं० १५९९ (ई० स० १५४२) में जब रावजी को अपने विरुद्ध शेरशाह की चढ़ाई की सूचना मिली, तब इन्होंने ईश्वरदास को लिखा कि तुम उमादे को तो किसी तरह से साथ ले अजमेर से जोधपुर ले आओ और वहाँ के किले में शीघ्र ही युद्ध सामग्री एकत्रित करने का प्रबन्ध करवा दो। यह समाचार सुन उमादे ने ईश्वरदास से कहा कि शत्रु का आगमन जान लेने के बाद मेरा किला छोड़ कर चला जाना बिलकुल अनुचित होगा। इससे मेरे दोनों कुलों अर्थात् नैहर और सुसराल पर कलंक लगेगा। अतः आप रावजी को लिख दें कि वह यहाँ का सब प्रबन्ध मुझी पर छोड़ दें। वह यह भी विश्वास रक्खें कि शत्रु का आक्रमण होने पर मैं राना साँगा की रानी हाड़ी कर्मावती के समान अग्नि में प्रवेश न कर शत्रु को मार भगाऊँगी और यदि उसमें सफल न हुई तो वीर क्षत्रियाणी की तरह सम्मुख रण में प्रवृत्त होकर प्राण त्याग करूँगी। जब रावजी को पत्र द्वारा इस बात की सूचना मिली, तब इन्होंने ईश्वरदास को लिखा कि तुम हमारी तरफ से रानी से कह दो कि अजमेर में तो हम स्वयं शेरशाह से लड़ेंगे। इसलिये वहाँ का प्रबन्ध तो हमारे ही हाथ में रहना उचित होगा। हाँ, जोधपुर के किले का प्रबन्ध हम तुम्हें सौंपते हैं। अतः तुम शीघ्र ही वहाँ चली आओ। रानी ने भी अपने पति की इस आज्ञा को मान लिया और वह अजमेर का किला रावजी के सेनापतियों को सौंप जोधपुर की तरफ रवाना हो गई। परन्तु जैसे ही यह समाचार रावजी की अन्य रानियों को मिला, वैसे ही वे सौतिया डाह से घबरा गईं। अतः उन्होंने उसके जोधपुर आगमन में बाधा डालने के लिये बारहठ आसा को रवाना किया। यह आसा बारहठ ईश्वरदास का चचा था। रानियों ने इसे बहुत कुछ लालच देकर इस कार्य के लिये तैयार किया था।

इसके बाद जिस समय उमादे की सवारी जोधपुर से १५ कोस पूर्व के कोसाना गाँव में पहुँची, उस समय आसा भी उसकी पीनस के पास जा पहुँचा। संयोगवश ईश्वरदास उस समय कहीं इधर-उधर गया हुआ था। इससे मौका पाकर आसा ने यह दोहा जोर से पढ़ा—

"मान रखे तो पीव तज, पीव रखे तज मान।
दोय गयंदन बंध ही, एकण खंभे ठाँण।"

का इरादा कर लिया था, तथापि किसी तरह यह बात लूणकरणजी की रानी को मालूम हो गई। अतः उसने अपने पुरोहित राघवदेव[2] के द्वारा इसकी सूचना राव मालदेवजी के पास भिजवा दी। इससे यह सावधान हो गए और वहावालो को इन पर घात करने का मौका ही न मिला।[1]

पहले लिखे अनुसार जिस समय मालदेवजी ने नागोर पर चढाई की थी, उस समय सिवाना और मल्लानी के सरदारो को भी सहायतार्थ बुलवाया था। परतु उन लोगो ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसीसे वि० स० १५९५ (ई० सन् १५३८) में इन्होने सिवाना गाव पर अधिकार करने के लिये एक सेना भेज दी।

यह सुन रानी ने कोसाने में ही डेरा डालने की आज्ञा दे दी और आगे जाने से साफ इनकार कर दिया। यद्यपि ईश्वरदास ने आकर फिर भी अनेक तरह से समझाया और शेरशाह की सेना का भय भी दिखलाया, परतु मानवती और वीरपत्नी उमादे ने एक बात की भी परवा न की। इसके बाद उसने रावजी को कहलवा दिया कि मुझे यहीं रहने की आज्ञा दी जाय। साथ ही यदि कुछ सेना भी दे दी जाय, तो मैं यहीं से जोधपुर के किले की रक्षा का प्रबध कर सकती हूँ। इस पर राव मालदेवजी ने जोधपुर के हाकिम को कुछ फौज देकर वहा का प्रबध करने के लिये भेज दिया। अत मे जब शेरशाह विजयी हुआ, तब युद्ध से लौटे हुए बहुत-से राठोड कोसाने मे आकर जमा हो गए। कुछ दिन बाद जब खवासखाँ ने जोधपुर पर भी अधिकार कर लिया, तब वह कोसाने की तरफ चला। परतु रानी उमादे के सरदारों के जमघट को देख उसकी युद्ध करने की हिम्मत न हुई। अत म वि० स० १६०० (ई० स० १५४३) में वह अपनी सेना के पडाव के स्थान पर खवासपुरा-नामक गाव बसाकर वापस लौट गया। यह गाव कोसाने से दो तीन कोस के फासले पर अब तक आबाद है। इस गाव को बसाने के पूर्व उसने रानी उमादे से भी इस विषय मे सम्मति ले ली थी।

वि० स० १६०४ (ई० स० १५४७) में यह रानी अपने बडे पुत्र राम (यह मालदेवजी की कछवाहा-वश की रानी के गर्भ से जन्मा था। परतु उमादे इसे अपना दत्तक पुत्र समझती थी) के साथ गूँदोज चली गई और वहा से उसी के साथ केलवा जाकर वहीं रहने लगी। परतु वि० स० १६१९ (ई० स० १५६२) मे जब इसे मालदेवजी के स्वर्गवास की सूचना मिली, तब इसने वहीं पर सती होकर पति का अनुगमन किया।

१ किसी-किसी ख्यात में इस बात का पहले पहल उमादे को मालूम होना और उसका राघवदेव के द्वारा राव मालदेवजी के पास सूचना भिजवाना लिखा है।

किसी-किसी ख्यात मे इस रानी का कोसाने से रामसर जाकर कुछ दिन वहा रहना भी लिखा मिलता है। जैसलमेर की तवारीख मे उमादे का जैसलमेर से ही राम के साथ मेवाड जाना लिखा है।

२ राव मालदेवजी जब विवाह कर सकुशल मारवाड को लौटे, तब अपने साथ इस राघवदेव को भी ले आए थे। इसका पुत्र चडू ज्योतिषशास्त्र का अच्छा ज्ञाता था। उसका चलाया हुआ चाद्रपक्षीय चडू-पचाग अब तक मारवाड़ से प्रकाशित होता है और लोगों मे आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

वहां का राना डूँगरसी[1] भी बड़ा वीर था। अतः इस सेना को विशेष सफलता नहीं मिली। यह देख रावजी ने स्वयं ही उस (सिवाना) पर चढ़ाई की और वहा के किले को घेरकर उसका सारा बाहरी सबंध काट दिया। इससे जब किले का भीतरी सामान समाप्त हो गया, तब डूँगरसी को किला छोड़कर निकल जाना पड़ा और उस पर मालदेवजी का अधिकार हो गया। इसी विजय का सूचक एक लेख[2] उक्त किले में विद्यमान है।

वि० स० १५९५ (ई० सन् १५३८) में जालोर के शासक बिहारी पठान सिकंदरखाँ ने, जिसे बलोचों ने हराकर भगा दिया था, राव मालदेवजी से सहायता की प्रार्थना की। इस पर उन्होंने उसे अपने पास बुलाकर दुनाडा नामक गाव जागीर में दे दिया। परंतु कुछ समय बाद ही सिकंदरखां को मालदेवजी की तरफ से संदेह हो गया, अत. उसने यहा से भागकर इधर-उधर उपद्रव मचाने का प्रबंध किया। इसकी सूचना पाते ही राव मालदेवजी ने अपनी सेना उसके पीछे भेज दी। सिकंदरखां के सहायक लोदी पठान तो गुजरात की तरफ भाग गए, परंतु सिकंदरखाँ पकड़ा जाकर कैद कर लिया गया और इसी कैद में उसकी मृत्यु हुई[3]।

वि० स० १५९६ (ई० सन् १५३९) में जिस समय मालदेवजी बीकानेर पर चढाई करने का प्रबंध कर रहे थे, उसी समय बंगाल में बादशाह हुमायूँ और शेरखां

---

१ यह जैतमाल राठोड़ था।

२ स्वति श्रे (श्री) गणेश प्रा (प्र) सादातु (त) समतु (संवत्) १५९८ वर्षे आसा (षा) ढ वदि ८ दिने बुधवा (स) रे मह (हा) राज (जा) धिराज मह (हा) राज (ज) श्रीमालदे (व) विजे (जय) राजे (ज्ये) गढसि (–)

वणे (वाणो) लिये (यो) गढरि (री) कु (कूं) चि म (मा) गलिये त्रवे भादाउतु (भदावत) रे हाथि (थ) दि (जी) नी

गढ थ (स्त) भेराज पचा (चो) ली अचल गढाघे (गा) तु रावले वहीदार लिप (खि) त सूत्रधार करमचंद परलिन

सूत्रधार केसव।

यद्यपि इस लेख में संवत् १५९४ लिखा है, तथापि इसको मारवाड का उस समय का प्रचलित श्रावणादि संवत् मान लेने से चैत्रादि संवत् १५९५ आता है। साथ ही लेख में यद्यपि अष्टमी तिथि ही पढी जाती है, तथापि बुधवार सप्तमी को आता है।

३. तारीखे पालनपुर, जिल्द १, पृ० ६२-६३।

के बीच झगडा उठ खडा हुआ। इस मौके से लाभ उठाने के लिये इन्होंने भी बीकानेर की चढाई का ध्यान छोड पूर्व की तरफ के देश विजय करने का विचार किया। इसी के अनुसार यह अपनी सेना को सजाकर हिंदौन से आगे बढ गए और बयाने तक के प्रदेशो पर अपना अधिकार कर लिया।

पहले लिखा जा चुका है कि वीरम ने बोयल और बणाहडे मे अपना निवास कायम किया था। परतु कुछ समय बाद जब वहा पर उसका प्रभाव बढने लगा, तब मालदेवजी ने उसका अधिकृत प्रदेश छीन लेने के लिये अपनी सेना भेज दी। यह देख वीरम वि० स० १५९७ (ई० स० १५४०) मे माडू के बादशाह सुलतान कादिर के पास चला गया और उसकी सलाह से आगे दिल्ली के बादशाह शेरशाह के पास जाने को रवाना हुआ। मार्ग मे रणथभोर के हाकिम से उसकी मित्रता हो गई। इससे उसी के साथ वह दिल्ली जा पहुँचा। वही पर वि० स० १५९८ (ई० स० १५४१) में इसकी मित्रता बीकानेर के स्वर्गवासी राव जैतसीजी के छोटे पुत्र भीम से हुई। अत ये दोनो मिलकर शेरशाह को मालदेवजी के विरुद्ध भडकाने लगे।

रावजी की सेना ने भी वीरम के बोयल से भाग जाने पर टोक और टोडे की तरफ के सोलकियो पर चढाई की और उनसे दड लेकर आगे जौनपुर (मेवाड) मे अपनी चौकी कायम की। फिर वहा से पूरब की तरफ जाकर साभर, कासली, फतेपुर, रेवासा, छोटा उदैपुर (जैपुर राज्य मे), चाटसू, लवाण और मलारणा आदि पर अधिकार कर लिया और अनेक स्थानो पर रक्षा के लिये किले भी बनवा लिए। इन कार्यों से निपटकर इस सेना ने साचोर के चौहानो को हराया और फिर गुजरात की तरफ राधनपुर और खावड तक के प्रदेशो पर अधिकार कर नावरा गाव को लूट लिया।[2]

---

१ वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि ई० स० १५३९ के जून मे शेरशाह ने हुमायूँ को गगा के किनारे चौसा मे (जो शाहाबाद जिले मे है) हराकर भगा दिया था (ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इडिया, पृ० ३२६)।

२ इस प्राचीन छप्पय से इन विजयों की पुष्टि होती है—

जोधपुरै ऊठिये चढे सना चतुरगॉ।
समियाणौ धूधरोट अणी चाढियौ अलगॉ।
भाद्राजण पाधरौ कियौ हय पाय उलडे।
जालोरी साचोर धरातर्य खावड खडे।
मरुधराधीश अम मालदे वैराई भाखर वले।
दीवा प्रथम भड मारकै कलह पाण नावर कलै।

इसी बीच मेवाड के सरदारो ने दासीपुत्र वणवीर[1] से दूषित होते हुए चित्तौड़ के राजवश को बचाने का इरादा किया और इसी के अनुसार महाराना विक्रमादित्य के छोटे भ्राता उदयसिंह को चित्तौड की राजगद्दी पर बिठाने का प्रबंध करने लगे। परन्तु यह कार्य किसी बडे पडोसी नरेश की सहायता के बिना असभव था। अत. उन्होंने उस समय के प्रतापी नरेश राव मालदेवजी से इस कार्य में सहायता प्राप्त करने का विचार किया, और इसके लिये पाली के ठाकुर सोनगरा चौहान अखैराज[2] को उनसे प्रार्थना करने को भेजा। रावजी ने भी उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने सेनापति कूँपा और खीवकरण को लिख दिया कि वे शीघ्र जाकर मेवाड की गद्दी प्राप्त करने मे उदयसिंहजी की सहायता करें[3]। अत में राठोडो और राजभक्त सीसोदियो की सहायता से वणवीर भाग गया, और महाराना उदयसिंह मेवाड की गद्दी के स्वामी हुए[4]। इसके बाद जब महाराना उदयसिंहजी ने राठोड सरदारो को विदा किया, तब इस उपकार के बदले मालदेवजी की भेट के लिये ४०,००० फीरोजी सिक्के और वसतराय नामक एक हाथी भेजा। यह घटना वि० स० १५९७ (ई० स० १५४०) की है।

राव मालदेवजी का एक विवाह खैरवे के स्वामी झाला जैतसिह[5] की कन्या से हुआ था। इसीसे एक बार यह शिकार करते हुए अपनी सुसराल जा पहुँचे, और वहा पर इन्होने अपनी छोटी साली के रूप और गुणो को देख उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। इस पर इनके श्वसुर ने भी इसे अंगीकार कर लिया और इस कार्य की तैयारी के लिये दो मास की अवधि चाही। परन्तु जब मालदेवजी लौटकर जोधपुर चले आए, तब उसने गुढे मे जाकर चुपचाप उस कन्या का विवाह मेवाड के

१. यह महाराना रायमल के पुत्र पृथ्वीराज का उपपत्नी पुत्र था।

२. यह मारवाड-नरेश का सामत था।

३ उस समय कूँपा और नींबाज ठाकुर खींवकरण २,५०० सवारों के साथ मदारिया के थाने पर थे। जिस समय वणवीर ने मेवाड की गद्दी दबाई थी उस समय मालदेवजी ने अपनी सेना को भेजकर गोटवाड़, बदनोर, मदारिया, कोसीथल आदि मेवाड के बहुत-से स्थानों पर अधिकार कर लिया था, और उन्हीं की रक्षा के लिये मदारिये मे राठोड़ों का प्रबल थाना रक्खा गया था।

४ मालदेवजी के सामत सोनगरा अखैराज और जैताजी ने भी इस कार्य मे मेवाड़वालों को सहायता दी थी।

५. मालदेवजी ने ही इसे खैरवे की जागीर दी थी।

महाराणा उदयसिंहजी के साथ कर दिया। इसकी सूचना पाकर मालदेवजी को बड़ा क्रोध आया और इन्होंने इसका बदला लेने के लिये अपनी सेना को खैरवे और कुंभलगढ पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। यद्यपि कुंभलगढ खास पर तो इनका अधिकार न हो सका, तथापि वहा तक का गोढवाड का सारा प्रदेश और खैरवा इनके अधिकार में आ गया।

वि० स० १५९८ (ई० स० १५४१) में राव मालदेवजी ने २०,००० सैनिकों को साथ लेकर बीकानेर पर चढाई की। इसकी सूचना पाकर वहा के राव जैतसीजी भी इनके मुकाबले को चले। मार्ग में जब दोनो सेनाएँ एक दूसरी के करीब पहुँचीं, तब पहली ने 'पही' नामक गाव में और दूसरी ने 'सूवा' में अपना डेरा डाल दिया। परन्तु रात्रि मे ही किसी आवश्यक कार्य के लिये जैतसीजी को बीकानेर लौटने की आवश्यकता प्रतीत हुई[1]। यद्यपि वह अपने दो-एक विश्वस्त सरदारो से प्रातःकाल तक लौट आने का वादा कर चुपचाप ही रवाना हुए थे, तथापि किसी तरह इस बात की खबर उनके अन्य सरदारो तक भी पहुँच गई। इस पर वे सब किसी भावी आशका से घबरा गए और उनमें से बहुत-से अपने सैनिको के साथ रात्रि मे ही युद्धस्थल छोड़ इधर-उधर निकल गए। राव मालदेवजी के गुप्तचरो ने भी यथासमय इसकी सूचना अपने सेनानायको के पास पहुँचा दी थी। अत जैसे ही प्रात काल के अँधेरे मे जैतसीजी लौटकर अपने शिविर 'सूवा' में पहुँचे, वैसे ही राव मालदेवजी की सेना ने आगे बढ उन्हे घेर लिया। थोडी देर के युद्ध मे ही राव जैतसीजी तो वीरता से लड़-कर मारे गए और राव मालदेवजी ने बीकानेर की तरफ प्रयाण किया। इसकी सूचना पाते ही बीकानेर के किलेदार ने जैतसीजी के पुत्र कल्याणमलजी और भीमराज को मय उनके कुटुम्बवालो और २०० सैनिको के सिरसे की तरफ भेज दिया। जोधपुर की सेना ने बीकानेर पहुँच वहा के किले को घेर लिया। तीन दिन तक तो किलेवाले किले में रहकर ही इनका सामना करते रहे। परन्तु चौथे दिन वे लोग बाहर निकल सम्मुख युद्ध में प्रवृत्त हुए। अत मे उन सबके मारे जाने पर किला जोधपुरवालो के

१ ख्यातों मे लिखा है कि राव जैतसीजी ने उन्ही दिनों पठानों से २,००० घोड़े खरीदे थे। परन्तु उनके रुपये अभी तक बाकी थे। अत जब पठानों को जैतसीजी के युद्ध में जाने का समाचार मिला, तब वे वहा पहुँच उनसे उन रुपयों के बाबत आग्रह करने लगे। इसी झगड़े को तय करने के लिये राव जैतसीजी को बीकानेर लौटने और अपने कर्मचारियों से उनका हिसाब साफ करवा देने की आवश्यकता आ पडी थी।

हाथ आ गया। इसके बाद इन्होंने आगे बढ़ कूकणू[1] पर भी अधिकार कर लिया। इस युद्ध में राठोड़ कूँपा ने ख़ास तौर पर भाग लेकर वीरता दिखलाई थी। इससे प्रसन्न होकर राव मालदेवजी ने कूकणू की जागीर के साथ ही बीकानेर के प्रबन्ध का अधिकार भी उसे ही दे दिया।[2]

वि० सं० १५९९ (ई० स० १५४२) में हुमायूं (सिन्ध की तरफ़ से उधर होता हुआ) राव मालदेवजी से मदद प्राप्त करने की आशा से मारवाड़ की तरफ़ चला और मार्ग में तीन दिन देरावर[3] के क़िले में रहा।

वहाँ से वह फलोदी होकर [illegible][4] नामक गाँव में पहुंचा और जोगीतीर्थ पर मुकाम किया। इस पर राव मालदेवजी ने भी आतिथ्य के तौर पर [illegible] और मोहरें (अशरफियां) आदि भेजकर उसका स्वागत किया, और हर प्रकार से मदद देने का वादा कर उसे बीकानेर का परगना खर्च के लिये सौंप देने की [illegible]।[5] इसी बीच शेरशाह ने अपना वकील भेज मालदेवजी को अपनी तरफ़ मिलाने की कोशिश शुरू

१. यह शेखावाटी प्रान्त में है।

२. उस समय राव मालदेवजी का प्रताप बहुत ही बढ़ा हुआ था। [illegible] में लिखा है कि 'राव मालदेव [illegible] बहुत [illegible] था। [illegible] सेना में ८०,००० सवार थे। [illegible] में मालदेव [illegible] था तथापि [illegible] राव मालदेव उससे बढ़कर था। [illegible] से मुकाबला हुआ [illegible]।—(देखो पृ० ७)

'तबक़ाते अकबरी' में लिखा है कि बादशाह हुमायूं [illegible], जो उस समय हिंदुस्थान के बड़े राजाओं में था और जिसकी [illegible] दूसरा कोई राजा नहीं कर सकता था, [illegible] हुआ।—(देखो पृ० २०५)

३. यह क़िला उस समय मारवाड़ और जैसलमेर की सरहद पर था और उस पर मालदेवजी का अधिकार था। हुमायूं का आफ़्ताबची जौहर अपनी [illegible] नामक पुस्तक में लिखता है कि देरावर के क़िले को देखकर शेख अलीबेग ने बादशाह से पूछा कि क्या यह क़िला मैं लेलूँ? इस पर उसने जवाब दिया कि इस क़िले को लेने से तो मैं दुनिया का बादशाह न हो सकूंगा, पर राव मालदेव जरूर ही नाराज हो जायगा' (अंग्रेजी अनुवाद पृ० ५३)।

४. यह गाँव जोधपुर से ४ कोस ईशान कोण में है।

५. हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम-लिखित (हुमायूँनामा) इतिहास में इस घटना का उल्लेख है। (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हिंदी-अनुवाद पृ० १०२)।

की। इससे हुमायूँ को सदेह हो गया और वह फलोदी होता हुआ उमरकोट की तरफ चला गया[1]।

१ फारसी तवारीखो मे लिखा है कि शेरशाह के प्रलोभनो से राव मालदेवजी ने हुमायू को पकडकर उसके हाथ सौप देने का इरादा कर लिया था और इसी से जब हुमायूँ उमरकोट की तरफ भागने लगा, तब इन्होने उसको पकडने के लिये अपनी सेना उसके पीछे रवाना की। परतु इसमे उसे असफल हो लौटना पडा।

मारवाड की हस्तलिखित ऐतिहासिक पुस्तकों मे यह घटना इस प्रकार लिखी मिलती है

शेरशाह से हारकर जब बादशाह हुमायू मालदेवजी से सहायता प्राप्त करने को जोधपुर के निकट आकर ठहरा, तब रावजी ने उसका बडा आदर सत्कार किया। इसके बाद हुमायूँ ने जोधपुर के निकट रहना अनुचित समझ फलोदी मे अपना मुकाम करने की इच्छा प्रकट की। इसे इन्होने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। जब इसी के अनुसार वह देईमकर से फलोदी को रवाना हुआ, तब मार्ग के ग्रामों से होनेवाले उपद्रव को रोकने के लिये इन्होंने अपने कुछ सैनिक भी उसके पीछे भेज दिए। परन्तु शाही लश्कर को इससे उलटा यह सदेह हो गया कि शायद ये लोग मार्ग मे हमको मारकर शाही खजाना लूटने को ही साथ हुए हैं।

इसके बाद एक दुर्घटना और हो गई। जिस समय हुमायूँ फलोदी पहुँचा, उस समय उसके कुछ सैनिको ने मिलकर एक गाय को मार डाला। इससे रावजी की सेना मे घोर असतोष फैल गया। यह देख हुमायूँ का सदेह और भी बढ गया और वह फलोदी को छोड सिध की तरफ चल पडा। परन्तु रावजी के सैनिकों ने समझा कि हिन्दुओ के धर्म का अपमान करने को ही शाही सैनिकों ने यह गोवध किया है। इससे वे लोग उत्तेजित हो गए और उन्होंने जाते हुए बादशाह का पीछा किया। सातलमेर मे पहुँचते पहुँचते दोनों पक्षों के बीच मुठभेड हो गई। परन्तु अत मे अपने पुरुषों की सख्याधिकता के कारण हुमायूँ बचकर निकल गया और जैसलमेर होता हुआ उमरकोट जा पहुँचा।

हमारी समझ मे मारवाड की ख्यातों का लेख ही अधिक युक्तिसगत प्रतीत होता है, क्योंकि यदि वास्तव में राव मालदेवजी शेरशाह से मिलकर बादशाह हुमायूँ को, जो कि अपने बिगडे हुए समय मे जोधपुर से ४ कोस के फासले पर ठहरा हुआ था, पकडना चाहते, तो न तो मालदेवजी के ८०,००० सैनिकों के व्यूहमे बचकर उसका निकल भागना ही सभव होता, न उसके फलोदी जाने के समय वे इतने थोडे सैनिक ही उसके पीछे भेजते कि जिससे सातलमेर मे इतनी आसानी से वह बचकर निकल जाता। 'अकबरनामे' के अनुसार उस समय हुमायूँ के साथ केवल २० अमीर और कुछ थोडे अनुचर तथा सैनिक थे। उसमे यह भी लिखा है कि मालदेव के विरोध का हाल मालूम होने पर हुमायूँ ने तरदीबेगखाँ और मुनअमखाँ को कुछ फौज देकर हुक्म दिया कि वे लोग सामने जाकर मालदेव की सेना का मार्ग रोके। परन्तु ये अमीर रास्ता भूलकर दूसरी तरफ निकल गए। इससे जैसे ही बादशाह फलोदी मे चलकर सातलमेर के पास पहुँचा, वैसे ही उसे मालदेव की सेना दिखाई दी। इस पर बादशाह ने जनानी सवारियो को पैदल करके उनके घोडे अपने सैनिकों को सवारी के लिये दे दिए और उनके ३ दल बनाकर फतेहअलीबेग को उसके ३-४ भाइयों के

पहले लिखा जा चुका है कि वीरमदेव और भीम नित्य ही शेरशाह को मालदेवजी के विरुद्ध भड़काते रहते थे। परन्तु इस हुमायूँ वाली घटना से उन्हें इसके लिये और भी अच्छा मौका मिल गया। इस प्रकार उन के बहुत कुछ कहने-सुनने और प्रलोभन देने से वि० स० १६०० (ई० सन् १५४३) में शेरशाह ने आगरे से मालदेवजी पर चढाई करदी। इसकी सूचना पाते ही ये भी अपनी सेना तैयार कर अजमेर की तरफ आगे बढे और उसके आने की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय रावजी के पास ८०,०००[1] वीर योद्धा थे। जब इनके इस प्रकार तैयार होकर सम्मुख रणांगण में प्रवृत्त होने का समाचार शेरशाह को मिला, तब उसका सारा उत्साह ठंडा पड गया और वह मार्ग से ही लौट जाने का विचार करने लगा। परन्तु वीरमदेव आदि ने

साथ शत्रुसेना के सामने भेजा। उसने भी तत्काल वहाँ पहुँच एक तग जगह में निकलती हुई मालदेवजी की सेना पर हमला कर दिया। इससे थोड़ी ही देर के युद्ध में राजपूत सैनिक परास्त होकर भाग गए। इसके बाद बादशाह जैसलमेर की तरफ रवाना हुआ और उसके वहा पहुँचते-पहुँचते रास्ता भूले हुए वे अमीर भी लौटकर उससे आ मिले।

(देखो भाग १, पृ० १८१)

परन्तु 'तबकाते अकबरी' में मालदेवजी की सेना के मुकाबले में जानेवाले शाही सैनिकों की संख्या कुल २२ ही लिखी है। यहाँ पर 'तबकाते अकबरी' की उक्त घटना का उल्लेख कर देना और भी उचित समझते हैं। इससे राव मालदेवजी के वीर सैनिकों की वीरता का कुछ अनुमान हो जावेगा –

'जिस समय बादशाह हुमायूँ मालदेव के इलाके से उमरकोट की तरफ रवाना हुआ, उस समय राव के दो हिन्दू जासूस शाही सेना में आए हुए थे। परन्तु जब वे पकड़े जाकर बादशाह के सामने लाए गए और बादशाह ने उनसे असली हाल जानने की कोशिश शुरू की, तब उन दोनों ने अपने को बंधन से छुडवाकर पास में खड़े हुए दो मनुष्यों के कटार छीन लिए और तत्काल शाही सेना के १७ पुरुषों और बादशाह की सवारी के घोड़े के साथ कई अन्य घोड़ों को मारकर वे वीरगति को प्राप्त हुए।'

(देखो पृ० २०६)

गुलबदन बेगम के 'हुमायूँनामे' से भी इस बात की पुष्टि होती है।

(देखो पूर्वोक्त अनुवाद, पृ० १०३)

हुमायूँ के उमरकोट पहुँचने पर उसी की मदद से सोढा राजपूतों ने फिर से उमरकोट पर अधिकार कर लिया था।

१. 'तबकाते अकबरी' और 'तारीख फरिश्ता' में राव मालदेवजी की सेना में ५०,००० सैनिकों का होना लिखा है।

(देखो क्रमशः पृ० २३२ और जिल्द १, पृ० २२७)

उन सरदारो को भी, जिनके प्रदेशों पर मालदेवजी ने जबरदस्ती अधिकार कर लिया था, शेरशाह से मिलाया और हर तरह से उसका उत्साह बढाकर उसे पीछे लौटने से रोक दिया। इसके बाद शेरशाह ने एक सुभीते के स्थान पर अपनी छावनी डाल दी और उसकी रक्षा के लिये रेत से भरे बोरो को चारो तरफ ऊपर-तले रखवाकर सुदृढ कोट-सा तैयार करवा लिया। करीब एक मास तक दोनो सेनाएँ मोरचे बाँधे एक दूसरे के सामने पडी रहीं। हाँ, समय-समय पर इन दोनो के बीच अनेक छोटे-बडे युद्ध भी होते रहते थे, परन्तु राव मालदेवजी की वीर राठोडवाहिनी के सामने शेरशाह की एक न चली। इससे हताश होकर वह एक बार फिर लौट जाने का विचार करने लगा। यह देख वीरम ने उसे बहुत कुछ समझाया। जब इस पर भी वह सम्मुख युद्ध में लोहा लेने की हिम्मत न कर सका, तब अत में वीरम ने उसे यह भय दिखाया कि यदि आप इस प्रकार घबराकर लौटेगे, तो रावजी की सेना पीठ पर आक्रमण कर आपके बल को आसानी से नष्ट कर डालेगी। परन्तु जब इतने पर भी शेरशाह युद्ध के लिये सहमत न हुआ, तब वीरमदेव ने एक कपटजाल रचा। उसने मालदेवजी के बडे-बडे सरदारो के नाम कुछ झूठे फरमान लिखवाकर रावजी की सेना में भिजवा दिए और साथ ही ऐसा प्रबध करवा दिया कि वे सब फरमान उन सरदारो के पास न पहुँच कर रावजी के पास पहुँच गए[1]। इससे रावजी को अपने सरदारो पर सदेह

१ मारवाड की ख्यातों मे लिखा है कि इधर तो वीरम ने इन फरमानों को ढालों के अन्दर की गद्दियों मे सिलवा कर उन्हें अपने गुप्तचरों द्वारा मालदेवजी के सरदारों के हाथ बिकवा दीं और उधर रावजी को सूचना दी कि यद्यपि आपने मेरे साथ बहुत ज़्यादती की है, तथापि मैं आपको सूचना दे देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि आपके सारे सरदार शेरशाह से मिल गए हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो, उनकी नई ढालों की गद्दियाँ फड़वाकर स्वय देख लें। इस पर रावजी ने जब वे ढालें मँगवा कर उनकी गद्दियाँ खुलवाईं, तब उनमे से वे जाली फरमान निकल आए।

मारवाड की तवारीखों मे यह भी लिखा है कि जिस समय यह कपट रचा गया था, उस समय बादशाह का मुकाम सुमेल और मालदेवजी का गिररी मे था।

'मुन्तखिबुत्तवारीख' में लिखा है कि ये जाली पत्र चालाकी से राव के पास पहुचा दिए गए थे। इनमें एक पत्र गोविंद (कूपा) के नाम का भी था। इस गोविंद (कूँपा) ने राव के युद्धस्थल मे हट जाने पर पठानों से ऐसी वीरता से युद्ध किया कि उनके हजारों आदमी मार डाले। साथ ही उसके हमलों से शेरशाह की फौज के पैर उखड गए और वह युद्धस्थल से भाग ही चुकी थी कि इतने में नई फ़ौज के साथ जलालखाँ जलवानी एकाएक वहाँ आ पहुचा। इससे पठान विजयी हो गए।

(देखो जिल्द १, पृ० १००-१०१)

हो गया। यद्यपि सरदारों ने हर तरह से अपने स्वामी का समाधान करने की चेष्टा की, तथापि उनका संदेह निवृत्त न होसका और वह रात्रि में ही पीछे लौट पड़े। यह देख इनके जैता, कूँपा आदि कई सरदारों ने गिररी (जैतारण परगने के गाँव) से पीछे हटने से इनकार कर दिया। उन्होंने निवेदन किया कि इसके आगे का प्रदेश तो स्वयं आपने ही विजय किया था, इसलिये यदि उसे छोड़ दिया जाय, तो हमें कोई आपत्ति नहीं होसकती। परन्तु यहाँ से पीछे का देश आपके और हमारे पूर्वजों का विजय किया हुआ है, इसलिये यहाँ से हटना हमें किसी प्रकार भी अंगीकार नहीं हो सकता। इस पर भी मालदेवजी का उनके कहने पर विश्वास नहीं हुआ और वे जोधपुर की तरफ रवाना हो गए। यह देख जैता, कूँपा आदि कुछ सरदार १२,००० सवारों के साथ पलट पड़े और रात्रि के अन्धकार में ही शेरशाह की सेना पर हमला कर देने को रवाना हुए। परन्तु भाग्य की कुटिलता से ये लोग अन्धकार में मार्ग भूल गए, अतः प्रातःकाल के समय इनमें से आधे के करीब योद्धा सुमेल के पास शेरशाह के मुकाबले पर पहुँचे। यद्यपि ऐसे समय ६,००० राजपूत सैनिकों[1] का ८०,००० पठान सैनिकों से भिड़ जाना बिलकुल ही अनुचित था, तथापि वीर राठोड़ों ने इसकी कुछ भी परवा नहीं की और अपनी मर्यादा की रक्षा के लिये शत्रुसेना में घुसकर वह तलवार बजाई कि एक बार तो पठानों के पैर ही उखड़ गए। शेरशाह भी अपनी इस पराजय से दुखित हो भागने को तैयार हो गया। परन्तु इतने ही में उसका एक सरदार जलालखाँ जलवानी एक बड़ी और ताज़ादम फौज लेकर वहाँ आ पहुँचा। राठोड़ सरदार तो पहले से ही संख्या में अल्प थे और अब तक के युद्ध में उनकी संख्या और भी अल्पतर हो चुकी थी। इससे पासा पलट गया। सारे-के-सारे राठोड़ योद्धा अपने देश और मान की रक्षा के लिये सम्मुख रण

कहीं-कहीं पत्रों के साथ ही सामान खरीदने के बहाने रावजी की सेना में फीरोज़ी सिक्कों के भिजवा देने का भी उल्लेख मिलता है।

१ 'तबकाते अकबरी' में २०,००० सैनिक लिखे हैं। परन्तु उसमें यह भी लिखा है कि इन बीस हजार सवारों में से रात में रास्ता भूल जाने के कारण सिर्फ ५ या ६ हजार सवार शेरशाह की सेना के करीब पहुँचे। बड़ी घमसान लड़ाई हुई। यहां तक कि राजपूत घोड़ों से उतरकर शेरशाह की फौज से चिमट गए और कटार तथा जमधर से खूब लड़े। परन्तु शेरशाही फौज बहुत ज्यादा थी। इसी से उसने चारों ओर से घेरकर बहुत-से राजपूतों को मार डाला। इस फतेह के पीछे, जो शेरशाह की ताकत से बाहर थी, वह (शेरशाह) रणथंभोर की तरफ रवाना हुआ।–(देखो पृ० २३२)

में जूझकर मर मिटे[1]। जब यह संवाद शेरशाह को मिला, तब इस पर पहले तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ, परन्तु कुछ देर बाद उसके दिल का बोझ हलका हो जाने पर उसके मुँह से ये शब्द निकल पड़े[2]।

"खुदा का शुक्र है कि किसी तरह फतह हासिल हो गई, वरना मैंने एक मुट्ठी बाजरे के लिये हिन्दुस्थान की बादशाहत ही खोई थी।"

जिस समय राव मालदेवजी को अपने सरदारों की इस वीरता और स्वामिभक्ति का सच्चा समाचार मिला, उस समय यह बहुत ही दुखी हुए। परन्तु समय हाथ से निकल चुका था। साथ ही प्रधान-प्रधान सरदार भी युद्ध में मारे जा चुके थे। अतः सिवा चुप रहने के और कोई मार्ग ही नहीं था। इससे वे सिवाने की तरफ चले गए।

इस प्रकार कपट और भाग्य की सहायता से विजयी होकर शेरशाह ने जोधपुर के किले को घेर लेने का प्रबंध किया। यद्यपि वहाँ के सरदारों ने भी बड़ी बहादुरी के साथ इसका मुकाबला किया, तथापि अंत में वे सब-के-सब मारे गए[3]। इस प्रकार वि० सं० १६०१ (ई० स० १५४४) में यह किला भी शेरशाह के अधिकार में चला गया। इसी अवसर पर उसने मेड़ता राव वीरमदेव को और बीकानेर राव कल्याणमलजी को लौटा दिया, तथा अपनी विजय की यादगार में जोधपुर में दो

१ इस युद्ध में राठोड़ जैता, राठोड़ कूंपा, राठोड़ खींवकरण[(१)] ऊदावत, राठोड़ पंचायण[(२)] करमसोत, सोनगरा अखैराज[(३)] और जैसा भाटी नींबा आदि अनेक राजपूत सरदार और वीर मारे गए थे।

२ इस युद्ध का हाल अधिकतर फारसी तवारीख फरिश्ता और 'मुन्तखिबुल्लुबाब' से ही लिया गया है।

(तवारीख फरिश्ता, भा० १, पृ० २२७-२२८ और मुन्तखिबुल्लुबाब, हिस्सा १, पृ० १००-१०१)

३ उस समय किले की रक्षा करने में जो सरदार मारे गए थे, उनमें के राठोड़ अचला[(४)] शिवराजोत, राठोड़ तिलोकसी वरजांगोत[(५)], भाटी जैतमाल और भाटी शंकर सूरावत की छतरियाँ अब तक किले में विद्यमान हैं।

(१) यह बगड़ी का ठाकुर था।
(२) इसके वंशज आसोप आदि के ठाकुर हैं।
(३) इसके वंशज रायपुर वगैरा के ठाकुर हैं।
(४) इसके वंशज खींवसर वगैरा के स्वामी हैं।
(५) यह पाली का ठाकुर था।
(६) इसके वंशज लवेरे के स्वामी हैं।

मसजिदें बनवाने की आज्ञा दी। इनमें की एक तो किले पर और दूसरी फुलेलाव तालाब के पास बनवाई गई थी।[1] इसी प्रकार उसके सेनापति ने किले के उत्तर-पूर्व की तरफ से बाहर आने-जाने के लिये एक रास्ता भी निकाला था। इसके बाद चारों तरफ अपने थाने बिठाकर[2] और जोधपुर का प्रबंध खवासखाँ[3] को सौंप कर वह (अजमेर से) रणथंभोर की तरफ चला गया। परन्तु वि० स० १६०२ (ई० सन् १५४५) में ही कालिंजर में उसकी मृत्यु हो गई।

करीब डेढ़ वर्ष तक मारवाड़ में मुसलमानों का ही जोर रहा। परन्तु इसके बाद राव मालदेवजी ने जालोर और परबतसर के परगनों से सेना संग्रह कर पाती-नामक गॉव (भाद्राजण के पास) में अपना निवास कायम किया और कुछ समय के भीतर सब प्रबंध ठीक हो जाने पर वि० स० १६०३ (ई० स० १५४६) में भागेसर (पाली परगने) के शाही थाने पर हमला कर दिया। कुछ ही देर के घमसान युद्ध के बाद पठान भाग गए। इस प्रकार वहॉ पर रावजी का अधिकार हो जाने पर इन्होंने जोधपुर से भी पठानों को मार भगाया।

अगले वर्ष (वि० स० १६०४=ई० सन् १५४७ में) इनकी सेना ने हम्मीर[4] से फलोदी छीन ली।

इसी वर्ष राव मालदेवजी के और उनके ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह के बीच मनोमालिन्य हो गया। इससे इन्होंने रामसिंह और उसकी माता (कछवाहीजी) को गूंदोज (पाली परगने) में भेज दिया।[5] भटियानी उमादे ने इस राम को अपना दत्तक पुत्र मान लिया था। इसलिये वह भी उसी के साथ वहॉ चली गई।

१. पहली मसजिद का चिह्नस्वरूप एक छोटा-सा पीर का स्थान जैपोल से किले में घुसते ही दाहिने हाथ की तरफ अब तक मौजूद है और दूसरी का अवशिष्टांश शहर में फुलेलाव तालाब के दरवाजे के भीतर का पीर का ताक है।

२. ख्यातों के अनुसार उसी समय नागोर पर भी शेरशाह का अधिकार हो गया था।

३. इसकी कबर आजकल शहर में खवासखॉ (खासगा) पीर की दरगाह के नाम से प्रसिद्ध है।

४. यह राव सूजाजी का पौत्र और नरा का पुत्र था।

५. कुछ दिन बाद महाराणा उदयसिंहजी ने अपने जामाता राम को मेवाड़ में बुलवा कर अपने पास रख लिया और बाद में उसे केलवा की जागीर दी। इस पर वह भी सकुटुम्ब वहीं जाकर रहने लगा।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि वि० स० १६०५ (ई० सन् १५४८) में रावजी की आज्ञा से जैतावत राठोड़ पृथ्वीराज ने फिर मुसलमानों को भगाकर अजमेर पर अधिकार कर लिया था। यह देख महाराना उदयसिंहजी ने उसे इनसे छीन लेने के लिये अपनी सेना रवाना की। परन्तु युद्ध मे हारकर उसे लौटना पड़ा।

वि० स० १६०७ (ई० सन् १५५०) में मालदेवजी ने राठोड नगा और बीदा[1] को सेना देकर पौकरण पर अधिकार करने के लिये भेजा। उस समय वहाँ पर जैतमाल[2] का अधिकार था। यद्यपि उसने भी रावजी की सेना का सामना करने मे कोई कसर उठा न रक्खी, तथापि अत मे वहाँ पर मालदेवजी का अधिकार हो गया और जैतमाल कैद कर लिया गया। परन्तु जब कुछ ही समय बाद उसे छुटकारा मिला, तब फिर उसने अपने श्वसुर जैसलमेर के रावल मालदेवजी की सहायता से फलोदी पर अधिकार कर लिया[3]। इसकी सूचना पाने पर स्वय राव मालदेवजी ने फलोदी पर चढाई की। यद्यपि जैतमाल के सहायक भाटियो ने फलोदी की रक्षा का बहुत कुछ उद्योग किया, तथापि राठोड वीरो के सामने उन्हे भागना पडा और वहाँ पर फिर मालदेवजी का अधिकार हो गया। जिस समय ये भागे हुए भाटी मार्ग में बाहड़मेर के पास पहुँचे, उस समय इनकी विशृंखलित दशा को देख वहाँ के रावत भीम ने इनके १,००० ऊँट पकड़ लिए। परन्तु रावजी की आज्ञा के अनुसार कुछ ही दिन बाद राठोड जैसा और जैतावत पृथ्वीराज ने आकर भीम से वे ऊँट छीन लिए। इस अवसर पर रावत भीम स्वय भी पृथ्वीराज के हाथ से घायल होकर पकडा गया। परन्तु रावजी के पास लाए जाने पर इन्होने उसे छोड दिया और पृथ्वीराज की वीरता से प्रसन्न होकर उसे अपने सेनापति का पद दिया।

परन्तु रावत भीम ने इस अपमान का बदला लेने के लिये बाहड़मेर पहुँचते ही मालदेवजी के राज्य में उपद्रव शुरू कर दिया। यह देख वि० स० १६०९ (ई० सन् १५५२) में रावजी ने राठोड़ रतनसी और सिंधण को सेना देकर बाहड़मेर पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उन्होने वहाँ पहुँच बाहडमेर और

१ ये बाला राठोड भारमल के पुत्र थे।

२. यह राव सूजाजी के पुत्र नरा का पौत्र और गोविंददास का पुत्र था। तथा समय-समय पर मालदेवजी के राज्य मे लूटमार किया करता था। इसी से यह चढ़ाई की गई थी।

३ कहीं-कहीं पर पूगल के भाटी जैसा का भी फलोदी पर चढाई करना और हारकर लौटना लिखा मिलता है।

कोटडे पर अधिकार कर लिया । रावत भीम हार कर जैसलमेर पहुँचा और उसने रावलजी से कहा कि बाहडमेर और कोटड़ा जैसलमेर के द्वाररूप हैं । यदि वहाँ पर मालदेवजी के पैर जम गए, तो कुछ काल में ही वे जैसलमेर को भी दबा बैठेंगे । इसलिये आपको पुराना वैर भूल कर मेरी सहायता करनी चाहिए । यह सुन रावल मालदेवजी ने अपने पुत्र हरराज को मय सेना के उसके साथ कर दिया । जब इसकी सूचना रावजी को मिली, तब इन्होंने भी रतनसी और सिधण को उनका सामना करने की आज्ञा भेज दी । युद्ध होने पर कुछ समय तक तो भाटियो ने भी जमकर राठोडो का सामना किया, परन्तु अंत में उनके पैर उखड़ गए और भीम का सारा साज-सामान लूट लिया गया ।

जैसलमेरवाले अब तक दो बार मालदेवजी के विरुद्ध सेना भेज चुके थे । अत राव मालदेवजी ने उन्हे दड देने का निश्चय किया । इसी के अनुसार जब सेना की तैयारी हो चुकी, तब इन्होंने चापावत (भैरूँदास के पुत्र) जैसा और जैतावत पृथ्वीराज[2] को जैसलमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी । इन दोनो ने वहाँ पहुँच जैसलमेर को घेर लिया । इसके बाद कुछ ही दिनो के धावो मे नगर पर राठोडो का अधिकार हो गया और रावलजी को किले में घुस कर बैठना पडा । अत में रावलजी ने दण्ड के रूप में कुछ रुपये देकर राव मालदेवजी से सुलह करली ।

वि० स० १६१० (ई० सन् १५५३) में मालदेवजी ने वीरमदेव के पुत्र और मेडते के शासक जैमल[3] को जोधपुर मे उपस्थित होने की आज्ञा भेजी[4] । परन्तु

१ यह पुराना वैर भागते हुए भाटियों से १,००० ऊँटों के छीन लेने का था । इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है ।

२ कहते हैं कि इस युद्ध मे एक बार पृथ्वीराज एक बड के दरख्त की आड से शत्रुओं पर आक्रमण कर रहा था । यह देख शत्रुओं ने उस बड को ही काट डालने का इरादा किया । परतु वीर पृथ्वीराज ने उन्हें सफल नहीं होने दिया । इसी से वह बड़ का वृक्ष 'पृथ्वीराज के बड' के नाम से मशहूर हो गया ।

३ इसका जन्म वि० स० १५६४ की आश्विन सुदी ११ को हुआ था ।

४. किसी-किसी ख्यात मे मालदेवजी का वि० स० १६०३ (ई० स० १५४६) मे भी मेडते पर फौज भेजना और उसी समय बीकानेरवालों का मेडतेवालों की सहायता करना लिखा मिलता है । परतु वि० स० १६१० (ई० स० १५५३) की चढाई के समय उक्त सहायता का उल्लेख छोड दिया गया है । इसी प्रकार राव वीरम की मृत्यु का समय भी कहीं पर वि० स० १६०० और कही पर १६०४ लिखा मिलता है ।

जब उसने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, तब रावजी ने क्रुद्ध होकर स्वयं मेड़ते पर चढाई की और उक्त नगर को घेर लिया। यह देख जयमल भी युद्ध के लिये तैयार हुआ। इसी बीच उसने दूत द्वारा बीकानेर के राव कल्याणमलजी के पास भी सहायता के लिये सेना भेजने की प्रार्थना लिख भेजी। युद्ध होने पर यद्यपि एक बार तो नगर पर रावजी की सेना का अधिकार हो गया, तथापि बाद में बीकानेरवालो की सहायता पहुँच जाने से इन्हे वहाँ से लौट आना पड़ा। इस युद्ध में मालदेवजी का सेनापति पृथ्वीराज और भारमल का पुत्र राठोड नगा मारा गया था। अत. वीर देवीदास ने अपने भाई पृथ्वीराज का बदला लेने का विचार कर मालदेवजी से मेड़ते पर चढाई करने की आज्ञा माँगी। इन्होने भी उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और अपने पुत्र चद्रसेनजी को सेना देकर उसके साथ कर दिया। ये लोग मार्ग के गाँवो को लूटते हुए मेड़ते पहुँचे। यह देख जयमल भी युद्ध के लिये तैयार हो गया। इसी अवसर पर विवाह करने को बीकानेर जाते हुए महाराना उदयसिंहजी उधर आ निकले और उन्होने इस गृहकलह को शात करने के लिये समझा-बुझाकर देवीदास को तो जोधपुर की तरफ लौटा दिया और जयमल को अपने साथ लेलिया। इससे मेड़ते पर बिना युद्ध के ही मालदेवजी का अधिकार हो गया।

पहले लिखा जा चुका है कि वि० स० १५९५ (ई० सन् १५३८) के पूर्व ही जालोर पर बल्लोचों का अधिकार हो गया था और पठान भागकर गुजरात की तरफ चले गए थे। परन्तु वि० स० १६०९ (ई० सन् १५५२) के करीब मलिकखाँ की अधीनता में पठानो ने जालोर पर प्रत्याक्रमण कर वहाँ के बहुत-से बल्लोचो को मार डाला। इस पर बल्लोचो के कामदार गगादास ने सींधलो से मिलकर मालदेवजी से सहायता मागी। इन्होने भी अपनी सेना के द्वारा उन्हे किले से सही सलामत निकलवा कर पाटन (गुजरात में) पहुँचवा दिया और जालोर के किले पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु राठोड सेना उस किले में पूरी तौर से अपने पैर भी न जमाने पाई थी कि मलिकखाँ ने उस पर आक्रमण कर दिया। पठान लोग किले मे रह चुकने के कारण वहाँ की हरएक बात से परिचित थे। इसलिये राठोडो को लाचार होकर किला छोड देना पड़ा। यह घटना वि० स० १६१० (ई० सन् १५५३) की है। इसके कुछ काल बाद ही अगली पराजय का बदला लेने के लिये रावजी की सेना ने फिर जालोर पर चढाई की। मलिकखाँ किला

छोड कर भाग गया, और वहाँ पर रावजी का अधिकार हो गया। परन्तु दो वर्ष बाद इधर-उधर के लोगो को जमा कर मलिकखाँ ने एक बार फिर किले पर चढाई कर दी। यद्यपि इस अचानक होनेवाले आक्रमण से मालदेवजी की सेना किले में घिर गई, तथापि वह बराबर सात दिन तक शत्रु का सामना करती रही। परन्तु इसी बीच इधर तो रसद की कमी हो गई और उधर किले के कुछ अन्य निवासी विश्वास घात कर पठानो के प्रलोभनो में पड़ गए। इस पर लाचार हो राठोड़-सेना को किला छोड़ना पडा।

वि० स० १६१३ (ई० सन् १५५६) में राव मालदेवजी ने बगटी के ठाकुर जैतावत देवीदास की अधीनता में हाजीखाँ[2] पर सेना भेजी। यह देख उसने महाराना उदयसिंहजी से सहायता माँगी। उन्होने भी इसे स्वीकार कर अपने सैनिक उसकी मदद में भेज दिए। राठोड सेनानायक ने पहले से ही अपनी सेना की सख्या कम होने और महाराना के हाजीखाँ से मिल जाने के कारण युद्ध करना उचित न समझा। इसी अवसर पर जैमल ने भी महाराना की मदद से मेडते पर फिर से अधिकार कर लिया। परन्तु इसके कुछ ही दिनो बाद महाराना उदयसिंहजी के और हाजीखाँ के बीच झगड़ा हो गया[3] और स्वय महाराना ने बीकानेर के राव कल्याणमलजी और जयमल को साथ लेकर हाजीखाँ पर चढाई कर दी। यह देख खाँ ने मालदेवजी से सहायता चाही। इस पर रावजी ने पहले के अपमान का बदला लेने के लिये देवीदास की अधीनता में १,५०० सवार हाजीखाँ की मदद को भेज दिए। हरमाडा गाँव (अजमेर प्रात) के पास पहुँचने पर रानाजी की सेना से इनका

१ तारीख पालनपुर, जिल्द १ पृ० ७३-७६।

२ वि० स० १६१२ के श्रावण (ई० स० १५५५ की जुलाई) मे ईरान की सेना की मदद से हुमायूँ ने दिल्ली और आगरे पर फिर अधिकार कर लिया था। परतु वि० स० १६१२ के माघ (ई० स० १५५६ की जनवरी) मे उसकी मृत्यु होगई और उसका पुत्र अकबर गद्दी पर बैठा। इस पर पठान हाजीखाँ ने जो शेरशाह का गुलाम था अलवर से आकर अजमेर और नागोर पर अधिकार करलिया। उस समय अजमेर रानाजी के अधिकार मे था।

(ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ इडिया, भा० ६, पृ० २१)

३ कहते हैं कि महाराना उदयसिंहजी ने मालदेवजी के विरुद्ध दी हुई मदद के बदले हाजीखाँ से रगराय नामक नर्तकी को माँगा था। परन्तु हाजीखाँ के उसको देने से इनकार कर देने पर रानाजी नाराज हो गए और उस पर चढाई कर दी।

मुकाबला हुआ। यद्यपि सीसोदिये सरदार भी बडे बहादुर थे, तथापि वे राठोडो की तलवार का तेज न सह सके और कुछ ही देर बाद युद्ध से भाग खडे हुए। इस युद्ध मे रानाजी की तरफ के योद्धाओ मे बालेचा सूजा भी मारा गया था। यह युद्ध वि० स० १६१३ की फाल्गुन वदी ९ (ई० सन् १५५७ की २४ जनवरी) को हुआ था।[2][3]

इसी बीच रावजी ने मेडते पर भी एक सेना भेज दी थी। अतः जिस समय जयमल लौट कर मेड़ते पहुँचा, उस समय तक वहाँ पर मालदेवजी का अधिकार हो चुका था और राव मालदेवजी का पुत्र जैमल[3] और वीरवर देवीदास वहाँ की रक्षा पर नियत थे। इससे उसे मेडते की आशा छोड कर महाराना के पास वापस लौट जाना पडा। इसपर उदयसिहजी ने उसकी वीरता और सेवाओ का विचारकर उसे बदनोर की जागीर दे दी।

१ ख्यातों मे लिखा है कि बालेचा सूजा मेवाड से आकर मालदेवजी की सेवा मे रहने लगा था। परन्तु जिस समय इन्होने वि० स० १६०७ (ई० सन् १५५०) के करीब कुभलगढ पर चढाई की, उस समय वह इनका साथ देने से इनकार कर मेवाड को वापस लौट गया। इस पर महाराना ने उसे फिर अपने पास रख लिया। जिस समय रावजी ने देवीदास को इस युद्ध मे भेजा था, उस समय उसे सूजा से बदला लेने का खास तौर से आदेश दे दिया था। इसके बाद जब मेवाड की सेना को परास्त कर और सूजा को मारकर देवीदास वापस लौटा, तब रावजी ने उसकी वीरता की बडी प्रशसा की और उसे मेडते की रक्षा के लिये भेज दिया।

२ इसी वर्ष (वि० स० १६१३=हि० स० ६६४=ई० सन् १५५७ मे) अकबर की आज्ञा से मुहम्मद कासिमखाँ नेशापुरी ने हाजीखाँ से अजमेर और नागोर छीन लिया।

(ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ इडिया, भा० ६, पृ० २२)

३ वि० स० १६१५ (ई० स० १५५८) का एक शिलालेख इस (महाराज-कुमार) जैमल का मेडते परगने के रैंया नामक गाव से मिला है। इसमे राव मालदेवजी के राज्य समय उक्त राजकुमार (जेमल) के द्वारा भूमिदान किए जाने का और साथ ही इस दान के जगमाल के द्वारा पालन किए जाने का उल्लेख है। इस लेख मे का जगमाल मेडतिया राठोड जयमल का छोटा भाई था और उसको मालदेवजी ने मेडते का आधा हिस्सा जागीर मे दे दिया था। वि० स० १६१८ (ई० स० १५६१) मे जब बादशाह अकबर की सेना ने मेडता विजय करते समय मालकोट की दीवार को सुरग से उडा दिया, उस समय यह जगमाल अपने कुटुम्बियों के साथ बाहर निकल गया था।

४ कहीं-कही वि० स० १६११ के आश्विन (ई० स० १५५४ के सितम्बर) मास मे इस जागीर का दिया जाना लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि जिस समय देवीदास और

वि० स० १६१४ (ई० सन् १५५७=हि० सन् ९६५) में कासिमखाँ (अजमेर के सूबेदार) की आज्ञा से सैयद मैहमूद बाराह और शाह कुलीखाँ ने जेतारण पर चढ़ाई की। इसपर वहाँ के स्वामी ऊदावत रतनसी ने मालदेवजी से सहायता माँगी। परन्तु रावजी ने उससे अप्रसन्न होने के कारण इधर ध्यान ही नहीं दिया। इससे युद्ध मे रतनसी मारा गया और जैतारण पर मुसलमानो का अधिकार हो गया।

इसके बाद राव मालदेवजी ने मेड़ते मे के वीरमदेव और जयमल के बनवाए हुए स्थानो को गिरवाकर वहाँ पर एक नया किला बनवाया और उसका नाम अपने नाम पर मालकोट रक्खा। साथ ही वहाँ के नगर को भी नए सिरे से बसाया।

ख्यातो से ज्ञात होता है कि वि० स० १६१६ (ई० सन् १५५९) में जैतावत देवीदास को जालोर पर चढाई करने की आज्ञा दी गई थी। इसी के अनुसार पहले तो उसने बिहारी पठानो से जालोर छीन लिया और इसके बाद बदनोर पर आक्रमण कर दिया। इससे जैमलजी को उक्त प्रदेश छोड देना पडा।

वि० स० १६१८ (ई० सन् १५६१) में जिस समय अकबर बादशाह अजमेर को आता हुआ मार्ग मे साभर मे ठहरा हुआ था, उस समय जयमल जाकर उससे मिला और अपना सारा वृत्तात कह कर अपने पैतृक राज्य मेडते पर अधिकार करने में सहायता चाही। बादशाह ने भी आपस की फूट से अपने पिता का बदला

महाराजकुमार चद्रसेनजी ने मेडते पर चढाई की थी और महाराना उदयसिंहजी बीच बचावकर जयमल को अपने साथ बीकानेर ले गए थे, उस समय वहा से उदयपुर लौटने पर ही शायद यह जागीर उसे दी गई होगी।

१ वि० स० १६१० (ई० स० १५५३) मे मेडता विजय करते समय यद्यपि रतनसी राव मालदेवजी की तरफ़ से युद्ध मे सम्मिलित हुआ था, तथापि लडाई के समय उसने जयमल के पक्ष के ऊदावत डूँगरसी को वार मे आ जाने पर भी अपना कुटुम्बी समझ छोड दिया था। इसी से मालदेवजी उससे नाराज हो गए थे।

२ इलियट्स हिस्ट्री ऑफ़ इडिया, भा० ६, पृ० २२ (अकबरनामा दफ़ा २, पृ० ६६)
मारवाड की ख्यातों मे इस घटना का कासिमखाँ द्वारा वि० स० १६१६ (ई० स० १५५९) मे होना लिखा है। परतु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

३ 'तबकाते अकबरी' मे लिखा है—

जब हि० स० ९६७ (वि० स० १६१७=ई० स० १५६०) मे बादशाह अकबर खाँखानान् बेहरामखा से नाराज हो गया, तब उसको हज का बहाना करना पडा। परतु जिस समय वह इस यात्रा के लिये गुजरात की तरफ़ चला, उस समय उसे खयाल आया कि इस मार्ग मे तो मेरा प्रबल

लेने का अवसर आया देख तत्काल ही मिरजा शरफुद्दीन को मय सेना के उसके साथ कर दिया। इन लोगों ने मेड़ते पहुँच वहाँ के किले को घेर लियाँ। परन्तु कई दिन बीत जाने पर भी जब वे लोग राठोड़ों की वीरता के सामने सीधी तरह किले पर अधिकार न कर सके, तब उन्होंने सुरंग लगाकर किले का एक बुर्ज उड़ा दिया। इसके बाद शाही सैनिक इस रास्ते से अंदर घुसने का जी तोड़ प्रयत्न करने लगे। परन्तु मुट्ठी-भर राठोड़ वीरों ने वह बहादुरी दिखलाई कि शाही सेना को ठिठककर रुक जाना पड़ा। रात्रि में युद्ध बंद हो जाने पर किलेवालों ने बड़ी कोशिश के साथ वह बुर्ज फिर से खड़ा कर लिया, इससे शाही सेना का सब प्रयत्न विफल हो गया। परन्तु इसके कुछ दिन बाद जब किले की रसद बिलकुल ही समाप्त हो चुकी, तब बचे हुए राठोड़ों ने किला छोड़ कर बाहर निकल जाने का इरादा प्रकट किया। शाही सेना के अफसर तो इन वीरों की वीरता का लोहा पहले से ही मान चुके थे। अतः उन्होंने इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की और वे किले के दरवाजे से हटकर खड़े हो गए। इस पर जगमाल तो किले से निकल कर चला गया। परन्तु जिस समय देवीदास अपने ४०० सवारों-सहित शाही सेना के सामने से जाने लगा, उस समय लोगों के भड़काने से मिरजा ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़[2] दी और उसके निकलने पर उसका पीछा किया। कुछ ही दूर जाने पर जब देवीदास को इस बात

शत्रु जोधपुर का राजा मालदेव निवास करता है, जिसके पास बहुत अधिक साज-सामान है। यह सोच उसने अपना रास्ता बदल लिया और वह नागोर से बीकानेर चला गया। वहां पर कल्याणमल और उनके पुत्र रायसिंह ने उसकी बड़ी मेहमानदारी की। इसलिये वहां पर कुछ दिन आराम कर वह पंजाब की तरफ चला गया। (देखो पृ० २५२)

१ कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि राव मालदेवजी ने अपने महाराजकुमार चंद्रसेनजी को सेना देकर मेड़तेवालों की सहायता के लिये भेज दिया था। परंतु वहां पहुँचने पर उनके साथ के सरदार अपने से कहीं बड़ी शाही सेना से सामना करना हानिकारक जान उन्हें जोधपुर वापस ले आए।

इसी प्रकार ख्यातों में यह भी लिखा है कि मेड़तेवालों की सहायता के लिये रीयां के राठोड़ साँवलदास ने भी अपनी सेना लेकर अचानक ही शाही फौज पर हमला कर दिया था। परंतु युद्ध में घायल हो जाने के कारण उसे लौट जाना पड़ा। इसका बदला लेने को यवन सेना के एक भाग ने जाकर रीयां को घेर लिया। इन्हीं के साथ के युद्ध में साँवलदास मारा गया।

२ 'अकबरनामे' में लिखा है कि उस समय मेड़ते पर मालदेव का अधिकार था, जो उस समय के सब से बड़े राजाओं में से था और उसकी तरफ़ से वहां की रक्षा का भार एक

का पता चला, तब वह वीर राठोड़ वापिस लौटकर उससे भिड गया। यद्यपि उस समय राजपूतो ने बडी बहादुरी से मुगलो का सामना किया, तथापि संख्या की अधिकता के कारण विजय मुसलमानो के ही हाथ रही। वीर देवीदास युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। यह युद्ध सोगावास और मेड़ते के बीच हुआ था।

इसके बाद शरफुद्दीन ने मेडते का अधिकार जयमल को सौंप दिया, परन्तु स्वय उसे साथ लेकर नागोर पहुँचा। वहीं पर इन दोनो के बीच किसी बात पर झगडा हो गया। इस पर जयमल उसे छोड़कर चित्तौड़ चला गया। कुछ ही काल के भीतर बादशाह अकबर ने अजमेर के सूबे का प्रबध कर मारवाड के परबतसर और

बड़े सरदार जगमाल को सौंपा हुआ था। साथ ही उसकी मदद के लिये ५०० सवारों के साथ वीरवर देवीदास भी नियत था।

(देखो भा० २, पृ० १६०)

'तबकाते अकबरी' मे उस समय मेडते के किले का जैमल के अधिकार में होना लिखा है (देखो पृ० २५६)। यह ठीक नहीं है। उस समय के वहा के किलेदार का नाम जगमाल ही था।

'अकबरनामे' मे यह भी लिखा है कि देवीदास सधि के विरुद्ध अपना साज सामान जलाकर किले से निकला था। इसीलिये शरफुद्दीन ने उसका पीछा किया। उसी पुस्तक मे आगे लिखा है कि देवीदास ने युद्ध मे वह काम किया कि रुस्तम का नाम और निशान तक दुनिया से मिटा दिया। अत मे युद्ध करता हुआ वह घोडे से गिर पड़ा। इसी समय बहुत से सैनिकों ने धावा कर उसे मार डाला (देखो भाग २, पृ० १६२)।

मारवाड की ख्यातों और फारसी तवारीखों मे देवीदास का एक सन्यासी द्वारा बचाया जाना और कुछ वर्ष बाद चद्रसेनजी के समय वि० स० १६३३ (ई० स० १५७६) मे वापिस लौटकर आना भी लिखा है।

'मुन्तखिबुल लुबाब' नामक इतिहास मे लिखा है कि हि० स० ९६८ (वि० स० १६१८) मे बादशाह अकबर ने मिरजा शरफुद्दीन को मारवाड़ फतह करने के लिये मालदेव पर चढाई करने की आज्ञा दी। इसपर उसने जोधपुर पहुँच वहाँ के किले को घेर लिया। कुछ दिन बाद मालदेव ने सधि का प्रस्ताव किया। इस पर यह तय हुआ कि मालदेव तो जाकर सिवाने के किले में रहे और उसका छोटा भाई ७ दिन मे अपने परिवार को हटाने का प्रबन्ध करके साज सामान सहित किला शाही सैनिकों को सौंप दे। परतु मालदेव के चले जाने पर उसके भाई और शरफुद्दीन के बीच किसी बात पर झगडा हो गया। इससे राव का भाई ५०० सवारों के साथ किले से निकलकर सम्मुख रण मे मारा गया। (देखो पृष्ठ १५९-१६०)

हमारी समझ मे इस इतिहास के लेखक ने गलती से मेड़ते पर की चढाई को जोधपुर की चढ़ाई लिख दिया है और देवीदासवाली घटना का सम्बन्ध मालदेवजी के भाई के साथ कर दिया है।

मेड़ते[1] के परगनो पर अधिकार कर लिया। इस पर समय का प्रभाव देख मालदेवजी ने शाति धारण कर ली। वि० स० १६१९ की कार्तिक सुदी १२ (ई० स० १५६२ की ७ नवबर) को इन प्रबल पराक्रमी नरेश राव मालदेवजी का स्वर्गवास हो गया।[2]

राव मालदेवजी बडे वीर और प्रतापी थे। जिस समय यह राज्य के अधिकारी हुए, उस समय इनका प्रताप उदय होते हुए बाल रवि के समान अदूरव्यापी अर्थात्-केवल जोधपुर और सोजत प्रातो तक ही फैला हुआ था। परन्तु होते-होते १० वर्षों के भीतर इनका वही बालप्रताप मध्याह्न के सूर्य के प्रखर तेज के समान समग्र राजस्थान को पारकर दिल्ली और आगरे के पास तक अर्थात्-हिंडौन, बयाना, फतैपुर, सीकरी और मेवात तक फैल गया था। इसी से हुमायूँ जैसे बादशाह को भी शेरशाह-रूपी अधकार से त्राण पाने के लिये इन्हीं की शरण लेनी पडी थी। यदि मूर्ख शाही सैनिको ने कुछ समझ से काम लिया होता और गोवध न कर क्षत्रिय राठोड वीरो का दिल न दुखाया होता तथा वीरमजी के और मालदेवजी के बीच फूट का बीज न उत्पन्न हुआ होता, तो उस समय का भारतीय इतिहास भी कुछ और ही दृश्य दिखलाता। परन्तु ईश्वर की माया-मरीचिका के प्रभाव से इन घटनाओ के हो जाने के कारण एकाएक पासा पलट गया और साथ ही वि० स० १६०० (ई० स० १५४३) मे

१ वि० स० १६२० (हि० स० ९७१) मे बादशाह अकबर मिर्जा शर्फुद्दीन से नाराज हो गया। इसी से उसने उसके स्थान पर हुसैन कुली को नियत कर दिया। इस पर हुसैन कुली ने मिर्जा को भगाकर अजमेर, जालोर, नागोर और मेडते के परगने उससे छीन लिए। इसके बाद उसने बादशाह की आज्ञा से मेडता जयमल से लेकर जगमाल को दे दिया। यह देख जयमल मेवाड की तरफ चला गया और वि० स० १६२४ (ई० सन् १५६७) मे महाराना उदयसिहजी के किला छोडकर पर्वतो मे चले जाने पर चित्तौड के किले की रक्षा करता हुआ अकबर के हाथ से मारा गया। यद्यपि 'अकबरनामा' (भा० २, पृ० १९६) आदि फारसी तवारीखों मे जयमल से मेडता लेने का उल्लेख है, तथापि वास्तव मे मेडता जयमल से न लिया जाकर शर्फुद्दीन से ही लिया गया था। जयमल तो शर्फुद्दीन से नाराज होकर पहले ही नागोर से मेवाड की तरफ चला गया था।

२ उस समय इनके पुत्र चद्रसेनजी सिवाने मे थे। अतः इनकी मृत्यु का समाचार पाते ही वह वहाँ से जोधपुर चले आए। कार्तिक सुदी १३ को मडोर मे रावजी की अत्येष्टिक्रिया की गई। इनके पीछे १० रानियाँ सती हुई थीं।

शेरशाहरूपी राहु के संयोग से पूर्ण ग्रहण का योग आ उपस्थित हुआ। यद्यपि कुछ ही काल में राव मालदेवजी ने अपने को उसके ग्रास से बचाकर एकबार फिर तेज प्रकट किया, तथापि वह ढलते हुए सूर्य के समान ही रहा। उसमें वह प्रचण्डता न आ सकी।

इन्होंने अपने राज्यकाल में कुल मिलाकर ५२ युद्ध किए थे और एक समय छोटे-बड़े ५८ परगनों पर इनका अधिकार रहा था। उनके नाम इसप्रकार लिखे मिलते हैं

१ सोजत, २ मेड़ता, ३ अजमेर, ४ सांभर[2], ५ बदनोर[3], ६ रायपुर[4], ७ भाद्राजण[5], ८ नागोर[6], ९ खाटू, १० लाडणू, ११ डीडवाना, १२ फतेपुर, १३ कासली, १४ रेवासा, १५ चाटसू, १६ जहाजपुर, १७ मदारियाँ, १८ टोंक, १९ टोडा, २० चित्तौड़ के पास के प्रदेश, २१ पाली, २२ बणावीरपुर, २३ सिवाना, (अणखला), २४ लोहगढ, २५ नाडोल, २६ जोजावर, २७ कुंभलमेर (के पास का प्रदेश), २८ जालोर[10], २९ साचोर[11], ३० भीनमाल, ३१ बीकानेर, ३२ पौकरन, ३३ फलोदी, ३४ चौहटन[12], ३५ पारकर[13], ३६ कोटडा[14], ३७ बाहड़मेर, ३८ खावड[15], ३९ अमरसर[17], ४० उदयपुर (पवारों का—छोटा), ४१ उमरकोट[18], ४२ छापर, ४३ झूंझणू, ४४ जेखल, ४५ जैतारण[19], ४६ जोधपुर, ४७ नारनौल, ४८ नराणा, ४९ बंवली (बोनली), ५० मल्हारणा, ५१ समईगाँव, ५२ सातलमेर, ५३ मालपुरा[20], ५४ कोसीयल[21], ५५ केकैड़ी[22], ५६ पुरमांडल[23], ५७ लालसोट, ५८ राधनपुर।

इनके अलावा किसी-किसी ख्यात में मालदेवजी का सिरोही के प्रांत को विजय कर वहाँ के रावल को वापस सौंप देना भी लिखा मिलता है।

---

१ वीरमदेव से, २ बादशाही हाकिम से, ३ रानाजी से, ४ सींधल राठोडों से, ५ सींधल राठोडों से, ६ खानजादों से, ७ रानाजी से, ८ जैतमालोत राठोडों से, ९ रानाजी से, १० बिहारी पठानों से, ११ चौहानों से, १२-१३ पवाँरों से, १४-१५ मल्लिनाथजी के वंशज राठोडों से, १६ पवाँरों से, १७ शेखावाटी के कछवाहों से, १८ सोढों से, १९ ऊदावत राठोडों से, २० पवाँरों से, २१ रानाजी से, २२-२३ शाही हाकिम से और २४ पवाँरों से छीने थे। २५. इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

राव मालदेवजी ने अनेक किले आदि भी बनवाए थे। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

पहले पहल जोधपुर के किले का विस्तार बढाकर उसके पास के रानीसर नामक तालाव के इर्द-गिर्द कोट बनवाया। इससे युद्ध के समय किलेवालो को पानी का सुभीता हो गया। इसी प्रकार चिड़ियानाथ के झरने को भी कोट से घेरकर किले का एक भाग बना दिया। जोधपुर नगर के चारो तरफ शहर-पनाह बनवाई। कहते हैं कि इन सबके बनवाने में ९,००,००० फदिए (करीब १,१२,५०० रुपये) लगे थे।

इसके बाद वि० स० १६०८ (ई० स० १५५१) मे इन्होने पौकरण का नया किला बनवाया। इसके बनवाने मे सातलमेर के पुराने किले का सामान काम में लाया गया था। इसी प्रकार वि० स० १६१४ (ई० स० १५५७) मे मेड़ते में अपने नाम पर मालकोट-नामक किला बनवाना प्रारंभ किया। यह किला वि० स० १६१६ (ई० सन् १५५९) में समाप्त हुआ था।

इनके अलावा सोजत, सारन, रायपुर (वहॉ के पहाड़ पर), पीपलोद, रीयॉ, फलोदी (यहॉ का किला नरा के पुत्र हम्मीर के, वि० स० १५४५=ई० सन् १४८८ में, बनवाए किले पर ही बनवाया गया था।), चाटसू और बीकानेर आदि में भी किले बनवाए। भाद्राजण, सिवाना, और नाडोल में शहर-पनाहे बनवाई। नागोर की शहरपनाह का जीर्णोद्धार करवाया। अजमेर के किले मे बींटली का कोट और बुर्ज बनवाए और वहॉ से किले पर पानी चढाने का प्रबंध किया। इनके अलावा गूॅदोज, पीपाड और दूनाड़ा आदि में भी निवासस्थान बनवाए।

इनकी रानी झाली स्वरूपदेवी ने अपने नाम पर स्वरूपसागर नामक तालाब बनवाया था। यह आजकल बहूजी के तालाब के नाम से प्रसिद्ध है[१]।

राव मालदेवजी के २२ पुत्र थे।

१ यह तालाव कागे म मडोर की तरफ जाते हुए बाऍ हाथ पर है।

१ रामं[1], २ रायमल, ३ रत्नसिंह[2], ४ भोजराज[3], ५ उदयसिंहजी, ६ चन्द्रसेनजी, ७ भाण, ८ विक्रमादित्य, ९ आसकरण, १० गोपालदास, ११ जसवंतसिंह, १२ महेशदास, १३ तिलोकसी, १४ पृथ्वीराज, १५ डूंगरसी, १६ जैमल, १७ नेतसी, १८ लिखमीदास, १९ रूपसी, २० तेजसी, २१ ठाकुरसी, २२ कल्याणदास।

रावजी ने छोटे-बड़े अनेक गाँव दान[4] किए थे।

---

१ इसका जन्म वि० सं० १५८६ की फागुन सुदि ८५ को हुआ था। परन्तु इसके तरुण होने पर राव मालदेवजी को इसके बागी होकर राज्य पर अधिकार कर लेने के विचार की सूचना मिलने से उन्होंने इसे मारवाड़ से बाहर चले जाने की आज्ञा देदी। इसने हि० सं० ९८० (वि० सं० १६२९=ई० सन् १५७२) में बादशाही सेना के साथ रहकर इब्राहीम हुसेन मिर्जा को हराने में अच्छी वीरता दिखाई थी। (अकबरनामा, भा० ३, पृ० ३५ और तबकाते अकबरी, पृ० ३०१) इसी राम ने अथवा इसके वंशज ने अमझेरे (मालवे) में एक छोटे राज्य की स्थापना की थी। परन्तु वि० सं० १९१४ (ई० सन् १८५७) में वहाँ के शासक के बागियों के साथ मिल जाने से भारत-सरकार के द्वारा वह राज्य सिंधिया के हवाले कर दिया गया।

२. इसका जन्म वि० सं० १५८६ की आश्विन सुदि ८ को हुआ था।

३. इसका जन्म वि० सं० १५९० की मँगसिर सुदि ८ को हुआ था।

४ १ बीकरलाई-आधी २ मोराई (जतारण परगने के), ३ बाला खुर्द (बीलाड़ा परगने का), ४ बेलणकोट ५ सीतली (पचपदरा परगने के), ६ नैरवा (जालोर परगने का), ७ सेडापा ८ चीमवी ९ मैंगर कोटवाली १० भनेर-कुतड़ी ११ बासणी भाटिया १२ ढढोरा (जोधपुर परगने के), १३ धोलेरिया खुर्द १४ मूकरलाई (पाली परगने के) १५ मालपुरिया कला १६ रूपावास १७ वड़ियाला १८ तालका १९ चारवा। (सोजत परगने के) पुरोहितों को, २० सिनावड़ी आधी (जेतारण परगने की), २१ जोधड़ावास (नागोर परगने का), २२ इकराणी २३ रीछोली २४ रवाडा-मया २५ रवाडा बारटा २६ मेडीवासण (पचपदरा परगने के), २७ साकड़ावास (पाली परगने का), २८ आत्रा खेड़ा २९ जोधड़ावास खुर्द आधा (मेड़ता परगने के), ३० रायी कला चारण ३१ चौपासणी चारण ३२ रलावास ३३ लारड़ खुर्द (जोधपुर परगने के), ३४ टीगारिया (डीडवाना परगने का) चारणों को, ३५ कानावास ३६ मालपुरिया खुर्द (सोजत परगने के), ३७ बीदासणी ३८ लोरड़ी-डोलियावास ३९ सूरजवासणी (जोधपुर परगने के), ४० कारोलिया (जैतारण परगने का) ब्राह्मणों को।

फ़ारसी तवारीख़ों से राव मालदेवजी के प्रभाव, पराक्रम और ऐश्वर्य के विषय के कुछ अवतरण।

मालदेव, जो उसकी १६वीं पुश्त में है, बहुत बढा-चढा है। करीब था शेरखाँ का भी उसके मुकाबले मे काम तमाम हो जाता। वैसे तो इस मुल्क मे बहुतसे किले है, लेकिन उनमे अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, उमरकोट, आबूगढ और जालौर के किले खास है।

(आईने अकबरी, दफ्तर २, पे० ५०८)

हि० सन् ९६९, साल जुलूस ७, मे बादशाह (अकबर) ने मिर्जा शर्फुद्दीन हुसैन को मेडते का परगना और किला फतेह करने के लिये भेजा और उसकी मदद के लिये बहुतसे बडे-बडे शाही अमीर साथ किए गए। यह मेडते का किला उस समय राव मालदेव के अधिकार मे था, जो तमाम दूसरे रायो और राजाओ से हिंदुस्तान के रिवाजो और नाम मे बढा हुआ था। तथा शान शौकत मे भी बढकर था।

(अकबरनामा, जिल्द २, पे० १६०)

मेडते पर कब्जा कर लेने के बाद जब हि० सन् ९७१, साल जलूस ८, मे बादशाह (अकबर) मिर्जा शर्फुद्दीन की तरफ से फारिग हो गया, तो किले जोधपुर के, जो उस मुल्क के मजबूत किलो मे से है, फतेह करने का इरादा किया। यह किला राव मालदेव की, जो हिंदुस्तान के बडे राजाओ मे दरजा, इज्जत, फौज और मुल्क की अधिकता मे सबसे बढकर था, राजधानी था।

(अकबरनामा, जिल्द २, पे० १९७)

बादशाह हुमायूँ आखिरकार मालदेव की तरफ, जो हिंदुस्तान के मौतबिर जमींदारो में से था और उस जमाने मे हिन्दू-रईसो में ताकत और फौज में उसके बराबरी का कोई न था, रवाना हुआ।

(तबकाते अकबरी, पे० २०५)

मालदेव कि जो नागोर और जोधपुर का मालिक था, हिन्दुस्तान के राजाओ में फौज और ठाट (हशमत) में सबसे बढकर था। उसके झडे के नीचे ५०,००० राजपूत थे।

(तबकाते अकबरी, पे० २३१-२३२)

पहले-पहल मालदेव पर कि जो नागोर और जोधपुर के मुल्क का मालिक था और हिंदुस्थान के राजाओ मे फौज और ठाट की अधिकता मे बढकर था तथा ५०,००० सवार के करीब उसके झडे के नीचे जमा थे, गया।

(फरिश्ता, जिल्द १, पे० २२७)

जो (मालदेव) बडे राजाओ मे दबदबेवाला था और उसकी फौज मे ८०,००० सिपाही थे। हालाकि राना सागा, जो कि हुमायूँ से लडा था, दौलत और ठाट मे मालदेव के बराबर था, मगर मुल्क की और फौज की ज्यादती मे राव मालदेव उससे बडा था। कई बार मालदेव के फौजी अफसरो को राना सांगा से लडाई करनी पडी थी। मगर हरबार जीत मालदेव की ही तरफ रही।

(तुजुक जहाँगीरी, दीबाचा, पे० ७)

यह लाल (जिसकी कीमत ६०,००० रुपये की गई है) पहले राव मालदेव के पास था, जो राठोडो का सरदार और हिन्दुस्तान के बहुत बडे राजाओ मे से था।

(तुजुक जहाँगीरी, पे० १४१)

मालदेव हिंदुस्थान के बड़े जमींदारो मे से था। राना की बराबरी करनेवाला जमींदार वही था, बल्कि एक लडाई मे उसने राना पर फतेह भी पाई थी। उसका हाल अकबरनामे मे तफसील से लिखा है।

(तुजुक जहाँगीरी, पृ० २८०)

इसके बाद शर्फुद्दीन हुसैन को राजा मालदेव को सजा देने और उसके मुल्क को फतेह करने के लिये भेजा। यह (मालदेव) जसवत के बाप-दादाओ मे था, जो कदीम जमाने से हिंदुस्तान के मशहूर राजाओ मे गिने जाते थे और दिल्ली के

१. महाराना सागाजी का समय वि० स० १५६६ (ई० सन् १५०९) मे १५८४ (ई० स० १५२८) तक था और राव मालदेवजी वि० स० १५८८ (ई० स० १५३१) मे गद्दी पर बैठे थे। इसलिये इस घटना का सबध ठीक प्रतीत नही होता। हाँ, इस घटना का सबध उस (राना) के छोटे पुत्र विक्रमादित्य और उसके उत्तराधिकारियों से हो सकता है। अथवा यह भी सभव है कि मालदेवजी के समय के कुछ सेनानायक, जो इनके पूर्व मे ही मारवाड की सेना का सचालन करते आए थे, उससे लड़े हों। उद्धृत पंक्तियों में भी सेनापतियों का ही उल्लेख है।

बादशाहो की मातहती नहीं करते थे। साथ ही जोधपुर, मेडता और सिवाना के से मजबूत किलो के भरोसे पर मगरूर सरकशो मे मशहूर थे।

(मुन्तखबुल्लुबाब, हिस्सा १, पे० १५६)

मारवाड का जमींदार राय मालदेव हिंदुस्थान के बडे राजाओ मे से था और अपने साज-सामान और फौज के लिये मशहूर था। मारवाड अजमेर के सूबे का एक इलाका है, जो १०० कोस लबा और ६० कोस चौड़ा है। अजमेर, जोधपुर, सिरोही, नागोर और बीकानेर इसमे दाखिल हैं।

(मआसिरुल उमरा, भा० २, पृ० १७६)

इन विरोधी, विधर्मी और विदेशी लेखको के लिखे इतिहासो के अवतरणो से भी प्रकट होता है कि वास्तव में राव मालदेवजी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ और प्रबल पराक्रमी राजा थे।

कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान[1] के इतिहास मे लिखा है कि वि० सं० १६२५ (ई० सन् १५६६) मे जिस समय अकबर अजमेर में था, उस समय मालदेव ने अपने द्वितीय पुत्र चद्रसेन को नजराने के साथ उसके पास भेजा था। परन्तु उसका यह लिखना विलकुल सत्य से परे है, क्योंकि राव मालदेवजी तो इस समय से करीब ६ वर्ष पूर्व अर्थात्-वि० स० १६१६ (ई० सन् १५६२) में ही इस असार ससार को छोड चुके थे।

---

१ ऐनाल्स ऐन्ड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान (डब्ल्यू क्रुक सपादित), भा० २, पृ० ६५८।

२०. राव चन्द्रसेनजी

यह मारवाड़ नरेश राव मालदेवजी के छठे पुत्र[1] थे। इनका जन्म वि० स० १५९८ की सावन-वदि ८ (ई० सन् १५४१ की १६ जुलाई) को हुआ था।

राव मालदेवजी के देहांत के बाद उन्हीं की इच्छानुसार वि० स० १६१९ की मगसिर-वदि १ (ई० स० १५६२ की ११ नवंबर) को यह जोधपुर की गद्दी पर बैठे। इनके राज्य पर बैठने के कुछ दिन बाद ही एक साधारणसी घटना के कारण कुछ सरदार इनसे अप्रसन्न हो गए और उन्होने राव चन्द्रसेनजी के तीनों बड़े भाइयो[3] के पास गुप्त पत्र भेज कर उन्हे जोधपुर-राज्य पर अधिकार करने को उकसाना प्रारंभ किया। इससे इनके सबसे बड़े भाई राम ने सोजत और दूसरे भाई रायमल्ल ने दूनाडा-प्रांत मे उपद्रव शुरू किया, तथा तीसरे भाई उदयसिंहजी ने अचानक आकर गागाणी और बावड़ी पर अधिकार कर लिया। यह सूचना पाते ही राव चन्द्रसेनजी ने उदयसिंहजी पर चढाई की। इस पर उदयसिंहजी नवाधिकृत प्रदेश को छोड फलोदी की तरफ लौट चले। परन्तु लोहावट में पहुँचते-पहुँचते दोनो सेनाओ का सामना हो गया और वहाँ के युद्ध में चन्द्रसेनजी की तलवार से उदयसिंहजी के घायल हो जाने के कारण विजय चन्द्रसेनजी के ही हाथ रही। इसके बाद एक बार तो चन्द्रसेनजी जोधपुर चले आए, परन्तु फिर शीघ्र ही इन्होने सेना लेकर फलोदी पर

१ वि० स० १६०० (ई० स० १५४३) में ही राव मालदेवजी ने इन्हें बीसलपुर और सिवाना जागीर मे दे दिया था। इसलिये बड़े होने पर यह अधिकतर वहीं रहा करते थे। पिता के देहान्त की सूचना पाते ही यह वहा से दूसरे दिन जोधपुर पहुँच गए और पिता की इच्छानुसार राज्याधिकार प्राप्त कर लेने पर इन्होंने अपनी सिवाने की जागीर अपने बड़े भाई रायमल्ल को दे दी। यह रायमल्ल मालदेवजी का द्वितीय पुत्र था।

२ एक बार राव चद्रसेनजी का एक अपराधी दास भागकर (जैसा के पुत्र) जैतमाल के पास चला गया था। परतु रावजी ने अपने आदमी भेजकर उसको पकड़वा मॅगवाया। इस पर जैतमाल ने कहलाया कि आप इसे जहा तक हो, प्राणदड न देकर अन्य किसी प्रकार के दड की आज्ञा दें। इस हस्तक्षेप से राव चद्रसेनजी और भी नाराज हो गए और उस दास को तत्काल प्राणदड देने की आज्ञा दे दी। इसी से जैतमाल और उससे मेल रखनेवाले कुछ अन्य सरदार इनसे अप्रसन्न हो गए थे।

३ उस समय राव चद्रसेनजी के तीनों बड़े भाइयों मे सबसे बड़ा भाई राम अपनी जागीर गूँदोच मे, दूसरा रायमल्ल सिवाने मे और तीसरा उदयसिंह फलोदी मे था।



२० राव चन्द्रसेनजी

वि० स० १६१६-१६३७ (ई० स० १५६२-१५८१)

चढ़ाई करदी। उस समय मुगल-सम्राट् अकबर का बल बहुत बढ़ रहा था। इसी से मारवाड के कुछ समझदार सरदारों ने, इस प्रकार आपस के कलह से राठोडों के बल की हानि देख, दोनों को भली भाँति समझा दिया। इस पर चद्रसेनजी ने चढ़ाई का विचार त्याग दिया।

ख्यातों में लिखा है कि इसके बाद वि० स० १६२० (ई० सन् १५६३) में राव चन्द्रसेनजी ने अपने भाई राम पर चढाई की। इसकी सूचना पाते ही पहले तो राम ने भी नाडोल में आकर इनकी सेना का सामना किया, परन्तु अत में विजय की आशा न देख वह नागोर के शाही हाकिम हुसेनकुली बेग के पास चला गया और राव मालदेवजी का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण जोधपुर पर अपना हक बतलाकर इस कार्य में उससे सहायता मागने लगा। इस पर उसने भी इसप्रकार के आपस के कलह से लाभ उठाने की आशा से अचानक चढाई कर जोधपुर को घेर लिया। कई दिनों के युद्ध के बाद रसद आदि की कमी के कारण राव चन्द्रसेनजी ने सोजत का परगना रामसिंह को, और सेना का खर्च हुसेनकुली को देने का वादा कर आपस में सधि करली[2]। इससे चन्द्रसेनजी का अधिकार केवल जोधपुर, जैतारण, पौकरण और सिवाने के परगनों पर ही रह गया। परन्तु हुसेनकुली के लौट जाने पर रावजी की ओर से इस सधि की शर्त का, राव राम की इच्छानुसार, पूरा-पूरा पालन न हो सका। इस पर वि० स० १६२१ (ई० सन् १५६४) में राव राम ने बादशाह अकबर के पास जाकर सहायता मांगी। बादशाह ने भी अपने बाप का बदला लेने

१ कहीं कहीं यह भी लिखा मिलता है कि राव राम ने ही, महाराणा उदयसिंहजी की सहायता पाकर, मारवाड पर अधिकार करने की इच्छा से पहले चढाई की थी।

२. तारीखे पालनपुर (जिल्द १, पृ० ७७) में बादशाह अकबर से बागी होकर मिरजा शर्फुद्दीन का मालदेवजी के मरने पर मेडते पर चढाई करना और चद्रसेनजी का उससे सधि कर मेड़ते का रक्षा करना लिखा है, तथा इस घटना का समय वि० स० १६१५ (ई० स० १५५८) दिया है। यह भ्रम पूर्ण है, क्योंकि मेडता तो शर्फुद्दीन ने मालदेवजी के समय ही जयमल्ल को सौंप दिया था। परन्तु शीघ्र ही जयमल्ल नाराज होकर मेवाड चला गया। इसके बाद जब शर्फुद्दीन बागी हुआ तब अकबर ने मेडता शर्फुद्दीन से लेकर जगमाल को दे दिया था। शर्फुद्दीन वि० स० १६२० (हि० स० ९७१=ई० स० १५६३) में बागी हुआ था और मालदेवजी का स्वर्गवास वि० स० १६१९ में हुआ था।

का अच्छा मौका मिला देख, मारवाड-राज्य को पददलित करने के लिये, राम की प्रार्थना स्वीकार करली और मुजफ्फरखाँ को सेना देकर उसके साथ कर दिया। साथ ही उसने हुसेनकुली को भी लिख दिया कि राव चन्द्रसेन से जोधपुर का किला छीन लो और राव राम को सोजत का परगना दिलवा दो। इस आज्ञा के पहुँचते ही हुसेनकुली ने आकर फिर जोधपुर को घेर लिया। राव चन्द्रसेनजी भी किले का आश्रय लेकर मुगल-सेना का सामना करने लगे। कहते है, जब शाही सेनानायको ने किले पर किसी प्रकार भी अपना अधिकार होता न देखा, तो रानीसर[2] की तरफ के मार्ग से किले मे धुसने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु इसमें भी उन्हे सफलता नहीं मिली। अत में जब कई महीनो के घेरे से किले में का खाने-पीने का सब सामान समाप्त हो चला, तब मुख्य-मुख्य सरदारो ने रावजी को किला छोडकर चले जाने के लिये बाध्य किया। इस पर इच्छा न होते हुए भी राव चन्द्रसेनजी तो अपने परिवार-सहित भाद्राजण की तरफ चले गए[3] और जो सरदार किले के रक्षार्थ पीछे रह गए थे, वे मुसलमानो से सम्मुख रण में जूझ कर वीरगति को प्राप्त हुए। इस प्रकार किले पर शाही सेना का अधिकार हो गया। इसका समाचार पातेही चन्द्रसेनजी ने इधर-उधर आक्रमण कर धन-जन एकत्रित करना और समय-समय पर मुसलमानो को तग करना शुरू किया।

अकबर नामे में लिखा[4] है।

"चन्द्रसेन के गद्दी बैठने पर हुसेनकुली बेग और बादशाही फौज ने आकर जोधपुर के किले को घेर लिया। यह समाचार पाकर राव मालदेव का बडा पुत्र राम भी आकर शाही सेना के साथ हो गया। इस पर सेना के अमीरो ने उसे बादशाह के पास भेज दिया। वहाँ पहुँचने पर अकबर ने उसके साथ बडा अच्छा वर्ताव

१ जिस समय हुमायूँ, शेरशाह के विरुद्ध राव मालदेवजी से सहायता मागने आया था, उस समय उसके सैनिकों ने मारवाड-राज्य मे गोवध कर डाला था। इसी से अप्रसन्न होकर मालदेवजी ने उसकी सहायता करने से हाथ खींच लिया और हुमायूं को निराश हो लौटना पडा। यही इस वैर का कारण था।

२ इसी तालाब से किले में पानी पहुँचाने का एक मार्ग था। यह मार्ग अभी तक विद्यमान है।

३ ख्यातों मे इस घटना का समय वि० स० १६२२ की मगसिर वदि १२ (ई० स० १५६५ की १६ नवबर) लिखा है।

४. देखो, भाग २, पृ० १६७।

किया और मुईनुद्दीन अहमदखाँ आदि सरदारों के साथ, एक फौज देकर, उसे भी हुसेनकुली बेग की सहायता में जोधपुर भेज दिया। कुछ ही समय मे शाही सेना ने किला विजय कर लिया।"

इसके बाद वि० स० १६२७ (हि० सन् ९७८=ई० सन् १५७०) में जब बादशाह अकबर अजमेर होता हुआ नागोर पहुँचा, तब राजस्थान के कई रईस उससे मिलने को वहाँ गए। यह देख राव चन्द्रसेनजी भी शाही रग-ढग का पता लगाने को नागोर पहुँचे। बादशाह ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया। बादशाह की हार्दिक इच्छा थी कि यदि यह नाममात्र को भी उसकी अधीनता स्वीकार करले, तो जोधपुर का राज्य इन्हे सौंप दिया जाय। परन्तु अपनी स्वाधीन प्रकृति के कारण यह किसी प्रकार भी बादशाही अधीनता स्वीकार करने को उद्यत न हुए और नागोर से लौट कर भाद्राजण चले गए।

मारवाड की ख्यातो मे लिखा है कि इसके बाद ही बादशाही सेना ने भाद्राजण को घेर लिया। यद्यपि देशकालानुसार राव चन्द्रसेनजी ने भी उसका सामना करने मे कसर नहीं की, तथापि कुछ ही दिनो मे खाद्य सामग्री का अभाव हो जाने के कारण इनको सिवाने की तरफ चला जाना पडा।

वि० स० १६२९ (ई० सन् १५७२) मे जिस समय सेना-सग्रह करते हुए चन्द्रसेनजी का डेरा काणूजा मे पडा, उस समय आसरलाई का स्वामी (खींवा का पुत्र) रत्नसिंह मुसलमानो से मिल जाने के कारण रावजी के बुलाने पर भी उपस्थित नहीं हुआ। इससे क्रुद्ध होकर चन्द्रसेनजी ने आसरलाई पहुँच उस गाँव को ही नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

१ यही पर मालदेवजी के तृतीय पुत्र उदयसिंहजी, बीकानेर के राव कल्याणमलजी और महाराजकुमार रायसिंहजी आदि आकर बादशाह से मिले थे। बादशाह ने उदयसिंहजी को तो समावली के गूजरों को दबाने के लिये भेज दिया और रायसिंहजी को अपने पास रख लिया। इसके बाद ही जोधपुर का प्रबन्ध भी इन्हीं रायसिंहजी के अधिकार मे दे दिया गया। राव मालदेवजी का ज्येष्ठ पुत्र राम भी जोधपुर मे नियत हुआ और उधर से गुजरात को जानेवाले मार्ग की रक्षा के कार्य मे शरीक किया गया।

'तबकाते-अकबरी' मे अकबर का हि० स० ९७७ की १६ जमादिउलआखिर (वि० स० १६२६ की पौष वदि ३=ई० स० १५६९ की २६ नवबर) को नागोर पहुँचना' लिखा है। वह वहा पर ५० दिन तक रहा था। (देखो, पृ० ८६)

अगले वर्ष (वि० स० १६३०=ई० सन् १५७३ में) अजमेर-प्रांत के भिनाय नामक गाँव की प्रजा ने मादलिया नामक भील के उपद्रव से तग आकर चन्द्रसेनजी से सहायता चाही। इन्होंने भी मौका देख उस पर चढाई कर दी। जिस समय यह वहाँ पहुँचे, उस समय मादलिया के यहाँ उत्सव होने के कारण बहुत से आसपास के भील भी वहाँ एकत्रित थे। इसलिये उन सबने शस्त्र सम्हालकर इनका सामना किया। परन्तु कुछ काल में ही मादलिया के मारे जाने पर सारे भील भाग खडे हुए और वहाँ पर चन्द्रसेनजी का अधिकार हो गया।

इसी वर्ष (वि० स० १६३०=हि० सन् ९८१ मे) अकबर ने सिवाने पर भी एक मजबूत सेना भेज दी। इसमे शाहकुलीखाँ आदि मुसलमान सेनानायको के साथ ही बीकानेर के राव रायसिंहजी, केशवदास मेडतिया (जयमल का पुत्र), जगतराय आदि हिन्दू-नरेश और सामत भी थे। बादशाह की बडी इच्छा थी कि किसी तरह राव चन्द्रसेन शाही अधीनता स्वीकार करले। इसी से उसने अपने सेनानायको को समझा दिया था कि यदि हो सके, तो बादशाही कृपा का प्रलोभन दिखलाकर चन्द्रसेन को वश में करने की कोशिश की जाय। यह सेना पहले पहल सोजत की तरफ गई और वहाँ पर इसने चन्द्रसेनजी के भतीजे (राव मालदेवजी के पौत्र) कल्ला

परतु अकबरनामे मे इस घटना का हि० स० ९७८ (ई० स० १५७०) मे होना लिखा है। (देखो, भा० २, पृ० ३५७-३५८)

१ उसी दिन से मारवाड मे यह कहावत चली है

"मादलियो मारियो ने गोठ बीखरी"

अर्थात्—सरदार (मादलिया) को मारते ही उत्सव मे एकत्रित हुए लोग भाग खडे हुए।

अभी तक भिनाय मे चद्रसेनजी के वशजों का अधिकार है।

'चीफ्स् एड लीडिंग फेमीलीज इन राजपूताना' मे लिखा है कि इस प्रकार मादलिया भील को मारकर उसका उपद्रव शात कर देन से अकबर चद्रसेनजी से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सात परगनों सहित भिनाय का प्रात इन्हीं को दे दिया।

परतु यह लेख भ्रम पूर्ण है, क्योंकि चद्रसेनजी के बादशाही अधीनता स्वीकार न करने के कारण ही शाही सेना उनके पीछे लगी रहती थी।

'तारीखे पालनपुर' मे मादलिया भील को चद्रसेनजी का सहायक लिखा है।

उसमे यह भी लिखा है कि चद्रसेनजी के पौत्र कर्मसेन ने मादलिया को मारकर भिनाय पर अधिकार किया था। (देखो, जिल्द १, पृ० ७६)

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०-८१

को हराया। इसके बाद उसके बंधु केशवदास, महेशदास और राठोड पृथ्वीराज को साथ लेकर इसने सिवाने की तरफ प्रयाण किया। जिस समय यह विशाल शाही सेना सिवाने के आसपास के प्रदेश को लूटती और सामना करनेवालों को परास्त करती हुई सिवाने के पास पहुँची[2], उस समय वहाँ के दुर्ग-रक्षकों ने चंद्रसेनजी से पास के पहाड़ों का आश्रय लेकर समय की प्रतीक्षा करने की प्रार्थना की। इस पर यह सेनापति राठोड पत्ता को किले की रक्षा का भार सौंप पास के पहाड़ों में चले गए और किले को घेरनेवाली शाही सेना के पार्श्वों और पृष्ठ पर जोर-शोर से आक्रमण कर उसे तंग करने लगे। किलेवालों ने भी बड़ी वीरता से दुर्ग घेरनेवाली शाही सेना का सामना किया। यद्यपि बादशाही सेना का बल बहुत बढ़ा-चढ़ा था, तथापि न तो चंद्रसेनजी ने ही और न इनके दुर्ग-रक्षक पत्ता ने ही हिम्मत हारी। राठोड वीर मौका पाते ही शाही सैन्य पर आक्रमण कर उसे नष्ट करने में नहीं चूकते थे। इससे घबराकर बीकानेर के राव रायसिंहजी, जो चंद्रसेनजी से विरोध कर अकबर से मिल गए थे, वि० सं० १६३१ (हि० सन् ९८२) में सिवाने से अजमेर आए और उन्होंने बादशाह अकबर को सूचित किया कि आपने जो सेना सिवाने की तरफ भेजी है, वह चन्द्रसेन को दबाने में असमर्थ[3] है। इसलिये हो सके, तो कुछ सेना और भी उस तरफ भेजी जाय। इस पर बादशाह ने तय्यबखाँ, सैयदबेग तोकबाई, सुभानकुलीखाँ तुर्क, खुर्रम, अजमतखाँ, शिवदास आदि अपने अन्य कई अमीरों को भी एक बड़ी

१ पहले तो कल्ला ने बड़ी वीरता से अकबर की सेना का सामना किया। परन्तु अंत में शाही सेना के संख्याधिक्य के कारण उसे सोजत का किला छोड़ सिरियारी के किले का आश्रय लेना पड़ा। परन्तु वहाँ पर भी शाही सेना ने उसका पीछा न छोड़ा और जब किले की दुर्गमता के कारण वह उस पर अधिकार करने में समर्थ न हुई, तब उसने उस दुर्ग के चारों तरफ लकड़ियाँ चुनकर उसमें आग लगा दी। इस पर कल्ला वहाँ से निकल कोरने चला गया। परन्तु जब पीछे लगी हुई सेना ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा, तब लाचार हो उसे शाही सेनानायकों से संधि करनी पड़ी और इसके बाद यद्यपि वह स्वयं तो बहाना कर शाही सेना में सम्मिलित होने से बच गया, तथापि उसे अपने बंधुओं को उक्त सेना के साथ भेजना पड़ा।

२ मार्ग में चन्द्रसेनजी की तरफ के रावल मेघ (सुख) राज, सूजा और देवीदास ने मिलकर लूट मचाने को निकले हुए शाही सेना के सैनिकों के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया।

(अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८१)।

३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ११०-१११

सेना के साथ चन्द्रसेनजी के मुकाबले को रवाना किया। इस प्रकार शाही सेना का बल दुगना हो जाने के कारण, अपने सरदारों की सलाह से, चन्द्रसेनजी रामपुरे की तरफ से होकर विकट पहाड़ों में घुस गए। इस पर पहले तो शाही सेना ने बड़ी उमंग के साथ इनका पीछा किया। परन्तु अंत में जब सफलता होती न देखी, तो उसे वापस लौटना पड़ा। चन्द्रसेनजी के इस प्रकार बचकर निकल जाने और अपनी सेना के इस प्रकार असफल होने से अकबर को बड़ी निराशा हुई और उसने इसके लिये अपने अमीरों को डॉट-फटकार भी दी।[1]

इसके बाद वि० सं० १६३२ (हि० सन् ९८३) में चन्द्रसेनजी को दबाने के लिये जलालखॉ को सिवाने की तरफ जाने की आज्ञा दी गई, और उसके साथ सैयद अहमद, सैयद हाशिम, शिमालखॉ आदि अमीर भी भेजे गए। इतने दिनों से चन्द्रसेनजी का पीछा करते रहने पर भी सफलता न होने से शाही सैनिक हतोत्साह हो गए थे, इससे उनकी हालत और भी खराब हो गई। साथ ही उस पहाड़ी प्रदेश में भटकने और घास-दाने का पूरा प्रबंध न होने के कारण उनके घोड़े भी दुर्बल हो गए[2]। इसी से बादशाह ने इन्हें वहाँ पहुँच अगली सेना को लौटा देने की आज्ञा भी दी। इसके बाद ये लोग अपनी-अपनी जागीरों मे जाकर चढ़ाई की तैयारी करने लगे। जिस समय जलालखॉ मार्ग में मेड़ते पहुँचा, उस समय उसे सिवाने की सेना के सरदार रामसिंह, सुलतानसिंह[3] और अलीकुली आदि की तरफ से सूचना मिली कि यद्यपि वे लोग बादशाह की आज्ञानुसार चंद्रसेन को दबाने का प्रयत्न कर रहे है, तथापि वह अपनी और अपने सरदारों की वीरता और पहाड़ों के आश्रय के कारण अजेय हो रहा है। इसलिये यदि जलालखॉ भी शीघ्र ही उनकी मदद पर आ जाय, तो संभव है, कुछ सफलता मिल जाय। यह समाचार पाते ही वह तत्काल सिवाने की तरफ़ चल पड़ा। यथासमय इसकी सूचना चन्द्रसेनजी को भी मिल गई इसीसे यह मार्ग में ही अचानक आक्रमण कर उसके बल को नष्ट करने का मौका ढूँढने लगे। परन्तु किसी प्रकार इनकी गति-विधि का पता शत्रुदल को भी मिल गया। अतः उसने स्वयं ही आगे बढ़ इन पर आक्रमण कर दिया। इस एकाएक होनेवाले हमले से

१ अकबरनामा, भा० ३, पृ० १५८

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १६७

३ ये दोनों बीकानेर-नरेश राव रायसिंहजी के छोटे भ्राता थे।

चन्द्रसेनजी का सारा प्रबंध उलट गया। इस पर भी कुछ समय तक तो यह पहाडो से निकल कर शाही सेना का सामना करते रहे[1], परन्तु विशाल शत्रुदल से टक्कर लेने में अपने मुठ्ठी-भर वीरो की अधिक हानि होती देख अंत मे इन्हे फिर पहाडो में घुस जाना पड़ा। शाही सेना पहाडो में ऐसे वीरो का पीछा कर एक बार असफल हो चुकी थी। इसलिये वह रामगढ के किले मे जाकर ठहर गई, और जी तोड परिश्रम के साथ राव चन्द्रसेनजी के निवासस्थान का पता लगाने तथा इन्हे परास्त करने की कोशिश करने लगी। परन्तु शाही सेना के चलाए कुछ पता न चला। इसी बीच बगडी ठाकुर देवीदास[2] नामक एक व्यक्ति ने आकर शाही सेना को सूचना दी कि आजकल चन्द्रसेन अपने भतीजे कल्ला के पास है। यदि उसको पकडना चाहते हो, तो उधर चलो। शाही सैनिक तो पहले से ही चन्द्रसेनजी की तलाश मे थे, अतः इस सूचना के पाते ही तत्काल वहाँ जा पहुँचे। परन्तु कल्ला ने चन्द्रसेनजी के वहाँ होने का स्पष्ट तौर से प्रतिवाद किया। इस पर शाही सेना को वहाँ से निराश होकर लौटना पडा। इससे शिमालखाँ देवीदास से चिढ गया और उसने एक दिन बहाने से उसे अपने यहाँ बुलाकर कैद कर लेने का प्रबंध किया। परन्तु जब समय आया, तब देवीदास अपनी वीरता से उसके पंजे से बचकर निकल गया और शिमालखाँ मुँह ताकता रह गया। इसके बाद देवीदास अपना शाही लशकर में रहना आपत्ति-जनक समझ वहाँ से कल्ला के पास चला गया। परन्तु उसने शिमालखाँ से बदला लेने का दृढ निश्चय कर लिया था। इसीसे एक दिन मौका पाकर देवीदास और राव चन्द्रसेनजी ने एकाएक बादशाही सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि देवीदास

१ अकबरनामा, भा० ३, पृ० १५८-१५६

२ इस पुरुष ने रामगढ में आकर कहा कि मैं वही राठोड देवीदास हूँ, जिसको लोगों ने मिरजा शर्फुद्दीन के साथ मेडते की लडाई मे मरा हुआ समझ लिया था। वास्तव मे जिस समय मैं अधिक घायल हो जाने के कारण रणक्षेत्र मे बेहोश पडा था, उस समय एक सन्यासी वहाँ आ पहुँचा और मुझे रणक्षेत्र से उठाकर अपने स्थान पर ले गया। उसके इलाज से जब मैं बिलकुल अच्छा हो गया, तब कई दिनो तक तो उसी के साथ फिरता रहा और अब उसकी आज्ञा लेकर इधर आ गया हूँ। इसके साथ ही उसने बादशाही सेवा कर ख्याति प्रकट करने की इच्छा से उस सेना मे सम्मिलित होना भी स्वीकार कर लिया। शाही सैनिकों मे से कुछ ने उसकी कही इस कथा को सच्ची और कुछ ने झूठी समझा।

(अकबरनामा, भा० ३, पृ० १५६)

इस मौके से लाभ उठाकर अपने वैरी शिमालखॉं को मारना चाहता था, तथापि जल्दी में उसके बदले जलालखॉं के डेरे पर ही मारकाट शुरू हो गई । इसी में जलालखॉं मारा गया । इसके बाद ये लोग शिमालखॉं के डेरे की तरफ बढे । परन्तु इसी बीच बहुत-से शाही सैनिकों के साथ जयमल[1] वहॉं आ पहुँचा । यह देख चन्द्रसेनजी और देवीदास अपने दलबल के साथ शाही सेना से निकल वापस लौट गए ।

इस घटना से शाही सेना का बल और भी टूट गया । यह देख वीरवर कल्ला देवकोर[2] के किले मे चला आया और आसपास के राजपूतो को एकत्रित कर शाही सेना से एक बार फिर युद्ध करने की तैयारी करने लगा । इससे उस सेना के मार्ग में एक नवीन बाधा उठ खडी हुई और वह लाचारी के कारण सिवाने की तरफ का ध्यान छोड देवकोर के किले पर आक्रमण करने मे लग गई ।

जैसे ही यह वृत्तात अकबर को मिला, वैसे ही उसने अपनी प्रतिष्ठा को इस प्रकार सकट मे पडी देख शाहबाजखॉं को उस तरफ की अराजकता मिटाने के लिये रवाना किया । देवकोर के पास पहुँचने पर उसने देखा कि वहॉं की शाही सेना किले को घेर कर असफल आक्रमणो मे लगी हुई है, अत शाहबाज ने आगे बढ एकाएक किले पर चढाई करदी । इससे शाही सेना का बल बहुत बढ गया । वीर कल्ला के अल्पसख्यक थके-मॉंदे योद्धा कब तक उसका मुकाबला कर सकते थे । अत मे किला मुगलो के हाथ लगा । इस प्रकार देवकोर से निपट कर शाहबाज ने किले की रक्षा के लिये थोडी-सी सेना के साथ कुछ बाराह के सैय्यदों को वहा छोडा और बाकी फौज को लेकर सिवाने की तरफ प्रयाण किया । वहॉं से आगे बढने पर ये लोग दूनाडा मे पहुँचे । वहॉं के किले[3] मे भी कुछ राठोड वीर एकत्रित थे । अत मुगल सेनापति ने इनसे शाही सेवा अगीकार करने का प्रस्ताव किया । परन्तु वीर राठोडो ने स्वाधीनता छोडने के बजाय प्राण दे देना ही उचित समझा और इस प्रस्ताव को मानने से साफ इनकार कर दिया । इस पर दोनो तरफ से युद्ध आरभ हो गया । वीर योद्धा एक दूसरे से आगे बढ-बढ कर वीरता दिखाने लगे । परन्तु कुछ ही काल

१ अकबरनामे (भा० ३, पृ० १५६) मे जयमल और किसी-किसी ख्यात मे मेडतिया जगमाल लिखा है ।

२ अकबरनामा, भा० ३, पृ० १६७, परन्तु देवकोर के किले का कुछ पता नही चलता ।

३. दूनाडे मे इस समय किला विद्यमान नहीं है ।

में राठोडो की सख्या अल्प से अल्पतर हो गई और किले पर शाही सेना का अधिकार हो गया। इसके बाद शाहबाजखॉं ने आगे बढ सिवाने के किले पर घेरा डाला और बादशाह की आज्ञानुसार पहलेवाली शाही सेना को वहॉं से वापस लौटा दिया। जब कुछ दिनो के परिश्रम से यह प्रकट हो गया कि सम्मुख रण में प्रवृत्त होकर वीर राठोडो से किला छुडवा लेना असभव है, तब उसने अनेक तरह के छल कपट कर किलेवालो को तग करना शुरू किया और जहॉं तक हो सका, बाहर से रसद आदि का आना भी एकदम बद कर दिया। इस पर जब सिवाय किला खाली कर देने के अन्य कोई उपाय न रहा, तब किले के रक्षक ने यह प्रस्ताव यवन-सेनापति के पास भेज दिया। उसने भी इसमें अधिक गडबड करने से हानि समझ शीघ्र ही इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वि० स० १६३३ (हि० सन् ९८४) मे अनेक कठिनाइयो के बाद यह किला अकबर के अधिकार में आया। किले के बचे हुए राठोड चन्द्रसेनजी के पास पीपलोद के पहाडो मे चले गए और वहीं से मौका पाकर समय-समय पर मुगलसेना को तग करने लगे।

राव चन्द्रसेनजी को इस प्रकार अकबर के साथ युद्ध में उलझा हुआ देख इसी वर्ष के कार्तिक (ई० सन् १५७६ के अक्टोबर) में जैसलमेर के रावल हरराजजी ने पौकरण पर चढाई कर दी। उस समय वहॉं पर चन्द्रसेनजी की तरफ से पचोली (कायस्थ) आनन्दराम किलेदार था। अत: उसने किले मे बैठकर चार मास तक बराबर रावलजी का सामना किया। परन्तु जब दोनो तरफ विजय की आशा नहीं दिखाई दी, तब व्यर्थ का नर-सहार अनुचित समझ दोनो पक्षो ने इस शर्त पर सधि करना निश्चित किया कि पौकरण तो रावलजी को सौप दिया जाय और वह इसके एवज में १,००,००० फदिए (करीब १२,५०० रुपये) राव चन्द्रसेनजी को कर्ज के तौर पर दे। परन्तु जिस समय रावजी यह द्रव्य उन्हे लौटा दे, उस समय रावलजी पौकरन उनको सौप दे। इसके बाद युद्ध स्थगित कर दिया गया और ये शर्ते राव चन्द्रसेनजी की सम्मति के लिये इनके पास भेज दी गई। उस समय रावजी सम्राट् अकबर जैसे शत्रु से उलझे हुए थे और इसी से इनको द्रव्य की बडी आवश्यकता थी। इसलिये इन्होने ये प्रस्ताव मान लिए और इनके अनुसार शीघ्र ही सधि हो गई।

जब पीपलोद के पहाडो में भी शाही सेना ने चन्द्रसेनजी का पीछा न छोडा, तब कुछ दिन तक तो यह सयम-समय पर उससे युद्ध करते रहे। परन्तु इसके बाद

कुछ दिन के लिये यह सिरोही[1], डूँगरपुर[2] और बाँसवाडे की तरफ घूमते रहे। इन्हीं दिनों राव राम का पुत्र कल्ला मुसलमानों के हाथ से मारा गया और इससे सोजत पर भी मुगलों का अधिकार हो गया। यह देख कूँपावत सादूल (महेशदास के पुत्र) और जैतावत आसकरण (देवीदास के पुत्र) आदि सरदारों ने राव चन्द्रसेनजी से मारवाड में आकर देश की रक्षा करने का आग्रह किया। इससे यह मेवाड की तरफ से लौटकर अपनी मातृभूमि मारवाड मे चले आए और शीघ्र ही इन्होंने सरवाड़ के बादशाही थाने को लूट कर वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया। यह घटना वि० स० १६३६ (ई० सन् १५७९) की है। इसके बाद इन्होंने अजमेर-प्रांत को लूटना शुरू किया। यह समाचार पाते ही बादशाह[3] ने पायदा मोहम्मदखाँ आदि के साथ बहुत-से अमीरों को इनके मुकाबले को जाने की आज्ञा दी। इस पर एक बार चन्द्रसेनजी ने भी दिल खोल कर इनका सामना किया, परन्तु अंत मे इतने बडे सम्मिलित शाही दल के सम्मुख रण मे प्रवृत्त होना हानिकारक जान यह पहाडों मे घुस गए। यह घटना वि० स० १६३७ (हि० सन् ९८८) की है।

इसके कुछ दिन बाद ही राव चन्द्रसेनजी ने फिर इधर-उधर से कुछ सेना एकत्र कर इसी वर्ष की श्रावण-वदि ११ (ई० स० १५८० की ७ जुलाई) को सोजत पर हमला कर दिया और वहाँ पर अधिकार हो जाने पर सारण के पर्वतों में अपना निवास कायम किया। परन्तु यहीं पर वि० स० १६३७ की माघ सुदी ७ (ई० सन् १५८१ की ११ जनवरी) को इनका अचानक स्वर्गवास हो गया[4]।

१ ख्यातों मे लिखा है कि रावजी यहाँ पर करीब डेढ वर्ष रहे थे।

२ ख्यातों मे लिखा है कि वहाँ के रावल और उनके पुत्र के बीच मे विरोध होने के कारण वहाँ के किले पर इन्होंने अधिकार कर लिया था। परन्तु शाही सेना के आगमन के कारण इन्हे वहाँ से हट जाना पडा।

३ अकबरनामे मे लिखा है कि हि० स० ९८८ (वि० स० १६३७) मे सूचना मिली कि राव चन्द्रसेन मालदेव का बेटा, जो पहले बादशाह के दरबार मे हाजिर हो चुका था बागी हो गया और शाही फौज के डर से छिप कर मौका देखता था। पर आजकल मौका पाकर अजमेर के इलाके मे लूट-मार करने लगा है।

(अकबरनामा, भा० ३, पृ० ३१८)

परन्तु चन्द्रसेनजी केवल वि० स० १६२७ (ई० स० १५७०) मे एक बार ही नागोर में बादशाह से मिले थे। उसके बाद इनका बादशाह से दुबारा मिलना न तो फारसी तवारीखों से ही और न ख्यातों से ही सिद्ध होता है। अत. अकबरनामे का यह लेख उसी घटना को दुहराता है।

४. मारवाड़ की ख्यातों मे लिखा है कि जिस समय राव चन्द्रसेनजी सोजत पर अधिकार

राव चन्द्रसेनजी का स्वर्गवास सचियार्य में हुआ था और सारन में जिस स्थान पर इनकी दाहक्रिया की गई थी, उस जगह इनकी संगमरमर की एक पुतली[2] अब तक विद्यमान है।

राव चन्द्रसेनजी ही अकबर-कालीन-राजस्थान के सर्व प्रथम मनस्वी वीर और स्वतंत्र प्रकृति के नरेश थे और महाराणा प्रताप ने इन्हीं के दिखलाए मार्ग का करीब १० वर्ष बाद अनुसरण किया था। यद्यपि चन्द्रसेनजी ने जोधपुर के-से राज्य को छोड़कर रात-दिन पहाड़ो मे घूमना और आयुपर्यन्त यवनवाहिनी से लड़ते रहना अंगीकार कर लिया, तथापि बादशाह की अधीनता नाममात्र को भी स्वीकार नहीं की। अकबरनामे के लेख से भी ज्ञात होता है कि अकबर की प्रबल इच्छा थी कि अन्य नरेशो की तरह राव चन्द्रसेनजी भी, किसी तरह, उसकी अधीनता स्वीकार करले। इसी से वह इनके विरुद्ध भेजे जाने वाले शाही अमीरो को समझा देता था कि हो सके, तो शाही प्रसन्नता के लाभ समझाकर वे राव को वश में करने की कोशिश करे। परन्तु उसकी यह इच्छा अंत तक किसी प्रकार भी पूर्ण न होसकी।

कर सारण के पर्वतों मे रहने लगे थे, उस समय इधर-उधर के बहुत-से राठोड सरदार उनकी सेवा मे चले आए थे। परन्तु राठोड वैरसल और कूँपावत उदयसिंह ने गर्व के कारण इस तरफ़ ध्यान नहीं दिया। इस पर रावजी ने वैरसल की जागीर के गॉव दूदोड पर चढाई की। परन्तु जिस समय यह मार्ग मे ही थे, उस समय राठोड (देवीदास के पुत्र) आसकरन ने वैरसल को समझाकर सेवा मे ले आने का वादा किया। इससे इधर तो चन्द्रसेनजी ने अपनी चढाई रोक दी और उधर आसकरन ने जाकर वैरसल को सब तरह से समझा दिया। परन्तु वैरसल ने यह शर्त पेश की कि यदि रावजी एक बार स्वयं आकर मेरे स्थान पर भोजन करले, तो मुझे विश्वास हो जाय और में उनकी सेवा मे उपस्थित हो जाऊँ। आसकरन की प्रार्थना पर रावजी ने यह बात मान ली और इसके अनुसार एक दिन यह उसके स्थान पर भोजन करने चले गए। परन्तु जैसे ही रावजी वैरसल के यहाँ से भोजन करके लौटे, वैसे ही इनका स्वर्गवास हो गया। इससे अनुमान होता है कि वैरसल ने विश्वासघात कर रावजी को विष दे दिया होगा।

१ यह सारन के पास (सोजत प्रान्त मे) है।

२. उक्त पुतली मे राव चन्द्रसेनजी की घोडे पर सवार प्रतिमा बनी है और उसके आगे ५ स्त्रियाँ खडी हैं। इससे प्रकट होता है कि उनके पीछे ५ सतियाँ हुई थीं। यह बात उक्त पुतली के नीचे खुदे लेख से भी सिद्ध होती है। उसमे लिखा है

"श्रीगणेशाय नम। सवत् १६३७ शाके १५[०]२ माघ मासे सू(शु)क्लपक्षे सतिव (सप्तमी) दिने राय श्रीचन्द्रसेणजी देवीकुला सती पर्च हुई।"

वास्तव में उस समय राजपूताने में महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन, यही दो स्वाभिमानी वीर अकबर की आंखों के कांटे बने थे। राजस्थान की प्रचलित दंतकथा के अनुसार इनमें से पहले वीर ने तो एक बार अपने कुटुम्ब के महान् दु:ख को देख कंधा डाल देने का विचार भी कर लिया था।[1] परन्तु दूसरा वीर तो सुख-दु:ख की कुछ भी परवा न कर अन्त तक बराबर अपने व्रत का निर्वाह करता रहा। किसी कवि ने क्या ही यथार्थ कहा है

> अणदगिया तुरी ऊजला असमर, चाकर रहण न डिगियो चीत।
> सारे हिन्दुस्तान तणै सिर पातल नै चन्द्रसेण प्रवीत।

अर्थात्—उस समय सारे हिन्दुस्तान में महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन, यही दो ऐसे वीर थे, जिन्होंने न तो अकबर की अधीनता ही स्वीकार की और न अपने घोड़ों पर शाही दाग ही लगने दिया, तथा जिनके शस्त्र हमेशा ही यवन-सम्राट् के विरुद्ध चमकते रहे।

राव चन्द्रसेनजी ने सागा नामक ब्राह्मण को अरटनडी नामक एक गांव दान दिया था।

इन रावजी के तीन पुत्र थे

(१) रायसिंह, (२) उग्रसेन और (३) आसकरन।

१ कहते हैं, महाराणा ने एक बार अपने परिवार के कष्टों को देखकर अकबर की अधीनता स्वीकार करने का विचार कर लिया था। परन्तु बीकानेर-नरेश के छोटे भाई पृथ्वीराज के उपदेश से वह फिर सम्हल गए।

राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप पर एक तुलनात्मक दृष्टि ।

आगे दोनो नरेशों के विषय की कुछ समान घटनाओ का उल्लेख किया जाता है। यद्यपि इनमें से कोई-कोई एक दूसरी से सपूर्णत नहीं भी मिलती है, तथापि उनका एक भाग अवश्य ही आपस में समानता रखता है

१—वैसे तो मारवाड़ और मेवाड़ के नरेशों से मुसलमान बादशाहो का वैर पहले से ही चला आता था, परन्तु वि० स० १६२१ (ई० स० १५६४) मे राव चन्द्रसेनजी ने व्यक्तिगत रूप से अकबर की अधीनता स्वीकार करने से इनकार किया था, और वि० स० १६३० (ई० स० १५७३) में महाराणा प्रताप का जयपुर के कुँअर मानसिंह से विरोध हो जाने से उन पर अकबर के आक्रमण प्रारंभ हुए थे ।

वि० स० १६२८ से १६३७ (ई० स० १५७१ से १५८०) तक ये दोनो नरेश अकबर की आखो के काटे बने रहे। परतु इसी वर्ष राव चन्द्रसेनजी का स्वर्गवास हो गया ।

२—उधर महाराणा प्रताप यद्यपि महाराणा उदयसिंहजी द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र थे, तथापि उनके पिता ने उनके छोटे भाई जगमाल को राज्य का उत्तराधिकारी नियत कर दिया था। अत' पिता की मृत्यु के बाद यह भाई के विरुद्ध होकर मेवाड़ की गद्दी पर बैठे और इसी से दोनो भाइयो में विरोध हो गया। इस पर जगमाल जहाजपुर होता हुआ अजमेर के सूबेदार की सलाह से अकबर की सेवा मे चला गया और उससे जहाजपुर का परगना जागीर में पाया। कुछ दिन बाद इनका दूसरा भाई सगर भी इनसे नाराज होकर अकबर के पास चला गया। इधर राव चन्द्रसेनजी के पॉच बडे भाइयो के होते हुए भी इनके पिता ने इन्हीं को राज्याधिकारी चुना और इसी के कारण इनका बड़ा भाई राम इनसे अप्रसन्न होकर हुसेनकुली की सलाह से अकबर के पास चला गया, तथा ख्यातो के अनुसार बादशाह ने उसको सोजत का प्रात जागीर में दिलवा दिया। वि० स० १६२७ (ई० स० १५७०) में राव चन्द्रसेनजी के दूसरे भाई उदयसिंहजी भी बादशाही पक्ष में चले गए ।

३ महाराणा प्रताप के राज्यासन पर बैठते समय जिस प्रकार मेवाड़ के चित्तौड़, माडलगढ़ आदि प्रदेशों पर यवनो का शासन था, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी के राज्यारोहण के समय भी मारवाड़ के अजमेर, मेड़ता आदि प्रदेश यवनो के अधिकार में थे ।

४—जिस प्रकार महाराणा प्रताप के गद्दी पर बैठने के पूर्व ही बाबर आदि यवनों के साथ के युद्धों में मेवाड़ के बडे-बडे वीर मारे जा चुके थे, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी के सिंहासनारूढ होने के पूर्व भी शेरशाह आदि यवनों के साथ के युद्धों में मारवाड के वीर-योद्धा वीरगति पा चुके थे।

५—जिस प्रकार महाराणा प्रताप ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा और देशोद्धार के लिये गोगूँदा और खमणोर के बीच की पर्वत-श्रेणी का आश्रय लेकर विशाल यवन-सेना का सामना किया था, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी ने भी सिवाने के पहाडो का आश्रय लेकर यवनवाहिनी को हैरान किया।

६—जिस प्रकार यवनवाहिनी के लगातार आक्रमणो के कारण एक बार महाराणा प्रताप को बाँसवाडे की तरफ जाना पडा था और दूसरी बार छप्पन के पहाडो का आश्रय लेना पड़ा था, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी को भी डूँगरपुर, बाँसवाडे आदि की तरफ जाना पड़ा था और सिवाने की तरफ के छप्पन के पहाड तो बहुत समय तक इनके मुख्य आश्रय रहे थे।

७—जिस प्रकार अत समय तक महाराणा प्रताप अन्य खोए हुए प्रदेशो पर अधिकार कर लेने पर भी चित्तौड पर अधिकार न कर सके थे, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी भी सोजत का प्रदेश ले लेने पर भी पुन जोधपुर अधिकृत न कर सके।

८—अबुलफजल ने अपने अकबरनामे[२] मे लिखा है—

"सन् ९७८ हिजरी साल, १५ वे जुलूस में जब अकबर नागोर आया, तो चन्द्रसेन मालदेव का लड़का जो हिन्दुस्तान के बडे जमीदारो में है, हाजिर होकर शाही इनायत में हुआ।"

परन्तु घटनाक्रम से ज्ञात होता है कि यद्यपि वास्तव में ही बादशाह अकबर राव चन्द्रसेनजी पर कृपा दिखलाना चाहता था, तथापि इन्होने उसकी अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। यह बात उक्त पुस्तक[३] के इस लेख से भी सिद्ध होती है—

"सन् ९८१ हिजरी शुरू साल १९ जुलूस मे जब बादशाह अजमेर आया, तो सुना कि चन्द्रसेन राजा मालदेव के लडके ने बगावत इख्तियार करली है और

१ अकबरनामा, भा० ३, पृ० २३८
२ अकबरनामा, भा० २, पृ० ३५७-३५८
३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०-८१

सिवाने के किले की, जो अजमेर के सूबे के किलो मे निहायत मजबूत है, मरम्मत करके उसमे मुकाम कर लिया है। इस खबर के सुनने से बादशाह को रैयत पर रहम आया और उसने शाहकुलीखॉ मरहम, राव रायसिंह, शिमालखॉ (जयमल मेडते वाले के लडके) केशोदास, और (धनचन्द के लडके) जगतराय को मय बहादुर तजुर्बेकार फौज के उसकी चश्मनुमाई पर मुकर्रर किया। साथ ही यह नसीहत भी की कि अगर वह अपने किए हुए पर पछतावे, तो वे उसे शाही मेहरबानियो का उम्मेदवार बनावे।"

अकबरनामे मे हिजरी सन् ९७८ के चन्द्रसेनजी के उपर्युक्त उल्लेख के बाद पहले-पहल हिजरी सन् ९८१ वाला यही उल्लेख मिलता है। ऐसी हालत मे यदि वास्तव मे अबुलफजल के कथनानुसार नागोर मे चन्द्रसेनजी शाही इनायत हासिल कर चुके थे, तो फिर उनकी इस अकारण बगावत का क्या कारण उपस्थित हुआ। [2] इसके अलावा इतिहास मे भी बादशाह की इनायत का कहीं कुछ भी विवरण नहीं मिलता है।

अकबरनामे में आगे फिर लिखा है:—

"सन् ९८८ हिजरी, जूलूस २५ में चन्द्रसेन ने बावजूद इसके कि बादशाही दरबार में हाजिर हो चुका था, अपनी बदबख्ती से फिर बागावत इख्तियार की, जैसा कि बयान कर चुके है।"

परन्तु उक्त इतिहास मे चन्द्रसेनजी के केवल नागोर मे अकबर से मिलने के सिवाय ऐसी घटना का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। अत. यह घटना नागोर वाली घटना को ही दुहराती है।

इसी प्रकार उसी अकबरनामे में महाराणा प्रताप के विषय में लिखा है:—

"वहॉ से बमूजिब हुक्म शाही (मानसिंह मय अमीरो के) उदयपुर पहुँचा। राणा ने पेशवाई करके शाही खिलअत बहुत अदब से पहना और मानसिंह को मेहमान करके अपने घर ले गया। बदज़ाती से माफी मॉगी। अमीरो ने मंजूर नहीं की। राना ने वादा करके मानसिंह को रुखसत किया और नरमी इख़्तियार की।"

१ अकबरनामा, भा० ३, पृ० ३१८

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ४०

"सन् ९८१ हिजरी, जुलूस १८ में राजा भगवतदास, शाहकुलीखाँ और लश्करखाँ को एक बड़ी फौज देकर हुक्म दिया कि ईडर होते हुए राना की सरहद में जाओ और उधर के तमाम सरदारों को तावे करो। जो सरकशी करे, उसको सज़ा दो।"[1]

"पूरा महीना भी नहीं गुजरा था कि राजा भगवतदास मय लश्कर के राना प्रताप के बेटे को साथ लेकर दरबार में हाजिर हुआ। इसकी तफसील इस तरह है—

जब शाही लश्कर राना के रहने की जगह गोगूँदे में पहुँचा, तब राना, गुजरे हुए ज़माने में जो कसूर किए थे उनके लिये शर्मिन्दगी और अफसोस जाहिर करके, राजा भगवतदास से आकर मिला और उससे शाही दरबार में सिफारिश चाही। साथ ही उसने मानसिंह को अपने घर लेजाकर मेहमानदारी की और अपने लड़के को उसके साथ कर दिया। उसने यह भी कहा कि बदकिस्मती से पहले मेरे दिल में घबराहट थी। मगर अब आपके जरिए से बादशाह से इल्तिजा करता हूँ और अपने लड़के को खिदमत में भेजता हूँ। कुछ दिनों में अपने दिल को तसल्ली देकर खुद भी हाजिर हो जाऊँगा।"[2]

राजपूताने की ख्यातों आदि से मिलान करने पर यह सब अबुलफज़ल की कपोलकल्पना ही प्रतीत होती है। परन्तु फिर भी शाही दरबार के इतिहास-लेखक ने तो राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप को अपनी तरफ से एक एक बार शाही अधीनता में सौंप ही दिया है। परन्तु ये घटनाएँ सत्य से बिलकुल परे हैं।

९—अकबरनामे में लिखा[3] है:—

"बादशाह ने कुतुबुद्दीनखाँ, राजा भगवतदास और कुँअर मानसिंह को मय थोड़े-से शाही बहादुरों के रवाना कर हुक्म दिया कि पहाड़ों में जाकर राना को तलाश करें। मगर जब उसका पता न चला तब वे गोगूँदे चले गए।

"चूँकि राजा भगवतदास और कुतुबुद्दीनखाँ बगैर शाही हुक्म के लौट आए थे, इसलिये बादशाह ने गुस्से होकर उनकी डेवढी बंद कर दी। लेकिन जब उन्होंने अपनी गलती से शर्मिन्दा होकर माफी माँगी, तो फिर हाजिर होने की इजाज़त दे[4] दी।"

१ अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६४

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६६-६७

३ अकबरनामा, भा० ३, पृ० १९१

४ अकबरनामा, भा० ३, पृ० १९५

उसी इतिहास में राव चन्द्रसेनजी की बाबत लिखा[1] है—

"सन् ९८२ हिजरी मे जब बादशाह अकबर अजमेर आया, तो सिवाने से अकेले राव रायसिंह ने आकर अर्ज की कि राव मालदेव के लडके चन्द्रसेन ने जोधपुर की हद मे निहायत सर उठा रक्खा है और जो लश्कर सिवाने को घेरे हुए है, वह उसको दफा नहीं कर सकता। अगर और बहादुर फौज भेजी जाय तो काम बन सकता है। बादशाह ने मेहरबानी फरमा कर यह अर्ज कबूल की और तैयबखॉ, सैयदबेग तोकबाई, तुर्क सुभानकुली, खुर्रम, अजमतखॉ और शिवदास को, मय चद बहादुरो के साथ करके इस खिदमत पर भेजा। चन्द्रसेन रामपुरे की हद मे होता हुआ पहाडो में घुस गया। शाही फौज पहाडो की तरफ चली। कितने ही ताबे और कितने ही तबाह हो गए। चन्द्रसेन मुकाबला न कर सका। बादशाही अमीर उसके पहाडो में घुस जाने को नासमझी से लडाई की जीत खयाल करके वापस लौट गए। बादशाह ने जब यह सुना तो नाराज हुआ।"

अबुलफजल के उपर्युक्त दोनो लेख समान घटनाओ के द्योतक ही प्रतीत होते है। मुन्तखबुत्तवारीख में लिखा[2] है—

"लेकिन राना का पीछा नहीं किया और वह जिन्दा निकल गया। यह बादशाह को बुरा मालूम हुआ।"

यह घटना राव चन्द्रसेनजी के साथ की घटना से और भी मिलती जुलती है।

विशेष घटनाएँ

एक बार अपने कुटुम्ब की तकलीफ को देख महाराणा प्रताप का जी भर आया और उनके चित्त मे शाही अधीनता स्वीकार करने का विचार उत्पन्न होने लगा। जब अकबर द्वारा इसकी सूचना बीकानेर-नरेश रायसिंहजी के छोटे भ्राता पृथ्वीराजजी को मिली, तब उन्होने महाराणा को लिखा:—

पटकूॅ मूॅछॉ पाण, के पटकूॅ निज तन करद,
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक।

१ अकबरनामा, भा० ३, पृ० ११०-१११
२ मुन्तखबुत्तवारीख, भा० २, पृ० २३५

इस पर महाराना ने फिर दृढ़ता धारण करली और उत्तर में उन्हें लिख भेजा—

खुशी हूँत पीथल कमध, पटको मूँछाँ पाण ;
पछटण है जेतै पतो, कलमाँ सिर केवाण ।

परन्तु राव चन्द्रसेनजी के विषय में ऐसी कोई जनश्रुति नहीं सुनी जाती है ।

विस्मृति का कारण

ऐसे ही इन प्रातःस्मरणीय राठोड-वीर राव चन्द्रसेनजी का नाम और इतिहास इस प्रकार विस्मृति मे कैसे विलीन हो गया ? इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि महाराणा प्रताप के पीछे तो उनके पुत्र-पौत्रादि गद्दी पर बैठते रहे । परन्तु राव चन्द्रसेनजी के पीछे वि० स० १६४० (ई० सन् १५८३) में मारवाड का राज्य उनके भ्राता राजा उदयसिंहजी के अधिकार में चला गया । उनके और राव चन्द्रसेनजी के बीच विरोध चला आता था । इसी से उस समय के कवियों और ऐतिहासिको ने लाभ की आशा न देख इनकी वीर-गाथाओ के कीर्तन की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया । इसके अलावा उन्हे इनके स्वाधीनता-प्रेम का गान करने में राजस्थान के तत्कालीन नरेशो के अप्रसन्न होने का भय भी रहा होगा ।

२१. राव रायसिंहजी

यह मारवाड़-नरेश राव चन्द्रसेनजी के ज्येष्ठ पुत्र थे[1]। इनका जन्म वि० स० १६१४ की भादो सुदी १२ (ई० सन् १५५७ की ६ सितम्बर) को हुआ था। जिस समय इनके पिता की मृत्यु हुई, उस समय यह अकबर की आज्ञा से शाही सेना के साथ काबुल गए हुए थे। परन्तु जब इनके छोटे भ्राता उग्रसेनजी और आसकरनजी[2] दोनो ही चौसर खेलते हुए मारे गए, और मारवाड़ के सरदारो ने इन्हे देश में आकर अपने पैतृक राज्य को सँभालने के लिये लिखा, तब इन्होंने यह सारा हाल बादशाह

१ 'राजपूताने के इतिहास' मे इन्हे चन्द्रसेनजी का तीसरा पुत्र लिखा है (पृ० ७३७, टिप्पणी १)। यही बात 'सिरोही के इतिहास' मे भी लिखी है (पृ० २२६)। परन्तु यह ठीक नहीं है।

(२१) राव आसकरनजी और उग्रसेनजी

२ ये दोनों भी चन्द्रसेनजी के पुत्र थे। उग्रसेनजी का जन्म वि० स० १६१६ की भादों वदी १४ (ई० सन् १५५६ की २ अगस्त) को और आसकरनजी का वि० स० १६१७ की श्रावण वदी १ (ई० सन् १५६० की ८ जुलाई) को हुआ था। (परन्तु एक स्थान पर वि० स० १६२७ की आश्विन सुदी १४ भी लिखी मिलती है ?) जिस समय (वि० स० १६३७=ई० सन् १५८१ मे) राव चन्द्रसेनजी की मृत्यु हुई, उस समय रायसिंहजी काबुल मे और उग्रसेनजी बूँदी मे थे। इसलिये मारवाड के सरदारो ने रावजी के पीछे उनके सबसे छोटे पुत्र आसकरनजी को गद्दी पर बिठला दिया। इसकी सूचना मिलने पर उग्रसेनजी बूँदी से मेडते चले आए, और मुगल सेनापतियों से मिलकर मारवाड का अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करने लगे। यह देख राठोड सरदारों ने उन्हे समझाया कि देश की दशा को देखते हुए उस समय गद्दी का खाली रखना हानिकारक था। इसी से हमने आसकरनजी को गद्दी पर बिठा दिया था। यदि ऐसा न किया जाता, तो एकत्रित सरदार मालिक के न रहने से इधर-उधर चले जाते, और सोजत का प्रांत फिर मुगलों के अधिकार मे हो जाता। फिर भी यदि आप आपस के मनोमालिन्य को छोडकर यहाँ चले आवें, तो सोजत का आधा प्रांत आपको दिया जा सकता है। इस पर उग्रसेनजी मुसलमानों का साथ छोड मेडते से सारन (सोजत-प्रांत मे) चले आए।

एक रोज जिस समय उग्रसेनजी और आसकरनजी दोनों भाई चौसर खेल रहे थे, उस समय दोनों के बीच हार-जीत के विषय मे झगडा हो गया। इससे क्रुद्ध होकर उग्रसेनजी ने अपनी कटार आसकरनजी की छाती मे घुसेड दी। परन्तु राव आसकरनजी के सरदार (शकर के पुत्र) शेखा ने, जो वहीं बैठा था, जब अपने स्वामी की यह दशा देखी, तब वही कटार उनकी छाती से निकाल उग्रसेनजी के हृदय मे घुसेड दी। इस प्रकार दोनों भाई एक ही दिन स्वर्ग को सिधारे। यह घटना वि० स० १६३८ की चैत्र सुदी १ (ई० सन् १५८१ की ६ मार्च) की है।

को लिख भेजा। इस पर उसने इन्हें राव का खिताब और सोजत का परगना जागीर मे देकर मारवाड की तरफ जाने की अनुमति दे दी। इसलिये वि० स० १६३६ (ई० सन् १५८२) मे यह सोजत पहुँच वहाँ की गद्दी पर बैठे। इसके बाद वि० स० १६४० (ई० सन् १५८३) में ही यह लौटकर बादशाह के पास चले गए।

इस घटना के पूर्व ही मेवाड के प्रसिद्ध महाराना प्रतापसिंहजी का भाई जगमाल बादशाह अकबर की सेवा स्वीकार कर उसके पास पहुँच चुका था, और कूटनीतिज्ञ अकबर ने उसे सिरोही का आधा राज्य दिलवा दिया था। परन्तु कुछ दिन बाद वहाँ के महाराव सुरतान से अनबन होजाने के कारण वह लौटकर फिर बादशाह के पास पहुँचा। इस पर अकबर ने देवड़ा सुरतान को हटाने और सिरोही का अधिकार जगमाल को दिलवाने के लिये, वि० स० १६४० (ई० सन् १५८३) में, एक सेना भेजी, और उसके साथ राव रायसिंहजी भी नियत किए गए। इससे एक बार तो सिरोही पर फिर से जगमाल का अधिकार हो गया, और सुरतान भागकर आबू के पहाडो मे चला गया। परन्तु कुछ दिन बाद ही जब बहुत-सी शाही सेना गुजरात की तरफ चली गई, तब सुरतान ने, एक रात को, बची हुई शाही सेना पर अचानक हमला करदिया। उस समय जगमाल और राव रायसिंहजी दोनो दताणी गाव के मुकाम पर बेखबर सोए हुए थे, इसलिये जैसे ही इस हल्ले से उनकी निद्रा भग हुई, वैसे

(ख्यातों मे लिखा है कि चौसर खेलते समय दोनों भाइयों के बीच १० सेर मिसरी की शर्त ठहरी थी, और मौके पर उग्रसेनजी ने मिसरी ले आने के बहाने ने आसकरनजी के सेवकों को वहाँ से हटा दिया था। परन्तु एक अफीमची वहाँ पर रह गया था। अपने स्वामी का कराहना सुन वह चौक पडा, और उसी ने आसकरनजी की छाती मे कटार निकालकर उग्रसेनजी की छाती में घुसेड दी।)

वि० स० १६३७ (८) शक सवत् १५०३ का एक शिला लेख सारन से मिला है। इससे आसकरनजी के पीछे उनकी एक रानी का सती होना प्रकट होता है। शिला लेख की प्रतिलिपि.—

"श्रीगणेशाय नम। सवत् १६३७ (८) वर्षे शाके १५०३ (चैत्र) मास सु(शु)क्ल पक्षे पडिवा १ राय श्री आसकरणजि (जी) देवलोक पधारा (रि) या तत् समये सती एक हुई।"

इस लेख का सवत् श्रावण से प्रारम होनेवाला मारवाडी सवत् है। इससे चैत्रादि सवत् १६३८ आता है। इसकी पुष्टि उसी मे के आगे लिखे श० स० १५०३ से भी होती है, क्योंकि विक्रम और शक सवत् के बीच १३५ का अतर रहता है।

आसकरनजी के तीन पुत्र थे—कर्मसेन, कल्याणदास और कान्ह।

१. तबकाते अकबरी, पृ० ३५५।

ही ये इसके कारण की जॉच करने को शिविर से बाहर चले आए। परन्तु इसी बीच शत्रुओ ने वहॉ पहुॅच इन्हे चारो तरफ से घेर लिया। अत में ये दोनो विना शस्त्र होने के कारण शीघ्र ही सम्मुख रण में मारे गए। यह घटना वि० स० १६४० की कार्तिक शुक्ला ११ (ई० सन् १५८३ की १७ अक्टोबर) की है।

१ अकबरनामा, भाग ३, पृ० ४१३।

महामहोपाध्याय प० गौरीशकरजी ओझा ने अपने 'सिरोही के इतिहास' (पृ० २३१) और 'राजपूताने के इतिहास' (पृ० ७३७) मे सुरतान के नैश-आक्रमण का उल्लेख न कर लिखा है कि जिस समय जगमाल के साथ के कुछ योद्धा 'भीतरट' पर अधिकार करने को चले गए, उस समय मौका पाकर सुरतान ने रायसिह आदि पर हमला कर दिया। परन्तु अकबरनामे और मारवाड की ख्यातों में स्पष्ट तौर से सुरतान के नैश-आक्रमण का उल्लेख मिलता है। उनमे यह भी लिखा है कि जगमाल और रायसिंह दोनों उस समय नि शस्त्र होने पर भी बडी वीरता से शत्रु का सामना कर मारे गए।

कही-कही इस युद्ध मे राव रायसिहजी की तरफ के २८४ योद्धाओं का मारा जाना भी लिखा है।

२२. राजा उदयसिंहजी

यह राव मालदेवजी के पाँचवें पुत्र थे। इनका जन्म विक्रम संवत् १५९४ की माघ सुदी १३[1] (ई० स० १५३८ की १४ जनवरी) को हुआ था। राव मालदेवजी ने अपने जीते-जी ही इन्हें फलोदी का परगना जागीर में देकर वहाँ भेज दिया था। इसी से यह वहाँ रहकर अपनी जागीर का प्रबन्ध किया करते थे। वि० संवत १६१९ (ई० स० १५६२) में जिस समय राव मालदेवजी का स्वर्गवास हुआ और उनकी इच्छा के अनुसार राव चन्द्रसेनजी[2] जोधपुर की गद्दी पर बैठे, उस समय कुछ सरदारों के आग्रह से इन्होंने गांगाणी आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इसी से राव चन्द्रसेनजी के और इनके बीच लोहावट में युद्ध हुआ। परन्तु अन्त में सरदारों ने बीच में पड़ दोनों भाइयों में मेल करवा दिया।

'तबकाते अकबरी' में लिखा है कि बादशाह अकबर के सातवें राज्य-वर्ष (हि० स० ९६९=वि० सं० १६१९=ई० स० १५६२) में उस (बादशाह) ने अबदुल्लाखाँ को मालवे की सूबेदारी दी। इसमें उसने शाही सेना के साथ वहाँ पहुँच बाजबहादुर को भगा दिया। इस पर वह (बाजबहादुर) कुछ दिनों तक इधर-उधर भटक कर उदयसिंह की शरण में चला आया और अन्त में यहाँ से गुजरात की तरफ चला गया।[3]

वि० संवत १६२७ में जिस समय बादशाह अकबर अजमेर से लौटकर नागोर आया, उस समय बीकानेर आदि देशी राज्यों के अनेक नरेश उससे मिलने और उसका अनुग्रह प्राप्त करने के लिये वहाँ आपहुँचे। यह देख उदयसिंहजी भी वहाँ जाकर उससे मिले। इसी अवसर पर राव चन्द्रसेनजी के बादशाही अधीनता अस्वीकार कर देने से बादशाह उनसे नाराज होगया, और उसने उनके वश में विरोध उत्पन्न करने के लिये उनके बड़े भ्राता उदयसिंहजी को अपने साथ ले लिया।

इसके बाद शीघ्र ही उदयसिंहजी गूजरों के उपद्रव को दबाने के लिये समावली की तरफ भेजे गए। वहाँ के उपद्रव को शान्त करने में अच्छी सफलता प्राप्त करने के कारण बादशाह अकबर इनसे और भी प्रसन्न हो गया। अगले वर्ष खीचीवाड़े के उपद्रव को भी इन्होंने बड़ी योग्यता से दबादिया।

---

१ कहीं वदि १३ भी लिखा है।

२ यह राव मालदेवजी के छठे पुत्र थे।

३. देखो पृ० १५० । परन्तु अकबरनामे में बाजबहादुर का राना उदयसिंह के पास जाना लिखा है। यही ठीक प्रतीत होता है। (देखो भा० २ पृ० १९९)।



२२. राजा उदयसिंहजी

वि० स० १६४०-१६५२ (ई० स० १५८३-१५९५)

उस समय सिंध और थट्टे का मार्ग बीकमपुर (जैसलमेर-राज्य में) होकर जाता था। इसलिये मालके आवागमन के कारण भाटियों को अच्छी आमदनी हो जाती थी। यह देखकर उदयसिंहजी ने व्यापारियों के उस मार्ग से आने-जाने में रुकावट डालना और उन्हें फलोदी की तरफ़ से आने-जाने को बाध्य करना शुरू किया। इससे वि० संवत् १६२६ (ई० स० १५७२) में भाटियों के और इनके बीच झगड़ा हो गया। इस युद्ध में भाटियों के नायक के मारे जाने के कारण विजय उदयसिंहजी के हाथ रही। इसका बदला लेने के लिये, वि० संवत् १६३१ (ई० स० १५७४) में, भाटियों ने फलोदी पर एकाएक चढ़ाई कर दी। जैसे ही इसकी सूचना उदयसिंहजी को मिली, वैसे ही यह अपने उपस्थित वीरों को लेकर उनका सामना करने को चले। मार्ग में हम्मीरसर (कुण्डल के पास) में पहुँचने पर दोनों का सामना हो गया। यहां के युद्ध में यद्यपि एक बार तो राठोड़ों ने भाटियों को दबा लिया, तथापि अन्त में सख्याधिक्य के कारण खेत भाटियों के ही हाथ रहा।

वि० संवत् १६३४ (ई० स० १५७७) में जिस समय बादशाह की तरफ से सादिकखाँ ओड़छा और बुन्देलखड के शासक मधुकरशाह बुन्देले को दबाने के लिये भेजा गया, उस समय उदयसिंहजी भी उसके साथ गए थे[1]। वहाँ के युद्ध में इन्होंने अच्छी वीरता दिखलाई। खास कर नरवर का किला तो इन्हीं की बहादुरी से विजय हुआ था। इससे कुछ समय बाद ही बादशाह अकबर ने इन्हे राजा की पदवी देकर जोधपुर का अधिकार सौंप देने का वादा भी किया। इनका शरीर स्थूल होने के कारण यह शाही दरबार में 'मोटा राजा' के नाम से प्रसिद्ध थे[2]।

१ 'मआसिरुल उमरा' में इस घटना का अकबर के २३ वें राज्य-वर्ष में होना लिखा है (देखो भा० २, पृ० १८१)। परन्तु अकबरनामे में २२ वा राज्य-वर्ष लिखा है (देखो भाग ३, पृ० २१०)।

२ वि० स० १६३५ का लिखा हुआ इनका एक 'खास रुक्का' मिला है। इससे प्रकट होता है कि जोधाजी ने हरा नामक ब्राह्मण के पूर्वजों को कन्नौज से अपनी कुलदेवी की मूर्ति ले आने के कारण जो ताम्रपत्र लिख दिया था, वह उस समय तक विद्यमान था। इस ताम्रपत्र का उल्लेख यथास्थान जोधाजी के इतिहास मे किया जा चुका है। यहाँ पर उदयसिंहजी के उक्त पत्र की नकल दी जाती है—

"श्री नागणेचियाँ

महाराजाधिराज श्री उदेसिंघजी वचनायत सेवग हरो सदावद कदीम सु छै, राठोड़ वसरो सेवगपणो कदीम सु ईणारे छै, तीणारो हथेरण सामत १५१६ रो तावापतर मुजब परवाणो करदीनो

इसके बाद वि० स० १६४० में राजा उदयसिंहजी पुष्कर की तरफ़ होते हुए जोधपुर चले आए और भादो वदी १२ (ई० स० १५८३ की ४ अगस्त) को जोधपुर की गद्दी पर बैठे।

विक्रम सवत् १६४० के माघ में जिस समय मिरज़ाखाँ (अब्दुलरहीम खाँनखाँ-नान्) मुज़फ्फ़र गुजराती के उपद्रव को शान्त करने के लिये भेजा गया, उस समय मोटा राजा उदयसिंहजी भी उसके साथ थे। राजपीपला की लड़ाई में मुज़फ्फ़र को हार कर भागना पड़ा।

इन दिनों भाद्राजन का हरराजिया नामक मीणा इधर-उधर लूट-मार कर बड़ा उपद्रव करने लगा था। इसलिये राजा उदयसिंहजी ने राठोड़ (खींवा के पुत्र) सूरजमल को उसे पकड़ने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उसने एक रात्रि को कुछ आदमियों के साथ अचानक पहुँच उसे पकड़ लिया। अन्त में हरराजिया के अपराधों पर विचार कर राजा उदयसिंहजी ने उसे मार डालने की आज्ञा दे दी। इससे दूसरे मीणे भी डर गए।

छै, गऊतमस गोतर, अकुर साप (स), तीन परवर, कुलदेवी   रछेद ? राठोड़ वस गोतरा लार ईतरा जया छै, प्रो। मेवड नगर ओजा लोड जातरा सारसुत मीरामया ६ ॥ पु ॥ राठोड वासरा पुज पुजापारा। श्री देवकारजरा पीत्र कारजे लोड श्रोजरे हथ वीन उपजे नहीं सु हथारे हाथ सु हुसी स ॥ १६३५ रा माह सुद ५।

ईतरा नेघ फर ईनायत किना १ जनम असटमी, २ आवली ईगीयारस, ३ वीरपुडी, ४ महालप(च्छ)मी, ५ असासो, ६ जाया परणीयारो, ७ रोप पाचम, ८ अरती पुरणीया वीवपु   ईतरानेग आल ओलाद पाय जासी, कोई उथापण पावे नहीं स ॥   आ॥ स्द दुवे परवानगी राठोड   "

१ वि० स० १६४० की सावन वदी ४ (ई० सन् १५८३ की २६ जून) को उदयसिंहजी ने पुष्कर में अपना एक राजगुरु नियत कर उसको एक ताम्रपत्र लिख दिया था। उसमें इनकी उपाधि 'महाराजाधिराज महाराजा' लिखी है।

इसी वर्ष इन्होंने जोधपुर के मुसलमानों को जुमे की नमाज पढ़ाने के लिये एक काजी को दो सनदें दी थीं। इनमें से एक वि० स० १६४० की श्रावण सुदी १२ (ई० सन् १५८३ की २१ जुलाई) की है, और दूसरी का सवत् कागज फट जाने से पढ़ा नहीं जाता। इनमें इनकी उपाधि 'महाराजाधिराज' लिखी है।

२ 'अकबरनामे' के दफ़तर ३, पृ० ४२३-४२४ में इस घटना का हि० सन् ९९२ में होना लिखा है, और 'तबकाते अकबरी', पृ० ३५७-३५८ में मुज़फ्फ़र के साथ के युद्ध का १३ मोहर्रम शुक्रवार को होना लिखा है। (परन्तु शायद इस तारीख को गुरुवार आता है)

विक्रम संवत् १६४१ (ई० स० १५८४) में बादशाहने सोजत का प्रान्त भी उदयसिंहजी को देदियाँ[1]।

इसी वर्ष सैयद दौलतखाँ ने खंभात पर अधिकार कर लिया। इस पर अकबर की आज्ञा से अनेक सरदारों और अमीरों ने मिलकर उस पर चढ़ाई की। उस समय मोटा-राजा उदयसिंहजी भी उनके साथ थे। इन्होंने वहाँ पर सैयद को दबाने में बड़ी वीरता दिखलाई[2]।

विक्रम संवत् १६४३ (ई० स० १५८६) में राजा उदयसिंहजी ने सींधल-वाटी (जालोर-प्रान्त में) पर चढाई की, और वहाँ के सींधल राठोड़ो को हराकर उनके गावो को लूट लियाँ[3]।

१ यह प्रान्त पहले राव रायसिंहजी के अधिकार में था, और उनकी मृत्यु के बाद वहाँ पर उनके परिजन रहा करते थे। परन्तु जब यह परगना उदयसिंहजी को सौंप दिया गया, तब व सब जोधपुर चले आए।

२ अकबरनामा, दफ्तर ३, पृ० ४३६-४३७। मारवाड की ख्यातों मे लिखा है कि इसी वर्ष इन्होंने सीसोदिया जगमाल और राव रायसिंह का बदला लेने के लिये शाही सेना के साथ सिरोही पर भी चढाई की थी। परन्तु राव सुरतान ने दण्ड के रुपये देकर इन लोगों से क्षमा माग ली।

इस चढाई का वर्णन 'सिरोही के इतिहास' मे नही दिया गया है।

३ ख्यातों में लिखा है कि जिस समय सोजत पर राव मालदेवजी के पुत्र राम और पौत्र कल्ला (कल्याण) का अधिकार था, उस समय उन्होंने उस प्रान्त के कई गाँव चारणों को दान मे दिए थे। परन्तु वहाँ पर राजा उदयसिंहजी का अधिकार हो जाने के बाद एक बार जब इनकी रानियाँ सिवाने की तरफ गईं, तब मार्ग मे चारणों के बाडे के पास पहुँचने पर उनके रथ के बैल थक गए। यह देख साथ के मनुष्यों ने एक चारण के बैल पकड़ कर रथ में जोत लिए। इसपर उस चारण ने बड़ा उपद्रव मचाया और रथ के साथ वालों के मना करने पर भी अपने बैल खोल कर ले गया। इस घटना का हाल सुन कर राजा उदयसिंहजी चारणों से नाराज हो गए। इसलिये विक्रम संवत् १६४३ (ई० सन् १५८६) में इन्होंने चारणों के कई गाँव जब्त कर लिए। इस पर पहले तो उन लोगों ने मिल कर महाराज से बहुत कुछ अनुनय-विनय की। परन्तु जब इससे काम नहीं चला, तब उन्होंने जोधपुर में एकत्रित होकर अनशन व्रत ले लिया। यह बात महाराज को और भी बुरी लगी। इससे इन्होंने उन लोगों को जोधपुर से निकलवा दिया। इस प्रकार खदेड़ दिए जाने पर वे लोग पाली के ठाकुर चाँपावत गोपालदास के पास पहुँचे और उसे अपना सारा हाल सुनाकर महाराज को समझाने के लिये भेजा।

अगले वर्ष (वि० स० १६४४ में) मोटा-राजा उदयसिंहजी अपने राजकुमार शूरसिंहजी को साथ लेकर लाहौर गए। वहीं पर बादशाह अकबर की इच्छानुसार उन (युवराज शूरसिंहजी) का विवाह कछवाहा दुरजनसाल की कन्या से कर दिया गया।

ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष बादशाह ने महाराज को सिरोही के राव सुरतान को दण्ड देकर देवड़ा हरराज के पुत्र विजा को वहाँ की गद्दी पर बिठा देने की आज्ञा दी। इन्होंने भी इस अवसर पर अपने भतीजे राव रायसिंहजी की मृत्यु का बदला लेने का निश्चय कर तत्काल सिरोही पर चढ़ाई कर दी। परन्तु इनसे सम्मुख रण में लड़ना हानिकारक समझ सुरतान आबू के पहाड़ों में चला गया। इस पर उदयसिंहजी ने इधर-उधर के गावों को लूट नीतोड़ा नामक गाँव में अपनी छावनी डाल दी। यद्यपि एक महीने तक तो राव सुरतान पहाड़ों में छिपा रह कर इन पर आक्रमण करने का मौक़ा ढूंढ़ता रहा, तथापि अन्त में उसे लाचार हो अपने कुछ सरदारों को, बगड़ी के ठाकुर (पृथ्वीराज के पुत्र) वैरसल के मारफ़त, उदयसिंहजी के पास भेज कर बादशाह से क्षमा दिलवाने की प्रार्थना करनी पड़ी। परन्तु महाराज अपने भतीजे रायसिंहजी का सुरतान-द्वारा धोखे से मारा जाना अभी तक नहीं भूले थे। इससे इन्होंने रत्नसिंह के पुत्र राम को आज्ञा देकर सिरोही के उन सरदारों को मरवा डाला। यह बात वैरसल को बुरी लगी। इसी से उसने राम को मार कर स्वयं भी आत्महत्या कर ली।[1]

इसके बाद स्वय विजा ने शाही सेनापति जामबेग को साथ लेकर 'वास्थानजी' के मार्ग से सुरतान पर चढ़ाई की। परन्तु युद्ध होने पर विजा मारा गया। इसकी

परन्तु जब राजा उदयसिंहजी का क्रोध इससे भी शान्त न हुआ, तब चारणों ने आउवा गाँव मे दो दिन अनशन व्रत करने के बाद तीसरे दिन सूर्योदय के समय अपने-अपने गले में कटार घुसेड़कर आत्महत्या कर ली। इसके बाद आढा दुरसा आदि एक-दो चारण जो अपने गले में कटार घुसेड़ लेने पर भी बच गए थे, सिरोही की तरफ़ चले गए।

इस आत्महत्या के कार्य मे कुछ पुरोहितों ने भी, चारणों के साथ समवेदना प्रकट करने के लिये, उनका साथ दिया। साथ ही इस कार्य में चारणों की सहायता करने के कारण चांपावत गोपालदास को भी मारवाड़ छोड़ कर जाना पड़ा।

१ इस पर जो चबूतरा बनाया गया था वह नीतोड़े में अब तक विद्यमान है।

सूचना पाते ही राजा उदयसिंहजी ने देवड़ा कल्ला को सिरोही की गद्दी पर बिठा दिया, और कुछ दिनों में वहां का प्रबन्ध ठीक कर यह मारवाड़ में लौट आए।

इसके बाद (इसी वर्ष वि० सं० १६४४=ई० सन् १५८७ में) उदयसिंहजी ने सिवाने पर चढ़ाई कर वहाँ के किले को घेर लिया। कई दिनों तक दोनों पक्षों के बीच बराबर युद्ध होता रहा। बादशाही और महाराज की सेनाओं के खुले स्थान में और राव कल्ला की सेना के किले में होने से बाहरवाली सेना की अधिक क्षति होने लगी। इस पर शाही सेना के सेनापतियों ने किले के एक नाई को लालच देकर अपनी तरफ मिलाया, और उसी के द्वारा किले के अरक्षित भाग का पता लगाकर रस्सियों-द्वारा उधर से अन्दर घुसने का प्रबन्ध कर लिया। जब इस प्रकार सब प्रबन्ध ठीक हो गया, तब रात्रि के समय शाही सेना के साथ ही महाराज की सेना भी चुप-चाप किले में प्रविष्ट होगई। यह देख किले में की राजपूत-रमणियाँ तो जौहर (अग्नि-प्रवेश) कर अपने वीर-पतियों के पूर्वही इस लोक से बिदा होगई, और उनके वीर-पति सम्मुख रण में शत्रु से भिड़कर स्वर्ग को सिधारे। इस युद्ध में वीरवर कल्ला ने भी अच्छी वीरता दिखाई थी। परन्तु अन्त में वह खीची गणेशदास के हाथ से मारा गया[2]। इससे सिवाने पर बादशाह का अधिकार

१ अकबर नामे में लिखा है कि सने जुलूस ३८=हि० सन् १००१ (वि० सं० १६५०=ई० सन् १५९३) में बादशाह ने 'मोटा राजा' को सिरोही के राव (सुरतान) को दण्ड देने की आज्ञा दी। इससे अनुमान होता है कि या तो मारवाड़ की ख्यातों और 'अकबरनामा' इन दोनों में से किसी एक में संवत् गलत लिखा गया है, या फिर वि० सं० १६५० में भी उदयसिंहजी ने सिरोही पर दुबारा चढ़ाई की होगी। (देखो अकबरनामा, दफ़्तर ३, पृ० ६४१) परन्तु 'सिरोही के इतिहास' में भी इस घटना का वि० सं० १६४५ (ई० सन् १५८८) के प्रारम्भ के करीब होना ही लिखा है। (देखो पृ० २३४-२३५)।

२ परन्तु इसका उल्लेख फारसी तवारीखों में नहीं मिलता है। ख्यातों में यह भी लिखा है कि रायमल का पुत्र (मालदेवजी का पौत्र) कल्ला (कल्याणमल्ल) सिवाने का स्वामी था। जिस समय वह शाही सेना के साथ लाहौर में था, उस समय उसके और एक शाही मनसबदार के बीच झगड़ा हो गया। इस पर वह उस शाही मनसबदार को मार कर सिवाने चला आया। इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने उस पर सेना भेज दी। परन्तु कल्ला की वीरता और सिवाने के दुर्ग की दुर्गमता के कारण उसे सफलता नहीं हुई। यह देख बादशाह ने 'मोटाराजा' को उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी।

होगयी[1]। यह घटना विक्रम संवत् १६४५ (ई० सन् १५८८) की है।

बादशाह अकबर राजा उदयसिंहजी को बहुधा अपने साथ ही रखता था। विक्रम संवत् १६४९ (हि० सन् १०००=ई० सन् १५९२) में जब वह लाहौर से काश्मीर गया, तब उसने कुलिचखाँ के साथ ही महाराज को भी वहां (लाहौर) के प्रबन्ध के लिये नियत करदिया[2]।

विक्रम संवत् १६५० (ई० सन् १५९३) में महाराज ने जसोल के रावल वीरमदेव पर चढाई[3] की। यद्यपि पहले तो रावल ने भी बडी वीरता से इनका सामना किया, तथापि अन्त में उसे हारकर भागना पडा। इससे जसोल पर महाराज का अधिकार हो गया।

इसी वर्ष (हि० सन् १००२ में) राजा उदयसिंहजी को दक्षिण के युद्ध में भाग लेने के लिये शाहजादे दानियाल के साथ जाना पडा[4]। वहाँ से लोटने पर कुछ दिन तो यह मारवाड़ में रहे, परन्तु बाद में लाहौर के प्रबन्ध की देखभाल के लिये

परन्तु इन्होंने कल्ला पर स्वयं चढकर जाना अनुचित जान राजकुमार भोपतसिंह और भंडारी मना को कुछ सेना देकर उधर भेज दिया। यद्यपि इस राठोड़ वाहिनी ने सिवाने के किले को घेर कर कुछ दिन के लिये उसका बाहरी सम्बन्ध काट दिया, तथापि एक रात को मौका पाकर वीर कल्ला एकाएक किले से निकल इस सेना पर टूट पडा। इस अचानक के आक्रमण में बाहर की राठोड-सेना के साथ ही शाही सेना के भी बहुत से वीर मारे गए। इससे बची हुई सेनाओं को किले का घेरा हटा लेना पडा। इस समाचार को सुन बादशाह अकबर को बड़ा दुख हुआ, और उसने इन दो बार की पराजयों का बदला लेने के लिये राजा उदयसिंहजी को स्वयं सिवाने पर चढाई करने की आज्ञा दी। इसी कारण इनको स्वयं कल्ला के विरुद्ध सिवाने पर चढाई करनी पडी थी।

१ उसी समय से किसी नाई को सिवाने के किले में नहीं जाने दिया जाता।

कहते हैं कि तब से ही कल्ला के वंश के सरदार (लाडनू वगैरा के ठाकुर) भी उस किले में नहीं जाते हैं।

२ तबकाते अकबरी (पृ० ३७६)।

३. वि० स० १६५० की आषाढ सुदी ६ के लेख से उस समय फलोदी पर बीकानेर नरेश रायसिंहजी का अधिकार होना प्रकट होता है।

४ तबकाते अकबरी (पृ० ३७६) में हि० सन् १००१ की २१ मुहर्रम (वि० स० १६४६ की कार्तिक वदी ८—ई० सन् १५९२ की १८ अक्टोबर) को इनका दक्षिण की तरफ़ भेजा जाना लिखा है।

उधर चले गए[1]। विक्रम संवत् १६५२ की आषाढ सुदी १२ (ई० सन् १५९५ की ८ जुलाई) को वहीं पर दमे की बीमारी से इनका स्वर्गवास होगया[2]। इसके बाद जिस समय रावी के किनारे इनका दाहकर्म किया गया, उस समय स्वयं बादशाह अकबर ने नाव-द्वारा वहाँ आकर राजकुमार शूरसिंहजी के साथ समवेदना प्रकट[3] की।

मारवाड़ के नरेशो मे पहले पहल इन्होने ही बादशाही 'मनसब' अंगीकार किया था। एक तो उस समय राजस्थान की परिस्थिति ही ऐसी हो रही थी कि आमेर और बीकानेर आदि के नरेश अकबर जैसे प्रतापी बादशाह का दिया 'मनसब' स्वीकार कर या उसकी कृपादृष्टि प्राप्त कर अपने को सुरक्षित और बलवान् समझने लगे थे। दूसरा स्वयं राजा उदयसिंहजी के सामने ही मारवाड़ का राज्य उनके छोटे भाई को दे दिया गया था और घटना-विशेष से राव मालदेवजी के हुमायूँ को सहायता न दे सकने के कारण उस (मारवाड-राज्य) पर बादशाह अकबर का अधिकार हो चुका था। इन परिस्थितियो मे पड कर ही उदयसिंहजी को बादशाही सहारा लेना पडा। नहीं कह सकते कि इस प्रकार की परिस्थिति के अभाव मे उदयसिंहजी अपनी वंश-क्रमागत स्वाधीनता को छोडने को उद्यत होते या नहीं। इससे मिलती हुई परिस्थिति मे पडकर ही मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराना प्रतापसिंहजी के भाई जगमल को भी अकबर की शरण लेनी पड़ी थी। परन्तु उस (जगमाल) के शीघ्र ही विक्रम संवत् १६४० (ई० सन् १५८३) में मर जाने से वह सफल न हो सका। जिस समय उदयसिंहजी को राजा की पदवी और मारवाड का अधिकार प्राप्त हुआ था, उसी समय शायद इन्हें डेढहजारी मनसब भी मिला था[4]।

१. अकबरनामा, दफ्तर ३ पृ० ६६२। वि० सं० १६५१ (चैत्रादि सं० १६५२) की प्रथम जेठ सुदी १ (ई० सन् १५९५ की ३० अप्रेल) को जिस समय महाराज लाहौर मे थे, उस समय इन्होंने काजी सैयद फीरोज को जोधपुर का काजी नियत कर एक सनद कर दी थी। उसमे भी इनकी उपाधि 'महाराजाधिराज महाराजा' लिखी है।

२ कहीं कहीं इस घटना की तिथि आषाढ सुदी १५ (११ जुलाई) भी लिखी मिलती है।

३ 'अकबरनामे' मे लिखा है कि मोटा राजा हि० सन् १००३ की ३० तीर को मर गया। इसपर उसके साथ ४ रानियां सती हुईं (देखो दफ्तर ३, पृ० ६६६)।

४ 'तबकाते अकबरी' मे इनका 'मनसब' डेढहजारी दिया है (देखो पृ० ३८६)। परन्तु 'मआसिरे आलमगीरी' मे इनका 'मनसब' एकहजारी ही लिखा है (देखो भा० २, पृ० १८१)।

इन्होंने मारवाड़ का अधिकार प्राप्त होने पर अनेक गाँव दान दिये थे[1]।

इनके १६ पुत्र थे। १ भगवानदास[2], २ नरहरदास[3], ३ कीर्तिसिंह[4], ४ दलपत[5],

---

१. बेराई (शेरगढ़ परगने का), २ खुडाला (नागोर परगने का), ३ रामासणी (सोजत परगने का), ४ मोतीसरा (जालोर परगने का), ५ नगवाड़ा खुर्द (परबतसर परगने का), ६ साटावास, ७ तावड़िया-खुर्द ८ बामणी चारणां ९ पीथासणी १० मीठाली-चारणां (जोधपुर परगने के), ११ जोधावास (जैतारण परगने का) चारणों को, १२ सारणा (सोजत परगने का) स्वामियों को, १३ कानाबासिया (बीलाड़ा परगने का) रणछोड़जी के मन्दिर को, १४ बाजड़ा (बीलाड़ा परगने का) भाटों को, १५ मोटी-खतड़ा १६ बामणी-भाटिया (जोधपुर परगने के), १७ तालणिया (जैतारण परगने का) पुरोहितों को और १८ मोटी जाळिया (जोधपुर परगने का) ब्राह्मणों को।

२ इसका जन्म वि० सं० १६१८ की आश्विन वदि १४ को हुआ था।

३. इसका जन्म वि० सं० १६१४ की कार्तिक वदि २ को हुआ था।

४ इसका जन्म वि० सं० १६२४ की पौष सुदि १४ को हुआ था।

५ दलपत का जन्म वि० सं० १६२५ की सावन वदि ६ को हुआ था। इस को राजा उदयसिंहजी ने जालोर का प्रान्त जागीर में दिया था। इसके पुत्र महेशदास (जन्म वि० सं० १६५३ की माघ वदि ३) की वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह शाहजहाँ ने उसे अपना मनसबदार बनाया था। इसी के साथ इसे एक बड़ी जागीर भी दी गई थी। इसके ८४ गाँव तो फूलिया के परगने में और ३२५ गाँव जहाजपुर के परगने में थे।

'बादशाहनामे' (के भा० २ के पृ० ५५४) में लिखा है कि बलख के युद्ध में विजय प्राप्त करने पर, वि० सं० १७०३ (ई० सन् १६४६) में, बादशाह ने इसका मनसब बढ़ाकर ३,००० जात और २,५०० सवारों का कर दिया था। उसी इतिहास (के भा० २, पृ० ६३५) में लिखा है कि वि० सं० १७०४ (ई० स० १६४८) में राठोड़ दलपत का पुत्र और जसवंतसिंहजी का भतीजा मर गया। यह बड़ा विश्वासपात्र, अनुभवी योद्धा और कुशल व्यक्ति था। बादशाह को इससे बहुत शोक हुआ और उसने कहा कि ऐसे व्यक्ति का सम्मुख रण में शत्रुओं को मारकर वीरगति प्राप्त करना ही अधिक उचित होता।

बादशाह को इस पर इतना भरोसा था कि दरबार के समय वह शाही तख्त के पीछे केवल १० गज के फ़ासले पर रक्खी हुई उस चन्दन की बनी चौकी के पास खड़ा रहता था, जिस पर बादशाह की तलवार और तीर-कमान रक्खे रहते थे। इसी प्रकार शाही सवारी के समय भी वह बादशाह से १० गज के फ़ासले पर चलता था।

महेशदास के मरने पर बादशाह ने उसके ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंहजी (जन्म वि० सं० १६७५ की चैत्र वदि ३०) का मनसब बढ़ाकर १,५०० जात और १,५०० सवारों का कर दिया। उस समय भी जालोर उनकी जागीर में रहा।

कहते हैं महेशदास अपने द्वितीय पुत्र कल्याणदास को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। इसकी सूचना मिलने पर रत्नसिंहजी नाराज होकर बादशाह की सहायता प्राप्त करने के लिये दिल्ली

५ भोपतसिंह[1], ६ शूरसिंह, ७ माधवसिंह[2], ८ कृष्णसिंह[3],

चले गए। इसके बाद एक रोज एक मस्त हाथी शाही दरबार की तरफ चला आया। यह देख इन्हों ने तत्काल अपनी कटार खींच ली और उससे उस मस्त हाथी के मस्तक पर इस जोर से वार किया कि वह मार्ग छोड चिंघाडता हुआ जिधर से आया था उधर ही को भाग चला।

इनकी इस फुर्ती और, पराक्रम को देख बादशाह शाहजहां मुग्ध हो गया, और उसने उसी समय इन्हें अपना कृपापात्र बना लिया। यह समाचार सुन इनके पिता को भी अपना विचार बदल इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी मानना पडा।

इसके बाद रत्नसिंहजी ने शाही सेना के साथ रह कर बलख आदि में अच्छी वीरता दिखलाई। इससे प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें मालवे में एक बडी जागीर दी। वहीं पर इन्होंने बाद में अपने रतलाम-राज्य की स्थापना की। इनके पौत्र केशवदासजी के समय वि० स० १७५२ (ई० स० १६६५) में बादशाही अमीनें जजिया के रतलाम-राज्य में मारे जाने के कारण बादशाह औरङ्गजेब उनसे नाराज हो गया। इसीसे उसने उनसे रतलाम का राज्य जब्त कर शाहजादे आजम को जागीर में दे दिया। परन्तु कुछ काल बाद वहां का अधिकार शाहजादे से वापिस लिया जाकर केशवदास के चचा छत्रसालजी को दे दिया गया। अन्त में केशवदासजी के निर्दोष सिद्ध होने और शाही सेना के साथ रह कर युद्धों मे वीरता दिखलाने के कारण औरङ्गजेब इनसे फिर प्रसन्न हो गया, और उसने वि० स० १७५८ (ई० स० १७०१) में इन्हें तीतरोद का प्रान्त जागीर में दिया। इसके बाद वहीं पर इन्होंने अपने सीतामऊ के नवीन राज्य की स्थापना की।

उपर्युक्त (रतलाम नरेश) छत्रसालजी के पौत्र मानसिंहजी के छोटे भ्राता जयसिंहजी ने वि० स० १७८७ (ई० स० १७३०) में अपनी जागीर रावटी में अपना स्वतन्त्र राज्य कायम किया। इसके बाद वि० स० १७९३ (ई० स० १७३६) में उन्हीं जयसिंहजी ने नवीन राजधानी सैलाना की भी स्थापना की।

१ इसका जन्म वि० स० १६२५ की कार्तिक सुदि ६ को हुआ था।

२ माधवसिंह का जन्म वि० स० १६३८ की कार्तिक वदि ५ को हुआ था। इसके वंशज पिशांगण और जूनिया (अजमेर प्रान्त) में हैं। पिशांगण के शासक नाथूसिंह ने मारवाड नरेश महाराजा मानसिंहजी के उदयपुर की राजकुमारी कृष्णाकुमारी के साथ के विवाह के मामले में बहुत कुछ उद्योग किया था। इसी से प्रसन्न होकर महाराज मानसिंहजी ने, वि० स० १८६३ (ई० स० १८०६) में, उसे राजा की पदवी दी। वि० स० १९३४ (ई० स० १८७७) में भारत सरकार ने भी उसे नाथूसिंह के वंशज प्रतापसिंह के लिये व्यक्तिगतरूप से स्वीकार कर लिया था। (देखो—चीफ्स एण्ड लीडिंग फेमिलीज इन राजपूताना (ई० स० १९१६ में प्रकाशित) पृ० १०१)।

३ कृष्णसिंहजी का जन्म वि० स० १६३६ की जेठ वदि २ को हुआ था और अपने पिता के मरने पर यह शाहजादे सलीम के पास चले गए थे। अकबर के मरने पर जब शाहजादा

---

(१) बारहट कुम्भकर्ण रचित 'रत्नरासा' से भी इसकी पुष्टि होती है।

९ शक्तिसिंह,[1] १० मोहनदास, ११ अखैराज, १२ जैतसी,[2] १३ जसवंतसिंह, १४ करणमल्ल, १५ केशवदास और १६ रामसिंह।

सलीम बादशाह जहांगीर के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा, तब वि० सं० १६६४ की कार्तिक सुदि ४ (ई० स० १६०७ की १४ अक्टोबर) को उसने कृष्णसिंहजी को १,००० जात और ५०० सवारों का मनसब दिया (देखो-'तुजुकजहांगीरी' पृष्ठ ६२)। इसके बाद इसमें वृद्धि होते होते वि० सं० १६७१ की चैत्र वदि १ (ई० स० १६१५ की ६ मार्च) को इनका मनसब ३,००० जात और १,५०० सवारों का हो गया (देखो-'तुजुकजहांगीरी', पृष्ठ १३६)।

इन्हें बादशाह की तरफ से सेठोलाव आदि कुछ परगने और भी जागीर में मिले थे। वि० सं० १६६८ (ई० स० १६११) में इसी सेठोलाव के पूर्व में इन्होंने अपने नाम पर किशनगढ़ नगर बसाकर उक्त राज्य की स्थापना की।

१ शक्तिसिंह एक वीरप्रकृति का पुरुष था। इसकी वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह अकबर ने इसे राव की पदवी के साथ ही सोजत, फुलिया और केकड़ी के परगने जागीर में दिए थे। करीब एक वर्ष तक तो सोजत इसी के अधिकार में रहा। परन्तु इसके बाद वहाँ का शासन शूरसिंहजी को दे दिया गया और इसके एवज में इसे जैतारण का प्रान्त मिला।

'चीफ्स एण्ड लीडिंग फेमिलीज इन राजपूताना' (ई० सन् १९१६ में प्रकाशित) के पृ० १०३ में लिखा है कि एक बार शक्तिसिंह ने बादशाह अकबर को डूबने से बचाया था। इसी से प्रसन्न होकर उसने उसे ४५ गाँव जागीर में दिए थे। इसके बाद वि० सं० १९३४ (ई० सन् १८७७) में इसके वंशज माधवसिंह को भारत सरकार ने फिर से राव की पदवी दी। खरवा (अजमेर प्रान्त में) के राव इसी शक्तिसिंह के वंशज हैं।

२ जैतसिंह के वंशज दुगोली, लोटोती आदि में हैं।

२३. सवाई राजा शूरसिंहजी

यह मारवाड़ नरेश राजा उदयसिंहजी के पुत्र थे[1]। इनका जन्म वि० स० १६२७ की वैशाख वदी ३० (ई० सन् १५७० की ५ अप्रैल) को हुआ था।

वि० स० १६४८ (ई० सन् १५९१) मे बादशाह अकबर ने पहले पहल इन्हे लाहौर की शाही सेना के एक भाग का प्रबंध सौंपा। इससे कुछ दिन वहाँ रहकर यह उक्त कार्य करते रहे। परन्तु इसके बाद लौटकर जोधपुर चले आए।

वि० स० १६५२ (ई० सन् १५९५) में जिस समय बादशाह के बुलाने पर राजा उदयसिंहजी लौटकर लाहौर गए उस समय यह भी उनके साथ थे। इससे वहाँ पर महाराज का स्वर्गवास हो जाने से, उन्हीं की इच्छा के अनुसार, वि० स० १६५२ की सावन वदी १२ (ई० सन् १५९५ की २३ जुलाई) को, बादशाह ने इन्हे राजा की पदवी देकर मारवाड़-राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया।

ख्यातो में लिखा है कि इसी अवसर पर बादशाह ने इन्हे दो हजारी जात और सवा हजार सवारो का मनसब दिया था।

इसके कुछ मास बाद यह लौटकर जोधपुर चले आए। यहाँ पर वि० स० १६५२ की माघ सुदी ५ (ई० सन् १५९६ की २४ जनवरी) को चिर-प्रचलित प्रथा के अनुसार यथा-नियम इनका राज्याभिषेक किया गया।

वि० स० १६५३ (ई० सन् १५९६) में बादशाह ने सुल्तान मुराद को, जो अब तक गुजरात के सूबे की देखभाल पर नियत था, बदल कर दक्षिण की तरफ के उपद्रवो को शात करने के लिये भेजा और वहाँ (गुजरात) की रक्षा का भार राजा शूरसिंहजी को सौंपा[2]। इस पर महाराज भी मारवाड का शासन-प्रबंध

१ ख्यातों के अनुसार यह (शूरसिंहजी) राजा उदयसिंहजी के छठे पुत्र थे।

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६६७।

भाटी गोविंददास को देकर शीघ्र ही उधर को रवाना हो गए। मार्ग में जिस समय यह सिरोही के करीब पहुँचे, उस समय इन्हें वहाँ पर राव रायसिंहजी[2] के धोके से मारे जाने का खयाल आ गया। इससे उस घटना का बदला लेने के लिये इन्होंने अपने सैनिकों को उस राज्य के गाँवों को लूटने की आज्ञा देदी। यह देख वहाँ का राव सुरतान घबरा गया और उसने संधि करने की इच्छा से बहुत सा रुपया महाराज की भेट किया। यहाँ से चल कर कुछ ही दिनों में यह गुजरात पहुँच गए और वहाँ पर खाँ आजम से मिल कर मुजफ्फर के उपद्रव को दबाने का प्रयत्न करने लगे।

अगले वर्ष मुजफ्फर के ज्येष्ठ पुत्र बहादुर ने कुछ लोगों को लेकर गुजरात के प्रदेशों में लूटमार शुरू की। यह देख महाराज भी उसे दण्ड देने के लिये अहमदाबाद[3] से रवाना हुए। परन्तु इनको दलबल-सहित अपनी तरफ आते देख कर बहादुर की हिम्मत टूट गई। इसी से थोड़ीसी मुठभेड़ के बाद वह मैदान से भाग गया।

इधर महाराज को अपने अधिकांश योद्धाओं के साथ गुजरात की तरफ गया जान कर पीछे से बीकानेर वाले गोगाणी नामक (मारवाड़ के) गाँव में घुस आए

---

१. पहले मारवाड़ के राठोड़ नरेशों और उनके वंश के जागीरदारों के बीच भाई-बिरादरी का सा बर्ताव चला आता था। परन्तु भाटी गोविंददास ने उस ढंग को बदल कर, राज्य का सारा प्रबंध बादशाही ढंग पर कर दिया। इससे मारवाड़ नरेशों और उनके सरदारों का संबंध स्वामी सेवक का सा हो गया और राज परिवार में होनेवाली शादी गमी के अवसर पर ठकुरानियों के राजमहल के अन्तःपुर में उपस्थित होने की प्रथा उठ गई। दरबार के समय राव रणमलजी के वंश के जागीरदारों के लिये दाईं तरफ का और राव जोधाजी के वंश के जागीरदारों के लिये बाईं तरफ का स्थान नियत किया गया। राजकार्य के लिये दीवान, बख्शी, खानसामाँ, हाकिम, कारकुन, दफ्तरी, दारोगा, पोतेदार, वाकया-नवीस आदि पद नियत किए गए।

खवास पासवानों आदि को भी अलग अलग काम सौंपे गए। महाराज की ढाल और तलवार रखने का काम खीचियों को, चँवर और मोरछल रखने का काम धाधलों को, जलूसी पंजा और खास मोहर रखने का काम गहलोतों को, डेवढी के प्रबंध का काम सोभावतों को और महाराज के हाथी की सवारी करने पर महावत का काम आसायचों को सौंपा गया। इसी प्रकार दूसरे कार्यों के लिये भी अन्य खास खास वंश के राजपूत नियत किए गए।

२. यह मारवाड़ नरेश राव चन्द्रसेनजी के पुत्र थे और इन्हें सिरोही के राव सुरतान ने रात्रि में अचानक आक्रमण कर मारा था।

३. यहीं से वि० सं० १६५४ में इन्होंने नापावस गाव के दान की आज्ञा दी थी।

४. अकबरनामा, भा० ३ पृ० ७२५।



२३. सवाई राजा शूरसिंहजी

वि० स० १६५२-१६७६ (ई० स० १५६५-१६१६)

और वहाँ से कुछ राजकीय ऊँटो को पकड कर अपने देश को ले चले। परन्तु इसकी खबर मिलते ही मागलिया सूरा और राठोड़ (महेशदास के पुत्र) हरदास ने उनका पीछा कर वे ऊँट उनसे छीन लिए।

इसी प्रकार महाराज को मारवाड में अनुपस्थित देख जैसलमेर-रावल भीमराजजी के कुछ सैनिक भी कोरणे की तरफ पहुँच इधर उधर लूटमार करने लगे थे। यह देख ऊहड गोपालदास ने उन पर चढाई की। युद्ध होने पर गोपालदास मारा गया। परन्तु भाटियो को भी शीघ्र ही जैसलमेर लौट जाना पडा।

वि० स० १६५६ (ई० सन् १५९९) में सुल्तान मुराद मर गया। इस पर पहले तो बादशाह अकबर ने खुद दक्षिण पर चढाई की। परन्तु अगले वर्ष वहाँ की सूबेदारी शाहजादे दानियाल को दी गई और उसकी मदद के लिये राजा शूरसिंहजी नियत किए गएं।[1]

उस समय यह गुजरात में थे। इससे वहाँ से दक्षिण की तरफ जाते हुए कुछ दिन के लिये सोजत (मारवाड) मे ठहर गए। यह बात बादशाह को बुरी लगी। इसलिये उसने महाराज के भाई शक्तिसिंह को राव की पदवी देकर सोजत जागीर में दे दिया।[2] महाराज भी उस समय विरोध करना अनुचित समझ दक्षिण की तरफ चले गए। वहाँ पर कुछ ही दिनो में इन्होने (सआदतखॉ के प्रधान) राजू के साथ के युद्धो में ऐसी वीरता दिखलाई कि उसका हाल सुन बादशाह आप ही आप इनसे प्रसन्न हो गया। इसी अवसर पर महाराज के मत्री भाटी गोविन्ददास और राठोड (रत्नसिंह के पुत्र) राम ने उसे महाराज को सोजत का प्रात लौटा देने के लिये समझाया। इससे अकबर ने वह प्रात फिर से इन्हीं को लौटा दिया।[3]

अकबरनामे में अबुलफजल लिखता है[4]

वि० स० १६५७ (ई० सन् १६००) में अहमदनगर वालो से नासिक छीन लिया गया। इस पर पहले तो सआदतखॉ ने बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। परन्तु शीघ्र ही अपने गुलाम राजू के बहकाने से वह फिर बागी होगया। यह देख

१ मआसिरुल उमरा, भा० २, पृ० १८२।

२. शक्तिसिंह का अधिकार सोजत पर करीब एक वर्ष तक रहा था।

३. फारसी तवारीखों मे इस बात का उल्लेख नहीं है।

४. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ७७२।

बादशाह ने शाहजादे को उसे दण्ड देने के लिये जाने की आज्ञा दी। उस समय राजा शूरसिंहजी भी उसके साथ थे।

वि० स० १६५८ (ई० सन् १६०१) मे महाराज फिर शाही सेना और अबुलफ़जल के साथ राजू को दण्ड देने और अहमदनगर को विजय करने के लिये भेजे गए। इन दोनो बार के युद्धो में इन्होने बड़ी वीरता दिखाई थी।

इन्हीं दिनो हब्शी खुदावदखॉ ने पाथरी और पालम के प्रातो मे उपद्रव शुरू कर दिया था। जब इसकी सूचना खॉन-खॉनान् को मिली तब उसने राजा शूरसिंहजी को शाही सेना देकर उसको दबाने के लिये रवाना किया। इस पर महाराज ने खुदावदखॉ को हराकर वहॉ पर फिर से शाति स्थापित की[2]।

वहॉ से लौटकर यह निजामुलमुल्क के सेनापति अम्बरचम्पू के मुकाबले को चले। यह देख वह कधार की तरफ बढने लगा। उसी अवसर पर हब्शी फरहाद भी अपने दो-तीन हजार सवारो को लेकर उससे आ मिला। उस समय राजा शूरसिंहजी शाही सेना के अग्रभाग (हरावल) में थे। इसलिये इनके अम्बर की सेना के सामने पहुचते ही पहले तो उसने बड़ी बहादुरी से इनका सामना किया। परन्तु फिर शीघ्र ही उसके पैर उखड़ गए और उसे रणस्थल से भागकर अपनी जान बचानी पडी। यह घटना वि० स० १६५९ (ई० सन् १६०२) की है।

अबुलफजल ने इस विषय में लिखा है कि

इस युद्ध में जैसी वीरता बादशाही सेना के अग्रभाग और मध्यभाग वालों ने दिखलाई थी वैसी ही वीरता अगर वाम और दक्षिण भाग वाले भी दिखलाते तो अम्बर और फरहाद का भागना असम्भव हो जाता और वे पकड लिए जाते[3]।

इस युद्ध में के महाराज के वीरता-पूर्ण कार्यों को देख कर स्वय शाहजादा दानियाल इतना प्रसन्न हुआ कि उसने बादशाह को भी पत्र द्वारा इसकी सूचना लिख भेजी[4]। इसपर बादशाह ने इन्हें एक शाही नक्कारा उपहार में दिया। साथ

१ अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०१।

२ अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०६।

३ अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०७।

४ मआसिरुल उमरा, भा० २ पृ० १८२।

५ अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८१६।

ही उसने शाहजादे को लिखा कि राजा शूरसिंहजी बहुत समय से शाही कार्यों में लगे रहने के कारण अपने देश को नहीं जा सके है, इसलिये उनको यहाँ भेज दो और उनके प्रधान मंत्री भाटी गोविंददास को राठोडो की सेना के साथ अपने पास रहने दो[1]। इसी के अनुसार यह वि० सं० १६६१ (ई० सन् १६०४) में बादशाह से मिलकर[2] जोधपुर चले आए।

मारवाड की ख्यातो से प्रकट होता है कि इसी अवसर पर बादशाह ने इन्हे 'सवाई राजा' के खिताब के साथ मेडते का आधा प्रांत[3] और जैतारन जागीर में दिए थे।

गुजरात प्रांत के और दक्षिण के युद्धो में महाराज को बहुत-सा द्रव्य मिला था। इससे जोधपुर पहुँच कर इन्होने एक बडा यज्ञ किया। इसके बाद इनकी आज्ञा से भंडारी मना ने राजकीय सेना के साथ जाकर मेडते और जैतारन पर अधिकार कर लिया। इसी अवसर पर जैतारन के चारो तरफ शहर पनाह बनवाई गई और वहाँ का बहुत-सा प्रांत महाराज की तरफ से ऊदावतो को दे दिया गया।

वि० सं० १६६२ (ई० सन् १६०५) में बादशाह अकबर मर गया और उसका पुत्र जहाँगीर के नाम से हिन्दुस्तान के तख्त पर बैठा। इसी समय गुजरात में फिर उपद्रव उठ खडा हुआ। इससे अन्य बादशाही अमीरो के साथ सवाई राजा शूरसिंहजी को भी उधर जाना पडा। वहाँ पर भी इन्होने उपद्रव को दबाने में अच्छी वीरता दिखलाई[4]।

---

१ अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८२०।

२ इसी वर्ष राजा शूरसिंहजी ने बादशाह के कहने से मीर सदर मोइम्माई के पुत्र को पकड कर पाटन (गुजरात) में मुर्तजा अली के हवाले कर दिया, जहाँ से वह अकबर की राज्य सीमा से बाहर निकाल दिया गया। (अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८३१)।

३ मेड़ते का आधा प्रांत तो मेडतिया जगन्नाथसिंह से लेकर बादशाह ने पहले ही इन्हे दे दिया था। इस अवसर पर बाकी का आधा प्रांत भी किशनदास से लेकर महाराज को दे दिया।

४ ख्यातों में लिखा है कि अकबर के मरते ही गुजरात के कोलियों ने उपद्रव उठाया। इस पर जहाँगीर ने राजा शूरसिंहजी को उनके उपद्रव को दबाने के लिये भेजा। इन्होंने माडवी के पास पहुँच अपनी सेना के दो विभाग किए। एक का सेनापति भाटी गोविंददास और दूसरे का राठोड सूरजमल बनाया गया। इसके बाद महाराज की आज्ञा से इन दोनों ने मिलकर कोलियों पर आगे और पीछे दोनों तरफ से हमला कर दिया। कुछ

वि० स० १६६३ की कार्तिक[1] सुदी ७ (ई० सन् १६०६ की २७ अक्टोबर) को यह जोधपुर आए और वि० स० १६६५ (ई० सन् १६०८) के वैशाख में आगरे पहुँच बादशाह जहाँगीर से मिले[2]। इसी वर्ष की मँगसिर वदी २ (१३ नवम्बर) को बादशाह ने इनका मनसब ३,००० ज़ात और २,००० सवारों का करके इनको खाँनख़ाँनान् के साथ दक्षिण की तरफ़ भेजा[3]। इसके बाद इनके कार्यों से प्रसन्न होकर

ही देर के युद्ध में बहुत से कोली मारे गए और बचे हुए जंगल की तरफ़ भाग चले। यह देख राठोड़ सवारों ने उनका पीछा किया। यद्यपि राठोड़ गोपालदास ने उनको इस कार्य से रोकना चाहा, तथापि विजय से उन्मत्त हुए योद्धाओं ने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। राठोड़ों को अपने पीछे लगा देख कोली भी जल्दी से जंगल और पहाड़ की आड़ लेकर पलट पड़े और जैसे ही राठोड़ सवार उनकी मार के भीतर पहुँचे, वैसे ही उन्होंने उनपर तीरों की वर्षा शुरू करदी। एक तो वैसे ही राठोड़ घोड़ों पर सवार होने से सघन वन और पथरीली ज़मीन में उनका पीछा नहीं कर सकते थे, दूसरे जंगली मार्गों से भी वे बिलकुल अपरिचित थे। इससे उन्हें बड़ी क्षति सहनी पड़ी। उनके साथ के राठोड़ सूरजमल, राठोड़ गोपालदास, मेड़तिया हरिसिंह और जसवंत कलावत आदि बहुत से सरदार मारे गए। यह देख महाराज को बड़ा दुख हुआ और यह लौटकर अहमदाबाद चले गए। वहाँ से कुछ दिन बाद जोधपुर आने पर महाराज ने मॉडवी के युद्ध में मारे गए सरदारों के कुटुम्बों के साथ बड़ी समवेदना प्रकट की।

फ़ारसी तवारीख़ों में इस युद्ध का उल्लेख नहीं है। परन्तु 'बाँबे गजेटियर' में लिखा है कि ई० सन् १६०६ में राजा सूरसिंह और राजा टोडरमल का पुत्र राय गोपीनाथ मालवा, सूरत और बड़ोदा के मार्ग से गुजरात भेजे गए। वहाँ पहुँच इन्होंने वेलापुर के शासक कल्याण को हराकर कैद करलिया। परन्तु मॉडव के शासक के साथ के युद्ध में ये असफल होकर अहमदाबाद को लौट गए। (देखो भा० १, खण्ड १, पृ० २७३)।

१ ख्यातों में कार्तिक के स्थान पर फागुन भी लिखा मिलता है। इसके अनुसार ई० सन् १६०७ की २३ फरवरी को इनका आना सिद्ध होता है।

२ तुज़ुकजहाँगीरी, पृ० ६८। ख्यातों में लिखा है कि (मोटा राजा उदयसिंहजी का पुत्र) भगवानदास बुंदेला दला के हाथ से मारा गया था। इससे भगवानदास के पुत्र गोविंददास ने इसका बदला लेने के लिये महाराज से सहायता की प्रार्थना की। इस पर इन्होंने (सादूल के पुत्र) मुकुंददास को कुछ चुने हुए योद्धा देकर उसके साथ करदिया। इन लोगों ने बुंदेलखंड में पहुँच दला को मार डाला।

३ तुज़ुकजहाँगीरी, पृ० ७४।

बादशाह ने अपने चौथे राज्य-वर्ष में इनका मनसब बढा कर चार हजारी जात और दो हजार सवारो का कर दिया[1]।

इसी वर्ष अब्दुल्लाखॉ ने सोजत का परगना महाराज कुमार गजसिंहजी को लौटा दिया और इसकी एवज में उनसे नाडोल के थाने का प्रबध करने का आग्रह किया।

---

१ मआसिरुल उमरा, भा० २, पृ० १८२। यह मनसब-वृद्धि जहॉगीर के चौथे राज्य-वर्ष (वि० स० १६६६=ई० स० १६०९) मे हुई थी।

२ वि० स० १६६५ (ई० सन् १६०८) मे जहॉगीर की आज्ञा से महाबतखॉ ने मेवाड पर चढाई की। जिस समय इसका कैंप मोही मे था उस समय उसे सूचना मिली कि महाराना अमरसिहजी का कुटुम्ब सोजत मे छिपा हुआ है और राजा सूरसिंहजी के कुछ सरदार उन्हे गुप्तरूप से सहायता देते हैं। इस पर उसने शाही दरबार से आज्ञा प्राप्त कर उक्त प्रात को महाराज के शासन से निकाल लिया और वहॉ का अधिकार राव चन्द्रसेनजी के पौत्र (उग्रसेन के पुत्र) कर्मसेन को दे दिया।

जब इसकी सूचना महाराज को मिली तब इन्होंने अपने मत्री गोविंददास को महाबतखॉ को समझाने के लिये भेजा। परन्तु उस समय इस कार्य मे सफलता नही हुई।

इसके बाद महाबतखॉ के मेवाड की चढाई मे असफल होने के कारण उसके स्थान पर अब्दुल्लाखॉ नियत किया गया। इसने कर्मसेन से सोजत का अधिकार छीन लेना चाहा। इस पर कर्मसेन ने भी अब्दुल्लाखॉ का बडी वीरता से सामना किया। परन्तु अन्त मे उसके वीर सेनापति सोलकी कुभा के मारे जाने और उसका बल क्षीण होजाने से वह (कर्मसेन) सोजत का किला छोड कर निकल गया। उपर्युक्त सोलकी कुभा की स्त्री के, जो अपने पति के साथ सती हुई थी, हाथ का चिह्न किले के भीतरी दरवाजे पर अब तक विद्यमान है।

इसके बाद ही नाडोल के थाने का प्रबध करने की शर्त पर सोजत का शासन पीछा मारवाड नरेश के अधिकार में दे दिया गया। नाडोल के थाने का समुचित प्रबध हो जाने से आगरे और गुजरात के बीच के मार्ग की लूट खसोट बद हो गई।

'राजपूताने के इतिहास' के भा० ३, पृ० ७६६ के फुटनोट ३ मे ओझाजी ने वि० स० १६६७ के वैशाख (ई० सन् १६१० के अप्रेल) मे इस घटना का होना मान कर दक्षिण जाते हुए सूरसिंहजी का भाटी गोविंददास को महाबतखॉ के पास भेजना लिखा है। परन्तु एक तो 'तुजुकजहॉगीरी' (पृ० ७४) मे सूरसिंहजी का वि० स० १६६५ (ई० सन् १६०८) मे खॉनखॉनान् के साथ दक्षिण की तरफ जाना लिखा है। दूसरा 'राजपूताने के इतिहास' के ही पृ० ७६५ पर स्वय ओझाजी ने हि० सन् १०१८ के रबिउल आखिर (वि० स० १६६६ के श्रावण=ई० सन् १६०९ के जून) मे महाबतखॉ के स्थान पर अब्दुल्लाखॉ का नियत किया जाना लिखा है। ऐसी हालत मे वि० स० १६६७ के वैशाख में सोजत पर कर्मसेन का अधिकार होने के कुछ समय बाद शूरसिंहजी का गोविंददास को महाबतखॉ के पास भेजना कैसे सभव हो सकता है। नवलकिशोर प्रेस की छपी 'तुजुकजहॉगीरी' मे हि० स० १०१८ की १९ रबिउल अव्वल दोशबा (वि० स० १६६६ की

इस पर वह अपनी राठोड़ सेना के कुछ चुने हुए वीरों को लेकर वहाँ जा पहुँचे। इससे उधर की मेवाड़ वालों की लटमार बिलकुल बंद हो गई[1]।

उस समय महाराज के दक्षिण में होने से जोधपुर का सारा प्रबंध महाराजकुमार गजसिंहजी और भाटी गोविंददास के हाथ में था। वि० सं० १६६८ (ई० सन् १६११) में महाराना अमरसिंहजी के योद्धाओं ने अहमदाबाद से आगरे को जाते हुए व्यापारियों के एक संघ का (मारवाड़ राज्य के) इनाणा नामक गाँव तक पीछा किया। परन्तु देर हो जाने के कारण व्यापारियों के बहुत आगे बढ़ जाने से वे उसे लूट न सके[2]। इसके बाद जिस समय वे लोग वापिस लौटे, उस समय इसकी सूचना पाकर मालगढ़ और भाद्राजन के करीब भाटी गोविन्ददास[3] ने इन पर हमला कर दिया। यह अचानक आक्रमण देख कुछ देर तक तो मेवाड़ वालों ने भी उसका सामना किया। परन्तु अंत में अपने बहुत से वीरों के मारे जाने के कारण उन्हें युद्ध स्थल से भाग जाना पड़ा। इस युद्ध में राठोड़ों की तरफ के भाटी गोपालदास, राठोड़ खींवा और खिदमतगार मान बड़ी वीरता से लड़कर मारे गए[4]। अगले वर्ष जब बादशाह

आषाढ वदी ५=ई० सन् १६०९ की १७ जून सोमवार) को महाबतखाँ के स्थान में अब्दुल्लाखाँ का नियत किया जाना लिखा है। (देखो पृ० ७४)। परन्तु 'मआसिरुल उमरा' के पृष्ठ ७६५ पर लिखी खिड़ल आदि की उस (१६) तारीख को सोमवार नहीं आता। इसी के साथ 'तुज़ुक जहाँगीरी' में यह भी लिखा है कि इसी वर्ष की ११ रजब (वि० सं० १६६६ की आश्विन सुदि १५=ई० सन् १६०९ की ३ अक्टोबर) को अब्दुल्लाखाँ की विजय के समाचार बादशाह के पास पहुँचे। (देखो पृ० ७६)।

१ इससे पहले उक्त थाने का प्रबन्ध महारानाजी के हाथ में था। नाडोल के महादेव के मन्दिर के पीछे लगे वि० सं० १६६६ की ज्येष्ठ सुदि १५ (ई० सन् १६०९ की ७ जून) के लेख से प्रकट होता है कि जहाँगीर के राज्य समय महारानाजी ने यहाँ के थाने के चारों तरफ कोट बनवाकर उक्त नगर का नाम नूरपुर रक्खा था।

'गुणरूपक' में लिखा है कि राजकुमार गजसिंहजी ने इस अवसर पर नाडोल, जोजावर, चाँमलोद? (चाँणोद) और मादड़ी, कुंभलमेर आदि के प्रान्त पर हमला कर सोलंकी, चालेचा, सींधल और सीसोदियों को दबाया और नाडोल के थाने की रक्षा का प्रबन्ध किया। (देखो गुणरूपक, पृ० ९-१०)।

२ 'वीरविनोद' में कुँवर कर्णसिंह आदि का शाही खजाने का पीछा करना लिखा है।

३ उस समय गोविंददास नाडोल के थाने पर था।

४. 'गुणरूपक' में लिखा है कि गजसिंहजी के बढ़ते हुए प्रताप को देख महाराना ने एक सेना मारवाड़ में उपद्रव करने के लिये रवाना की। परन्तु गजसिंहजी और गोविंददास ने

के बुलवाने पर राजा शूरसिंहजी दक्षिण से लौटते हुए सिरोही के गाँव पाडीव में पहुँचे, तब वहाँ के राव राजसिंहजी ने इनका प्रभाव और बल देखकर इनसे मित्रता कर लेने का विचार किया। इसी के अनुसार उन्होने अपने विश्वस्त पुरुषो—देवड़ा पृथ्वीराज और भैरूँदास को महाराज के पास भेजकर कहलवाया कि यदि आप पुराना (रायसिंहजी की मृत्यु का) वैर छोडकर मेरी मदद करना स्वीकार करले, तो मै अपने छोटे भाई शूरसिंह की कन्या राजकुमार गजसिंहजी को व्याहने को तैयार हूँ। भाटी गोविंददास के कहने से महाराज ने यह बात मान ली। परन्तु इसी के साथ नीचे लिखी दो बाते और भी तय की गई—

१—जिस दिन राजकुमार गजसिंहजी को कन्या व्याही जावे, उसी दिन राव रायसिंहजी के साथ मारे गए अन्य २९ राठोडो के कुटुम्ब वालो के साथ भी चौहानो की अन्य २९ कन्याएँ व्याही जायँ।

२—देवडा बीजा का जडाऊ कटार, स्वर्गवासी राव रायसिंहजी का नक्कारा और उनके शिविर का लूटा हुआ सामान राजकुमार और महाराज को भेट के रूप में दिया जाय।

इस प्रकार सारी बाते तय हो जाने पर वि० स० १६६९ की फागुन वदी ६ (ई० सन् १६१३ की ३१ जनवरी) को दोनो पक्षो के बीच एक अहदनामा लिखा गया[१]।

उसके मुकाबले मे पहुँच उसने और महाराना अमरसिंहजी के राजकुमारों को मार भगाया। (देखो पृ० १०)।

१ 'सिरोही के इतिहास' (के पृ० २४५) मे प० गौरीशकरजी ओझा ने लिखा है कि सिरोही के राव के विरुद्ध अपना पक्ष प्रबल करने के लिये ही यह अहदनामा उसके छोटे भाई शूरसिह ने लिखा था। परन्तु ओझाजी स्वय वहीं पर देवडा पृथ्वीराज को महाराव राजसिंह का विश्वस्त पुरुष लिखते है और उस अहदनामे पर देवडा भैरूँदास के साथ ही इस पृथ्वीराज के भी हस्ताक्षर मौजूद हैं। ऐसी हालत मे आप का लिखना कहाँ तक मान्य कहा जा सकता है?।

जोधपुर नरेश की तरफ से इस पर हस्ताक्षर करनेवाले पुष्करना ब्राह्मण कल्याणदास और बारहठ दुरसा थे।

'गुणरूपक' मे लिखा है कि पुराने वैर का बदला लेने के लिये गजसिंहजी ने आबू और सिरोही के देवडों (चौहानो) को हराकर उनका प्रसिद्ध कटार छीन लिया (देखो पृष्ठ १०–११)।

वि० स० १६७० (ई० सन् १६१३) में महाराज अजमेर गए। उस समय बादशाह जहाँगीर का निवास वहीं था। कुछ ही दिनों बाद उसने महाराज को शाहज़ादे खुर्रम (शाहजहाँ) की सहायता के लिये मेवाड़ की तरफ भेज दिया[1]। शाहज़ादे ने भी इनकी सलाह से मेवाड़ के चारों तरफ अपनी सेना के थाने डलवा दिए। इनमें से सादड़ी का थाना राजकुमार गजसिंहजी को सौंपा गया। इस प्रकार चारों तरफ से घिर जाने के कारण वि० स० १६७१ (ई० सन् १६१४) में महाराना अमरसिंहजी ने युद्ध में सफलता का होना असम्भव देख शाहज़ादे के पास संधि का प्रस्ताव भेज दिया। इस पर बादशाह की स्वीकृति मिल जाने और अन्य सब बातों के तय हो जाने पर, जिस समय महाराना स्वयं अपने परिजनों के साथ शाहज़ादे से मिलने के लिये गोगूँदे आए, उस समय महाराज भी शाही अमीरों को साथ लेकर महाराना के पास पहुँचे[2]। साथ ही इन्होंने मामले के तय करने में भी उन्हें सहायता दी[3]।

---

१ बादशाहनामा, भा० १, पृष्ठ १६६। 'मआसिरुल उमरा', (भा० २, पृष्ठ १८२) में इनका जहांगीर के राज्य के आठवें वर्ष शाहज़ादे खुर्रम के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई करना और बाद में उसी के साथ दक्षिण की तरफ जाना लिखा है। जहांगीर का आठवां राज्यवर्ष वि० स० १६६९ की चैत्र वदि ३० (ई० स० १६१३ की ११ मार्च) को प्रारम्भ हुआ था। 'तुज़ुक जहांगीरी' में मेवाड़ पर की चढ़ाई का समय वि० स० १६७०(ई० स० १६१३) और दक्षिण की तरफ़ जाने का वि० स० १६७३ (ई० स० १६१६) लिखा है। (देखो क्रमश पृ० १२६ और १६७)।

२ बादशाहनामा, भा० १, पृ० १७१-१७२। यह घटना फागुन वदी २ (ई० स० १६१५ की ५ फरवरी) की है।

३ संधि के समय महाराना अमरसिंहजी ने एक लाल बादशाह को भेट किया। उसका तोल ८ टाक और क़ीमत ६०,००० रुपए थी। 'तुज़ुकजहांगीरी' में लिखा है कि यह लाल पहले राव मालदेव के पास थी। मालदेव राठोड़ों का सरदार और उमदा (श्रेष्ठ) राजाओं में था। उसके बाद यह (लाल) उसके पुत्र राव चन्द्रसेन के हाथ आया। उसी ने राज्य छूट जाने पर इसे कीमत लेकर राना उदयसिंह को दे दिया (देखो पृ० १४१)।

'गुणरूपक' में लिखा है कि बादशाह जहांगीर एक बड़ी सेना लेकर मेवाड का दमन करने के लिये अजमेर गया। परंतु जब महाराना अमरसिंहजी ने वीरता के साथ शाही सेना का मुकाबला किया, तब उसने राजा शूरसिंहजी को वहां आने को लिखा। इस पर महाराज ने मेवाड पहुँच महाराना को संधि करने के लिये तैयार किया। इसी बीच पिता के बुलाने से राजकुमार गजसिंहजी भी भाटी

इसके बाद महाराज जोधपुर चले आए। इन्हीं दिनों राठोड़ वीरम स्वतंत्र होने का प्रयत्न करने लगा। इस पर महाराज ने अपनी एक सेना को उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। कुछ दिन तक तो वीरम ने उसका सामना किया, परन्तु अंत में उसने फिर महाराज की अधीनता स्वीकार करली। इस पर महाराज ने प्रसन्न होकर उसे रावल की पदवी और महेवे का प्रांत दे दिया[1]।

वि० स० १६७२ (ई० सन् १६१५) में राजा शूरसिंहजी लौट कर बादशाह के पास अजमेर चले गए। वहाँ पर इन्होंने ४५ हजार रुपए, १०० मुहरें और ६ हाथी बादशाह को भेट किए[2]। इनमें के एक प्रसिद्ध हाथी का नाम 'रणरावत' था। इसके कुछ दिन बाद इन्होंने 'फौज सिनगार' नामक एक हाथी और भी बादशाह को दिया[3]। इस पर बादशाह ने भी महाराज को एक खासा हाथी दिया और शीघ्र ही उनका मनसब बढाकर पाँच[4] हजारी ज़ात और तीन हजार सवारों का कर दिया।

गोविंददास को लेकर वहा पहुँच गए थे। महाराज की मारफत संधि की बातचीत तय हो जाने पर शाहजादा खुर्रम और महाराना का ज्येष्ठ पुत्र करण दोनों गोगूंदे मे मिले। इसके बाद ये दोनों अजमेर मे बादशाह के पास पहुँचे। वहा पर भी राजकुमार करण का यथोचित सत्कार किया गया। (देखो पृ० ११-१३)।

१ भाटी गोविंददास ने महाराज से कह सुन कर इस मामले मे वीरम को सहायता दी थी और इसकी एवज मे वीरम ने अपनी कन्या को उसके किसी कुटुम्बी के साथ व्याह देने का प्रतिज्ञापत्र लिख दिया था। यह प्रतिज्ञापत्र वि० स० १६७१ मे नाहनेड स्थान पर लिखा गया था।

२ 'तुजुकजहांगीरी', पृ० १३६-१४०, १४३।

३ 'तुजुक जहांगीरी' में बादशाह लिखता है कि "यह हाथी भी अच्छा होने से खास हाथियों मे दाखिल किया गया है। परतु पहला हाथी (रणरावत) अपूर्व वस्तु है और दुनिया की आश्चर्योत्पादक वस्तुओं मे गिना जा सकता है। उसकी कीमत २०,००० रुपये हैं। मैंने भी उसकी एवज मे १०,००० रुपये की कीमत का एक खासा हाथी सूरजसिंह को दिया" (देखो पृ० १४३)।

४ 'तुजुकजहाँगीरी', पृ० १४२। बादशाह अकबर और उसके उत्तराधिकारी जहाँगीर के राज्य में पाँच हजारी बहुत बडा मनसब समझा जाता था। साधारणतया इससे बडा मनसब केवल शाहजादों को ही मिलता था। हाँ, कभी कभी कोई बडा अमीर सात (हफ्त) हजारी तक भी पहुँच जाता था। परतु शाहजहाँ के समय दस हजारी तक के मनसब अमीरों को मिलने लगे थे और शाहजादों के मनसब ४० या ५० हजारी

इस मनसब वृद्धि के साथ इन्हे फलोदी का परगना जागीर में मिला।[1] यह पहले बीकानेर के राव रायसिंहजी और उनके पुत्र सूरजसिंहजी के अधिकार में रह चुका था।

अभी महाराज बादशाह के साथ अजमेर में ही थे कि, इसी वर्ष की ज्येष्ठ सुदी ६ (ई० सन् १६१५ की २६ मई) की रात को इनके भ्राता राजा किशनसिंहजी ने भाटी गोविंददास के मकान पर अचानक आक्रमण कर उसे मार डाला।[2] जैसे ही इस हल्ले से पास के मकान मे सोते हुए महाराज की आँख खुली, वैसे ही यह स्वय खड्ग लेकर बाहर निकल आए। इसी बीच इनके योद्धा भी सजग हो गए और उन्होने आक्रमणकारियो को चारो तरफ से घेर कर मार डाला। इस युद्ध में राजा

तक पहुँच गए थे। परन्तु पीछे से इन मनसबो का महत्त्व बहुत कुछ घट गया। बादशाह मोहम्मदशाह के समय मे फर्रुखाबाद के नवाब का मनसब ५२ हजारी तक पहुँचा था। अकबर के समय पॉच हजारी मनसबदार का वेतन २६ हजार था। उसे १६८ हाथी, २७२ घोड़े, १०८ ऊँट और २०७ गाडियॉ रखनी पड़ती थी।

१ फलोदी हकूमत के कोट की बुर्ज मे वि० स० १६५० की आषाढ सुदी ६ का एक लेख लगा है। उससे उस समय वहॉ पर रायसिहजी का राज्य होना पाया जाता है।

२ किशनसिहजी के इस प्रकार अचानक आक्रमण कर भाटी गोविंददास को मारने का कारण उनके भतीजे गोपालदास का उसके हाथ से मारा जाना था।

उस घटना का हाल इस प्रकार लिखा मिलता है.—एक बार राठोड़ सुदरदास, जोधा (रामदास के पुत्र) शूरसिह और (कल्ला के पुत्र) नरसिंह ने मिल कर राठोड़ भगवानदास के पुत्र गोपालदास पर हमला किया। उस समय भाटी गोविंददास के भाई (लवेरा के स्वामी) सुरतान ने गोपालदास का पक्ष लिया। युद्ध होने पर सुरतान मारा गया। परन्तु उसने मरने के पूर्व ही नरसिह को मार लिया। उस समय तक गोपालदास भी अच्छी तरह से जख्मी हो चुका था। इसलिये वह अपने को बचे हुए दो शत्रुओं का सामना करने मे असमर्थ जान युद्धस्थल मे भाग खड़ा हुआ। यह समाचार सुन भाटी गोविंददास ने सोचा कि मेरे भाई ने तो गोपालदास के लिये युद्ध मे अपने प्राण दिए। परन्तु उसके मरने पर वह (गोपालदास) स्वय अपने प्राणो के मोह से युद्ध छोड कर भाग गया। यह बात गोविंददास को अच्छी न लगी। इस पर उसने अपने भाई का बदला लेने के लिये गोपालदास का पीछा किया और काकड़खी गाव के पास पहुँचते पहुँचते उसे मार डाला।

इस घटना का समाचार सुन राजा किशनसिंहजी गोविंददास से नाराज हो गए। उनका खयाल था कि राजा शूरसिंहजी स्वय ही उससे अपने भतीजे का बदला लेने का प्रबंध करेगे। परन्तु जब महाराज ने उधर कुछ भी ध्यान नही दिया, तब उन्होंने इस प्रकार नैश आक्रमण कर गोविददास को मार डाला। परन्तु इसी मे उन्हें भी अपने प्राण देने पडे।

किशनसिंहजी भी अपने भतीजे कर्ण के साथ मारे गए[1]। जब महाराज को अपने भाई, भतीजे और प्रधान मत्री के मारे जाने का हाल मालूम हुआ, तब इन्हे बडा दुख हुआ।

कुछ दिन बाद बादशाह ने इन्हे एक जोडी मोती और बहुत कीमती खासा देकर दक्षिण की तरफ भेजने की इच्छा प्रकट की[2]। इस पर यह दो मास के लिये जोधपुर चले आए। यहाँ पर सूरसागर के बगीचे मे इन्होने सोने और चाँदी से तुलादान किया। इसके बाद राज्य का प्रबध कर यह अपने राजकुमार गजसिंहजी

---

१ 'तुजुक जहाँगीरी' मे लिखा है कि गोविददास के मकान पर हमला करते समय स्वय राजा किशनसिंहजी घोडे से उतर कर उसके मकान मे घुस गए थे। इसी से वह मारे गए (देखो पृ० १४४-१४५)। परन्तु मारवाड की ख्यातो मे लिखा है कि राजा किशनसिंहजी महाराज के सजग होने के पहले ही गोविददास को मारकर चल दिए थे। यह देख महाराज ने अपने पुत्र गजसिंहजी को उनका पीछा करने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उन्होंने कुछ चुने हुए वीरो को साथ लेकर किशनसिंहजी का पीछा किया। मार्ग मे दोनो पक्षो के बीच युद्ध होने पर किशनसिंहजी मारे गए।

मुतखिबुल्‌लुबाब' नामक इतिहास मे लिखा है कि किशनसिंहजी का शोर सुनते ही सूरजसिंह तलवार लेकर बाहर चला आया और उसने किशनसिंह और करन को मार डाला। इसके बाद किशनसिंह के साथ के लोग राजा की हवेली से निकलकर लडते-भिडते बादशाह के महल की तरफ भागे। राजा सूरजसिंह भी उनका पीछा करता हुआ बादशाही दौलतखाने के दरवाजे तक जा पहुँचा। (देखो जिल्द १, पृ० २८१-२८२)।

'गुणरूपक' मे लिखा है कि मेवाड-विजय के बाद बादशाह को राठोडो का बढता हुआ बल खटकने लगा। उसने सोचा कि राजा शूरसिंह, राजकुमार गजसिंह, केहरि (किशनसिंह), करमसेन, करन और भाटी गोविददास बडे बलवान हो रहे हैं। इससे इनको आपस मे ही लड़ाकर निर्बल कर देना चाहिए। इसी के अनुसार उसने एक रोज दरबार के समय राजकुमार गजसिंहजी के सामने ही केहरि (किशनसिंहजी) को गोविददास को मार डालने के लिये उकसाया। यह देख गजसिंहजी को भी क्रोध आ गया। अत मे बहुत कुछ कहा सुनी के बाद दोनो अपने अपने निवास-स्थान को चले गए। इसके बाद किशनसिंहजी ने एक दिन पिछली रात को गोविंददास के मकान पर चढाई कर उसे मार डाला। इसकी सूचना पाते ही गजसिंहजी शत्रु के मुकाबले के लिये आ पहुँचे। युद्ध होने पर केहरि (किशनसिंहजी) और करन मारे गए। परन्तु करमसेन भाग निकला। (देखो पृ० १३-१७)।

कर्नल टाड ने इस घटना का राजा गजसिंहजी के समय मे होना और शाहजादे खुर्रम के कहने से राजा किशनसिंहजी का भाटी गोविददास को मारना लिखा है।

ऐनाल्स ऐन्ड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान (क्रुक सपादित), पृ० ९७४।

२. तुजुक जहाँगीरी, पृ० १४५।

के साथ बादशाह के पास अजमेर चले गए। इसी समय बादशाह ने इनके सवारों में ३०० की वृद्धि कर इनका मनसब पाँच हजारी जात और तेतीस सौ सवारों[1] का कर दिया। साथ ही उसने इन्हें एक खिलअत और एक घोड़ा भी दिया[2]। इसके बाद यह दक्षिण पहुँचे[3] और खाँनजहाँ लोदी आदि शाही सेनानायकों के साथ वहाँ के उपद्रवों को दबाने और शत्रुओं को परास्त कर उनके प्रदेशों को विजय करने में लग गए।

'तारीखे पालनपुर' में लिखा है कि वि० स० १६७४ (ई० सन् १६१७) में बादशाह जहाँगीर ने जालोर के शासक पहाड़खाँ को मरवा कर उक्त प्रदेश को शाहजादे खुर्रम की जागीर में मिला दिया। परन्तु वहाँ का प्रबंध ठीक न हो सकने के कारण बाद में वह प्रांत राजा शूरसिंहजी को दे दिया[4]। इस पर महाराज की

---

१ तुजुक जहाँगीरी, पृ० १४६।

२ तुजुक जहाँगीरी, पृ० १४८।

३ 'मआसिरुल-उमरा' (भा० २, पृ० १८२) में भी इस घटना का समय जहाँगीर का १० वाँ राज्य वर्ष लिखा है। यह वि० स० १६७१ की चैत्र वदी ६ (ई० सन् १६१५ की १० मार्च) से प्रारंभ हुआ था।

ख्यातों में लिखा है कि दक्षिण की तरफ जाते हुए महाराज ने मार्ग में पिसांगण से राजकुमार गजसिंहजी, आसोप ठाकुर (पीथा के पुत्र) राजसिंह, व्यास नाथा और भंडारी लूणा को मारवाड़ की देख भाल के लिये जोधपुर भेज दिया था।

४ कर्नल टाड के लिखे राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि अकबर की मृत्यु के बाद जब राजा सूरसिंहजी राजकुमार गजसिंहजी को लेकर शाही दरबार में गए, तब जहाँगीर ने जालोर को विजय करने में अद्भुत वीरता दिखाने के कारण गजसिंहजी को अपने हाथ से एक तलवार भेंट की।

जालोर विजय का हाल कर्नल टाड ने इस प्रकार लिखा है –

जालोर उस समय गुजरात के बादशाहों के अधीन था। परन्तु जैसे ही राजकुमार गजसिंहजी को जालोर-विजय के लिये कहा गया, वैसे ही उन्होंने सेना लेकर बिहारी पठानों पर चढ़ाई करदी। जिस जालोर दुर्ग को फतह करने में अलाउद्दीन को कई वर्ष लग गए थे, उसी को उन्होंने केवल तीन मास में विजय कर लिया[1]।

यद्यपि इस युद्ध में बहुत से राठोड़ वीर मारे गए, तथापि राजकुमार गजसिंहजी बिना किसी हिचकिचाहट के तलवार हाथ में लेकर काठ की सीढी के जरिये किले पर चढ गए। वहां पर के युद्ध में ७००० पठान मारे गए। इसके बाद किले पर उनका अधिकार हो गया। (देखो ऐनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान (क्रुक संपादित), भा० २, पृ० ६७०)। परंतु जालोर पर

---

(१) बारे बरस अलाउदी, खपछूटो पतशाह।
चढियाँ वोडॉ सोनगढ, तैं लीनो गजशाह॥



जालोर का किला

यह किला पृथ्वीतल से १,२०० फुट ऊँची पहाडी पर बना है। इसकी लम्बाई ८०० गज और चौडाई ४०० गज है। इसमे जाने के लिये ३ मील लम्बी पत्थर की सडक बनी है।

आज्ञा से राजकुमार गजसिंहजी ने अपनी सेना के साथ पहुँच एकाएक वहाँ के किले पर चढाई करदी। कुछ समय तक तो दोनो पक्षो के बीच भीषण संग्राम होता रहा, परन्तु अन्त में वहाँ के नारायणदास कावा की सहायता से यह एक टूटे हुए बुर्ज की तरफ से किले में घुस गए। राठोड़-सेना को इस प्रकार एकाएक किले में घुसी देख शत्रुओ ने शस्त्र रख दिए। इससे किले पर राजकुमार का अधिकार हो गया। दूसरे दिन वहाँ के बिहारी पठानो ने एकत्रित होकर फिर शहर के द्वार पर राठोड-सेना का बडी वीरता से सामना किया। परन्तु (डोडियाली के ठाकुर) पूँजा और कीरतसिंह देवडा आदि के बिहारियो को मदद देने से इनकार कर देने के कारण वे सारे के सारे पठान युद्ध में मारे गए। इस प्रकार जब जालोर पर राजकुमार गजसिंहजी का अधिकार हो गया, तब वहाँ के शासक पहाड़खाँ का दीवान मेहता मोकलसी बची हुई बिहारियो की सेना को लेकर भीनमाल की तरफ चला गया। परन्तु राठोड़ों ने उसका पीछा न छोड़ा और उसके भीनमाल पहुँचते ही तत्काल उस नगर को चारो तरफ से घेर लिया। वहाँ के युद्ध में शत्रुओ की तरफ के मोकलसी आदि कुछ मुख्य पुरुष मारे गए और बचे हुए पठान भागकर वि० स० १६७५ (ई० सन् १६१८) में (पालनपुर इलाके के) कुरझाँ गाँव में चले गए। परन्तु इसके बाद भी वे मौका पाते ही, अर्वली पर्वत की सूँवा आदि की घाटियो का आश्रय लेकर, जालोर के आस-पास लूट-मार करने में नहीं चूकते थे[2]।

जो उस समय गुजरात वालों का अधिकार होना लिखा है, यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि गुजरात उस समय मुगलों के ही अधिकार में होने से वहा का कोई स्वतन्त्र बादशाह नहीं था। इसी प्रकार की और भी अनेक बातें कर्नल टॉड के राजस्थान मे लिखी मिलती हैं, जो फारसी तवारीखों आदि से सिद्ध नहीं होतीं। हमारी समझ में बादशाह ने सूरसिंहजी के दक्षिण जाने के पूर्व जिस समय उनके सवारों में ३०० की वृद्धि की थी, उसी समय शायद जालोर भी उनके मनसब में दे दिया होगा।

१. 'गुणरूपक', पृ० १६–२६। उक्त काव्य में इस विजय का भादों मे होना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि इस घटना के बाद गजसिंहजी ने उग्रसेन के पुत्र कर्मसेन पर चढाई की। इसकी सूचना पाते ही वह लाडणू से भागकर पहले तो थली (निर्जल स्थल) की तरफ गया और फिर वहा से बला पहाड की तरफ चला गया। महाराज-कुमार गजसिंहजी भी उसके पीछे लगे हुए थे। इससे शीघ्र ही उन्होंने सोजत पहुँच विजयादशमी के दिन फिर कर्मसेन पर चढाई की। यह देख वह मेरों की शरण में चला गया। परतु जब गजसिंहजी ने मेरों को दण्ड देना शुरू किया, तब उस (कर्मसेन) को भागकर हाडोती में घुस जाना पड़ा। (देखो पृ० ३०–३१)।

२ 'तारीखे पालनपुर', जिल्द १, पृ० १०१–१०६।

ख्यातो में लिखा है कि एक बार जिस समय सवाई राजा शूरसिंहजी शाहजादे खुर्रम और नवाब खॉखॉनान् के साथ दक्षिण में महकर के थाने पर थे, उस समय शत्रुओंने आकर उस नगर को घेर लिया। इस प्रकार घेरे जाने से शाही सेना का सम्बन्ध बाहर से बिलकुल टूट गया और उसे रसद का मिलना बंद हो गया। इस पर कुछ दिन तक तो किसी तरह काम चलता रहा, परन्तु अन्त में नाज की कमी के कारण उसकी दर बहुत चढ गई। यह देख राठोड़-सरदारो ने जैतावत कुम्भकर्ण को भेजकर महाराज को इस बात की सूचना दी। परन्तु महाराज ने उसे अपनी पाकशाला के सुवर्ण के वर्तन देकर समझा दिया कि अभी तो इनको बेचकर कुछ दिन के लिये नाज का प्रबंध करलो, तब तक कुछ न कुछ उपाय हो ही जायगा। परन्तु जब कुछ ही दिनो बाद फिर वही कठिनता उपस्थित हुई और शाही अमीरो के किए कुछ भी प्रबन्ध न हो सका, तब कुम्भकर्ण ने महाराज की सेवा में उपस्थित होकर शत्रुओं पर आक्रमण करने की आज्ञा चाही। इसपर महाराज ने खॉखॉनान् से भी सम्मति ले लेना उचित समझा। परन्तु उसने बादशाह की इच्छा के विरुद्ध शत्रु से युद्ध छेड़ देने से साफ इनकार कर दिया। कुम्भकर्ण को इस प्रकार निश्चेष्ट होकर शत्रुओ के बीच घिरा रहना असह्य हो रहा था। इसलिये खॉखॉनान् के इनकार कर देने पर भी उसने केवल अपने योद्धाओ को लेकर बीजापुरवालो पर हमला कर दिया। यद्यपि इसमें उसके कई वीर मारे गए और वह स्वयं भी बहुत जखमी हुआ, तथापि उसने दक्षिणियो के झंडे को छीन कर (सादा के पुत्र) कामा के साथ महाराज के पास भेज दिया। यह देख महाराज भी युद्ध के लिये उत्सुक हो उठे और इन्होने बादशाही आज्ञा की प्रतीक्षा में बैठे हुए खॉखॉनान् को जबरदस्ती तैयार कर शत्रुओ पर हमला कर दिया। घोर युद्ध के बाद शत्रु भाग खड़े हुए और मैदान शाही सैनिको के हाथ रहा। इसके बाद खॉखॉनान् ने कुम्भकर्ण के लिये एक पालकी भेजकर उसे रणस्थल से अपने डेरे पर बुलवाया और उसकी चिकित्सा का पूरा-पूरा प्रबंध किया। इससे कुछ दिनो मे उसके सारे घाव भर गए।

इसके बाद जब खॉखॉनान् ने गढ–पिंडारा विजय किया, तब वहॉ पर उसे चतुर्भुज विष्णु की एक सुंदर मूर्ति हाथ लगी। इसे उसने प्रेमोपहार के रूप में महाराज को भेट कर दिया। यह मूर्ति अब तक जोधपुर के किले में विद्यमान है।

वि० स० १६७६ की भादो सुदी ८ (ई० सन् १६१६ की १८ सितम्बर) को वहीं दक्षिण में, महकर के थाने मे, सवाई राजा शूरसिंहजी का स्वर्गवास हो गया[1]।

यह महाराजा बड़े ही प्रतापी, बुद्धिमान् और दाता थे[2]। राव मालदेवजी के बाद इन्होने ही मारवाड़ राज्य की वास्तविक उन्नति की। इनके शासन में मारवाड़ के सिवाय, ५ परगने गुजरात के, १ मालवे का और १ दक्षिण का भी था। ये परगने इन्हे बादशाह की तरफ से मनसब में मिले थे। इनका अधिक समय गुजरात और दक्षिण के युद्धो में ही व्यतीत हुआ, और वहॉ पर इन्होने समय-समय पर वीरता के अद्भुत कार्य भी कर दिखाए।

पहले लिखा जा चुका है कि इनके समय इनके प्रधान मन्त्री भाटी गोविन्ददास ने राज्य का सारा प्रबन्ध बदल कर उस समय की प्रचलित शाही शैली के अनुसार कर दिया था। वही प्रबन्ध आज से करीब ५० वर्ष पूर्व तक चला आता था। परन्तु भारत-सरकार के सबन्ध से आजकल उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन करके उसे नवीन रूप दे दिया गया है।

१ 'तुजुकजहांगीरी' में जहाँगीर ने लिखा है कि हि० स० १०२८ मे दक्षिण से राजा शूरसिंह की मृत्यु का समाचार मिला। यह उस राव मालदेव का पोता था, जो हिंदुस्तान के प्रतिष्ठित जमींदारों में से था। राना की बराबरी करने वाला जमींदार वही था। उसने एक लड़ाई में राना पर भी विजय पाई थी। राजा शूरसिंह ने, मेरे पिता अकबर का और मेरे कृपापात्र होने से, बड़े दरजे और मनसब को प्राप्त किया था। उसका देश और राज्य उसके बाप और दादा के देश और राज्य से बढ गया था। (देखो पृ० २८०)।

'गुणरूपक' में लिखा है कि महाराजा शूरसिंहजी २४ वर्ष राज्य कर ४६ वर्ष की अवस्था में, वि० स० १६७६ की भादों सुदी में, महकर में स्वर्ग को सिधारे। इनके पीछे तीन रानिया दक्षिण में और एक जोधपुर में सती हुई (देखो पृ० ३१)।

२. कहते हैं कि सवाई राजा शूरसिंहजी ने निम्नलिखित गाव दान दिए थे —

१ नापावास २ रैहनडी ३ बीजलियावास (सोजत परगने के), ४ सिंगला (जैतारण परगने का), ५ गैमावास ६ उचियारडा-कला ७ बछवास ८ भीलावास (मेडता परगने के), ६ बसी (पाली परगने का), १० तिगरिया ११ वेह १२ लोलासणी १३ छली १४ छींडिया (जोधपुर परगने के), १५ रणसीसर (डीडवाने परगने का), १६ हरलाया (फलोदी परगने का) चारणों को, १७ हडवू बासनी (बासनी व्यासों की) (मेडता परगने का), १८ गेलावसिया (जोधपुर परगने का) ब्राह्मणों को, १६ मोगास (मेडता परगने का) भाटों को और २० बीगवी (जोधपुर परगने का) पुरोहितों को।

वि० स० १६६३ (ई० सन् १६०६) में सवाई राजा शूरसिंहजी ने ही जोधपुर नगर के चाँदपोल दरवाज़े से एक मील वायु-कोण में स्थित पर्वत-श्रेणी के पास अपने नाम पर सूरसागर नामक तालाब बनवा कर उसके तट पर सुंदर बगीचा, सगमरमर की एक बारादरी और महल बनवाए थे। चाँदपोल दरवाजे के बाहर का रामेश्वर महादेव का मदिर, सूरजकुंड नामक बावली और शहर के बीच के तलहटी के महल भी इन्हीं के बनवाए हुए हैं।

इनकी कछवाही रानी सौभाग्यदेवी ने दहीजर गाँव में सोभाग-सागर नामक तालाब बनवाया था। इसी रानी के गर्भ से राजकुमार गजसिंहजी का जन्म हुआ।

शूरसिंहजी के २ पुत्र थे, गजसिंहजी और सबलसिंह।

१. इनका जन्म वि० सं० १६६४ की भादों सुदी ३ को हुआ था।

—

२४. राजा गजसिंहजी

यह सवाई राजा शूरसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म वि० स० १६५२ की कार्तिक सुदी ८ (ई० स० १५९५ की ३० अक्टोबर) को हुआ था। यह भी अपने पिता के समान ही वीर और बुद्धिमान थे। इन्होंने सवाई राजा शूरसिंहजी के जीवन काल में ही अनेक युद्धों में सफलता पूर्वक भाग लिया था[1], और उन्होंने भी इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर इन्हें अपना युवराज नियत कर लिया था। इसीसे उनकी अनुपस्थिति में मारवाड़ का सारा प्रबंध इन्हीं की देख भाल में होता था[2]।

वि० स० १६७६ (ई० सन् १६१९) में जैसे ही इन्हें सवाई राजा शूरसिंहजी के मेहकर में बीमार होने की सूचना मिली, वैसे ही यह जोधपुर का प्रबंध अपने विश्वासपात्र सरदारों को सौंप तत्काल मेहकर की तरफ रवाना हो गए। पिता की मृत्यु के बाद इसी वर्ष की आसोज (क्वॉर) सुदी १० (ई० सन् १६१९ की ८ अक्टोबर) को बुरहानपुर में इनका राज्याभिषेक[3] हुआ। उस समय खॉनखॉनान् के पुत्र दौराबखाँ ने बादशाह की तरफ से इनकी कमर में तलवार बाँधी। बादशाह ने भी इनकी योग्यता देख कर इन्हें तीन हजारी जात और दो हजार सवारों का मनसब, झंडा और राजा का खिताब दिया[4]।

१ 'मआसिरुल उमरा' के लेखानुसार जहाँगीर के राज्य के दशवें वर्ष (वि० स० १६७२, ई० स० १६१५) से ही यह बादशाही कार्यों में भाग लेने लगे थे। (देखो भा० २, पृ० २२४)।

२ 'गुणभाषाचित्र', पृ० ६, दोहा ४।

३ ख्यातों में लिखा है कि जहाँगीर ने, राजा शूरसिंहजी के मरने पर, गजसिंहजी को बुरहानपुर जाने के लिये लिखा था। उसी के अनुसार यह वहां पहुँच कर गद्दी पर बैठे। ख्यातों में इनका क्वॉर सुदि ८ को गद्दी पर बैठना लिखा है।

४ 'तुजुक जहांगीरी', पृ० २८०। वहीं पर यह भी लिखा है कि इसी समय इनके छोटे भाई सबलसिंहजी को ५०० जात और २५० सवारों का मनसब (और फलोदी का प्रांत जागीर में) दिया गया था।

कर्नल टाड ने अपने राजस्थान के इतिहास मे लिखा है कि उस अवसर पर इनको मारवाड के अधिकार के साथ ही गुजरात के सात परगने, फ़िताय (टूंटाड का) और मसूदा (अजमेर का) की जागीर और दक्षिण की सूबेदारी दी गई थी। इनके अलावा इनके घोडे भी शाही दाग से बरी करदिए गए थे। इसके बाद यह महकर के थाने पर पहुँच दक्षिणवालो के उपद्रवो को शात करने मे लग गए। अहमद नगर के बादशाह का मत्री हवशी अंबर चपू एक वीर योद्धा था। ख्यातो से ज्ञात होता है कि एक बार उसने, अचानक आकर, शाही सेना को घेर लिया। तीन महीने तक दोनो तरफ से छोटी बडी अनेक लडाइयाँ होती रहीं। अंत मे गजसिहजी की वीरता से शत्रु को घिराव उठा कर भागना पडा।

वि० स० १६७८ में भी दक्षिणियो के साथ के युद्ध मे महाराज की वीरता से ही शाही सेना को विजय प्राप्त हुई, और मलिक अंबर ने आक्रमण करने के बदले आक्रांत होकर बादशाह की अधीनता स्वीकार करली। इससे प्रसन्न होकर बादशाह जहाँगीर ने महाराज का मनसब बढा कर चार हजार जात और तीन हजार सवारो का कर दिया। साथ ही इन्हे 'दलथमन' (फौज का रोकने वाला) का खिताब देकर जालोर का परगना मनसब की जागीर मे दिया।

---

१ 'ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान (क्रुक संपादित) भा० २ पृ० ६०७।

२ उस समय दक्षिण का सूबेदार खानखानॉ था। इसलिये कर्नल टाड के लेखानुसार महाराज को दक्षिण की सूबेदारी का दिया जाना ठीक प्रतीत नहीं होता।

३ महकर मे मुगल-राज्य की सरहदी चौकी थी और यहा से आगे अहमदनगर वालों का राज्य प्रारभ होता था। उन दिनों इन्हीं अहमदनगर वालों से युद्ध होते रहते थे।

४ 'तुजुक जहाँगीरी', पृ० ३४१।

५ ख्यातों मे लिखा है कि उस समय वहाँ पर शाहजादे खुर्रम का अधिकार था। उसके सैनिकों ने महाराज के आदमियो को किला सौंपने से इनकार करदिया। इसके बाद जिस समय बादशाह ने शाहजादे खुर्रम को दक्षिण से मॉडू की तरफ जाकर वहाँ के उपद्रव को शात करने की आज्ञा दी, उस समय राजा गजसिहजी को भी उसकी सहायता के लिये वहा जाने को लिखा। इसके अनुसार जब महाराज शाहजादे के पास बुरहानपुर पहुँचे, तब उसने इनको प्रसन्न करने के लिये जालोर के साथ ही साँचोर का परगना भी इन्हे दे दिया। परन्तु फ़ारसी इतिहासों से इसकी पुष्टि नहीं होती।



७४ राजा गजसिंहजी

वि० स० १६७६-१६९५ (ई० स० १६१९-१६३८)

इस युद्ध में इन्होने मलिक अंबर (चपू) का लाल झंडा छीन लिया था। इस घटना की यादगार के उपलक्ष मे उसी दिन से जोधपुर के राजकीय झंडे मे लाल रग की पट्टी लगाई जाने लगी।

बादशाह ने महाराज की दक्षिण की इन वीरताओ से प्रसन्न होकर वि० स० १६७९ की चैत्र सुदि ९ (ई० सन् १६२२ की ११ मार्च) को इन्हे एक नक्कारा उपहार मे दिया।

वि० स० १६८० (ई० सन् १६२३) में महाराज दक्षिण से लौट कर जोधपुर आए और कुछ दिन यहाँ रह कर देश के प्रबध की देख भाल करते रहे।

१ 'तुजुक जहाँगीरी, पृ० ३५१।

'गुणरूपक' म महाराज की गद्दीनशीनी से लेकर इस घटना तक का हाल इस प्रकार लिखा है –

राजा सूरसिंहजी के स्वर्गवास के बाद राजा गजसिंहजी (२४ वर्ष की अवस्था मे) वि० स० १६७६ की विजया-दशमी के दिन बुरहानपुर मे गद्दी पर बैठे। इन्होंने दक्षिण की तरफ जाते समय जोधपुर के किले की रक्षा का भार कूँपावत राजसिंह को सौपा था। जिस समय यह दक्षिण मे थे उस समय कधार से भी एक बडी सेना दक्षिण वालों की मदद मे आई थी। कर्णाटक, विजयनगर, गोलकुडा और बराड आदि के युद्धों मे राजा गजसिंहजी सदाही अपनी सेना के साथ शाही सेना के अग्रभाग (हरावल) मे रहा करते थे। इसी प्रकार महकर के युद्ध मे भी, जिसमे शत्रु के ८,००० घुड सवारों ने भागलिया था, महाराज अपनी राठोड सेना के साथ शाही सेना के अग्रभाग मे थे। इस युद्ध मे शत्रुओं के ५०० सवार मारे गए और महाराज की वीरता से ही शाही सेना को विजय प्राप्त हुई। गजसिंहजी ने बुरहानपुर के युद्ध में दक्षिणियों को परास्त करने मे बडी वीरता दिखाई था। शाहजादा खुर्रम भी उस समय वहीं था। इस कार्य से प्रसन्न होकर बादशाह ने इनका मनसब ५,००० जात का करदिया और इसी के साथ इन्हें नक्कारा, तोग, सुनहरी साज के घोडे और जालोर तथा साचोर के परगने दिए। इसके बाद महाराज ने मलकापुर, रोहिणखेडा, बालापुर, महकर, निरोह, खिडकी, दौलताबाद, मगी पट्टन, खानदेश, महाराष्ट्र और बराड के युद्धों मे दक्षिण वालो की सेनाओं पर विजय प्राप्त की। दक्षिण के पाँच खास युद्धों मे तो, जो (१) महकर, (२) मेहाना, (३) बालापुर, (४) बुरहानपुर और (५) दक्षिण के पिछले प्रान्त मे हुए थे, इन्होंने खास वीरता दिखलाई थी। कुछ दिन बाद जब खुर्रम मॉडू आया, तब उसने महाराज को अपने पास बुलवाया और इनकी वीरता की प्रशसा कर इन्हें अपने देश जाने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार यह जोधपुर आकर ६ मास तक यहाँ के प्रबन्ध की देखभाल करते रहे। (देखो पृ० ३२-६६)।

इसके बाद इसी वर्ष के वैशाख में यह लौट कर बादशाह के पास चले गए। इन दिनों शाहज़ादा खुर्रम नूरजहाँ बेगम के प्रपंच से नाराज होकर बागी हो रहा था। मौका पाकर उसने दिल्ली पर अधिकार करने की तैयारी की। जैसे ही इसकी सूचना बादशाह जहाँगीर को मिली, वैसे ही उसने शाहज़ादे परवेज़ को उसे दंड देने के लिये रवाना किया। उसके साथ महाबतखाँ और राजा गजसिंहजी को भी उधर जाने की आज्ञा दी गई। उस समय जहाँगीर ने महाराज का मनसब बढ़ा कर पाँच हज़ारी ज़ात और चार हज़ार सवारों का कर दिया, और इसके साथ फलोदी का प्रांत जागीर में दिया। मालवे में पहुँचने पर खुर्रम का और शाही सेना का सामना हुआ। परन्तु शीघ्रही खुर्रम को परास्त होकर दक्षिण की तरफ भागना पड़ा। इसके बाद शाहज़ादा परवेज़ अपने सहायकों को साथ लेकर बुरहानपुर चला गया और उसने इस युद्ध के समय की महाराज की वीरता से प्रसन्न होकर मेड़ते का परगना इन्हें उपहार में दे दिया।

१ तुज़ुक जहाँगीरी, पृ० ३६८।

२. नवलकिशोर प्रेस की छपी 'तुज़ुक जहाँगीरी' के पृष्ठ ३६६ पर गजसिंहजी के नाम के आगे महाराज की उपाधि लगी होने से अनुमान होता है कि शायद इस अवसर पर इनको यह पदवी दी गई हो?

३ 'तुज़ुक जहाँगीरी, पृ० ३६६।

४ अंग्रेज़ी इतिहासों में इस युद्ध का बल्लोचपुर में होना लिखा है। विन्सेंट स्मिथ के लेखानुसार यह दिल्ली के दक्षिण में था ('ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ३८६)।

५ ख्यातों में लिखा है कि बादशाह ने इस अवसर पर अजमेर का सूबा शाहज़ादे परवेज़ को जागीर में दे दिया। इस पर उसने मेड़ता सैयदों को सौंप देने का विचार किया। परन्तु राजा गजसिंहजी ने कूँपावत गजसिंह को भेज कर महाबतखाँ से इसकी शिकायत की। उसने भी उस समय महाराज को अप्रसन्न करना उचित न जान शाहज़ादे को ऐसा करने से रोक दिया। परन्तु उन्हीं ख्यातों में लिखा है कि वि० स० १६७६ (ई० सन् १६२२) में मेर जाति के जंगली लोगों ने मेड़ता प्रांत के पशुओं को पकड़ने का उद्योग किया। यह देख वहाँ के शाही शासक ने उन पर चढ़ाई की। मार्ग में जिस समय वह नदवाणा नामक गाँव में पहुँचा, उस समय वहाँ के ब्राह्मणों (नदवाणे बोहरों) की संपत्ति को देख उसने उनके बहुत से मुखियाओं को पकड़ लिया। इसकी सूचना पाते ही बलूँदे के ठाकुर मेड़तिया श्यामसिंह और जैतारन के हाकिम पचोली राघोदास आदि ने उसका पीछा किया। मुँगदड़ा गाँव के पास पहुँचते पहुँचते दोनों का सामना हो गया। इससे थोड़ी देर के युद्ध में ही उक्त शाही शासक ब्राह्मणों को छोड़ कर भाग गया।

अगले वर्ष शाहजादे खुर्रम ने उडीसा और बिहार फतह कर फिर से दिल्ली के तख्त पर अधिकार करने के लिये चढ़ाई की। परन्तु बनारस के पास टोंस नदी के किनारे उसे शाहजादे परवेज की सेना से परास्त होकर भागना पड़ा। इस युद्ध का श्रेय भी राजा गजसिंहजी की अद्भुत वीरता को ही दिया जाता है। इसका वर्णन इस प्रकार लिखा मिलता है।

वि० स० १६८१ (ई० सन् १६२४) में जिस समय शाहजादा खुर्रम फिर से बादशाहत पर अधिकार करने की नीयत से सेना सज कर रवाना हुआ, उस समय उसकी सेना के अग्रभाग का सचालक महाराना अमरसिंह का पुत्र भीम था[1]। इसकी सूचना पाते ही शाहजादा परवेज भी उसके मुकाबले को चला। जब दोनो सेनाओ का सामना[2] हुआ, तब परवेज ने जयपुर महाराज जयसिंहजी[3] के पास अधिक सेना देख कर उन्हे अपनी सेना के अग्रभाग का मुखिया बना दिया। हमेशा से राठोड नरेशो के ही शाही सेना के अग्रभाग मे रहने का रिवाज होने से यह बात राजा गजसिंहजी को अच्छी न लगी। इससे यह अपनी सेना के साथ नदी की बाई तरफ परवेज की सेना से कुछ हट कर खडे हो गए। युद्ध होने पर कुछ ही देर मे जिस समय परवेज की सेना के पैर उखड गए, उस समय शाहजादे खुर्रम ने भीम को एक तर्फ खडी हुई राजा गजसिंहजी की सेना पर आक्रमण कर उसे भगा देने का इशारा किया। इस पर तत्काल भीम और गजसिंहजी की सेनाओ के बीच युद्ध छिड गया। यद्यपि विजय से

इससे प्रगट होता है कि पहले मेडते पर बादशाह का ही अधिकार था, परन्तु इस अवसर पर महाराज की वीरताओं के उपलक्ष मे वह नगर इनके शासन मे दे दिया गया होगा।

१ भीम मेवाड की उस सेना का सेनापति था, जो उस समय महाराणा करणसिंहजी की तरफ से बादशाही सेवा मे रहा करती थी। जहाँगीर ने भीम को राजा की पदवी, और टोडे की जागीर दी थी। कुछ समय बाद ही बादशाह की कृपा से वह पाँच हजारी मनसब तक पहुँच गया था।

इसके बाद वह शाहजादे खुर्रम से मिल गया, और उसने खुर्रम की आज्ञा से पटना विजय कर लिया।

२ मारवाड की ख्यातों मे इस युद्ध का पटने के पास, 'मुतखिबुल्लुबाब' मे बगाल की सरहद में, और 'तुजुक जहाँगीरी' मे बनारस के पास होना लिखा है। कहीं कहीं इस युद्ध का झूसी के पास होना भी लिखा मिलता है।

३ फारसी तवारीखों से इस युद्ध मे जयसिंहजी के सम्मिलित होने का पता नहीं चलता। परन्तु साथ ही उनमे कई अन्य नरेशो के नाम भी नही दिए हैं।

उन्मत्त सीसोदियो और खुर्रम के अन्य सैनिको ने राठोड़ो को मार भगाने का बड़ा प्रयत्न किया, तथापि वीर राठोड अपने स्थान से जरा भी न हटे। उलटा कुछ देर के युद्ध के बाद ही सेनापति भीम के मारे जाने से सीसोदियो का उत्साह शिथिल पड़ गया, और खुर्रम की विजय पराजय में बदल गई। इनकी इस वीरता से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने इनके सवारो में १,००० की वृद्धि करने के साथ ही इनका मनसब पॉच हजारी जात और पॉच हजार सवारो का करदिया[1]। इसके बाद महाराज ने प्रयाग पहुँच चाँदी से तुलादान किया और वहाँ से यह दक्षिण की तरफ चले गए।

जिस समय महाराज दक्षिण में थे, उस समय एक बार शाहजादे खुर्रम ने अचानक पहुँच बुरहानपुर को घेर लिया[3]। इस अवसर पर भी राजा गजसिंहजी ने भाद्राजन के ठाकुर मुकुन्दास आदि को साथ लेकर शाहजादे की सेना को भगाने में बड़ी वीरता दिखलाई।

१ ख्यातों मे लिखा है कि इसके साथ बराड प्रात का जलगॉव इन्हे जागीर मे दिया गया था।

२. इसका उल्लेख मारवाड की ख्यातों मे है, और इसकी पुष्टि 'बादशाहनामा के लेख से भी होती है। (देखो पृष्ठ १५८)।

३ इस समय मलिक अंबर भी खुर्रम के साथ था।

४ 'शुभरूपक मे लिखा है –

जिस समय बादशाह काश्मीर मे था, उस समय खुर्रम ने मॉडू पहुँच बगावत का झडा उठाया। इसकी सूचना पाते ही उधर तो बादशाह घबरा कर दिल्ली की तरफ चला और इधर खुर्रम अजमेर, सॉभर, टोडा और रणथभोर होता हुआ दिल्ली के तख्त पर अधिकार करने की नीयत से रवाना हुआ। उस समय सीसोदिया भीम मेडते मे था। खुर्रम ने उसे अजमेर पर अधिकार करने की आज्ञा दी। इस पर उसने सादूल को हराकर वहाँ पर अधिकार करलिया। इसके बाद खुर्रम सीकर होता हुआ दिल्ली के निकट पहुँचा। इसी बीच बादशाह भी ससैन्य वहाँ आगया। इससे दोनो सेनाओं के बीच युद्ध छिड गया। परन्तु युद्ध का रग अपने लिये फीका देख बादशाह ने वजीर के कहने से राजा गजसिहजी को मदद के लिये बुलवाया। इससे महाराज भी कूँपावत राजसिंह आदि वीर-सामतों को लेकर चैत्र सुदि ११ को जोधपुर से रवाना हुए। इनके बादशाह के पास पहुँचने पर उसने युद्ध का सारा भार इन्हीं को सौप दिया। इसके बाद महाराज शाही सेना के साथ, खुर्रम का पीछा करने को प्रयाग काशी और गया की यात्रा करते हुए टूस नदी के उस पार कोटा मे पहुच ठहर गए। उस समय खुर्रम का पड़ाव सैरागढ में था। इससे दोनो की सेनाओं के बीच केवल दो कोस का फासला रह गया। इसके बाद खुर्रम की सेना के अग्रभाग मे तो महाराना अमरसिह का पुत्र सीसोदिया

वि० सं० १६८२ (ई० सन् १६२५) में नूरजहाँ बेगम महाबतखाँ से नाराज हो गई। इसी से उसने बादशाह से कह कर उसे दक्षिण से बंगाल की तरफ चले जाने या दरबार में हाजिर होने की आज्ञा भिजवा दी। इस पर वह दक्षिण में उपस्थित अधिकांश सरदारों को साथ लेकर बंगाल की तरफ जाने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु महाराज ने उनमें से बहुतों को बादशाह की आज्ञा का मर्म समझा कर वहीं रोकलियाँ। इससे दक्षिण का जीता हुआ प्रदेश शत्रुओं के हाथों मे जाने से बच गया।

वि० सं० १६८४ की कार्तिक वदी ३० (ई० सन् १६२७ की २६ अक्टोबर) को बादशाह जहाँगीर का स्वर्गवास हो गया, और आपस की फूट के कारण बादशाहत का प्रबंध शिथिल पड गया। यह देख दक्षिण का सूबेदार खाँजहाँ लोदी बालाघाट का प्रांत निजामुलमुल्क को सौंप कर माँडू पर अधिकार करने के लिये रवाना हुआ। राजा गजसिंहजी और जयपुर के मिरजा राजा जयसिंहजी भी (दक्षिण से) उसके

भीम नियत हुआ और शाही सेना के अग्रभाग में शाहजादे परवेज और महाबतखाँ की सलाह से राजा गजसिंहजी रक्खे गए। उस समय बादशाही सेना मे आँबेर के राजा जयसिंहजी, बीकानेर नरेश सूरजसिंहजी, बुंदेला वरसिंहदेव, सारंगदेव, बहलोलखाँ, आलमखाँ, आदि अनेक सरदार थे। अन्तिम युद्ध मे सीसोदिया भीम और राजा गजसिंहजी का सामना हुआ। परन्तु भीम के मारे जाते ही खुर्रम और उसकी सेना मैदान छोड कर भाग खडे हुए।

यह युद्ध वि० सं० १६८१ की कार्तिक सुदि १५ को हुआ था। (देखो पृ० ६७-१३४)।

(यहाँ पर कवि ने अनेक घटनाओं को एक मे मिला कर बडी गडबड करदी है)।

ख्यातों मे लिखा है कि खुर्रम से आसेर का किला छीनने मे भी राजा गजसिंहजी ने बडी वीरता दिखलाई थी।

१ बादशाह उसको शाहजादे परवेज से दूर करना चाहता था। इसीसे उसे वहाँ से हटाना आवश्यक था। महाराज के समझाने पर भी करीब ५,००० राजपूत सैनिक उसके साथ होलिए। इन्हीं की सहायता से उसने कुछ दिन बाद बंगाल से लौटने पर बादशाह जहाँगीर को, जो उस समय झेलम पार कर काबुल जाने के लिये उद्यत था, पकड कर कुछ दिन के लिये अपनी कैद मे ले लिया। यह घटना वि० सं० १६८३ (ई० सन् १६२६) की है।

२ 'तुजुक जहाँगीरी' पृ० ४३४, । उक्त इतिहास में उस रोज 'एक शंबा' रविवार का होना लिखा है। परन्तु इण्डियन एफेमेरिस के अनुसार उस दिन सोमवार आता है। (देखो भा० ६, पृ० ५७)।

साथ हो लिए। परन्तु फिर मार्ग से ही ये दोनो उसका साथ छोड़ अपनी अपनी राजधानियो की तरफ चले आए।[1]

वि० स० १६८४ की माघ सुदि १० (ई० सन् १६२८ की ४ फरवरी) को शाहजहाँ आगरे पहुँच कर तख्त पर बैठा।[2] इस पर फागुन बदी ४ (१३ फरवरी) को राजा गजसिंहजी भी जोधपुर से आगरे जा पहुँचे। यद्यपि इन्होने बादशाह जहाँगीर के कहने से परवेज के साथ जाकर दो वार खुर्रम (शाहजहाँ) को सम्मुख रण से भागने पर बाध्य किया था, तथापि इनकी वीरता और साहस का विचार कर उसने इस अवसर पर इनका बड़ा आदर सत्कार किया, और खासा खिलअत, जड़ाऊ खजर, फूलकटार, जड़ाऊ तलवार, खासे अस्तबल का सुनहरी जीनवाला घोड़ा, खासा हाथी, नक्कारा और निशान देकर बादशाह जहाँगीर के समय का इनका पाँच हजारी जात और पाँच हजार सवारो का मनसब यथानियम स्वीकार कर लिया।[3]

इसके बाद राजा गजसिहजी ने शाहजहाँ की इच्छानुसार सीसोदरी (फतहपुर सिकरी के निकट) के किले पर चढाई कर वहाँ के बागियो को सर किया।[4]

वि० स० १६८६ की चैत बदी ७ (ई० सन् १६३० की २३ फरवरी) को शाहजहाँ ने निजामुलमुल्क और खाँजहाँ लोदी को दड देने के लिये तीन सेनाएं बालाघाट की तरफ रवाना कीं। इनमें से एक सेना के सेनापति राजा गजसिंहजी बनाए गए।[6] इन्होने इस बार भी शत्रुओ का दमन करने मे अच्छी वीरता दिखाई। इसके बाद वि० स० १६८७ के सावन (ई० सन् १६३० की जुलाई) में बादशाह ने इन्हे अपने

१ 'बादशाहनामा', भा० १, पृ० ७६।

२ 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ मॉडर्न इडिया' मे उस दिन फरवरी की १४ तारीख होना लिखा है। यह चिन्त्य है (देखो पृ० ८३)।

३ 'बादशाहनामा', जिल्द १, पृ० ८७।

४ 'बादशाहनामा', भा० १, पृ० १५८-१५६।

५ 'गुणभाषाचित्र' मे लिखा है कि बुंदेला वरसिंह का पुत्र जोगराज बागी हो गया था। जब बादशाह ने उसे दड देने के लिये चढाई की, तब महाराज गजसिंहजी भी उसके साथ थे। वहाँ पर के युद्ध मे इन्होने अच्छी वीरता दिखाई। इससे जोगराज को परास्त होना पड़ा। (देखो पृ० ७७)।

६ इस सेना मे हिन्दू और मुसलमान, कुल मिला कर करीब २७ शाही मनसबदार और अमीर तथा १५,००० सवार थे। 'बादशाहनामा' भा० १, पृ० २६४।

पास बुला लिया[1]। इसके बाद इसी वर्ष की आश्विन सुदि (अक्टोबर) में बादशाह ने इनको जड़ाऊ पट्टेवाली एक खासी तलवार देकर[2] दक्षिण की तरफ भेजा। वहाँ पर भी महाराज की राठोड़–सेना ने बड़ी वीरता दिखलाई। वि० सं० १६८८ के पौष (ई० सन् १६३१ के दिसम्बर) में महाराज यमीनुद्दौला (आसफखाँ) के साथ मोहम्मद आदिलखाँ को दंड देने के लिये फिर बालाघाट की तरफ भेजे गए। हमेशा की तरह इस बार भी यह शाही सेना के अग्रभाग के सेनापति बनाए गए[3]। इसके कुछ दिन बाद महाराज जोधपुर चले आए और यहाँ पर राज्यकार्य की देख-भाल करने लगे। वि० सं० १६९० के वैशाख (ई० सन् १६३३ के मार्च) में यह फिर जोधपुर से लौट कर आगरे पहुँचे[4]। इस पर बादशाह ने एक खिलअत और एक सुनहरी जीन वाला घोड़ा देकर इनका सत्कार किया। इसके बाद यह फिर दक्षिणियों के उपद्रव को दबाने के लिये उधर चले गए[5]। वि० सं० १६९२ की फागुन सुदि १४ (ई० सन् १६३६ की १० मार्च) को दौलताबाद के मुकाम पर बादशाह शाहजहाँ ने इनकी वीरता से प्रसन्न होकर इन्हें सुनहरी जीन सहित एक खासा घोड़ा दिया[6]। इसके बाद वि० सं० १६९३ के पौष (ई० सन् १६३६ के दिसम्बर) में यह बादशाह के साथ दक्षिण से लौटे। मार्ग में जब बादशाह अजमेर से आगरे को चला, तब जोगी तालाब के पास उसने महाराज को, एक खासा खिलअत, एक हाथी और सुनहरी जीन वाला खासा घोड़ा उपहार में देकर[7], जोधपुर को विदा किया। यहाँ पर यह करीब डेढ़ वर्ष तक अपने राजकाज की जाँच में लगे रहे। इसके

१ बादशाहनामा, भा० १, पृ० ३०८। उसमें लिखा है कि इसी वर्ष नसीरखाँ ने, जो गजसिंहजी की सेना में नियत था, बादशाह से तिलंगाना और कंधार की विजय का कार्य अपने जिम्मे किए जाने की प्रार्थना की। इससे वह कार्य उसको सौंपा गया और महाराज को वापिस बुला लिया गया।

२ 'बादशाहनामा', भा० १, पृ० ३१५।

३ बादशाहनामा, भा० १, हिस्सा १, पृ० ४०४-४०५।

४ इस अवसर पर इन्होंने १ हाथी कुछ जवाहिरात, और हथियार बादशाह की भेंट किए थे। ('बादशाहनामा', भा० १, पृ० ४७४)।

५ इस सत्कार और यात्रा का उल्लेख फ़ारसी तवारीखों में नहीं है। यह ख्यातों से लिया गया है।

६ 'बादशाहनामा', भा० १, हिस्सा २, पृ० १४१-१४२।

७. बादशाहनामा, भा० १, हिस्सा २, पृ० २३३।

बाद वि० स० १६९४ की पौष वदी ४ (ई० स० १६३७ की २५ नवम्बर) को यह अपने द्वितीय महाराज-कुमार जसवतसिंहजी को साथ लेकर बादशाह के पास आगरे पँहुचे। वहाँ पर माघ के महीने (ई० सन् १६३८ की जनवरी) मे बादशाह ने इन्हे फिर एक खिलअत देकर इनका सत्कार किया[2]।

वि० स० १६९५ की जेठ सुदि ३ (ई० सन् १६३८ की ६ मई) को आगरे मे ही राजा गजसिंहजी का देहान्त हो गया[3]। इसीसे वहा पर यमुना के किनारे इनका अत्येष्टि सस्कार कर उक्त स्थान पर एक छतरी बनाई गई।

राजा गजसिंहजी बडे वीर और दानी थे। ख्यातो के अनुसार इन्होने छोटे बडे ५२ युद्धो मे भाग लिया था, और इनमे के प्रत्येक युद्ध मे यह सेना के अग्रभाग के सेनापति रहे थे। इनकी वीरता के कार्यों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। बादशाही दरबार मे इनका बडा मान था और स्वय बादशाह ने इन्हे 'दलथभन' की उपाधि से भूषित कर इनके घोडो को शाही दाग से मुक्त कर दिया था। महाराज के साथ हर समय सजे सजाए पाँच हजार सवार रहा करते थे और यह अपनी इस सेना की देखभाल स्वय ही किया करते थे। ख्यातो से ज्ञात होता है कि इन्होने १४ कवियो को जुदा-जुदा 'लाख पसावँ'[4] दिए थे। वास्तव मे देखा जाय तो इनके

१ 'बादशाहनामा, भा० २, पृ० ८।

२ बादशाहनामा, भा० २, पृ० ११।

३ बादशाहनामा, भा० २, पृ० ९७। मारवाड की ख्यातो मे लिखा है कि जिस समय महाराज आगरे म बीमार हुए, उस समय स्वय बादशाह शाहजहॉ इन से मिलने के लिये आया। इसी अवसर पर महाराज ने, बातचीत के सिलसिले म, उससे अपने द्वितीय पुत्र जसवतसिंहजी को जोधपुर का राज्य और बडे पुत्र अमरसिंहजी का अलग मनसब देने की प्रतिज्ञा करवा ली। इसी प्रकार इन्होंने अपने सामतों मे भी अपने पीछे जसवतसिंहजी को गद्दी पर बिठाने का वचन ले लिया था।

वि० स० १६८६ के दो लेख फलोदी से मिले हैं। इन मे महाराज गजसिंहजी का और उनके बडे पुत्र महाराज कुमार अमरसिंहजी का उल्लेख है। ('जर्नल बगाल एशियाटिक सोसाइटी' (१९१६) पृ० ९७-९८। डाक्टर जेम्स बर्जेज ने अपनी बनाई 'क्रॅनॉलॉजी ऑफ मॉडर्न इडिया' (पृ० ९१) मे राजा गजसिंहजी का वि० स० १६९४ मे गुजरात मे मारा जाना लिखा है। यह ठीक नहीं ह।

४ राजपूताने मे चारणो, आदि को 'लाख पसाव' देने का यह नियम था कि जिसको यह पुरस्कार देना होता था उसको कुछ वस्त्र, आभूषण, हाथी अथवा घोड़ा और कम से कम एक हजार रुपये सालाना की जागीर दी जाती थी।

खजाने का रुपया वीरो और कवियो को पुरस्कार देने में ही खर्च होता था। महाराजा को हाथियो और घोड़ो का भी बडा शौक था। साथ ही यह समय-समय पर अपने मित्रो और अनुयायियों को भी अच्छे-अच्छे हाथी और घोडे भेट या पुरस्कार रूप मे देते रहते थे।

राजा गजसिंहजी के बनवाए हुए स्थान:—जोधपुर के किले मे—तोरनपौल, उसके आगे का सभामडप, दीवानखाना, बीच की पौल, कोठार, रसोईघर, और आनन्दघनजी का मन्दिर, तलहटी के महलो में अनेक नए महल, सूरसागर मे कूँआ, बगीचा और महल।

राजा गजसिंहजी के दो पुत्र थे। अमरसिंहजी और जसवतसिंहजी।

राजा गजसिंहजी के दिए गावों मे से कुछ के नाम यहा दिए जाते हैं.—

१ सोभडावास २ पाचेटिया ३ राजगियावास खुर्द ४ रैंदडी (सोजत परगने के), ५ झाली-वाडा खुर्द (बीलाडा परगने का), ६ सूरपालिया (नागोर परगने का), ७ धरमसर (पचपदरा परगने का), ८ कोटडा (जालोर परगने का), ९ रूपावास (पाली परगने का), १० माटेलाई का चारणों का वास (जोधपुर परगने का) चारणों को, ११ पलाया (जालोर परगने का) पुरोहितों को और १२ दागडा (मेड़ता परगने का), १३ रेवडिया (सोजत परगने का) भाटों को।

१ आज कल इन स्थानों का पूरी तौर से पता लगना कठिन है, क्योंकि इनमे के कुछ तो गिरा दिए गए हैं और कुछ के रूप बदल गए हैं।

२५. महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

यह राजा गजसिंहजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० स० १६८३ की माघ वदि ४ (ता० २६ दिसम्बर, १६२६) को बुरहानपुर (दक्षिण) में हुआ था। राजा गजसिंहजी का विचार इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी बनाने का था। इससे वि० स० १६९५ की जेठ सुदि ३ (ई० स० १६३८ की ६ मई) को, जिस समय आगरे में उनकी मृत्यु हुई, उस समय बादशाह शाहजहाँ ने इन (जसवंतसिंहजी) को खिलअत, जड़ाऊ जमधर (कटार), ४ हजारी ज़ात और ४ हज़ार सवारों का मनसब, राजा का खिताब, निशान, नक्कारा, सुनहरी जीन का घोड़ा और हाथी देकर राजा की पदवी से भूषित कर दिया।[1]

इसके बाद वि० स० १६९५ की आषाढ वदि ७ (ई० स० १६३८ की २५ मई) को आगरे में ही इनका राजतिलक हुआ। प्रथम श्रावण सुदि १२ (१२ जुलाई) को बादशाह ने इन्हे फिर खिलअत देकर सम्मानित किया।[2] उस समय महाराज की अवस्था करीब ११ वर्ष की थी। इसी से बादशाह ने मारवाड़ के राजकार्य की देख-भाल के लिये कूंपावत राजसिंह[3] को इनका प्रधान नियत कर

१ इस पर महाराज ने भी १,००० मुहरें, १२ हाथी और कुछ जड़ाऊ शस्त्र बादशाह को भेट किए।

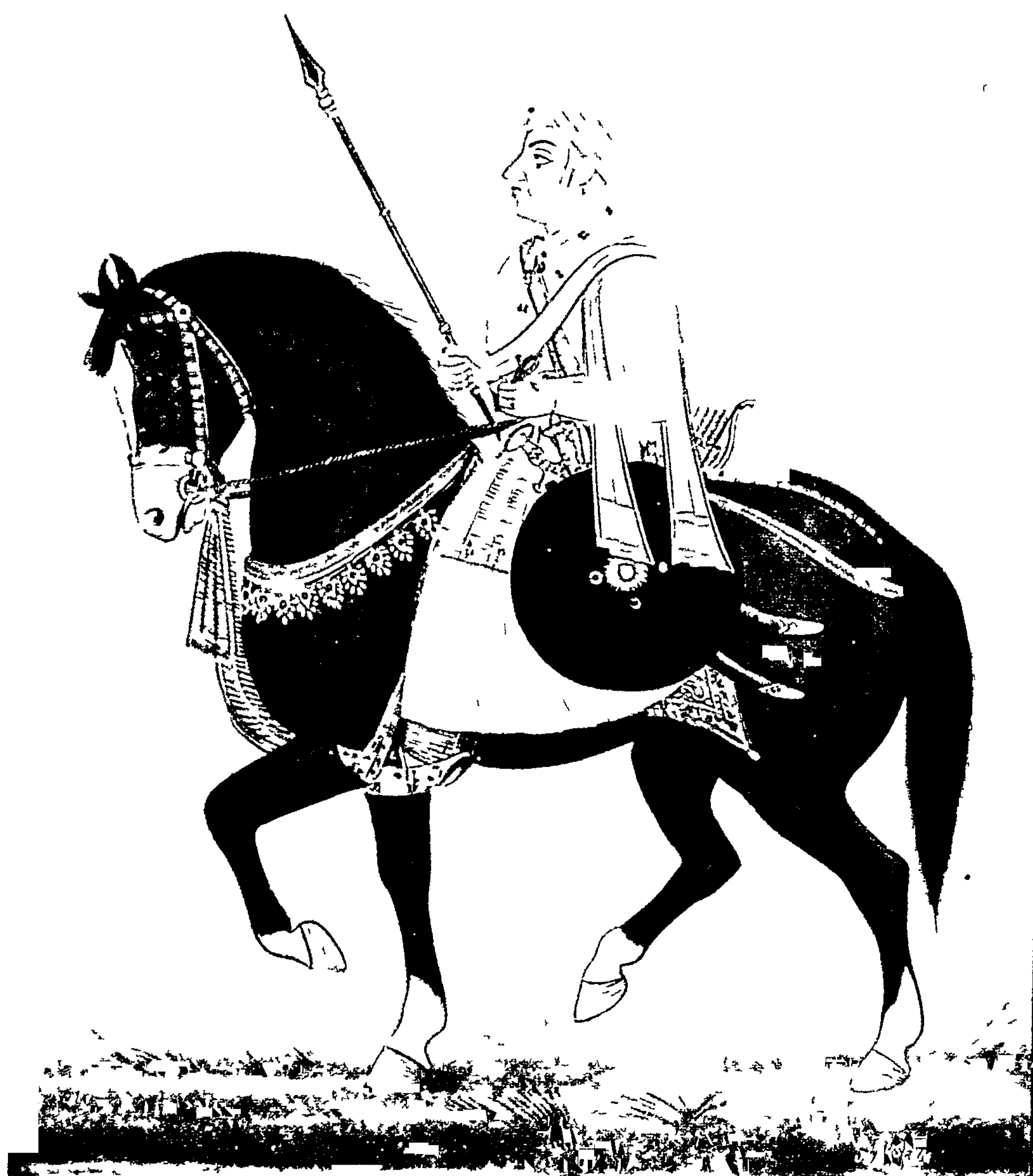
बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ९७।

ख्यातों में लिखा है कि उस समय जसवंतसिंहजी विवाहार्थ बूँदी गए हुए थे। परन्तु पिता की मृत्यु का समाचार पाते ही यह आगरे जा पहुँचे। बादशाह की आज्ञा से पहले सुलतान मुराद ने इनके मकान पर आकर मातमपुरसी की और इसके बाद बादशाह शाहजहाँ ने स्वयं अपने हाथ से इनका राजतिलक किया।

२. इसके करीब २४ दिन बाद महाराज ने भी बादशाह को ६ हाथी भेट में दिए।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १०२-१०३।

३ इसका जन्म वि० स० १६४३ की वैशाख सुदि २ को हुआ था।



२५ महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम)
वि० स० १६६५-१७३५ (ई० स० १६३८-१६७८)

दिया और महाराज को अपने खास तबेले से सुनहरी जीन-सहित एक घोड़ा सवारी के लिये दिया[2]।

इसके बाद जिस समय बादशाह शाहजहाँ लाहौर की तरफ गया, उस समय महाराज भी उसके साथ रवाना हुए। परन्तु मार्ग मे कुछ दिन के लिये यह दिल्ली मे ठहर गए और जब बादशाह बाकरवाडे (पालम परगने में) पहुँचा, तो जाकर उसके साथ हो गए[3]। इख्तयारपुर पहुँचने पर बादशाह ने इन्हे फिर खासा खिलअत और सुनहरी जीन का खासा घोड़ा देकर इनका मान बढ़ाया[4]। इसके बाद सरदी का मौसम आ जाने के कारण उसने महाराज के पहनने के लिये एक पोस्तीन, जिसके ऊपर जरी और नीचे समूर के बाल लगे थे, भेजा[5]।

माघ वदि ४ (ई० स० १६३६ की १३ जनवरी) को महाराज का मनसब पाँच-हजारी जात और पाँच हजार सवारो का कर दिया गया[6]। ख्यातो से ज्ञात होता है कि इसी के साथ इन्हे जैतारन का परगना भी जागीर मे मिला था। इसके तीन मास बाद बादशाह ने इन्हे फिर एक खासा हाथी देकर इनका सत्कार किया[7]।

---

१ यह पहले राजा गजसिंहजी का भी प्रधान-मन्त्री रह चुका था और उसके बाद शाहजहा ने इसको वि स० १६६५ की भादों वदि २ (ई० स० १६३८ की १६ अगस्त) को एकहजारी जात और चार सौ सवारों का मनसब देकर शाही अमीरो मे ले लिया था।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १०५।

२ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ११०। इस घटना का समय भादों वदि ४ (१८ अगस्त) लिखा है।

३ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ११३। इस घटना का समय आश्विन वदि १२ (२४ सितम्बर) लिखा है।

४ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ११४-११५। यह घटना आश्विन सुदि ६ (६ अक्टोबर) को हुई थी।

५ बादशाहनामा, जिल्द २ पृ० १२८। यह घटना पौष वदि २ (१२ दिसम्बर) की है।

६ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १३३। उस समय अमीरों को अधिकतर ऊँचे-से-ऊँचा यही मनसब मिला करता था और इसके साथ की जागीर की आमदनी शायद पच्चीस लाख वार्षिक के करीब होती थी?

७ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १४४। यह घटना वि० स० १६६६ की चैत्र सुदि ११ (ई० सन् १६३६ की ४ अप्रैल) की है।

वि० स० १६९६ की वैशाख सुदि २ (ई० स० १६३९ की २५ अप्रैल) को जब बादशाह लाहौर से आगे बढ़ पेशावर से जमरूद की तरफ रवाना हुआ, तब मार्ग की तंगी के कारण अन्य कई शाही अमीरों के साथ ही महाराज भी पेशावर में ठहर गए। परन्तु चौथे रोज अली-मसजिद के मुकाम पर फिर बादशाह से जा मिले[1]। आश्विन सुदि ९ (२५ सितम्बर) को भी बादशाह ने इन्हें खिलअत और सुनहरी जीन का एक घोड़ा दिया।

इसके बाद इसी साल की फागुन सुदि ९ (ई० स० १६४० की २१ फरवरी) को जिस समय महाराजा अपने देश की तरफ रवाना हुए, उस समय भी बादशाह ने इन्हें खिलअत और सुनहरी जीन का खासा घोड़ा देकर विदा किया। इस पर यह हरद्वार होते हुए वि० स० १६९७ की ज्येष्ठ सुदि (ई० स० १६४० की मई) में जोधपुर पहुँचे। चिरप्रचलित प्रथा के अनुसार यहां पर किले में फिर से महाराज के राजतिलक का उत्सव मनाया गया और इस शुभ अवसर पर मारवाड़ के सब उपस्थित सरदारों ने नजर और निछावर के द्वारा अपने स्वामी का अभिनन्दन कर इनकी अधीनता स्वीकार की। इसके बाद स्वयं महाराजा अपने विश्वास-पात्र सरदारों की सलाह से राज्य का प्रबन्ध देखने लगे। बहुधा यह वेश बदलकर रात्रि में, गुप्त रीति से, नगर-निवासियों के हाल-चाल का निरीक्षण करने को भी निकला करते थे।

वि० स० १६९७ की पोष वदि ५ (ई० स० १६४० की २३ नवम्बर) को इनका प्रधानामात्य कूंपावत राजसिंह मर गया। इस पर इनका कार्य चांपावत

---

१ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १४६। उस दिन तिथि 'सल्ख, शिलहिज हि० सन १०४८ लिखी है। सल्ख से चन्द्रदर्शन की तिथि का तात्पर्य होने से ही ऊपर द्वितीया ली गई है।

२ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १६२।

३ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १८१। इसी समय बादशाह ने इनके प्रधान मन्त्री कूंपावत राजसिंह को भी एक खिलअत और जड़ाऊ जमधर देकर इनके साथ विदा किया। ख्यातों में इनका चैत्र वदि ५ को दिल्ली से रवाना होना लिखा है।

४ इनके समय का वि० स० १६९६ की आषाढ सुदि २ (ई० सन १६३९ की २२ जून) का एक लेख फलोदी से मिला है।

जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, (१९१६) पृ० ९९।

५. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय महाराज अर्धरात्रि के करीब नगर में गश्त लगाते हुए तापी बावली के पास पहुँचे, उस समय इन्हें सामने से एक परिचित राज्यकर्मचारी

महेशदास को सौंपा गया। अनन्तर वि० सं० १६९८ की वैशाख वदि ३ (ई० स० १६४१ की १९ मार्च) को महाराज लौटकर आगरे चले गए[1]। शाहजहाँ ने भी वहाँ पर खिलअत और जड़ाऊ धोपे[3] देकर इनका सत्कार किया[4]।

वैशाख शुक्ल १२ (१२ अप्रैल) को महाराज के मनसब के सवारों मे के एक हजार सवार दुअस्पा[5] और सेअस्पा[6] कर दिए गए[7]। प्रथम ज्येष्ठ (मई) के महीने

आता दिखाई दिया। यह देख यह अपने को छिपाने के लिये उक्त बावली के अदर चले गए। परन्तु वहाँ पर महाराज के शरीर मे ब्रह्मराक्षस का आवेश हो गया और यह मूर्छित होकर गिर पडे। इस पर साथ के लोग इन्हे उसी अवस्था मे किले पर ले आए। वहाँ पर मत्र-शास्त्रियो के उपचार से उस ब्रह्मराक्षस ने कहा कि यदि महाराज के समान अधिकारवाला ही कोई व्यक्ति महाराज के बदले जीवनोत्सर्ग करने को तैयार हो, तो मै इनके प्राण छोड सकता हूँ। इस पर इनके प्रधानामात्य राजसिंह ने इन पर से वारा हुआ जल पीकर अपना जीवनोत्सर्ग कर दिया। इससे महाराज तत्काल स्वस्थ हो गए। वही पर यह भी लिखा है कि मरते समय राजसिंह ने अपने वशजो को उपदेश दिया था कि यदि तुममे भी इसी प्रकार के स्वार्थ-त्याग की सामर्थ्य हो तो राज्य का मन्त्रित्व स्वीकार करना, अन्यथा नहीं। इसीसे उसके वशज अब तक इस पद को स्वीकार नही करते हैं।

इस घटना की वास्तविकता के विषय मे पूरी तौर से कुछ नही कहा जासकता।

१ 'बादशाहनामे (की जिल्द २, पृ० १५१) मे लिखा है कि सवत् १६९६ के आषाढ (ई० सन् १६३९ के जून) मे काबुल के मुकाम पर बादशाह ने इसे, महाराज के प्रधान पुरुषों मे होने के कारण, एक घोडा इनायत किया था। उसी मे यह भी लिखा है कि बादशाह ने पहले पहल वि० स० १६९५ की कार्त्तिक सुदि (ई० सन् १६३८ की नवम्बर) मे महेशदास को, जो पहले गजसिंहजी और जसवतसिंहजी की सेवा मे रह चुका था, ८०० जात और ३०० सवारों का मनसब देकर शाही मनसबदार बनाया था।

बादशाहनामा, भा० २, पृ० १२२।

२ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २२७।

३ किरच या सीधी तलवार।

४ इस घटना की तिथि वैशाख वदि १४ (३० मार्च) लिखी है। इस के चौथे दिन बादशाह ने भी अपनी तरफ से राठोड महेशदास को घोडा और खिलअत देकर राजा जसवतसिंहजी का प्रधान मत्री नियत किया था।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २२६।

५ दो घोडों की तनख्वाह पानेवाला सवार दुअस्पा कहलाता था।

६ तीन घोडों की तनख्वाह पानेवाला सवार सेअस्पा कहलाता था।

७ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २३०।

मे बादशाह ने इनके लिये एक खासा हाथी और आषाढ (जुलाई) में सुनहरी जीन का एक खासा घोड़ा भेजा।[1] इसी बीच बादशाह ने बसरे से अरबी घोड़े मँगवाए थे। वे बड़े ही खूबसूरत और कीमती थे। उनके आने पर आश्विन (अक्टोबर) में उनमे का एक घोड़ा मय सुनहरी जीन के महाराज की सवारी के लिये भेजा गया। उस समय महाराज शाहजहाँ के साथ लाहोर मे थे। इसलिये इन्होंने भी वहा पर २ हाथी और २२ घोड़े अपने सरदारो को इनाम मे और चारणो को दान मे देकर अपनी महत्ता प्रकट की।[2]

इन्हीं दिनो (वि० स० १६९९ मे) ईरान के बादशाह शाह सफी ने, कंधार[3] पर चढाई करने का विचार कर, अपने सेनापतियो को नेसापुर मे पहुँचने की आज्ञा दी। इस समाचार के ज्ञात होते ही शाहजहाँ ने राजा जसवतसिंहजी आदि नरेशो को मय शाही सेना के शाहजादे दाराशिकोह के साथ कधार की रक्षा के लिये रवाना किया। इस अवसर पर भी उसने इन्हे प्रसन्न रखने के लिये खासा खिलअत, जड़ाऊ जमधर, फूलकटार, सुनहरी साजवाला खासा घोड़ा और खासा हाथी उपहार मे दिया।[4] परन्तु ईरान का बादशाह कंधार पहुँचने के पूर्व मार्ग (काशान) मे ही मर गया। इससे वह झगड़ा अपने आप शात हो गया और यह सेना भी वापस लौट आई। इसके बाद वि० स० १७०० की आषाढ सुदि १४ (ई० स० १६४३ की २० जून) को महाराज मारवाड़ की तरफ रवाना हुए। बादशाह ने भी खासा खिलअत देकर इन्हे विदा किया।[5] बादशाही मनसबदार होने के कारण उन दिनो महेशदास को अधिकतर शाही दरबार मे ही रहना पड़ता था। इसीसे महाराज ने जोधपुर पहुँच प्रधान-मन्त्री का पद मेड़तिया गोपालदास[6] को सौंप दिया और मुहणोत नैणसी को सेना देकर पहाड़ी प्रदेश के मेरो के उपद्रव को शात करने की आज्ञा दी। उसने वहाँ

१ बादशाहनामा, जिल्द २ पृ० २३२ और २३५।

२ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २४६।

३ यह प्रात बादशाह जहाँगीर के समय ईरान नरेश के अधिकार मे चला गया था परन्तु शाहजहा के समय इस पर फिर से मुगलों का अधिकार हो गया।

ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ४०१।

४ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २९३-२९४।

५ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ३३५-३३६।

६ यह रीयाँ का ठाकुर था।

जाकर उनके १५ गाव जला दिए और बागियो के मुखियाओ को मारकर मेरों के उपद्रव को शात कर दिया।

इसी साल राढ़धड़े के महेचा राठोड़ महेशदास ने बगावत का झडा उठाया। इस पर मुहणोत जयमल राजकीय सेना को लेकर वहाँ जा पहुँचा और महेशदास को भगाकर राढ़धड़े को लूट लिया। इससे कुछ दिन बाद ही महाराज ने उक्त प्रदेश (महेवे के रावल तेजसी के पुत्र) जगमाल को जागीर में दे दिया। इसके बाद जब बादशाह शाहजहाँ जियारत के लिये अजमेर आया, तब यह भी मँगसिर सुदि ६ (१० दिसंबर) को वहाँ पहुँच उससे मिले और सात दिन के बाद जिस समय वह अकबराबाद (आगरे) की तरफ रवाना हुआ, उस समय लौटकर जोधपुर चले आए। विदाई के समय बादशाह ने खिलअत देकर इनका सम्मान किया[1]। इसके बाद कई दिनों तक तो महाराज अपनी राजधानी मे रहकर राज्य-कार्य की देखभाल करते रहे, परन्तु फिर बादशाह के बुलाने पर रूपाबास के डेरे पर पहुँच उससे मिले[2]।

वि० स० १७०१ की माघ सुदि २ (ई० स० १६४५ की १६ जनवरी) को जब बादशाह लाहौर की तरफ रवाना हुआ, तब उसने इन्हें खिलअत देकर इनका सम्मान किया और साथ ही अकबराबाद के सूबेदार शेख फरीद के आने तक आगरे की देखभाल करते रहने और बाद में अपने पास चले आने का आग्रह किया[3]। इसके अनुसार यह उसके साथ न जाकर वहीं ठहर गए[4]। इसके बाद जब बादशाह लाहौर से काश्मीर को रवाना हुआ, तब उसने इन्हें अपने काश्मीर से लौट आने तक अवश्य ही लाहौर पहुँच जाने का लिखा[5]।

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ३४६।

२. परन्तु वि० स० १७०१ की पौष सुदि २ (ई० सन् १६४४ की २१ दिसम्बर) के महाराज के लाहौर से लिखे फरासत के नाम के पत्र से उस समय महाराज का लाहौर में होना प्रकट होता है। यह विचारणीय है।

३. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ४०७।

४. ख्यातों में लिखा है कि इन्हीं दिनों फिर मेरों के मुखिया (रावत) ने सोजत मे उपद्रव शुरू किया। इस पर महाराज के दीवान मुहणोत नैणसी ने चढाई कर उसे मार भगाया। इस मुहणोत नैणसी ने दो इतिहास तैयार किए थे। पहला आजकल 'मुहणोत नैणसी की ख्यात' के नाम से प्रसिद्ध है। उसमे इसने इधर-उधर से एकत्रित कर राठोड, सीसोदिया, चौहान आदि अनेक राजपूत-वशों का इतिहास लिखा है और दूसरे मे मारवाड के गाँवों की उस समय की जमाबदी, आबादी, लगान आदि का हाल दिया है।

५. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ४२५। यह आज्ञा आषाढ सुदि ८ (२१ जून) को दी गई थी।

इसी के अनुसार जिस समय वि० स० १७०२ की मँगसिर वदि १ (ई० स० १६४५ की २५ अक्टोबर) को बादशाह लौटकर लाहौर आया, उससे करीब २ या १½ मास पूर्व यह भी वहाँ जा पहुँचे[1]।

वि० स० १७०३ की वैशाख सुदि ५ (ई० स० १६४६ की १० अप्रेल) को जब बादशाह का डेरा चनाब के पास हुआ, तब उसने महाराज को जड़ाऊ जमधर, फूलकटार और सुनहरी ज़ीन-सहित अरबी घोडा देकर इनका सत्कार किया[2]। तथा ज्येष्ठ सुदि १० (१४ मई) को महाराज के मनसब के दो हज़ार सवार दुअस्पा सेअस्पा कर[3] दिए। इसके दूसरे ही दिन बादशाह के इच्छानुसार महाराज पेशावर से रवाना होकर[4] शाही लश्कर से एक पड़ाव आगे हो लिए। इस प्रकार जब बादशाह सकुशल काबुल पहुँच गया, तब उसने भादो वदि २ (१८ अगस्त) को इन्हे सुनहरी जीन का (खासा तवेले का) एक घोड़ा सवारी के लिये दिया[5] और माघ वदि ११ (ई० स० १६४७ की २१ जनवरी) को इनके मनसब के ढाई हज़ार सवार दुअस्पा

१ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ४७१।

वि० स० १७०१ (ई० सन् १६४४) में महाराज ने ख्वाजा फरासत को, जिसे राजा गजसिंहजी ने राजा बहादुर से खरीदा था, जोधपुर के प्रबंध की देख भाल के लिये भेजा। परन्तु उसके इस कार्य मे सफल न हो सकने के कारण वि० स० १७०४ (ई० सन् १६४७) मे राज्य का प्रबंध उससे ले लिया गया। मृत्यु के उपरांत जहाँ पर वह गाड़ा गया था, वह स्थान, जोधपुर नगर के चाँदपोल दरवाजे के बाहर, 'मिया के बाग' के नाम से प्रसिद्ध है। वीरविनोद में लिखा है कि वि० स० १७०२ (हि० सन् १०५५=ई० सन् १६४५) में महाराज के मनसब में १,००० सवार बढ़ाए गए थे। संभवतः इससे इनके मनसब के १,००० सवारों का दुअस्पा-सेअस्पा किए जाने का तात्पर्य ही होगा।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ५०१।

३. वीरविनोद मे वि० स० १७०४ (ई० सन् १६४७=हि० सन् १०५७) मे महाराज के मनसब का ७,००० सवारों का होना लिखा है। परन्तु मूल में उद्धृत किया हुआ वृत्तान्त बादशाहनामे (की जिल्द २, पृ० ५०५) से लिया गया है।

४. इस अवसर पर आंबेर के महाराज कुमार रामसिंहजी भी इनके साथ भेजे गए थे।

बादशाहनामा, भाग २, पृ० ५०६।

५ आषाढ वदि ६ (२८ मई) को महाराज, जो पहले ही काबुल पहुँच गए थे, वहाँ पर बादशाह से मिले। बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ५०६ और ५७८।

सेअस्पा कर दिए[1]। इसके बाद वि० स० १७०४ (ई० स० १६४७) में इनके मनसब के ३,००० सवार दुअस्पा सेअस्पा हो गए[2]। ख्यातो से ज्ञात होता है कि इसके साथ ही इन्हे खर्च के लिये हिंदौन का परगना जागीर मे मिला[3]।

वि० स० १७०५ (ई० स० १६४८) मे महाराज का मनसब ५,००० जात और ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा का कर दिया गया[4]।

इसके बाद जब अगले वर्ष कजलबाशो (ईरानियो) के आक्रमण की सूचना पाकर बादशाह ने शाहजादे औरगजेब को कधार की तरफ रवाना किया, तब महाराज भी उसकी सहायता के लिये साथ भेजे गए। परन्तु मार्ग मे काबुल पहुँचने पर औरगजेब को बादशाह की आज्ञा से वही रुक जाना पडा। इससे यह भी वहीं ठहर गए। इसके बाद कुछ ही दिनो मे जब बादशाह स्वय वहाँ पहुँचा, तब इन्होने दो हजार सवारो के साथ आगे जाकर उसकी अभ्यर्थना की[5]।

इसी वर्ष (वि० स० १७०६) के कार्तिक मे जिस समय जयसलमेर रावल मनोहरदासजी का स्वर्गवास हो गया, उस समय उनका पुत्र रामचन्द्र वहाँ की गद्दी पर बैठा। परन्तु वहा के सरदार उससे नाराज थे। इस पर स्वर्गवासी रावल मालदेव के पुत्र सबलसिंह ने जो पहले से ही शाहजहाँ के पास रहता था, उससे सहायता माँगी। बादशाह ने महाराज से उसकी सहायता करने का आग्रह किया। साथ ही सबलसिंह

१ बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ६२७।

वि० स० १७०३ की चैत्र वदि ७ (ई० सन् १६४७ की १७ मार्च) के महाराज के लाहौर से लिखे फरासत के नामके पत्र से उस समय भी इनका लाहौर मे होना प्रकट होता है।

२ यह शाहजहाँ के २१वे राज्य वर्ष की घटना है, जो वि० स० १७०४ की आषाढ सुदि २ (ई० सन् १६४७ की २४ जून) से प्रारभ हुआ था।

मआसिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ५६६।

३ ख्यातों से यह भी ज्ञात होता है कि यह परगना ६ वर्ष तक महाराज के अधिकार मे रहा था।

४ 'मआसिरुल उमरा', भा० ३, पृ० ५६६-६००। यह घटना शाहजहाँ के २१वे राज्यवर्ष के अतिम समय की है।

५ यह घटना शाहजहाँ के २२वे राज्यवर्ष की है, जो वि० स० १७०५ की आषाढ सुदि ३ (ई० सन् १६४८ की १३ जून) को प्रारभ हुआ था।

मआसिरुलउमरा, भा० ३ पृ० ६००।

ने भी इन्हे फलोदी का प्रांत (मय पौकरन के किले के) लौटा देने का वादा कर लिया। इसलिये महाराज ने जोधपुर पहुँचे (रीयाँ के) मेड़तिया गोपालदास, (पाली के) चांपावत विट्ठलदास और (राजसिंह के पुत्र आसोप के) नाहरखाँ को सेना देकर सबलसिंह के साथ कर दिया। इन लोगो ने शीघ्र ही फलोदी विजय कर वि० स० १७०७ की कार्तिक वदि ६ (ई० स० १६५० की ५ अक्टोबर) को पौकरण के किले पर अधिकार कर लिया। इसके बाद यह आगे बढ जयसलमेर पर जा पहुँचे। यह देख रामचन्द्र भाग गया और जयसलमेर पर सबलसिह का अधिकार हो गया।

वि० स० १७१० (ई० स० १६५३) मे महाराज का मनसब ६,००० जात और ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा का कर दिया गया।

इसके बाद यह शाहजादे दारारिकोह के साथ कधार विजय के लिये रवाना हुऍ। परतु इस यात्रा मे शाही सेना को सफलता नहीं मिली।

वि० स० १७१२ (ई० स० १६५५) मे इनका मनसब ६,००० जात और ६,००० सवार (इनमे ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) का हो गया और साथ

---

१ राव चन्द्रसेनजी ने यह प्रांत १,००,००० फदियों (करीब १२,५०० रुपयों) के बदले मे जयसलमेर रावलजी को सौंप दिया था।

२ ख्यातों के अनुसार यह वि० स० १७०७ की आषाढ वदि ३ (ई० सन् १६५० की ६ जून) को जोधपुर पहुँचे थे।

३ यह शाहजहाँ के २६वें राज्यवर्ष की घटना है, जो वि० स० १७०६ की द्वितीय वैशाख सुदि ३ (ई० सन् १६५२ की ३० अप्रैल) को प्रारभ हुआ था।

मआसिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ६०० ।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसके साथ ही इन्हे (अजमेर सूबे का) मलारना प्रांत जागीर मे मिला था।

४ वि० स० १७०५ (ई० सन् १६४६ की फरवरी) मे कधार पर ईरानियों ने अधिकार कर लिया था।

ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इडिया, पृ० ४०२।

५. ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इडिया, पृ० ४०३। इसके पहले दो बार औरगजेब भी कधार-विजय मे असफल हो चुका था।

ही इन्हे 'महाराजा' का खिताब भी दिया गया । इसके बाद यह सीसोदिया सर्वदेव की कन्या से विवाह करने को मथुरा पहुँचे और वहा से जोधपुर चले आएँ ।

इसी साल जब राठोड महेशदास के पुत्र रत्नसिंहजी जालोर छोड़कर मालवे की तरफ चले गए और वहा पर उन्हे दूसरी जागीर मिल गई, तब बादशाह ने उक्त प्रात भी महाराज को सौंप दियाँ । इससे वि० स० १७१३ मे वहा पर महाराज का अधिकार हो गया ।

इन्हीं दिनो मारवाड मे सींधलो ने उपद्रव मचाना शुरू किया । जैसे ही इसकी सूचना महाराज को मिली, वैसे ही इन्होने उन्हे दबाने के लिये एक सेना रवाना की । उसने सींधलो को परास्त कर उनके मुख्य स्थान पाचोटा और कवला नामक गावो को लूट लिया ।

---

१ 'मआसिरुलउमरा', भा० ३, पृ० ६०० ।

ख्यातों मे इस मनसब वृद्धि का समय वि० स० १७१० की माघ वदि ३ लिखा है । परन्तु 'मआसिरुलउमरा' म इसका समय शाहजहाँ का २६ वॉ राज्यवर्ष दिया है, जो हि० सन् १०६५ की जमादिउल आखिर की १ तारीख से प्रारभ हुआ था । उक्त तारीख वि० स० १७१२ की चैत्र शुक्ला ३ (ई० सन् १६५५ की ३० मार्च) को आती है ।

ख्यातो मे यह भी लिखा है कि बादशाह ने वि० स० १७११ मे मेवाड के महाराणा राजसिंहजी से ४ परगने जब्त कर लिए थ । उनमे से बदनोर का परगना कार्तिक सुदि ५ को महाराज को दे दिया गया और कुछ काल बाद मेरूड का परगना भी महाराज की जागीर मे मिला दिया ।

२ 'मआसिरुलउमरा', भा० ३, पृ० ६०० । ख्यातो मे इसका नाम वीरमदेव लिखा है । यह सीसोदिया सूरजमल का पुत्र था ।

३ ख्यातों मे यह भी लिखा है कि इसी साल महाराज ने पचोली मनोहरदास को अपनी रोहतक के जिले की जागीर का प्रबध करने के लिये भेजा था । यह जागीर भी इन्हें बादशाह ने मनसब की वृद्धि के साथ ही दी थी ।

४ ख्यातों से ज्ञात होता हे कि बादशाह ने यह (जालोर का) परगना इन्हे मलारना प्रात की एवज मे दिया था । रत्नसिहजी के मनसब के लिये देखो 'मआसिरुलउमरा', भा ३ पृ० ४४६–४४७ । परन्तु वहॉ पर मालवे की जागीर का उल्लेख नहीं है ।

वि० सं० १७१४ (ई० स० १६५८) में बादशाह शाहजहाँ बीमार हो गया और साथ ही लोगों में उसके मरने की अफवाह फैल गई। इस पर उसका बड़ा पुत्र दाराशिकोह उसे दिल्ली से यमुना के मार्ग द्वारा आगरे ले आया। इसकी सूचना पाते ही शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शाहजादे शुजा ने अपने को स्वयं बंगाल में बादशाह घोषित कर दिया और इसके बाद वह सेना साथ ले कर पटने के मार्ग से आगरे की तरफ चला। तीसरा पुत्र औरंगजेब राज्य पर अधिकार करने की इच्छा से दल-बल-सहित दक्षिण से रवाना हुआ और चौथा पुत्र मुराद अहमदाबाद (गुजरात में) तख्त पर बैठ गया। यह देख दाराशिकोह ने बादशाह से कहकर महाराज का मनसब ७,००० जात और ७,००० सवार (जिनमें ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) का करवा दिया और इसी के साथ इन्हें १०० घोड़े, जिनमें एक सुनहरी जीन का महाराज की सवारी के लिये था, चाँदी की अम्बारीवाला एक हाथी, एक हथिनी, एक लाख रुपए नक़द तथा मालवे की सूबेदारी दिलवाई। इसके बाद यह दारा के आग्रह से औरंगजेब को रोकने के लिये उज्जैन की तरफ भेजे गए और इनकी मदद के लिये शाही लश्कर के साथ कासिमखाँ नियत किया गया। साथ ही इन (महाराज) को यह भी कह दिया गया था कि यदि आवश्यकता समझें, तो गुजरात पहुँच मुराद को वहाँ से निकाल दें[3]। जब महाराज के उज्जैन पहुँचने[4] का समाचार औरंगजेब को मिला, तब उसने अपनी सेना में और भी वृद्धि कर इन्हें रोकने का प्रयत्न किया। इसी बीच

१ 'मआसिरुलउमरा' में इस घटना का शाहजहाँ के ३० वें राज्य-वर्ष में होना लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ६००)। परन्तु [illegible] का ३० वर्ष [illegible] (देखो पृ० [illegible])। यह ३० वर्ष वाली गणना अँगरेजी वर्ष के हिसाब से की गई प्रतीत होती है।

विन्सेंटस्मिथ की ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ४०६।

'आलमगीरनामा (पृ० २७) और मारवाड़ की ख्यातों में इस घटना का समय हि० सन् १०६७ की ७ जिलहिज और वि० सं० १७१४ (ई० सन् १६५७) दिया है। ये सब आपस में मिलते हैं।

२ 'मआसिरुलउमरा', भा० ३, पृ० ६००-६०१। 'आलमगीरनामे' में दाराशिकोह का मालवा अपनी जागीर में लेकर महाराज जसवंतसिंहजी को उधर भेजना लिखा है (देखो पृ० ३७)।

३ 'आलमगीरनामा', पृ० ३२-३३।

४ ख्यातों में वि० सं० १७१४ की माघ वदि ४ को इनका उज्जैन में पहुँचना लिखा है।

बहुत से शाही अमीर देपालपुर मे पहुँच, बादशाह के विरुद्ध, औरंगजेब से मिल गए।[1] इस पर उसने उन्हे मनसब और खिलअत आदि देकर अपना मार्ग सुगम कर लिया। साथ ही उसने अपने छोटे भाई मुराद को भी बादशाहत का लालच देकर अपनी सहायता के लिये बुलवाया। इसकी सूचना पाते ही महाराज मुराद को रोकने के लिये उज्जैन से रवाना हुए। खाचरोद से ३ कोस के फासले पर पहुँच जाने पर इनकी और मुराद की सेनाओ के बीच १८ कोस का फासला रह गया। परन्तु उसने अकेले ही महाराज की सेना से मुकाबला करना हानिकारक जान तत्काल अपना मार्ग पलट दिया और यथासभव दूसरे रास्ते से चलकर औरंगजेब से जा मिलने की कोशिश करने लगा। इसी बीच महाराज ने शाही जासूसो के द्वारा दोनो शाहजादो की गति-विधि जानने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु औरंगजेब ने नर्मदा के घाटो का पूरी सतर्कता से प्रबन्ध कर रक्खा था। इसलिये शाही जासूसो की अकर्मण्यता या विश्वासघात के कारण महाराज को उसकी सेना का यथार्थ समाचार न मिल सका। इसी बीच देपालपुर के पास मुराद भी उससे जा मिला।[2] इसके बाद महाराज को माडू के किलेदार राजा सेवाराम के पत्र से ज्ञात हुआ कि औरंगजेब मालवे की तरफ आ रहा है और मुरादबख्श उससे जा मिला है। इस पर यह तत्काल खाचरोद से उसके मुकाबले को चले। इनके उज्जैन पहुँचने तक दोनो शाहजादे भी वहाँ से सात कोस के फासले पर धर्मतपुर के पास पहुँच चुके थे। यह देख महाराज ने उससे एक कोस के फासले पर अपने डेरे लगा दिए। इसी बीच चालाक शाहजादे औरंगजेब ने दूत द्वारा महाराज से कहलाया कि हम तो अपने पिता की बीमारी का हाल सुनकर उससे मिलने जाते है, ऐसी हालत मे आप हमारा मार्ग क्यो रोकते है?[3] परन्तु महाराज ने, जो उसके रग-ढग से परिचित थे, उत्तर मे लिख भेजा कि यदि आप पिता के कुशल-समाचार पूछने को ही जाना चाहते हैं, तो इतनी बडी सेना को साथ ले जाने की क्या आवश्यकता

१ 'आलमगीरनामा', पृ० ५५।

२ 'आलमगीरनामा', पृ० ५६-५७।-वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि औरंगजेब ने नर्मदा पर की नावो पर अधिकार कर इधर की खबर उधर जाने का मार्ग ही रोक दिया था। इसके बाद ई० सन् १६५८ की ३ अप्रेल (वि० स० १७१५ की चैत्र सुदि १०) को उसने नर्मदा को पार किया और उज्जैन के पास पहुँचने पर उसकी और मुराद की सेनाएँ आपस मे मिल गई।

ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इडिया, पृ० ४०६-४१०।

३ 'आलमगीरनामा', पृ० ५८।

है। हाँ यदि आप वास्तव में ही पिता से मिलना चाहते हैं, तो इस विशाल-वाहिनी को यहीं छोड़ थोड़े से खास पुरुषों के साथ आगरे जा सकते हैं। जब औरङ्गजेब ने महाराज पर अपना रंग जमता न देखा, तब उसने गुप्त रूप से शाही सेना के नायक कासिमखाँ को अपनी तरफ मिला लिया। इसके बाद वि० सं० १७१५ की वैशाख वदि ८ (ई० स० १६५८ की १५ अप्रेल) को महाराज और शाहजादों की सेनाओं के बीच युद्ध ठन गया। जैसे ही दोनों सेनाओं का सामना हुआ, वैसे ही महाराज की सेना के हाडा मुकुन्दसिंहजी (कोटा नरेश), राठो० रत्नसिंहजी (रतलाम नरेश), झाला दयालदास, गौड अर्जुन (अजमेर-प्रान्त के राजगढ़ का राजा) आदि वीरों ने आगे बढ़ औरङ्गजेब के तोपखाने पर आक्रमण कर दिया और उसको विध्वस्त कर ये लोग उसकी हरावल (आगे की) फौज पर टूट पड़े। महाराज जसवन्तसिंहजी भी, जो स्वयं सेना के मध्यभाग का संचालन कर रहे थे, आगे बढ़ गए और शाहजादों की सेना की कतारों को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए औरङ्गजेब से सम्मुख रण में लोहा लेने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु इसी अवसर पर शाही सेना के नायक कासिमखाँ के विश्वास-घात से शाही तोपखाने का बारूद समाप्त हो गया और उसके रिश्तेदारों ने, जो उक्त तोपखाने के संचालक थे, एकाएक अपनी तोपों का मुँह बन्द कर दिया। स्वयं कासिमखाँ भी ऐन मौके पर शाही सेना के साथ रणाङ्गण से भाग खड़ा हुआ। इससे महाराज चारों ओर शत्रुओं से घिर गये। ऐसे समय राठोड़ रत्नसिंहजी आदि ने महाराज के पास पहुँच प्रार्थना की कि अब आपका यहाँ ठहरना उचित नहीं है, क्योंकि विश्वास-घाती सेना-नायक कासिमखाँ ने सारा मामला चौपट कर दिया है। साथ ही बचे हुए मुट्ठीभर राजपूत योद्धा भी अधिक समय तक रणस्थल को सभाले रखने में असमर्थ हैं। यद्यपि इस पर भी महाराज की इच्छा रणस्थल से हटने की न थी, तथापि रत्नसिंहजी

१ ख्यातों में लिखा है कि महाराज के साथ के २२ शाही अमीरों में से १५ मुसलमान अमीर औरङ्गजेब से मिल गए थे, केवल ७ हिन्दू नरेश और सरदार महाराज के साथ रह गए थे।

२ विन्सेंटस्मिथ ने इस युद्ध का धर्मत में होना लिखा है। यह स्थान उज्जैन से १४ मील (दक्षिण की तरफ झुकता हुआ) नैर्ऋत कोण में था। (ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ४१०)। परन्तु ख्यातों में इसका चोरनराणा गाँव के पास होना पाया जाता है। साथ ही आलमगीरनामे से दोनों स्थानों का एक दूसरे के निकट होना सिद्ध होता है (पृ० ५६)। कहीं-कहीं युद्ध की तिथि ८ के बदले ६ भी लिखी है।

३ आलमगीरनामा' पृ० ६६-६७।

ने सेना-सचालन का भार स्वय लेकर अपने वश के नायक महाराज को वहाँ से टल जाने पर बाध्य किया।[1] अत मे हाडा मुकनसिंह, सीसोदिया सुजानसिंह, राठोड रत्नसिंह, गौड अर्जुन, झाला दयालदास और मोहनसिंह आदि वीरो के मारे जाने से खेत औरङ्गजेब के हाथ रहा। राजा रायसिंह सीसोदिया, राजा सुजानसिंह बुंदेला और अमरसिंह चद्रावत आदि कुछ सरदार औरङ्गजेब के हमले से घबराकर अपनी-अपनी फौजो के साथ अपने-अपने देशो की तरफ भाग निकले।[2] रणस्थल का यह रग देख महाराज को भी लाचार हो मारवाड की तरफ रवाना होना पडा।[3] यद्यपि महाराज को

१ इस बात की पुष्टि ईश्वरीदास की लिखी 'फतूहाते आलमगीरी' से भी होती है। उसमे लिखा है –

"जसवतसिंह सम्मुख युद्ध मे लडकर प्राण देना चाहते थे। परन्तु महेशदास, आसकरण आदि उनके प्रधान उनके घोडे की लगाम पकड कर उन्हे बलपूर्वक वहाँ से ले आए (देखो पृ० २१)।

मीर मुहम्मद मासूम की लिखी 'तारीखे शाहशुजाई' मे 'महाराज का आहत होकर रणस्थल मे गिरना और उनके योद्धाओ का उन्हे जबरदस्ती रणस्थल से हटा ले जाना लिखा है (देखो पृ० ५०)।

आकिलखाँ अपनी 'वाकयाते आलमगीरी मे लिखता है कि–राजा जसवतसिंह के दो जख्म लगने पर भी वह बहादुरी के साथ रणस्थल मे खडा रहकर जहाँ तक हो सका, अपने वीरों को उत्साहित करता रहा (देखो पृ० ३१)।

मनूची ने लिखा है–राजा जसवत तब तक बराबर वीरता से लडता रहा, जब तक उसके अधिकाश योद्धा वीरगति को न प्राप्त हो गए और पीछे बहुत ही थोडे बच रहे (देखो भा० १, पृ० २५६)।

इन अवतरणो से खाफीखॉ (मोहम्मद हाशम) के महाराज पर युद्धस्थल से भाग जाने के दोषारोप का स्वय ही खडन हो जाता है (मुतखिबुललुबाब, भा० २, पृ० ४३)। इसी प्रकार आगे दिए बर्नियर के अवतरण से भी खाफीखॉ के इस लेख का खडन होता है।

२ आलमगीरनामा', पृ० ७०-७१।

३ युद्ध का यह इतिहास आलमगीरनामा, सहरुल मुताखरीन, मआसरे आलमगीरी, मारवाड की ख्यात और बर्नियर के सफरनामे से लिया गया है। बर्नियर लिखता है कि यद्यपि वह स्वय इस युद्ध मे शरीक नही हुआ था तथापि उसने जो कुछ हाल लिखा है, वह औरगजेब की तरफ के तोपखाने मे काम करने वाले फ्रांसीसियों से सुनकर ही लिखा है। वह लिखता है –

"परन्तु शाहजहाँ ने राजा जयसिंह और दिलेरखॉ को शुजा के विरुद्ध भेजते हुए जैसी शिक्षा ("जहाँ तक बने लडाई न की जाय और शुजा को उसके प्रात को लौट जाने के लिये बाध्य करने मे कोई बात न उठा रक्खी जाय–" पृ० ३७) दी थी, वैसी ही सावधानी स काम करने का इनको भी कहा।

अपने थोड़े से वीरों के साथ जाते हुए देख शाहज़ादों के सैनिकों ने उनका पीछा करने का विचार किया, तथापि औरंगज़ेब ने, जो राठोड़ों की तलवारों का पानी देख चुका

"औरंगज़ेब को भय था कि कहीं बादशाही सेना नदी के पार उतर कर उसके थके माँदे सैनिकों पर आक्रमण न कर दे। औरंगज़ेब का ऐसा सोचना उचित था, क्योंकि उस समय उसके सैनिक सचमुच लड़ने योग्य नहीं थे। यदि कासिमख़ाँ और राजा साहब इस अवसर पर आक्रमण कर देते, तो जीत अवश्य उन्हीं की होती। परन्तु कासिमख़ाँ और राजा साहब ऐसा किस तरह करते, क्योंकि उनको तो बादशाह की गुप्त आज्ञा के कारण केवल इतना ही करने का अधिकार था कि नदी के इस पार उपस्थित रहें और यदि औरंगज़ेब इस तरफ़ आना चाहे, तो उसे रोकें।

"राजा जसवतसिंह ने बड़ी ही वीरता और युक्ति से शत्रुओं को पद-पद पर रोका। परन्तु कासिमख़ाँ ने इस अवसर पर न तो कुछ वीरता ही दिखलाई, न कुछ सामरिक युक्ति ही प्रकट की। उलटा उस पर यह सन्देह किया जाता है कि उस अवसर पर उसने विश्वासघात किया था और लड़ाई से पहले ही रात के समय अपनी ओर का सब गोली-बारूद रेत में छिपा दी थी। इसका यह परिणाम हुआ कि लड़ाई के समय कुछ बाड़ दागने के बाद इधर की सेना के पास इस प्रकार का कोई सामान न रहा। अस्तु, कुछ भी हो, परन्तु युद्ध घमसान हुआ, और घाट के रोकने में सैनिकों ने बड़ी वीरता दिखाई। उधर औरंगज़ेब की यह दशा हुई कि बड़े-बड़े पत्थरों के कारण, जो नदी के पाट में थे, उसको बहुत कष्ट हुआ और किनारों की ऊँचाई के कारण ऊपर चढ़ना दुश्वार जान पड़ा। तथापि मुरादबख़्श के साहस ने इन सब कठिनाइयों को दूर कर दिया। वह अपनी सेना के साथ पार उतर आया, और पीछे से बाकी सैनिक भी बहुत शीघ्र आ पहुँचे। उस समय कासिमख़ाँ जसवतसिंह को घोर संकट में छोड़कर बड़ी अप्रतिष्ठा के साथ लड़ाई के मैदान से भाग निकला। इससे यद्यपि वीर राजा जसवतसिंह पर चारों ओर से शत्रु-सैन्य टूट पड़ा। तथापि उनके साथ के साहसी राजपूतों ने अपने प्राणों की बलि दे उन्हें बचा लिया। लड़ाई के आरम्भ में इन वीरों की संख्या ८००० थी। परन्तु इस भयंकर युद्ध के बाद इनमें से केवल ६०० ही जीवित बचे थे। इस घटना के बाद अपना आगरे जाना उचित न जान राजा जसवत इन बचे हुए स्वामिभक्त सैनिकों के साथ अपने देश को चले गए।

बर्नियर की भारत-यात्रा (हिन्दी-अनुवाद), भा० १ पृ० ४०-४२।

कर्नल टाड ने महाराज पर यह दोष लगाया है कि यदि वह मुराद और औरंगज़ेब को आपस में मिलने न देकर पहले ही युद्ध छेड़ देते, तो औरंगज़ेब को सफलता न होती (टॉड का राजस्थान का इतिहास (क्रुक-संपादित), भा० २ पृ० ६८०)। परन्तु उस समय के तटस्थ लेखक बर्नियर के ऊपर उद्धृत किए लेख से यह और इसी प्रकार के अन्य दोष भी निवृत्त हो जाते हैं।

आगे बर्नियर ने महाराज जसवतसिंहजी के असफल होकर लौटने पर उनकी सीसोदनी रानी का किले के द्वार बंद करवा देना और अंत में अपनी माता के आकर समझाने पर शांत होना लिखा है (बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ४३-४४)। वीरविनोद के लेखक ने भी इस कथा का उल्लेख कर इस रानी को बूँदी के राव हाडा शत्रुसाल की कन्या लिखा है। 'मुतख़बुललुबाब'

था, उनको फिर से छेड़कर नाहक खतरा मोल लेना उचित न समझा[1]। इस प्रकार रणस्थल से लौटकर महाराज सोजत[2] पहुँचे और चार दिन वहाँ ठहरकर जोधपुर चले आए।

इसके बाद औरङ्गज़ेब भी वहाँ से आगे बढ़कर आगरे से ७ कोस के फासले पर समूगढ़[3] (फतहाबाद) के पास पहुँचा। यहाँ पर स्वयं शाहजादे दारा से उसका सामना हुआ। इस युद्ध में दारा की सेना के वाम-पार्श्व के सेनापति राठोड़ वीर रामसिंह ने अपने प्राणों की परवा छोड़ बड़ी वीरता दिखलाई। उसने शत्रु-सेना की पङ्क्तियों को चीरकर मुराद को घायल कर दिया और साथ ही जिस हौदे (अम्बारी) में मुराद बैठा था, उसका रस्सा काटकर निकट था कि वह उसे हाथी पर से गिरा देता, इतने ही मे एक तीर उसके मर्म-स्थान पर आ लगा। इससे वह इस कार्य में सफल होने के पूर्व ही वीरगति को प्राप्त हो गया। इसके बाद दारा के दाहने भाग के सेनापति खलील-उल्लाहखाँ के विश्वासघात से दारा की विजय पराजय में परिणत हो गई। इससे दारा

मे भी कुछ इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है (देखो भा० २, पृ० ४३)। परन्तु हमारी समझ मे बर्नियर ने यह कथा राजपूत-वीराङ्गनाओं की तारीफ मे सुनी-सुनाई किंवदंतियों के आधार पर ही लिखी है, और 'मुतखबुललुबाब' के लेखक ने हिन्दू-नरेश की वीरता को भुलावे मे डालने का उद्योग किया है। वास्तव मे न तो स्वामिभक्त किलेदार सरदार ही रानी के कहने से अपने वीर स्वामी के विरुद्ध ऐसी कार्रवाई कर सकता था, और न इस प्रकार उदयपुर महाराना या बूँदी के राव की रानी ही अपनी पुत्री को समझाने के लिये जोधपुर आ सकती थी। अतः यह कथा विश्वास-योग्य नहीं है। रही महाराज के सम्मुख रण में लोहा लेने की बात। इस विषय मे पहले ही फारसी तवारीखो के अवतरण उद्धृत किए जा चुके हैं।

१ आलमगीरनामा, पृ० ७३ 'तवारीख मुहम्मदशाही' मे लिखा है कि जब युद्धस्थल से लौटते हुए महाराज अपने ३०० सवारों के साथ शाहजादो की बाईं ओर से बड़े ठाट के साथ निकले, तब सैनिकों के उकसाने पर भी औरङ्गजेब की इन्हें छेड़ने की हिम्मत न हुई। इसके बाद भी वह अक्सर कहा करता था कि-खुदा की मनशा हिन्दुस्थान मे मुसलमानी मजहब कायम रखने की थी, इसी से उस दिन वह (जसवतसिंह) युद्ध से चला गया। यदि ऐसा न हुआ होता, तो मामला कठिन था।

कहीं-कहीं इस युद्ध मे महाराज की तरफ के करीब ६,००० आदमियो का मारा जाना लिखा है।

२ ख्यातो मे इनका वि० स० १७१५ की वैशाख सुदि १ को सोजत पहुँचना लिखा है।

३ ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ४१०।

४ बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ५५-५६।

५ बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ५५-५७।

भागकर आगरे पहुँचा और वहाँ से दिल्ली की तरफ चला गया। औरंगजेब ने आगरे पहुँच अपने पुत्र सुलतान मुहम्मद द्वारा वहाँ के किले पर अधिकार कर लिया और स्वयं बादशाह शाहजहाँ को कैद कर, दारा के पीछे चला। मार्ग में, मथुरा पहुँच उसने मुराद को भी धोखे से शराब पिलाकर कैद कर लिया। इसके बाद वह दिल्ली से भागकर लाहौर की तरफ जाते हुए दारा के पीछे चला और मार्ग में [illegible]बाद में उसने अपने तख्त पर बैठने की रस्म पूरी की।

इसके बाद उसने वि० सं० १७१५ की भादों वदि ११ (ई० स० १६५८ की १४ अगस्त) को, आंबेर-नरेश जयसिंहजी द्वारा महाराज जसवन्तसिंहजी को समझा-बुझाकर अपने पास बुलवाया। यह भी समय की गति [illegible] उससे मिलने को [illegible] पहुँचे। इस पर आलमगीर ने खासा खिलअत, जड़ाऊ [illegible] और चाँदी के साज का एक हाथी और एक हथिनी तथा एक बढ़िया [illegible] इनायत किये[3]। इसी के कुछ दिन बाद [illegible] तट पर पहुँचने पर उस (आलमगीर) ने महाराज को खासा खिलअत, जड़ाऊ तलवार, मोतियों का एक गुच्छा और एक परगना, जिसकी आमदनी एक करोड़ दाम (करीब २५ लाख रुपये) की थी, देकर दिल्ली को रवाना किया, और साथ ही अपने लौटने तक उनसे वहाँ की हिफाजत करते रहने का आग्रह किया। इसी के अनुसार यह दिल्ली चले आए।

आलमगीरनामे में लिखा है कि इस युद्ध में [illegible] राठोड़ रूपसिंह ने भी बड़ी वीरता दिखाई थी। [illegible] पहुँच और [illegible] पर घोड़े से [illegible] हो गया। उसकी इस वीरता को देख [illegible] परन्तु उसके [illegible] कार्यों को देखकर [illegible] (देखो पृ० १०२-१०३)।

१ उस दिन वि० सं० १७१५ की [illegible] (ई० स० १६५८ की [illegible] जुलाई) थी।
मआसिरे आलमगीरी, पृ० ८।

२ ख्यातों में लिखा है कि जिस समय औरंगजेब ने महाराज को सेना-सहित बुलवाया था, उस समय ५०,००० रुपये तो [illegible] के शाही खजाने से उनके पास भिजवाए थे और ५०,००० की हुंडियाँ भेजी थीं। इस पर महाराज मथुरा में पहुँच उससे मिले। परन्तु फारसी तवारीखों में इसका उल्लेख नहीं है।

३ आलमगीरनामा, पृ० १८३।

४ आलमगीरनामा, पृ० १८६।

५ ख्यातों में इनका वि० सं० १७१५ की आसोज सुदि १ को दिल्ली पहुँचना लिखा है।

औरङ्गजेब को इस प्रकार अपना पीछा करते हुए देख दारा पंजाब से मुलतान की तरफ होता हुआ ठट्ठे (सिन्ध) की तरफ चला गया[1]। इस पर वि० सं० १७१५ के मँगसिर (ई० स० १६५८ की नवम्बर) में जब आलमगीर दिल्ली की तरफ लौटा, तब महाराजा जसवन्तसिंहजी भी मार्ग में पहुँचकर उससे मिले। उस समय फिर उसने खासा खिलअत और एक नादरी (सदरी) देकर इनका सम्मान किया[2], तथा मँगसिर सुदि ६ (२३ नवम्बर) को (नौरोज के उत्सव पर) इन्हे एक जड़ाऊ तुर्रा दिया[3]।

इसके बाद जब बादशाह को शुजा की चढ़ाई की सूचना मिली, तब उसने अपने पुत्र मुहम्मद सुलतान को उसके मुकाबले को रवाना किया और शाह शुजा के इलाहाबाद के पास (कोड़े से ४ कोस पर) पहुँचने तक स्वयं भी वहाँ जा पहुँचा। वि० सं० १७१५ की माघ वदि ६ (ई० स० १६५९ की ४ जनवरी) को खजवे के पास दोनों सेनाओं के बीच युद्ध की तैयारी हुई। उस समय महाराज औरङ्गजेब की सेना के दक्षिण-पार्श्व के सेनापति थे। ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसी बीच शाह शुजा ने पत्र लिखकर महाराज से प्रार्थना की कि आप जैसे वीर और मनस्वी राठोड़ के विद्यमान होते हुए भी औरंगजेब ने अपने वृद्ध पिता (बादशाह शाहजहाँ) को कैद कर लिया है और अब भाइयों को मार डालने की चिंता में है। इसलिये आपको मेरी सहायता कर वृद्ध बादशाह का संकट-मोचन करना चाहिए। इस पर महाराज

१ इसके बाद दाराशिकोह ठट्ठे के किले का प्रबंध कर अहमदाबाद चला गया। बर्नियर लिखता है-"उस समय वहाँ का सूबेदार औरंगजेब का श्वसुर शाह नवाजखाँ था। उसने युद्ध की यथेष्ट सामग्री रहते हुए भी नगर के द्वार खोल दिए, और दारा का बड़ा आदर-सत्कार किया। यद्यपि लोगों ने दारा से कह दिया था कि यह पुरुष कपटी है, तथापि उसके सरल व्यवहार से मुग्ध होकर दारा ने उस पर विश्वास कर लिया, और राजा जसवंतसिंह आदि ने शीघ्र सेना लेकर उसकी सहायता में पहुँचने के बारे में जो पत्र लिखे थे, उन्हे भी उसको दिखला दिया। इसके बाद जब औरंगजेब को दारा के अहमदाबाद पहुँचने की सूचना मिली, तब पहले तो उसने उस पर चढ़ाई करने का विचार किया। परन्तु अंत में यह सोचकर कि अहमदाबाद की तरफ जाने में प्रबल पराक्रमी राजा जयसिंह और जसवंतसिंह के राज्यों में से होकर जाना पड़ेगा उसने वह विचार छोड़ दिया और इसीसे वह शाहजादे शुजा को रोकने के लिये इलाहाबाद की तरफ चल पड़ा।

बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ७६-८०।

२ आलमगीरनामा, पृ० २२०।

३. आलमगीरनामा, पृ० २२६।

ने उसे कहला दिया कि आज रात के पिछले पहर में शाहजादे मुहम्मद की सेना पर पीछे से आक्रमण कर दूँगा। तुम भी उसी समय उस पर सामने से टूट पड़ना। इसप्रकार आलमगीर की सेना का बल आसानी से नष्ट हो जायगा। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार महाराज ने उसी रात को राठोड़ महेशदास, रामसिंह और हरराम तथा चौहान बलदेव आदि को साथ लेकर मुहम्मद सुलतान की सेना के पिछले भाग पर आक्रमण कर दिया। इससे घबराकर वह इधर-उधर भागने लगी। यह देख महाराज ने आगे बढ़ शाही सेना का खजाना और सामान लूट लिया। परन्तु शुजा के निश्चित समय पर आक्रमण न कर सकने के कारण अंत में यह बादशाही सेना की पहुँच से कुछ दूर हटकर ठहर गए, तथा प्रातःकाल होते-होते मारवाड़ की तरफ़ रवाना हो गए।

यद्यपि इसी बीच शुजा ने भी आक्रमण कर घबराई हुई आलमगीरी सेना में और भी हलचल मचा दी और निकट था कि वह विजय प्राप्त कर लेता, परन्तु ऐसे ही समय अलीवर्दीखाँ के कहने से शुजा हाथी से उतरकर घोड़े पर सवार हो गया। इससे अपने मालिक को यथास्थान न देख उसकी सेना ने उसे मारा गया समझ लिया और वह मैदान से भाग खड़ी हुई। इस पर शुजा को भी प्राण लेकर भागना पड़ा।

बर्नियर लिखता है कि जिस समय महाराज जसवंतसिंहजी मारवाड़ की तरफ़ जाते हुए आगरे पहुँचे, उस समय औरङ्गजेब का मामू शाइस्ताखाँ, जो उस समय आगरे की देखभाल के लिये नियत था, इतना घबरा गया कि तत्काल विष पान कर आत्म-हत्या कर लेने के लिये उद्यत हो गया। यह देख बादशाही अंतःपुर की बेगमों ने उसके हाथ से विषपात्र छीनकर उसके प्राणों की रक्षा की।

१. आलमगीरनामा, पृ० २५४ से २५६। उसमें यह भी लिखा है कि जसवंतसिंह के इस हमले से आधी के करीब बादशाही फौज बिखर गई थी। मआसिरे आलमगीरी से भी इसकी पुष्टि होती है (देखो पृ० १३-१४)।

२. बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ८१-८३।

३. ख्यातों में लिखा है कि यह मार्ग के नगरों को लूटते हुए आगरे के पास से होकर गए थे। मार्ग में इन्हें जयपुर-नरेश जयसिंहजी ने औरंगजेब का भय दिखलाकर समझाने की चेष्टा की थी। परन्तु इन्होंने उसकी कुछ भी परवा नहीं की।

वही आगे लिखता है कि—उस समय यदि जसवतसिंहजी चाहते, तो शाहजहाँ को कैद से छुडवा सकते थे। परन्तु समय की गति को देख[1] उन्होने वहाँ अधिक ठहरना उचित न समझा। इसलिये कुछ ही देर बाद वह जोधपुर की तरफ रवाना हो गए[2]।

शुजा से निपटकर औरगजेब फतहपुर चला आया, और उसने अपने साथ की महाराज की शत्रुता का बदला लेने के लिये वि० स० १७१६ की माघ सुदी ४ (ई० सन् १६५९ की १६ जनवरी) को अमीनखाँ मीरबख्शी को (९,००० सवारो[3] की) एक सेना देकर जोधपुर पर चढाई करने की आज्ञा दी। साथ ही स्वर्गवासी राव अमरसिंहजी के पुत्र राव रायसिंह को राजा का खिताब, मारवाड का राज्य, चार-हजारी जात और चार हजार सवारो का मनसब, तथा १,००,००० रुपये और खिलअत आदि देकर उसके साथ कर दिया[4]। इसके बाद वह स्वय भी अपना आगरे की तरफ जाना स्थगित कर अजमेर की तरफ चल पडा[5]। इसकी सूचना पाकर महाराज ने १०,००० योद्धाओ[6] के साथ अपने सेनापति राठोड नाहरखाँ[7] को शाही सेना के मुकाबले के लिये आगे रवाना किया। इस पर वह मेडते पहुँच शाही सेना की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ दिन बाद महाराज ने भी दलबल-सहित जोधपुर से आगे बढ बीलाडा गाँव में अपना शिविर कायम किया।

१ उस समय के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि उस अवसर पर बडे-बडे मुसलमान अमीर औरगजेब से मिल गए थे और शाहजहाँ वृद्धावस्था, बीमारी और शाहजादो की उद्दडता से किकर्तव्य विमूढ हो रहा था। इसलिये उसको फिर से गद्दी पर बिठाकर झगडे को शात करना असभव था।

२ बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ८३-८४।
ख्यातो में इनका वि० स० १७१५ की माघ सुदि १० को जोधपुर पहुँचना लिखा है।

३ मआसिरे आलमगीरी, पृ० १७।

४. आलमगीरनामा पृ० २५५।

५ आलमगीरनामा, पृ० २६२।

६ किसी-किसी ख्यात मे इस अवसर पर ५०,००० योद्धाओं का एकत्रित किया जाना लिखा है।

७. यह आसोप ठाकुर कूपावत राजसिंह का पुत्र था।

इसी बीच गुजरात से दाराशिकोह का भेजा हुआ एक पत्र महाराज को मिला। उसमें उसने अपनी सहायता के लिये इनसे प्रार्थना की थी। महाराज ने भी इस बात को अंगीकार कर लिया। इसकी सूचना पाते ही औरंगजेब घबराया और उसने इधर तो मोहम्मद अमीनखाँ को वापस बुलवा लिया और उधर आंबेर-नरेश जयसिंहजी के द्वारा महाराज के पास फरमान भिजवाकर इन्हें शांत करने की चेष्टा करने लगा। जब जयसिंहजी के बीच में पड़ने से महाराज को बादशाह की तरफ का विश्वास हो गया, तब यह भी बीलाड़े से जोधपुर वापस चले आए और इन्होंने दाराशिकोह को लिख दिया कि जब तक आप किसी अन्य बड़े नरेश को भी अपना सहायक न बना लें, तब तक अकेले मेरा आपकी सहायता में खड़ा होना निरर्थक ही है। इस समय तक दाराशिकोह भी २२ हजार सेना के साथ मेड़ते के पास पहुँच चुका था। इसलिये उसने महाराज के इस पत्र को पाकर भी इन्हें अपनी तरफ करने का बहुत कुछ उद्योग किया। परन्तु महाराज ने दबे हुए झगड़े को फिर से खड़ा करना उचित न समझा। अन्त में दाराशिकोह निराश होकर अजमेर की तरफ चला गया[3]। इसके बाद जब औरंगजेब अजमेर के निकट पहुँचा, तब फिर दोनों भाइयों की सेनाओं के बीच युद्ध हुआ। परन्तु इस बार भी दारा को हारकर भागना पड़ा। यह घटना वि० सं० १७१६ की चैत्र सुदि २ (ई० सन् १६५९ की १४ मार्च) को हुई थी[4]।

इस युद्ध में विजय प्राप्त कर आलमगीर ने महाराज के लिये गुजरात की सूबेदारी का फरमान और खासा खिलअत भेजकर उनका पहले का ७,००० जात और ७,००० सवारों का मनसब (जिसमें ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) अंगीकार कर लिया। साथ ही इन्हें गुजरात जाकर वहाँ का प्रबंध करने और महाराजकुमार

१. आलमगीरनामे में महाराज जसवंत का अपनी तरफ से दारा को पत्र लिखकर सहायता देने का वादा करना और बुलवाना लिखा है (देखो पृ० ३००)।

२. ख्यातों में इस फरमान का वि० सं० १७१५ की चैत्र वदि ११ को महाराज के पास पहुँचना लिखा है।

३. आलमगीरनामा, पृ० ३०६-३११।

४. आलमगीरनामा, पृ० ३१६-३२०।

५. ख्यातों में इस फरमान का वि० सं० १७१६ की चैत्र सुदि ६ को जोधपुर पहुँचना लिखा है।

पृथ्वीसिंहजी को अपने पास भेजने का लिखा[1]। इसी के अनुसार महाराज सिरोही[2] की तरफ होते हुए अहमदाबाद चले गए[3], और वहाँ पर बरसात की मौसम में इन्होंने गुजरात के परगनों का दौरा कर कोली दूदा आदि उपद्रवियों को दबा दिया। इसकी सूचना पाकर बादशाह ने भी महाराज के लिये खिलअत भेजकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की[4]। इसी प्रकार ईद के त्यौहार पर भी इनके लिये खिलअत भेजा गया[5]।

१ आलमगीरनामा, पृ० ३३२।

२ ख्यातों से ज्ञात होता है कि जिस समय महाराज सिरोही में थे, उस समय इन्हें समाचार मिला कि भाटी राजपूतों ने जयसलमेर के रावल सबलसिंहजी की मदद पाकर पौकरण को घेर लिया है। यह सुनते ही इन्होंने राठोड़ सबलसिंह और मुहणोत नैणसी आदि को वहां जाकर शीघ्र ही भाटियों को भगा देने की आज्ञा दी। इसी आज्ञा के अनुसार ये लोग मारवाड़ में चले आए और महाराज के कुछ सरदारों को एकत्रित कर भाटियों के मुकाबले को चले। उस समय तक पौकरण के किले पर भाटियों का अधिकार हो चुका था। परन्तु राठोड़ों की सेना का आगमन सुनते ही वे स्वयं किला छोड़कर पीछे हट गए। यद्यपि रावल सबलसिंहजी स्वयं भी उनकी सहायता को पहुँच गए थे, तथापि युद्ध में भाटी, राठोड़ वीरों का मुकाबला करने का साहस न कर सके। इसके बाद महाराज की सेना ने जयसलमेर-राज्य में घुस आसणी-कोट तक लूट मार मचा दी। अंत में इस सेना के लौट आने पर भाटियों ने एक बार फिर पौकरण पर अधिकार करने का उद्योग किया। इसीसे पौकरण-स्थित राठोड-सेना के और भाटियों के बीच माडी के पास फिर युद्ध हुआ। यद्यपि भाटियों ने उक्त ग्राम में आग लगाकर बहुतसे घर जला दिए, तथापि उन्हें हारकर पीछे हटना पड़ा। इतने में मुहणोत नैणसी भी सेना लेकर वहाँ जा पहुँचा। इससे भाटी खेत छोड़कर भाग गए। यह देख राठोड़ सैनिकों ने भी आगे बढ़ जयसलमेर राज्य में फिर उपद्रव करना और भाटियों से माडी-गाँव के जलाने का पूरा-पूरा बदला लेना प्रारंभ किया। इसी बीच बीकानेर-नरेश करणसिंहजी जयसलमेर की राजकुमारी से विवाह कर लौटते हुए मार्ग में इधर आ पहुँचे और उन्होंने बीच में पड़ राठोड़ों और भाटियों के बीच मेल करवा दिया।

३ ख्यातों में वैशाख सुदि ४ को इनका अहमदाबाद पहुँचना लिखा है।

४ आलमगीरनामा, पृ० ३४६।

५ आलमगीरनामा, पृ० ४०४-४०५।

इस पर वि० स० १७१६ की श्रावण सुदि ६ (ई० सन् १६५६ की २१ जुलाई) को महाराज ने भी कुछ जवाहिरात और कुछ जड़ाऊ चीजें बादशाह के लिये भेजी थीं।

आलमगीरनामा, पृ० ४२०।

वि० स० १७१६ की मँगसिर सुदि ७ (ई० सन् १६५९ की १० नवम्बर) को इन्हे दुबारा "महाराजा" का खिताब मिला[1]।

पहले लिखा जा चुका है कि औरंगजेब ने महाराज को गुजरात की सूबेदारी पर भेजते समय इनके महाराजकुमार को अपने पास बुलवाया था। उसी के अनुसार पृथ्वीसिंहजी ने सोरो के मुकाम पर पहुँचकर बादशाह को दो हाथी भेट किए। बादशाह ने भी माघ सुदि १४ (ई० सन् १६६० की १६ जनवरी) को खिलअत, हीरो की धुगधुगी और मोतियो का गुच्छा देकर उनका सत्कार किया[2]। इसके कुछ दिन बाद उन्होने फिर दो हाथी बादशाह को भेट किए। बादशाह ने भी उन्हे फिर एक हीरे की धुगधुगी देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट[3] की।

इसके बाद बादशाह ने अपने तीसरे राज्यवर्ष के प्रारम की खुशी मे (वि० स १७१७ की प्रथम ज्येष्ठ सुदि १०=ई० सन् १६६० की ९ मई को) महाराज के लिये एक खिलअत भेजा[4]। इस पर महाराज ने भी वि० स० १७१७ की सावन वदि ४ (ई० सन् १६६० की १५ जुलाई) को कुछ जवाहिरात, जेवर और कच्छी

---

१ आलमगीरनामे मे ५ वीं रबीउल अव्वल लिखा है (देखो पृ० ४४६)। परन्तु मआसिरे आलमगीरी में ५ वीं के बदले ८वीं रबीउल अव्वल लिखा है। उसके अनुसार उसदिन मँगसिर सुदि १० (१३ नवम्बर) आती है (देखो पृ० २८)।

२ बादशाह औरंगजेब के समय का महाराज के नाम का एक फरमान मिला है। उससे प्रकट होता है कि उस समय महाराज जसवतसिंहजी गुजरात के प्रबन्ध करने में लगे थे और राजकुमार पृथ्वीसिंहजी बादशाह के पास थे।

यह फरमान औरंगजेब के प्रथम राज्यवर्ष की २५ जमादिउल अव्वल का है। यद्यपि औरंगजेब वि० स० १७१५ की श्रावण सुदि १ (ई० स० १६५८ की २१ जुलाई) को बादशाह बन गया था, तथापि गद्दीनशीनी का उत्सव वि० स० १७१६ की आषाढ वदि ११ (ई० स० १६५९ की ५ जून) को मनाया गया था। यदि उसी दिन से उसके राज्य वर्ष का प्रारम्भ माना जाय तो उपर्युक्त फरमान की तिथि वि० स० १७१६ की फागुन वदि ११ (ई० स० १६६० की २८ जनवरी) आयगी।

इतिहास से भी यही ठीक प्रतीत होती है। उसके बादशाह बनने की तिथि से राज्य वर्ष का प्रारम्भ मानने से इस फरमान की तिथि वि० स० १७१५ की फागुन वदि १२ (ई० स० १६५९ की ८ फरवरी) होगी। परन्तु उस समय तक महाराजा जसवतसिंहजी का गुजरात जाना सिद्ध नहीं होता।

३ आलमगीरनामा, पृ० ४५६ और ४६२।

४ आलमगीरनामा, पृ० ४८५।

घोड़े बादशाह की भेट के लिये भेजे[1]। इसके बाद मँगसिर वदि २ (८ नवम्बर) को बादशाह ने फिर इनके लिये खिलअत और खासी तलवार उपहार में भेज कर इनका सत्कार किया[2] और फिर महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी को खिलअत देकर जोधपुर जाने के लिये विदा किया[3]।

मँगसिर सुदि १ (२३ नवम्बर) को महाराज के लिये फिर एक खिलअत भेजा गया[4]। इसी अवसर पर महाराज के भेजे हुए कुछ जड़ाऊ जेवर और जवाहिरात आदि बादशाह के भेट किए गए[5]।

इन्हीं दिनों शिवाजी ने औरंगाबाद के आसपास बड़ा उपद्रव खड़ा कर रक्खा था। यद्यपि शाइस्ताखाँ ने उनको दबाने की बहुत कुछ कोशिश की, तथापि उसे इसमें सफलता नहीं हुई। इस पर पौष सुदि ६ (२७ दिसम्बर) को बादशाह ने महाराज को लिखा कि वह अपनी सेना लेकर गुजरात से दक्षिण में पहुँचे और शिवाजी के विरुद्ध अमीरुल उमरा (शाइस्ताखाँ) की सहायता करे[6]। इसी के अनुसार महाराज जूनागढ के फौजदार कुतुबखाँ को अपना प्रतिनिधि (नायब) नियत कर गुजरात से दक्षिण की तरफ रवाना हो गए[7]।

---

१ आलमगीरनामा, पृ० ५६८।

२ आलमगीरनामा, पृ० ५६२।

३ आलमगीरनामा, पृ० ५६५।

४ आलमगीरनामा, पृ० ६३४।

५ आलमगीरनामा, पृ० ६३६।

६ मुन्तखिबुलुल्लुबाब, भा० २, पृ० १२६ और आलमगीरनामा, पृ० ६४७।

७ महाराज के दक्षिण में जाकर शिवाजी के साथ युद्धों में प्रवृत्त रहने के कारण वि० स० १७१६ की भादों वदी ३ (ई० स० १६६२ की २३ जुलाई) को गुजरात की सूबेदारी महाबतखा को सौंप दी गई (मआसिरे आलमगीरी, पृ० ४१)। ख्यातों में लिखा है कि इनकी एवज में महाराज को हाँसी-हिसार का सूबा मिला था। परन्तु फारसी तवारीखों में इसका उल्लेख नहीं है।

बँबे गजेटियर में इनका ई० स० १६५६ (वि० स० १७१६) से १६६२ (वि० स० १७१६) तक गुजरात के सूबे पर रहना और इसी वर्ष कुतुबुद्दीन को वहा पर अपना प्रतिनिधि नियत कर मुअज्जम के पास दक्षिण में जाना, तथा बाद में महावतखाँ को गुजरात का सूबा मिलना लिखा है (देखो भा० १, खंड १, पृ० २८३)।

ख्यातों में इनका वि० स० १७१७ की मँगसिर सुदि ५ तक गुजरात में रहना, माघ वदि ६ को औरंगाबाद पहुँचना और चैत्र वदि ३ को पूने को रवाना होना लिखा है।

परन्तु वहाँ पहुँचने पर इनके और खान के बीच आपस में मनोमालिन्य हो गया और उस (खान) के बर्ताव से वह दिन-दिन और भी बढ़ता गया। फिर भी महाराज ने वीरता से मरहठों का सामना कर उनके अनेक किले आदि छीन लिए।

वि० स० १७१९ की ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० सन् १६६२ की १० मई) को बादशाह ने महाराज और अमीरुल उमरा के लिये, जो उस समय दक्षिण में थे, खिलअत भेजे[1]। इसी प्रकार वि० स० १७१९ की पौष सुदि २ (ई० सन् १६६२ की २ दिसम्बर) को भी इन दोनों के लिये खिलअत भेज कर इनका सत्कार किया गया। तथा वि० स० १७२० की वैशाख सुदि २ (ई० सन् १६६३ की २९ अप्रैल) को फिर इनके लिये खिलअत भेजा गया[3]।

वि० स० १७२० की चैत्र सुदि (ई० सन् १६६३ की अप्रैल) में शिवाजी ने एक रोज़ मौका पाकर जंगल के रास्ते से अमीरुलउमरा के स्थान पर नैश-आक्रमण किया। इसमें उसका पुत्र अबुलफतह मारा गया और स्वयं अमीरुलउमरा की तीन उँगलियाँ कट गईं। यह समाचार सुन बादशाह बहुत ही नाराज़ हुआ और उसने अमीरुलउमरा के स्थान पर शाहज़ादे मुअज्ज़म को दक्षिण की सूबेदारी पर भेज दिया। साथ ही महाराज के लिये ख़ासा खिलअत और सुनहरे साज के दो घोड़े भेजे गये। इसके बाद मँगसिर सुदि १२ (१ दिसम्बर) को बादशाह ने इनके लिये सरदी में पहनने का एक गर्म खिलअत भेजा और कुछ मास बाद सातवें राज्यवर्ष के प्रारंभ (वि० स० १७२१ की चैत्र सुदि=ई० सन् १६६४ के मार्च) में हमेशा के रिवाज

---

१ आलमगीरनामा, पृ० ७४१।

२ आलमगीरनामा, पृ० ७६१।

३ आलमगीरनामा, पृ० ८१६।

४ जदुनाथ सरकार ने अपनी 'हिस्ट्री ऑफ औरङ्गज़ेब' में इस घटना की तिथि ई० स० १६६३ की ५ अप्रैल (वि० स० १७२० की द्वितीय चैत्र सुदि ८) लिखी है (देखो भा० ४, पृ० ५१)।

५ उस समय अमीरुलउमरा, पूना में शिवाजी के पूर्व निवास स्थान में ही ठहरा हुआ था। ख्यातों में भी इस घटना का समय वि० स० १७२० की चैत्र सुदि ८ ही लिखा है।

६ आलमगीरनामा, पृ० ८१६। आलमगीरनामे में उस दिन वि० स० १७२० की वैशाख सुदि १० (ई० स० १६६३ की ६ मई) होना लिखा है (देखो पृ० ८१६)।

७. आलमगीरनामा, पृ० ८४८।

के माफिक फिर इनके लिये खिलअत भेजा गया[1]। इसके बाद जब महाराज के साथ की सेना का—नामदारखॉ नामक—एक अफसर भादो वदि १० (६ अगस्त) को बादशाह के पास हाजिर हुआ, तब उसने फिर शाहजादे मुहम्मद मुअज्जम और महाराज के लिये बरसाती खिलअते[2] भेजे। इस प्रकार इधर बादशाह समय-समय पर इनका सत्कार कर इनका प्रेम-सपादन करने की कोशिश करता था और उधर महाराज धीरे-धीरे शिवाजी के अधिकृत किलो पर अधिकार कर उनके उपद्रव को नष्ट करने की चेष्टा कर रहे थे। कुडा के दुर्ग को विजय करने मे भी इन्होने अद्भुत वीरता दिखाई थी। परन्तु बादशाह की इच्छा थी कि जहॉ तक हो जल्दी ही शिवाजी का सारा बल नष्ट कर दिया जाय। यह बात महाराज को पसद न थी, क्योकि यह शिवाजी जैसे पराक्रमी हिन्दू-राजा का बल नष्ट कर औरगजेब जैसे धर्मान्ध यवन-नरेश को और भी उत्पात करने का मौका देना अनुचित समझते थे। इसी से उनकी भीतरी सहानुभूति शिवाजी के साथ रहा करती थी। इसलिये कार्तिक वदि ६ (३० सितम्बर) के करीब बादशाह ने इनके स्थान पर आबेर-नरेश जयसिंहजी को नियत कर इन्हे अपने पास बुलवा लिया[3]। अत चैत्र वदि १२ (ई० सन् १६६५ की ३ मार्च) को इन्होने महाराज जयसिंहजी को वहॉ की सेना के सचालन का भार सौप दिया[4] और वि० स० १७२२ की जेष्ठ सुदि ६ (१३ मई) को यह दक्षिण से दिल्ली चले आए। इस पर बादशाह ने इन्हें खिलअत आदि देकर इनका सम्मान किया[5]।

१ आलमगीरनामा, पृ० ८५५।
२ आलमगीरनामा, पृ० ८६५।
३ आलमगीरनामा, पृ० ८६७-८६८।
४ आलमगीरनामा, पृ० ८८८। ख्यातो मे इनका आषाढ वदि १० (२६ मई) को दिल्ली पहुँचना लिखा है।
५ इस अवसर पर महाराज ने भी १,००० अशर्फियॉ और १,००० रुपये बादशाह को भेट किए थे।

आलमगीरनामा, पृ० ८८४।

आलमगीरनामे मे लिखा है कि बादशाह ने अपने ४६वे वर्ष के प्रारभ के 'जश्नेवजने कमरी' के उत्सव पर (१७ शव्वाल, मगलवार को) महाराज को खिलअत, पहुँची और जडाऊ धुगधुगी उपहार मे दी (देखो पृ० ८८४)। उस रोज शायद वि० स० १७२२ की जेष्ठ वदि ४ (ई० सन् १६६५ की २३ अप्रैल) आती है।

इसके बाद प्रथम श्रावण सुदि ४ (६ जुलाई) को महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी पिता से मिलने के लिये दिल्ली आए। बादशाह ने इन्हें अपने पास बुलवाकर एक पहुँची और जड़ाऊ सरपेच उपहार में दिया। इसके बाद आश्विन सुदि १० (८ अक्टोबर) को दशहरे के उत्सव पर बादशाह ने फिर महाराज को खिलअत और महाराजकुमार को जड़ाऊ कमरबन्द दिया। इसी प्रकार कार्तिक वदि १२ (२५ अक्टोबर) को बादशाह की तरफ से महाराज को खिलअत के साथ सुनहरी साज के दो घोड़े और महाराजकुमार को जड़ाऊ जमधर, मोतियों के गुच्छे और दो हजारी जात और हजार सवारों का मनसब दिया गया। इसके बाद मगसिर सुदि १२ (६ दिसम्बर) को महाराज को सरदी की मौसम का गरम खिलअत और वि० सं० १७२३ की चैत्र सुदि २ (ई० स० १६६६ की २७ मार्च) को फिर एक खिलअत उपहार में मिला। तथा महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी को जड़ाऊ छुरा और सोने के साज का घोड़ा दिया गया। इसी प्रकार ज्येष्ठ वदि ४ (१२ मई) को महाराज को और भी एक खिलअत दिया गया।

इसके करीब ३ मास बाद बादशाह को सूचना मिली कि ईरान का बादशाह अब्बास सानी खुरासान की तरफ से हिंदुस्थान पर चढ़ाई करने का विचार कर रहा है। इस पर उसने आसोज वदि १ (४ सितम्बर) को शाहजादे मुअज्जम के साथ ही महाराज जसवन्तसिंहजी को भी २०,००० सवारों के साथ उनको रोकने के लिये आगरे से काबुल की तरफ रवाना कर दिया। इस अवसर पर फिर उसने महाराज को

१ आलमगीरनामा, पृ० ६०८।

२ आलमगीरनामा, पृ० ६१४।

३. आलमगीरनामे में लिखा है कि पहले के मनसब में वृद्धि करके यह मनसब दिया गया था (देखो पृ० ६१६-६१७)।

ख्यातों में लिखा है कि इसके साथ इनको फूलिया का परगना जागीर में मिला था। परन्तु मेड़तिया राठोड़ मथुरादास के पुत्र प्रागदास की बगावत के कारण उसकी एवज़ में मालपुरा का परगना दिया गया।

४ आलमगीरनामा, पृ० ६२३ और ६५६।

५ आलमगीरनामा, पृ० ६६१ और ६६३।

६. मआसिरुल उमरा, भा० ३, पृ० ६०३।

७. शाहजहाँ के मरने पर औरंगज़ेब वि० सं० १७२२ की माघ सुदि ११ (ई० सन् १६६६ की ४ फ़रवरी) को दिल्ली से आगरे को गया था (आलमगीरनामा, पृ० ६२७)। उस समय महाराज भी उसके साथ थे।

खासा खिलअत, तलवार, जड़ाऊ जमधर, मोतियो की लड़ी, अपने खासे तबेले के सोने के साजवाले दो घोड़े, चॉदी की अम्बारी और जरी की झूलवाला १ हाथी देकर उन पर अपना विश्वास और प्रेम प्रकट किया[1]। इसके बाद कार्तिक सुदि १० (२७ अक्टोबर) को महाराज और शाहजादे के लिये फिर खिलअतें भेजे गए। अभी ये लोग लाहौर भी नहीं पहुँचे थे कि इतने में ही शाह अब्बास की मृत्यु[3] का समाचार मिल गया। इससे बादशाह ने इन्हे अपने, पौष वदि १२ (१२ दिसम्बर) के, पत्र मे लाहौर मे ही ठहर जाने का लिख भेजा। माघ वदि ११ (ई० स० १६६७ की १० जनवरी) को इनके और शाहजादे के लिये लाहौर मे सरदी के खिलअत भेजे गये। इसके बाद इनके लाहौर से लौट आने पर बादशाह ने वि० स० १७२३ की चैत्र वदि १२ (११ मार्च) को महाराज को खासा खिलअत देकर इनकी अभ्यर्थना की।

वि० स० १७२४ की चैत्र सुदि ८ (२३ मार्च) को बादशाह ने शाहजादे मुअज्जम को दक्षिण की सूबेदारी पर रवाना किया और महाराज को खिलअत, जड़ाऊ कमरबदवाली तलवार और दो घोड़े, जिनमे एक सुनहरी साज का था, उपहार[6] में देकर उसके साथ करदियाँ। वि० स० १७२४ की ज्येष्ठ वदि ११[8] (ई० स० १६६७ की

१. आलामगीरनामा, पृ० ६७५-६७६।

२ आलमगीरनामा, पृ० ६८१।

३ यह वि० स० १७२३ की भादो सुदि ३ (ई० सन् १६६६ की २२ अगस्त) को मरा था।

४ आलमगीरनामा, पृ० ६८४-६८६।

५ आलमगीरनामा, पृ० १०३१-१०३२। ख्यातों मे लिखा है कि इसी वर्ष महाराज ने राजकर्मचारियो के वेतन मे वृद्धि कर रिश्वत लेने की सख्त रोक कर दी थी।

६ आलमगीरनामा, पृ० १०३७।

७ लेटरमुगल्स मे लिखा है–

"He was sent to serve in the Dakhin, then in Kabul, then again in the Dakhin" (भाग १, पृ० ४४) परन्तु वास्तव म यह काबुल न जाकर लाहौर से ही लौट आए थे, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

८ आलमगीरनामे मे हि० सन् १०७७ की ७ और १६ शव्वाल के बीच बादशाह को इसकी सूचना मिलना लिखा है (देखो पृ० १०३७-१०३८ और १०४२)। परन्तु यह समय चैत्र सुदि ८ (२३ मार्च) से वैशाख वदि ३ (१ अप्रैल) के बीच आता है। अत. यह ठीक नहीं है।

८ मई) को महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी का शीतला की बीमारी से दिल्ली में स्वर्गवास हो गया। अतः जब महाराज को इसकी सूचना मिली, तब यह बहुत ही व्याकुल हुए। यह देख शाहजादे ने, जो महाराज को अपना शुभचिंतक और पिता के तुल्य मानता था, इनके दुःख में समवेदना प्रकट कर इन्हें सांत्वना दी। इसके बाद जब यह औरङ्गाबाद पहुँचे, तब आंबेर-नरेश जयसिंहजी ने वहाँ का सारा प्रबन्ध शाहजादे मुअज्जम को सौंप दिया। कुछ ही दिनों में महाराज के उद्योग से इधर तो शाही सेनाएँ

कहीं-कहीं वि० सं० १७२३ की चैत्र वदि ८ भी लिखी मिलती है। यह भी ठीक नहीं है। यदि ऐसा हुआ होता, तो महाराज को दक्षिण जाने से पूर्व ही इसकी सूचना मिल गई होती, क्योंकि यह वि० सं० १७२४ की चैत्र सुदि ५ को औरंगाबाद (दक्षिण) की तरफ रवाना हुए थे।

हि० सन् १०७९ (ई० सन् १६६८=वि० सं० १७२५) के एक फ़रमान में बादशाह ने महाराज को नरबदा के किनारे के सुजानाबाद की तरफ जाने और सुबा का प्रबन्ध मुहम्मद अमीनखाँ को देने का लिखा है।

१ पृथ्वीसिंहजी का जन्म वि० सं० १७०९ की आषाढ सुदि ५ (ई० सन् १६५२ की १ जुलाई) को हुआ था। इनके विवाह भी अभी दो वर्ष ही हुए थे। परन्तु फिर भी इनके पीछे इनकी रानी, जो गौड़-राजपूतों की कन्या थी सती हुई।

२ टॉड साहब ने पृथ्वीसिंहजी की मृत्यु का वि० सं० १७२६ (ई० सन् १६७०) के अनन्तर, महाराज जसवंतसिंहजी के काबुल चले जाने पर औरंगजेब द्वारा दिए गए जहरी खिलअत के पहनने से होना लिखा है।

(टॉड का राजस्थान (क्रुक संपादित) भा० २, पृ० ९८४-९८६।)

परन्तु मारवाड़ की ख्यातों और आलमगीरनामे में इस घटना का वि० सं० १७२४ में होना लिखा है (देखो पृ० १०३८)।

३. ख्यातों में इनका आषाढ वदि १३ को औरंगाबाद पहुँचना लिखा है।

४ वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि औरंगजेब के कहने से आंबेर-नरेश जयसिंहजी को उनके पुत्र कीरतसिंह ने विष दे दिया था। इससे वि० सं० १७२४ (ई० सन् १६६७) में दक्षिण में ही उनकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने उनके स्थान पर महाराज जसवंतसिंहजी को मुअज्जम के साथ भेज दिया। यह पहले भी दक्षिण में रह चुके थे। परन्तु इन्हें इस बार भी पूरी सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह था कि इन्होंने और शाहजादे ने मिलकर शिवाजी से बहुतसा रुपया ले लिया और उनके विरुद्ध किए जानेवाले कार्यों में शिथिलता कर दी। यह उनसे यहाँ तक मिल गए कि ई० सन् १६६७ (वि० सं० १७२४) में इन्होंने स्वयं बादशाह को भी शिवाजी को राजा का खिताब देने के लिये दबाया।

(ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ४२७-४२८।)

५. इस घटना का समय आषाढ वदि १४ लिखा है।

फिर सजग हो गई, जिससे महाराष्ट्र-वीरो का उपद्रव बहुत कुछ शात हो चला। और उधर महाराज के समझाने से शिवाजी ने भी शाहजादे मुअज्जम से मेल करना स्वीकार कर लिया। ख्यातो से ज्ञात होता है कि इसी के अनुसार महाराज के सरदार राठोड रणछोडदास आदि राजगढ में जाकर शिवाजी से मिले और उनके पुत्र शभाजी को साथ लेकर मँगसिर वदि ५ को शाहजादे के पास चले आए। महाराज के कहने से शाहजादे ने भी शभाजी का अच्छा आदर सत्कार किया और शिवाजी को राजा मानकर उनका बहुत सा प्रदेश वापस लौटा दिया। इसी के साथ उन्हे बराड-प्रदेश मे भी जागीर दी गई। इस प्रकार गुप्त-सधि हो जाने के बाद शभाजी वापस लौट गए[2]।

वि० स० १७२६ के ज्येष्ठ (ई० स० १६६९ की मई) मे औरङ्गजेब को सूचना मिली कि शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम महाराज जसवन्तसिंहजी की सहायता से स्वाधीन होने का विचार कर रहा है। इस पर उसने तत्काल ही उसकी माता को उसे समझाने के लिये भेज दिया। इसके अगले ही वर्ष बादशाह ने महाराज को दक्षिण से वापस बुलवा लिया और वि० स० १७२८ की ज्येष्ठ वदि ८ (ई० स० १६७१ की २१ मई) को इन्हे बरसाती खिलअत और ५०० मोहर की कीमत का घोडा देकर जमरूद के थाने की रक्षा के लिये रवाना कर दियाँ[3]। इस पर महाराज भी अपने दल-

१ ख्यातों म लिखा हे कि इसी वर्ष बादशाह ने अपने अधीन देशों के चौपाए जानवरो पर कर लगाया था। परन्तु महाराज के खयाल से मारवाड के चौपाए छोड दिए गए थे। इस पर महाराज ने इसकी एवज मे यहॉ पर अपनी तरफ से 'घासमारी' (मवेशियों के सरकारी चरागाहों मे चरने पर कर लेने) की प्रथा प्रचलित की।

यह प्रथा इस देश मे अब तक जारी है। साथ ही महाराज ने गुजरात में मिले अपने मनसब के प्रदेशों मे भी अपने आदमी भेज कर इस कर का प्रचार किया।

२ श्रीयुत जदुनाथ सरकार ने अपनी 'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब' मे लिखा है.–

शिवाजी ने महाराज जसवतसिंह को पत्र लिखकर बादशाह से सधि करने मे उनकी सहायता चाही। इस पर महाराज और शाहजादे ने मिलकर इस विषय मे ई० सन् १६६८ की ९ मार्च (वि० स० १७२५ की चैत्र सुदि ६) को बादशाह को लिखा। अत. उसने भी शिवाजी को राजा मानकर सधि अगीकार करली। यह सधि दो वर्ष तक रही। उक्त पत्र मे शिवाजी ने अपने पुत्र शभु को शाहजादे के पास भेजने का भी लिखा था। इस सधि के हो जाने के बाद भी बादशाह ने सिवा चकन दुर्ग के और कोई किला शिवाजी को नही लौटाया। (देखो भा० ४, पृ० ९८१)।

३ मआसिरे आलमगीरी, पृ० १०९।

परन्तु वि० स० १७३० की ज्येष्ठ सुदि १४ के महाराज के एक पत्र से उस समय इनका नर्बदा पर होना प्रकट होता है।

बल के साथ मारवाड की तरफ होते हुए वहाँ जा पहुँचे। कुछ ही समय में इन्होंने वहाँ के उपद्रवी पठानों को दबाकर काबुल और भारत के बीच का (खैबर के दर्रे का) मार्ग निष्कंटक कर दिया।

इसी वर्ष औरङ्गज़ेब ने गोवर्धन-पर्वत पर का मन्दिर गिरा देने की आज्ञा दी। इसका समाचार पाते ही गोस्वामी दामोदरजी वहाँ की मूर्ति को लेकर पहले से ही चुपचाप चल दिए और मार्ग में कोटा, बूँदी और किशनगढ़ की तरफ होते हुए मारवाड़ के चौपासनी नामक गाँव के निकट कदमखडी स्थान में करीब ६ मास तक रहे। इसके बाद कार्तिक सुदि १५ को वह मेवाड के सिहाड नामक गाँव में चले गए। यही स्थान इस समय नाथद्वारे के नाम से प्रसिद्ध है।

वि० स० १७३० की फागुन वदि ४ (ई० स० १६७४ की १४ फरवरी) को[3] पठानों ने गदाब नदी के उस पार स्थित शुजाअतखाँ पर हमला कर उसे मार डाला।

१ ख्यातों में लिखा है कि बादशाह ने वि० स० १७२८ में महाराज को दक्षिण से बुलाकर पहले गुजरात का सूबा दिया और इसके बाद वि० स० १७३० के फागुन में इन्हें काबुल भेजा। परन्तु फारसी तवारीखों में गुजरात के सूबे का उल्लेख नहीं है। 'बॉम्बे गज़ेटियर' में लिखा है कि ई० सन् १६७१ (वि० स० १७२८) में महाराज जसवतसिंहजी ने गुजरात पहुँच खानजहाँ से वहाँ के प्रबंध का भार ले लिया। इसी के साथ इन्हें धधूका और पिटलाद के परगने भी मिले। ई० सन् १६७३ (वि० स० १७३०) में इन्हीं की सिफ़ारिश से बादशाह ने रायसिंह के पुत्र जाम तामची को नवानगर और एक जाडेजे को २५ गाव लौटा दिए थे। इसके बाद ई० सन् १६७४ (वि० स० १७३१) के अंत में महाराज काबुल की तरफ भेजे गए (देखो भा० १, खंड १, पृ० २८५)।

'तारीखे पालनपुर' में लिखा है कि वि० स० १७२८ (हि० सन् १०८२=ई० सन् १६७१) में महाराज जसवतसिंह राठोड ने गुजरात की सूबेदारी मिलते ही पालनपुर की हुकूमत से कमालखाँ को हटाकर उसके भाई फतेहखाँ को उसके स्थान पर नियत कर दिया था (देखो भा० १, पृ० १२३)।

जेम्स बर्जेज की 'क्रॉनोलॉजी ऑफ मौडर्न इंडिया' में ई० सन् १६७४ (वि० स० १७३१) तक महाराज जसवतसिंहजी का गुजरात के सूबे पर होना लिखा है (देखो पृ० ११५)।

२ कहीं-कहीं इस घटना का वि० स० १७२६ में होना लिखा है। वहाँ पर यह भी लिखा है कि गुसाईजी करीब दो वर्षों तक कदमखडी में रहकर मारवाड के गाँव पाटोदी में पहुँचे। परन्तु महाराज जसवतसिंहजी के जमरूद में होने के कारण वि० स० १७२८ में वह मेवाड चले गए।

३ मआसिरे आलमगीरी, पृ० १३१।

इसकी सूचना पाते ही महाराज ने अपनी सेना को पठानो पर चढाई करने की आज्ञा दी । अत. कुछ चुने हुए राठोड वीरो ने जाकर उपद्रवियो को मार भगाया[1] । इसके बाद जब इस घटना की सूचना बादशाह को मिली, तब वह स्वय पठानो को दड देने के लिये हसनअबदाल की तरफ रवाना हुआ । उसके रावलपिंडी पहुँचने पर वि० स० १७३१ की आषाढ वदि ६ (ई० स० १६७४ की १४ जून) को महाराज वहाँ जाकर उससे मिले । बादशाह ने इन्हे खासा खिलअत और ७,००० रुपये की उर्बसी (पोशाक [2]) देकर अपनी प्रीति प्रकट की और इनके जमरूद वापस लौटने के समय जडाऊ साज की तलवार और तलायर-समेत (अम्बारी-सहित) हाथी देकर इनका सम्मान किया । इसके बाद महाराज ने जमरूद[3] पहुँच स्थान-स्थान पर अपनी चौकियाँ कायम कर दीं । इससे पठान बिलकुल शात हो गए । इस पर मँगसिर (दिसम्बर) मे बादशाह ने (अपने १८वे राज्यवर्ष के प्रारभ के उत्सव पर) महाराज के लिये खासा खिलअत भेजा[4] ।

वि० स० १७३३ की चैत्र वदि ३ (ई० स० १६७६ की १२ मार्च) को जमरूद में महाराज के द्वितीय महाराजकुमार जगतसिंह[5]जी का देहान्त हो गया[6] । इससे महाराज का सारा उत्साह शिथिल पड गया और वह उत्तराधिकारी की चिंता से खिन्न रहने लगे । इसके बाद वि० स० १७३५ की पौष वदि १० (ई० स० १६७८ की २८ नवम्बर) को जमरूद मे ही ५२ वर्ष की अवस्था मे स्वय महाराज का स्वर्गवास हो गया[7] ।

---

१ ख्यातों मे लिखा है कि इसके बाद भी पठानों ने दो-तीन बार सिर उठाने की चेष्टा की थी । परन्तु महाराज की सेना के जोधा (गोविददास के पुत्र) रणछोडदास, भाटी रघुनाथसिंह, (श्यामसिह के पुत्र) वीरमदेव आदि ने बडी वीरता से युद्ध कर उनको दबा दिया ।

२ मआसिरे आलमगीरी, पृ० १३३ ।

३. जमरूद खैबर दर्रे के उस तरफ अलीमसजिद के पास है ।

४ मआसिरे आलमगीरी, पृ० १३६ ।

५ इनका जन्म वि० स० १७२३ की माघ वदि ३ (ई० स० १६६७ की ३ जनवरी) को हुआ था ।

६ लेटरमुगल्स–नामक इतिहास मे इनके दो पुत्रो का काबुल मे मरना लिखा है (देखो भा० १, पृ० ४४) । परन्तु ख्यातों से इसकी पुष्टि नही होती ।

७ मारवाड की ख्यातों मे से किसी मे इनका जमरूद मे पूर्णमल बुदेले के बाग मे और किसी मे पेशावर मे मरना लिखा है ।

इस पर उनके सरदारों ने तत्काल उस घटना की सूचना और महाराज की पगड़ी के मारवाड़ में भेजने का प्रबंध कर दिया।

'तवारीख मोहम्मद शाही' में लिखा है कि यह समाचार सुन औरंगज़ेब ने कहा। —

" दर्वाज़ए कुफ्र शिकस्त "

अर्थात् आज कुफ्र (धर्मविरोध) का दरवाज़ा टूट गया। परन्तु जब महल में बेगम ने यह हाल सुना, तो कहा

" इमरोज़ जाये दिल गिरिफ्तगीस्त कि ईं चुनीं रुकने दौलत ब शिकस्त "

अर्थात् आज शोक का दिन है कि बादशाहत का ऐसा स्तंभ टूट गया।

महाराज जसवन्तसिंहजी बड़े वीर, मनस्वी, प्रतापी, दूरदर्शी, नीति-निपुण, विद्वान्, कवि, दानी और गुणग्राहक थे। इनकी वीरता, मनस्विता, प्रताप, दूरदर्शिता और नीति-निपुणता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि यह औरंगज़ेब के बढ़ते हुए प्रताप की कुछ भी परवा न कर समय-समय पर खुल्लमखुल्ला उसका विरोध करते रहते थे और एक बार तो इन्होंने स्वयं उसीकी सेना पर आक्रमण कर उसका खज़ाना लूट लिया

मआसिरे आलमगीरी में हि० सन् १०८९ की ६ ज़िकाद (वि० सं० १७३५ की पौष सुदि ७=ई० सन् १६७८ की १० दिसम्बर) को महाराज जसवन्तसिंहजी की मृत्यु का होना लिखा है (देखो पृ० १७१)।

श्रीयुत जदुनाथ सरकार ने भी अपनी 'हिस्ट्री ऑफ औरंगज़ेब' में इसी दिन १० दिसम्बर का होना ही लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ३६६)। उन्होंने यह भी लिखा है कि जमरूद में महाराज के साथ उनकी ५ रानियाँ और ७ अन्य स्त्रियाँ (५ दासी आदि Concubines, etc) सती हुई थीं (देखो भा० ३, पृ० ३७३) ख्यातों में इनकी संख्या १५ लिखी है। एक दोहे में लिखा है —

सतरै समत पौष पैंतीसे, दसमी वार बेहस्पत होसी।

मुरधर छत्र जसो महाराजा, सुरपुर गयो सिरी ब्रद साजा।

मिस्टर वी० ए० स्मिथ ने अपनी 'ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में लिखा है कि—यदि टॉड और मनूची (Manucci) का विश्वास किया जाय, तो यही मानना होगा कि जसवन्तसिंह को औरंगज़ेब की तरफ़ से विष दिलवाया गया था (देखो पृ० ४३८)।

१ महाराज अपनी सेना की देख-भाल स्वयं किया करते थे। ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७२४ (ई० सन् १६६७) में औरंगाबाद के मुकाम पर शाहज़ादे मुअज्ज़म ने इनकी सेना के २,३०० सैनिकों का निरीक्षण कर इनके प्रबन्ध की बड़ी तारीफ़ की थी और इसी से प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें थिराद और राधनपुर के परगने दिए थे।

था। परन्तु फिर भी बादशाह आलमगीर खुलकर इनका विरोध न कर सका। यद्यपि मन-ही-मन वह इनसे बहुत जलता था, तथापि इन्हें अपने देश से दूर रखने के सिवा इनका कुछ भी न बिगाड़ सका था। उपर्युक्त आक्रमण का बदला लेने के लिये एक बार उसने राव अमरसिंहजी के पुत्र राव रायसिंह को मारवाड का राज्य देकर दल-बल-सहित उधर रवाना भी कर दिया था। परन्तु अन्त मे उसको मुँह की खानी पड़ी।

इनकी दूरदर्शिता का पता इससे भी लगता है कि वि० स० १७२३ मे इन्होने अपने राज-कर्मचारियो के वेतन में वृद्धि कर रिश्वत की सख्त मनाई कर दी थी। इनकी विद्वत्ता और काव्य-निपुणता का पता इनके बनाए साहित्य के ग्रथ 'भाषाभूषण'[2] से और वेदान्त-विषय के १ सिद्धान्तबोध, २ सिद्धान्तसार, ३ अनुभवप्रकाश, ४ अपरोक्ष-सिद्धान्त और ५ आनन्दविलास नामक छोटे छोटे परन्तु सुबोध ग्रन्थो[3] से मिल जाता है। यह महाराज डिंगल-भाषा के भी अच्छे कवि थे।

इसी प्रकार इनकी दानशीलता और गुणग्राहकता का हाल, इनके लाहौर में एक ही दिन मे २२ घोडे और ३ हाथी अपने सरदारो और कवियो को इनाम मे देने तथा वहाँ पर उपस्थित १४ कवियो में से प्रत्येक को डेढ-डेढ हजार रुपये दान देने से प्रकट होता है।

महाराज जसवंतसिंहजी ने करीब ४१ वर्ष[1] राज्य किया था। इनमे के (बादशाह शाहजहाँ के राज्य समय के) पहले २० वर्ष तो बड़ी ही शाति से बीते। परन्तु पिछले (औरङ्गजेब के समय के) २१ वर्षों में इन्हे अधिक सतर्कता से काम लेना पड़ा।

---

१ ख्यातों के अनुसार इन्हे सातहजारी ज़ात और सात हजार सवारो के मनसब मे (जिसमे के ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) १७,२५,००० की आमदनी का प्रदेश मिला था। इसमे मारवाड के साथ ही हाडोती, गुजरात, मालवा, बुरहानपुर और हाँसी--हिसार के परगने भी थे। इसके अलावा इन्हे शाही खजाने से ५,२५,००० रुपये, सवारों आदि के वेतन के लिये और भी मिलते थे।

२ यह पुस्तक काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित की है। इन्होने श्रीमद्भागवत पर भाषा मे एक टीका लिखी थी और 'प्रबोधचन्द्रोदय'-नामक नाटक का भाषानुवाद भी किया था।

३ राजकीय कौंसिल की आज्ञा से इन वेदान्त के पाँचों ग्रथों का सपादन इस इतिहास के लेखक ने वेदान्त-पञ्चक के नाम से किया है। इनके बनाये ग्रन्थों का पूरा विवरण इतिहास के प्रारम्भ मे दिया जा चुका है।

यद्यपि इनका अधिक समय मारवाड़ से बाहर ही बीतता था, तथापि यह अपने देश के प्रबन्ध की तरफ भी पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। इन्होंने ही काबुल से वहाँ की मिट्टी और अनार के बीज (तथा पौधे) भेजकर जोधपुर के बाहर कागा नामक स्थान में एक बगीचा लगवाया था। यद्यपि यह बगीचा इस समय उजड़ गया है, तथापि यहाँ के पौधों के इधर-उधर फैल जाने से आज भी जोधपुर के अनार मशहूर समझे जाते हैं।

'मआसिरुलउमरा' से पता चलता है कि इन्होंने औरङ्गाबाद के बाहर (पूर्व की तरफ) अपने नाम पर जसवन्तपुरा बसाकर उसके पास जसवन्तसागर-नामक तालाब बनवाया था और इसी तालाब के तट पर इनके रहने के महल थे।

वि० स० १७२० में इनकी हाडी रानी ने (जो बूँदी-नरेश हाडा शत्रुसाल की कन्या थी) जोधपुर नगर से बाहर 'राईका बाग' नामक एक बाग बनवाकर उसी के पास अपने नाम पर हाडीपुरा बसाया था। यद्यपि इस समय हाडीपुरे का कुछ भी चिह्न बाकी नहीं है, तथापि यह बगीचा आज भी उसी नाम से प्रसिद्ध है। इसी रानी का बनवाया कल्याणसागर-नामक तालाब भी राई के बाग के पास इस समय रातानाडा के नाम से विख्यात है।

इनकी देवड़ी रानी ने वि० स० १७६५ (ई० स० १७०८) में सिरोही से आकर सूरसागर के बगीचे में तुला-दान किया था। यह बात उक्त स्थान पर लगे लेख से प्रकट होती है।

इनकी शेखावत रानी ने, जो खंडेला की थी, शेखावतजी का तालाब बनवाया था।

स्वयं महाराज ने वि० स० १७११ के भादों में पोकरन के किले में एक पौल (दरवाजा) बनवाई थी।

१ देखो भा० ३, पृ० ६०३।

२ यहाँ के वर्तमान महल वगैरा महाराजा जसवंतसिंहजी द्वितीय ने बनवाए थे।

३ इस तालाब का जीर्णोद्धार महाराजा जसवंतसिंहजी द्वितीय के कनिष्ठ भ्राता महाराज प्रतापसिंहजी ने करवाया था।

४ यह बात वहाँ पर के एक लेख से प्रकट होती है।

महाराज ने अपने ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंहजी के जन्मोत्सव पर साटीका नामक (नागोर प्रान्त का) का एक गाव जोधपुर के रामेश्वर महादेव के पुजारियो को दिया था।

१ इसके अलावा महाराज ने कई गॉव और भी दान किए थे:—

१ भाकरवासणी (जैतारण परगने का), २ बासणी नरसिंघ ३ बासणी तिरवाडिया (सोजत परगने के) ब्राह्मणों को, ४ कामासणी (मेडता परगने का) चारभुजा के मदिर को, ५ बागासणी (जैतारण परगने का), ६ कजोई ७ बेराई (शेरगढ परगने के), ८ ऊचेरिया, ९ बालाधणा (परबतसर परगने के), १० मडावरा (मेडता परगने का), ११ कराणी १२ मोरटऊका (जोधपुर परगने के), १३ गोदेलावास (सोजत परगने का) चारणों को, १४ हीरावास (सोजत परगने का) स्वामियों को और १५ पुनास (मेडते परगने का) जगन्नाथरायजी के मन्दिर को।

महाराजा जसवंतसिंहजी का प्रताप और गौरव

महाराज जसवंतसिंहजी के विषय में अपनी तरफ़ से कुछ न लिखकर उस समय के और इस समय के लेखकों की कुछ पंक्तियाँ यहाँ पर उद्धृत की जाती हैं। इनसे उनके प्रताप और गौरव का भलीभाँति पता चल जायगा।

"शाहजहाँ ने महाराज जसवंत को, जो हिंदुस्थान के राजाओं में श्रेष्ठ और फौज, सामान तथा रौबदाब में प्रथम था और जिसे बादशाह सल्तनत का मज़बूत स्तम्भ समझता था, महाराज का खिताब दिया था" (आलमगीरनामा, पृ० ३२)।[1]

बड़े राजाओं में बड़ा महाराजा जसवंतसिंह (मआसिरे आलमगीरी, पृ० १७१)।[2]

"जसवंतसिंह के पिछले कार्यों के कारण जो बादशाह के दिल में रंजिश रहा करती थी[3]

मुतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० २५६।

"राजा (जसवंत) फौज और सामान की ज्यादती से हिंदुस्थान के राजाओं में बड़ा था। परन्तु वारदातों के उतार-चढ़ाव में हमेशा उसका झुकाव एक तरफ़ ही रहता था, इससे दुनियादारी में ज्यादा फ़ायदा न उठा सका।

मआसिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ६०३।

In a letter written in 1659, Aurangzib speaks of Jaswant as "the infidel who has destroyed mosques and built idol-temples on their sites[4]."

Sarkar's Histroy of Aurangzib, Vol III p 368-389

१ "रुक्ने रकीने दौलत व सितूने क़वीमे सल्तनत"।

२ "उम्दा राजाहाये अज़ाम महाराज जसवंतसिंह"।

३. परन्तु वह इसका बदला इनके जीते-जी न ले सका।

४ ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७३३ में जिस समय महाराज काबुल में थे, उस समय उनको सूचना मिली कि बादशाह औरंगजेब ने मन्दिर गिरवाने की आज्ञा निकाली है। इस पर महाराज ने साथ के शाही अमीरों के सामने क्रोध प्रकट कर कहा कि यदि बादशाह ऐसा करेगा, तो हम भी मसजिदों को गिरवाना शुरू करेंगे। जब उन अमीरों के द्वारा औरंगजेब को यह सूचना मिली, तब उसने बखेड़ा शान्त करने के लिये अपनी आज्ञा वापस ले ली।

"A special reason, besides its strategic importance made the kingdom of Marwar a desirable acquisition in Aurangzib's eyes It was the foremost Hindu state of northern India at this time* Its chieftain was Jaswant Singh, who enjoyed the unrivalled rank of Maharajah and whom the death of Jai-Singh thirteen years ago had left as the leading Hindu-Peer of the Mughal court If his powers passed on to a worthy successor, that successor would be the pillar of the Hindu's hopes all over the empire and the centre of the Hindu opposition to the policy of temple destruction and Jziya

Sarkar's History of Aurangzib, Vol III, p 367-368

"the death of Jaswant Singh emboldened the imperial bigot to re-impose the hated Jaziya, or poll tax on non-Muslims"

V. A Smith's Oxford History of India, p 438

* The Maharana of Udaipur, in spite of his pre-eminent descent, was a negligible factor of the Hindu population of the Mughal world, as he hid himself among his mountain fastness and never appeared in the Mughal Court or camp

२६. महाराजा अजितसिंहजी

जिस समय जमरूद में महाराजा जसवंतसिंहजी की मृत्यु हुई, उस समय उनकी नरूकी और जादमनं (वंश की) दो रानियाँ गर्भवती थीं। इसीसे महाराज के साथ के सरदारों ने इन्हें सती होने से रोक लिया। इसके बाद महाराज के द्वादशाह का कार्य समाप्त हो जाने पर ये लोग इन्हें साथ लेकर, वि० सं० १७३५ की माघ सुदि १३ (ई० स० १६७९ की १४ जनवरी) को, लाहौर की तरफ रवाना हो गए।

इनके अटक नदी के पास पहुँचने पर, पहले तो वहाँ के शाही हाकिम ने इन्हें, बादशाही आज्ञा या काबुल के सूबेदार का परवाना न होने के कारण, रोकने की चेष्टा की। परन्तु जब ये लोग मरने-मारने और नावों पर जबरदस्ती अधिकार करने को उद्यत हो गए, तब अंत में उसने इन्हें अटक पार करने की आज्ञा दे दी[2]। इसके बाद इनके लाहौर पहुँचने पर वि० सं० १७३५ की चैत वदी ४ (ई० सन् १६७९ की १९ फरवरी) बुधवार को दोनों रानियों के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें से बड़े राजकुमार का नाम अजितसिंह[1] और छोटे का दलथमन रक्खा गया।

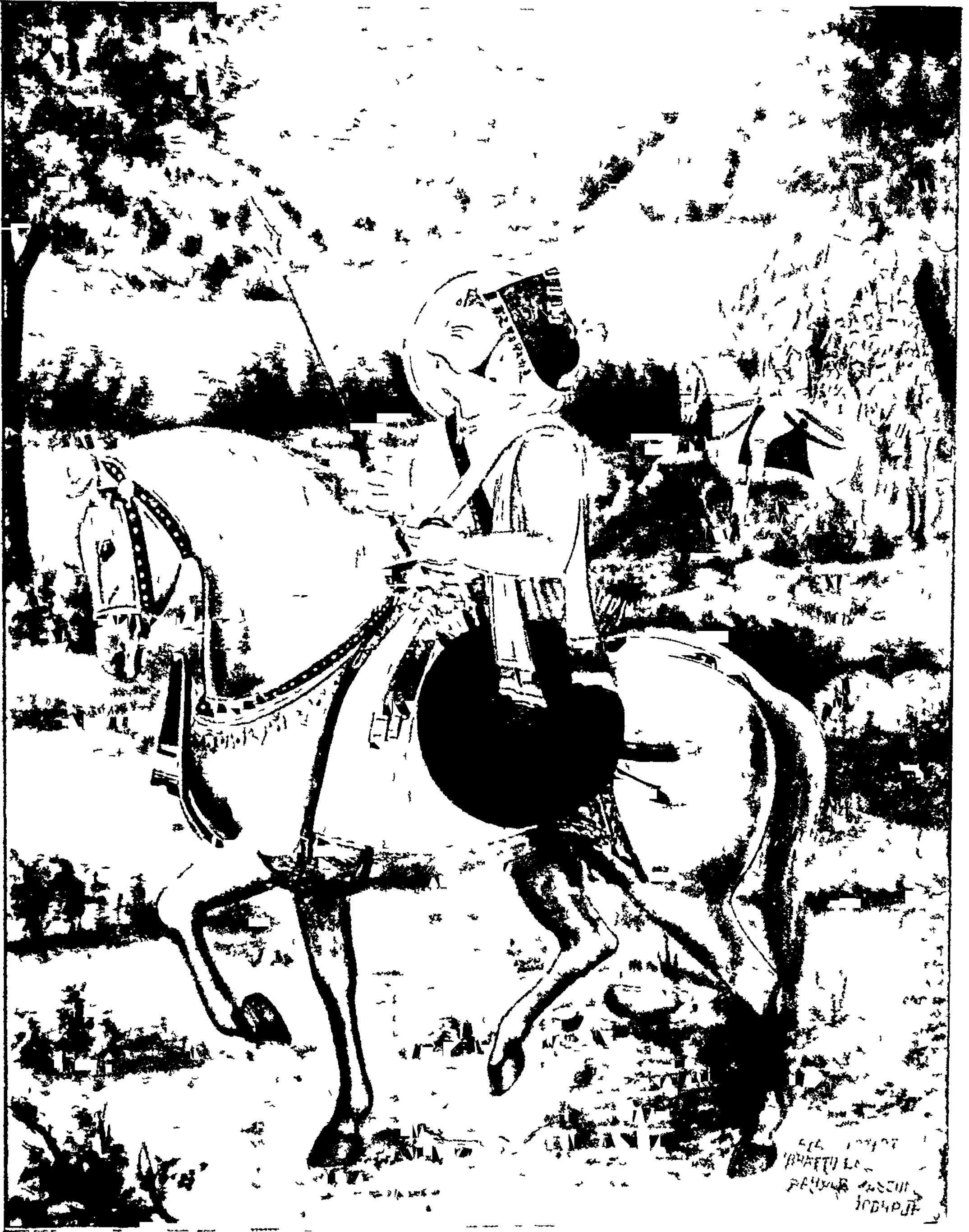
---

१. बालकृष्ण दीक्षितरचित 'अजित-चरित्र' में लिखा है –

अतःपरं यादवराजपुत्र्या जन्मान्तरीयं फयवाम्युदन्तम्,
अजीतसिंहो जनितो यथात्र कार्ये गुणाः कारणतो भवन्ति।
(सर्ग ६, श्लोक १)

२. 'सैहरुल-मुताखरीन' में राठोड़-सरदारों का 'मीरबहर' को आहत और परास्तकर अटक पार होना लिखा है। (देखो जिल्द १, पृ० ३४३)।

'मुतखिबुलुलुबाब' से भी इस बात की पुष्टि होती है। (भा० २, पृ० २५६)।



२६ महाराजा अजितसिंहजी

वि० स० १७६३-१७८१ (ई० स० १७०७-१७२४)

इधर यह हो रहा था, और उधर बादशाह औरङ्गजेब महाराजा जसवतसिंहजी के मरने की सूचना पाते ही स्वर्गवासी महाराज के कुटुम्ब से बदला लेने का प्रबन्ध करने लगा। यद्यपि महाराजा जसवतसिंहजी की बारबार की छेड़छाड़ से वह प्रारम्भ से ही उनसे मन-ही-मन द्वेष रखता था, तथापि उनके जीते-जी उनसे खुलकर शत्रुता करने की उसकी हिम्मत न होती थी। परन्तु महाराज के इस प्रकार निस्सतान मर जाने से उसे अच्छा मौका मिल गया। इसलिये वि० स० १७३५ की माघ सुदी १२ (ई० सन् १६७९ की १३ जनवरी) को उसने खिदमतगुजारखाँ को जोधपुर का किलेदार, ताहिरखाँ को फौजदार, शेख अनवर को अमीन (तहसीलदार) और अब्दुलरहीम को कोतवाल बनाकर मारवाड़ की तरफ रवाना कर दिया। इसके कुछ दिन बाद वह स्वय भी मारवाड़ पर पूर्ण अधिकार करने के लिये अजमेर की तरफ चला। साथ ही उसने असदखाँ, शाइस्ताखाँ और शाहजादे अकबर को भी अपने-अपने सूबो से वहाँ पहुँचने की आज्ञाएँ भेजदी। परन्तु औरङ्गजेब के मन में स्वर्गवासी महाराज से इतना डाह था कि उसे अपने अजमेर पहुँचने तक का विलम्ब भी सहन न हो सका। इसी से उसने मार्ग से ही, फाल्गुन सुदी ७ (७ फरवरी) को, खाँजहाँ बहादुर और हुसैनअलीखाँ आदि बड़े-बड़े अमीरो को मारवाड़ पर अधिकार करने के लिये आगे भेज दिया।[२]

---

१ मआसिरेआलमगीरी पृ० १७२। भट्ट जगजीवन रचित 'अजितोदय' नामक (३२ सर्गों के) ऐतिहासिक सस्कृत-काव्य से ज्ञात होता है कि बादशाह की आज्ञा से पहले-पहल मारवाड़ पर अधिकार करने के लिये इख्तियारखाँ नाम का अमीर अजमेर से मेड़ते आया था। परन्तु उसके आगमन की सूचना पाते ही राठोड वीर उसके मुकाबले को पहुँच गए। इसलिये उसे नगर के बाहर ही रुक जाना पड़ा। इसके बाद उसने पत्र द्वारा यहाँ का सारा हाल बादशाह को लिख भेजा। इसी से उसे स्वय अजमेर की तरफ आना पड़ा। (सर्ग ५, श्लो० ३४-४३)।

औरगजेब ने वि० स० १७३५ की चैत्र वदी ११ (ई० सन् १६७९ की २६ फ़रवरी) को इसी (इख्तियारखा) इफतखारखाँ के स्थान पर तहव्वुरखाँ को अजमेर का फौजदार नियत किया था। (मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७३)।

२. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७२।

इसी बीच महाराजा जसवन्तसिंहजी की मृत्यु का समाचार पाकर उनके सरदार भी अपने-अपने स्थानों से आकर जोधपुर में एकत्रित होने और खाँजहाँ बहादुर से सम्मुख रण में लोहा लेने का विचार करने लगे। परन्तु अन्त में भाटी रघुनाथसिंह ने महाराजा के मन्त्री कायस्थ केसरीसिंह से सलाहकर रानियों के पुत्र उत्पन्न होने की सूचना मिलने और स्वर्गवासी महाराज के साथ के दल के मारवाड़ में पहुँचने तक युद्ध करने का विचार रोक दिया, तथा भाटी रामसिंह को कुछ सरदारों के साथ खाँजहाँ बहादुर से संधि करने के लिये रवाना किया। भाटी रामसिंह ने उनके पास पहुँच मारवाड़ का अधिकार उसे सौंप देने का वादा कर लिया। परन्तु इसके साथ ही यह शर्त तय की कि यदि महाराज की गर्भवती रानियों में से किसी के गर्भ से भी पुत्र उत्पन्न होगा, तो बादशाह की तरफ़ से मारवाड़ का राज्य उसे लौटा दिया जायगा।

इसके बाद खाँजहाँ बहादुर ने मेड़ते पहुँच उसे शाही अधिकार में ले लिया। वहाँ से चलकर जिस समय वह पीपाड़ पहुँचा, उसी समय लाहौर में महाराजकुमारों के जन्म होने की सूचना भी सरदारों के पास आपहुँची। यहाँ से आगे बढ़कर खाँजहाँ ने जोधपुर पर अधिकार करने का इरादा किया, और वह नगर के बाहर पहुँच गेसावतजी के तालाब पर ठहर गया। इसकी सूचना पाते ही चाँपावत वीर सोनग ने उसको रोकने का इरादा किया। परन्तु भाटी रघुनाथसिंह आदि ने समय की गति का ध्यान दिलाकर उसे ऐसे समय युद्ध छेड़ने से रोक लिया। इस पर खाँजहाँ ने जोधपुर का प्रबन्ध ताहिरखाँ को सौंप सिवाना, सोजत, जैतारण आदि के प्रांतों पर भी यवन-शासक नियत कर दिया। इस प्रकार मारवाड़ पर यवनों का अधिकार हो जाने से यहाँ के मन्दिर और मूर्तियाँ नष्ट की जाने लगीं। परन्तु बालक महाराजकुमारों और उनके मुख्य-मुख्य सरदारों के मारवाड़ से बाहर होने के कारण यहाँ उपस्थित राठोड़-वीरों ने उपद्रव करना उचित न समझा।

---

१ अजितोदय में इसका नाम बहादुरखाँ लिखा है। (देखो सर्ग ५, श्लो० ४४)।
२ यह लवेरे का ठाकुर था।
३ अजितोदय, सर्ग ५, श्लो० ४५-५४।
४ अजितोदय, सर्ग ५, श्लो० ५५-५६।
५ यह चाँपावत विट्ठलदास का पुत्र था।
६ अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० २७-२९।
७ अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ४६, ५१-५३।

बादशाह भी वि० स० १७३५ की चैत्र वदी ४ (ई० सन् १६७९ की १९ फरवरी) को अजमेर पहुँच उपर्युक्त कार्यों की गति-विधि देख रहा था। परन्तु चैत्र वदी ११ (२६ फरवरी) को जब उसे स्वर्गवासी महाराज के वकील द्वारा महाराज-कुमारो के जन्म की सूचना मिली[1], तब उसने अपना पथ निष्कटक करने लिये दिल्ली लौटने का विचार किया। इसी के अनुसार उधर तो वि० स० १७३६ की चैत्र सुदी ९ (१० मार्च) को उसने सेयद अब्दुल्लाखाँ को स्वर्गवासी महाराज के सामान और द्रव्य आदि पर अधिकार करने के लिये सिवाने के दुर्ग पर भेजा[2], और इधर स्वर्गवासी महाराजा के माल-असबाब पर अधिकार करने तथा मारवाड-राज्य की आय का हिसाब तैयार करने का प्रबन्ध कर स्वय दोनो नवजात कुमारो को छीन लेने के लिये दिल्ली को चला।

यद्यपि बादशाह औरङ्गजेब मजहबी मामलो मे कट्टर होने के कारण आरम से ही हिंदुओ से मन-ही-मन बडा द्वेष रखता था, तथापि महाराजा जसवतसिंहजी के जीते-जी उसे खुलकर प्रकट नहीं कर सकता था। अत इस समय उनका स्वर्गवास हो जाने से वह निश्शक हो गया, और दिल्ली पहुँचते ही वि० स० १७३६ की वैशाख सुदी २ (ई० सन् १६७९ की २ अप्रेल=हि० सन्० १०९० की १ रबी-उल्-अव्वल) को उसने हिन्दुओ से जजियाँ[3] वसूल करने की आज्ञा प्रचारित करदी।

जब मारवाड मे पूरी तोरसे बादशाही प्रबन्ध हो गया, तब खाँजहाँ बहादुर भी मन्दिरो के तोडने से एकत्रित हुई मूर्तियो को गाडियो मे भरवा कर द्वितीय ज्येष्ठ वदी ११

१ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७२-१७४

२ 'अजितोदय' मे बहादुरखाँ (खाँजहाँ) के द्वारा कोचकबेग का सिवाने भेजा जाना लिखा है। (देखो सर्ग ६, श्लो० ५१) परन्तु यदुनाथ सरकार की लिखी 'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब' से ज्ञात होता है कि चैत्र वदी १४ (१ मार्च) को पहले पहल खिदमत गुजारखाँ ही सिवाने के किले और खजाने पर अधिकार करने के लिये भेजा गया था। परन्तु जब वहाँ का खजाना उसके हाथ न लगा, तब दूसरा सेनापति (सैयद अब्दुल्लाखाँ) वहाँ के लिये नियत किया गया, और उसको आज्ञा दी गई कि वहाँ की पृथ्वी तक को खोदकर माल-असबाब का पता लगावे। (देखो भा० ३, पृ० ३७०-३७१)।

३ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७४। यह मजहबी कर था, जो मुसलमान बादशाह मुसल-मानेतर धर्मवालो से लिया करते थे। परन्तु अकबर ने इस प्रथा को अपने राज्य के लिये हानिकारक समझ बद कर दिया था।

(२५ मई) को दिल्ली जा पहुँचा। उसीके साथ भाटी रघुनाथ और मत्री केसरीसिंह (कायस्थ) भी कई सरदारो को लेकर बादशाह से प्रार्थना करने के लिये दिल्ली गए थे[5]।

इस के बाद काबुल से चला राठोडो का दल भी कुछ दिन लाहौर मे ठहर आषाढ-शुक्ल (जून के अन्त) मे दिल्ली आ पहुँचा, और मारवाड से आए हुए सरदारो के साथ मिलकर बादशाह से बालक महाराज अजितसिंहजी को मारवाड का राज्य देने का आग्रह करने लगा। इस पर बादशाह ने उनसे कहा कि अभी महाराजकुमार बालक है। इसलिये कुछ दिन तक इन्हे और इनकी माताओ को नूरगढ मे रहने दो। जब यह बडे हो जायँगे, तब इन्हे इनका राज्य दे दिया जायगा। परन्तु राठोडो ने यह बात नहीं मानी। यह देख औरङ्गजेब ने राठोड़ सरदारो को अनेक तरह के प्रलोभन देना प्रारम्भ किया। जब इसमें भी उसे सफलता नहीं मिली, तब उसने स्वर्गवासी महाराज के मत्री केसरीसिंह से महाराज के खजाने का हिसाब आदि समझाने का बखेडा शुरू किया, और उसके इनकार करने पर उसे कैद कर लिया। परन्तु इस पर भी वह स्वामि-भक्त मत्री विचलित न हुआ, और अन्न-जल त्यागकर इस ससार के बन्धन से ही मुक्त हो गया[6]।

१ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७५। उसमे यह भी लिखा है कि बादशाह ने खाँजहाँ को शाबाशी देकर आज्ञा दी कि इन मूर्तियों को दरबार के चौक और जुमा मसजिद के आगे डलवा दे, ताकि व लोगों के पाँवों के नीचे कुचली जाती रहें। इनमें की कुछ मूर्तियाँ सोने, चाँदी, ताँबे और पीतल की तथा कुछ जड़ाऊ और कुछ पत्थर की थीं।

२ अजितोदय मे खाँजहाँ का पहले राठोड़ सरदारों को लेकर बादशाह के पास अजमेर जाना और वहाँ से उसके साथ ही दिल्ली लौटना लिखा है। (देखो सर्ग ६, श्लो० ५६-५७)।

ईश्वरदास ने लिखा है कि खाँजहा के मारवाड का राज्य महाराज जसवतसिंह के नवजात कुमार को देने का निवेदन करने पर बादशाह उससे अप्रसन्न हो गया। 'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब', भा० ३, पृ० ३७२ का फुटनोट *

नहीं कह सकते कि यह घटना इसी अवसर की है या बादशाह के दुबारा अजमेर आने पर भाटी रामसिंह के बादशाह को समझाने के लिये खाँजहाँ को पत्र लिखने के समय की है। (देखो अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० १८)।

३. वास्तव मे यह ईस्वी सन् १६७६ की जुलाई मे दिल्ली पहुँचा था।

४. अजितोदय मे सलेमकोट लिखा है। (सर्ग ६, श्लो० ६६)।

५. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७७।

६. अजीतोदय, सर्ग ६, पृ० ६७-७३, ७६।

इसी बीच बादशाह ने राठोड़ सरदारों में फूट डालने के लिये स्वर्गवासी महाराज के बड़े भ्राता राव अमरसिंहजी के पौत्र (रायसिंह के पुत्र) इंद्रसिंह को खासा खिलअत, जड़ाऊ साज की तलवार, सोने के साज का घोड़ा, हाथी, नक्कारा और निशान देकर जोधपुर का राजा बना दिया। इस पर उसने भी इसकी एवज में बादशाह को ३६ लाख रुपये नजर करने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद वह जोधपुर पर अधिकार करने के लिये दिल्ली से नागोर पहुँचा, और वहाँ के राठोड-सरदारों को अपनी तरफ मिलाने की कोशिश करने लगा। 'अजितोदय'[2] से ज्ञात होता है कि यह नागोर से जोधपुर भी आया था, परन्तु वहाँ के राठोडों ने आपस में ही लड़कर अपना बल क्षीण करना उचित न जान उससे किसी प्रकार की छेड़-छाड़ नहीं की।[3]

इसके बाद राठोड-वीरों ने सलाहकर बादशाह से प्रार्थना की कि हममें से बहुत से सरदार अपने-अपने कुटुम्बों के साथ देश को जाना चाहते हैं। इसलिये यदि आप आज्ञा दें, तो रवाना हो जायँ। इस पर बादशाह ने वहाँ पर इनकी संख्या के कम हो जाने में अपना लाभ समझ यह बात स्वीकार कर ली। परन्तु साथ ही यह आज्ञा भी दी

ख्यातों में लिखा है कि इस घटना के समय सिंघी सुंदरदास ने बादशाह को प्रसन्न करने के लिये स्वामि-धर्म का त्यागकर खजाने का सारा भेद उसे बतला दिया था।

१ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७५-१७६।

२ देखो सर्ग ९, श्लो० १-७।

३ ख्यातों में लिखा है कि राव इन्द्रसिंह बादशाह से मारवाड़ का अधिकार पाकर जोधपुर पहुँचा। इस पर पहले तो चांपावत सोनग आदि सरदारों ने मिलकर उसका सामना करने का इरादा किया, परन्तु फिर शीघ्र ही इन्द्रसिंह के अपने पुत्र को भेजकर प्रलोभन दिलवाने से वे उससे मिल गए और जोधपुर का किला उसे सौंपने का विचार करने लगे। इसकी सूचना मिलते ही दुर्गादास ने सोनग को शत्रुपक्ष में जाने से रोकने के लिये एक पत्र लिखा। परन्तु इन्द्रसिंह के दिए प्रलोभन के सामने इसका कुछ भी असर न होसका। इसके बाद जब वि० सं० १७३६ की भादों सुदि ७ (ई० सन् १६७९ की २ सितम्बर) को यहां का किला इन्द्रसिंह को सौंप दिया गया, तब शीघ्रही उसने अपनी प्रतिज्ञा भंग करदी। यह देख सोनग आदि सरदार सिरोही पहुँच दुर्गादास से मिले। इस पर पहले तो उसने उन्हें इन्द्रसिंह के दिए प्रलोभन में पड़जाने के लिये बड़ा उलाहना दिया, परन्तु फिर सबने मिलकर यवनों से युद्ध करना ठान लिया।

४. सैरुलमुताखरीन, भा० १, पृ० ३४३।

कि नवजात कुमारों और दोनों रानियों को यहीं रक्खा जाय। इस पर दुर्गादास आदि तीन सौ सरदार तो दिल्ली में रहे, और बाकी सरदार जोधपुर को रवाने हो गए।

इसी समय राजकुमार दलथम्भन का स्वर्गवास हो गया। अतः इन लोगों ने बालक नरेश अजितसिंहजी को वहाँ से निकाल ले जाने का प्रबन्ध किया। यद्यपि इनकी देख भाल के लिये शाही गुप्तचरों और सैनिकों का पहरा बिठा दिया गया था, तथापि सरदारों ने इन्हें बलूंदे के चाँदावत सरदार मोहकमसिंह की स्त्री बाघेली के साथ सकुशल दिल्ली से निकाल दिया।

'अजितोदय' में लिखा है कि चाँदावत मोहकमसिंह की स्त्री ने अपनी दूध पीती हुई कन्या को तो अजितसिंहजी की धाय को सौंप दिया, और वह स्वयं इन्हें लेकर मारवाड़ की तरफ रवाना हो गई। यह देख उसका पुत्र हरिसिंह और खीची वीर मुकुंददास भी उसके पीछे हो लिए। इन लोगों के निकल जाने पर दिल्ली में ठहरे हुए सरदारों ने शाही पुरुषों को धोका देने के लिये एक बालक को बनावटी राजकुमार बना लिया था।

मारवाड़ में पहुँचने पर कुछ दिन तो बालक महाराज बलूंदे में ही रहे, परन्तु इसके बाद उक्त स्थान के चारों तरफ—जैतारण, मेड़ता, बीलाड़ा और सोजत आदि में मुसलमानों का अधिकार देख खीची मुकुंददास और दुर्गादास इन्हें सिरोही की तरफ ले गए, और वहाँ पर स्वर्गवासी महाराजा जसवंतसिंहजी की रानी देवड़ीजी की सलाह से पुरोहित जयदेव नामक पुष्करणे ब्राह्मण की स्त्री को सौंप दिया। इस पर वह ब्राह्मणी भी अपने गाँव कालिंद्री में रहकर बड़ी होशियारी से इनका लालन-पालन करने लगी। खीची मुकुंददास भी सन्यासी का वेशकर वहीं आस-पास में बस गया, और दूर से ही बालक महाराज पर दृष्टि रखने लगा।

---

१. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ८५-९०।

२. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ९१-९३, 'राजरूपक' में मोहकमसिंहजी की स्त्री का उल्लेख नहीं है। (देखो पृ० ११)।

३. अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० १।

४. अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० ४-७।

५. क्योंकि सिरोही का राव बादशाह के भय से इन्हें अपने यहाँ रखने में सहमत नहीं हो सका था।

६. 'राजपूताने के इतिहास' में लिखा है कि राठोड़ दिल्ली से अजितसिंह को साथ लेकर मारवाड़ की तरफ गए, परन्तु संपूर्ण जोधपुर-राज्य पर बादशाह का अधिकार हो जाने



રાઠોડ-વીર દુર્ગાદાસ

જન્મ-વિ૦ સ૦ ૧૬૯૫ (ઈ૦ સ૦ ૧૬૩૮) સ્વર્ગવાસ-વિ૦ સ૦ ૧૭૭૫ (ઈ૦ સ૦ ૧૭૧૮)

इस प्रकार जब बहुत से राठोड़-सरदार मारवाड की तरफ चले गए, तब पीछे से सावन वदी २ (१५ जुलाई) को बादशाह ने दिल्ली के कोतवाल फौलादखाँ को

> से अजितसिंह की चिंता रहने के कारण दुर्गादास, सोनिंग आदि ने महाराणा राजसिंह को अर्जी लिखकर अजितसिंह को अपनी शरण में लेने की प्रार्थना की। उसे स्वीकार करने पर वे अजितसिंह को महाराणा के पास ले गए और महाराणा को सब जेवर-सहित एक हाथी, ११ घोड़े, एक तलवार, रत्न-जटित कटार, दस हजार दीनार (चाँदी का सिक्का) नजर किए। महाराणा ने उसे १२ गाँवों-सहित केलवे का पट्टा देकर वहाँ रक्खा, और दुर्गादास आदि से कहा कि बादशाह सीसोदियों और राठोड़ों की सम्मिलित सेना का मुकाबला नहीं कर सकता, आप निश्चिन्त रहिए। (देखो भा० ३, पृ० ८६५)।

वह (सोनिंग) उस (महाराजा जसवंतसिंह) की मृत्यु के पीछे राठोड़ दुर्गादास के साथ महाराजा अजितसिंह को लेकर महाराणा राजसिंह के पास आया। अजितसिंह के मेवाड़ से चले जाने के पश्चात् सोनिंग भी राठोड़ दुर्गादास के साथ राठोड़ों की सेना का मुखिया बनकर लड़ा। (देखो भा० ३, पृ० ८६७ पर का पृ० ८६६ के फुटनोट १८ का शेषांश)।

औरंगजेब के साथ महाराणा की संधि होने के पश्चात् सोनिंग आदि राठोड़ महाराजा अजितसिंह को मेवाड़ से सिरोही इलाके में ले गए, वहाँ वह कुछ वर्षों तक गुप्त-रूप से रखा गया। (देखो भा० ३, पृ० ८६६ का फुट नोट नं० ३)।

जोधपुर के महाराज अजितसिंह ने भी उन (सिरोही के देवड़ों) की सहायता की, क्योंकि वह उदयपुर छोड़ने के बाद कई वर्ष तक सिरोही-राज्य में रहा था। इस बात से महाराणा और अजितसिंह के बीच मनमुटाव हो गया। परन्तु कुछ समय बाद स्वयं अजितसिंह ने महाराणा से मेल करना चाहा। महाराजा को जोधपुर प्राप्त करने के लिये महाराणा की सहायता की आवश्यकता थी। (देखो भा० ३, पृ० ६१०)।

परन्तु वास्तव में बालक महाराजा अजितसिंहजी दिल्ली से चाँदावत ठाकुर मोहकमसिंह की ठकुरानी के साथ बलूँदे भेज दिए गए थे। उस समय खीची मुकुंददास भी इनके साथ था। इसके बाद वहाँ पर बालक महाराज का सुरक्षित रहना असंभव समझ राठोड़-वीर दुर्गादास और मुकुंददास इन्हें लेकर सिरोही पहुँचे और वहाँ पर उन्होंने स्वर्गवासी महाराजा जसवंतसिंहजी की रानी देवड़ीजी की सलाह से इनको कालिंद्री के पुष्करणे ब्राह्मण जयदेव की स्त्री को गुप्त-रूप से सौंप दिया।

इस विषय में हम मारवाड़ और मेवाड़ के इतिहासों को छोड़ कर तटस्थ लेखक यदुनाथ सरकार की 'हिस्ट्री ऑफ् औरंगजेब' से कुछ अवतरण उद्धृत करते हैं.–

> दुर्गादास आकर फिर (मार्ग में) अपने बालक महाराज से मिला और उन्हें (२३ जुलाई को) सकुशल मारवाड़ में ले आया।
>
> अजितसिंह ने गुप्त-रूप से आबू के दुर्गम पर्वतों के मठ में परवरिश पाई। (भा० ३, पृ० ३७८)।

राठोड़ों के स्थान पर भेजा। उसे आज्ञा दी गई थी कि वह अजितसिंहजी के साथ ही

उसी में आगे लिखा है कि –

इस समय उदयपुर-नरेश के सामने दो बातें थीं। या तो वे बागी राठोड़ों का साथ देते या अपनी स्वाधीनता को छोड़ते। मारवाड़ पर बादशाही अधिकार हो जाने से उनके पहाड़ी स्थान भी खतरे में पड़ गए थे। इसके अलावा महाराना को भी जजिया देने के लिए दबाया गया था। इसीसे महाराना ने राठोड़ों का साथ दिया। बहुत-से सीसोदिये भी गोड़वाड़ में आए हुए राठोड़ों से मिल गए थे। (देखो भा० ३, पृ० ३८२-३८३)।

इसके अलावा उस समय महाराजा जसवंतसिंहजी का सारा माल-असबाब बादशाह ने छीन लिया था और सारे ही मारवाड़ पर मुगलों का अधिकार हो गया था। इससे राठोड़-सरदार भी संकट में थे। ऐसी हालत में बालक महाराज की तरफ से महाराना को सब जेवरों से सजा हुआ हाथी और दस हजार रुपये आदि नजर करना और उनका महाराज को मेवाड़ में रखकर जागीर देना कहाँ तक ठीक है।

इसीप्रकार अजितसिंह के मेवाड़ से चले जाने पर सोनग का राठोड़ दुर्गादास के साथ होकर शाही सेना से लड़ने का उल्लेख भी विचारणीय है, क्योंकि उन दोनों ने वि० सं० १७३६ (ई० सन् १६८०) में ही जालोर के बिहारी पठान फतेहखाँ पर हमला किया था।

अस्तु। यहाँ पर इन इधर-उधर की बातों को छोड़कर वास्तविक बात पर विचार करना ही उचित है।

स्वयं 'राजपूताने के इतिहास' में बादशाह के और महाराना के बीच वि० सं० १७३८ की श्रावण वदी ३ (ई० सन् १६८१ की २४ जून) को संधि होना लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ८६७), परन्तु दुर्गादास तो इससे २३ दिन पूर्व ही दक्षिण में सम्भाजी के राज्य के पालीनगर में जा पहुँचा था। (देखो 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब,' भा० ४, पृ० २४६) 'मआसिरेआलमगीरी' में भी अकबर और दुर्गादास का (हि० सन् १०९२ की ७ जमादि-उल-अव्वल (वि० सं० १७३८ की ज्येष्ठ सुदि ८=ई० सन् १६८१ की १५ मई) को दक्षिण में पहुँचना लिखा है, और महाराना के साथ की संधि की तिथि ७ जमादि-उल-आखिर (आषाढ सुदी ९=१४ जून) लिखी है। (देखो पृ० २०६-२०८) ऐसी हालत में उक्त घटना के बाद दुर्गादास का बालक महाराज को ले जाकर सिरोही की तरफ छिपाना और सोनग के (जो उसके दक्षिण से लौटने के पूर्व ही मर चुका था) साथ मिलकर शाही सैनिकों से युद्ध करना कहाँ तक संभव हो सकता है।

रहा महाराज को जोधपुर प्राप्त करने में महाराना की सहायता की आवश्यकता का प्रतीत होना, सो न तो स्वयं 'राजस्थान के इतिहास' में ही वि० सं० १७६३ (ई० सन् १७०७) की घटनाओं में इस प्रकार की सहायता का उल्लेख है, न किसी अन्य इतिहास में ही। हाँ हम यह मान लेने को तैयार है कि अन्य अनेक राजनैतिक कारणों से सीसोदियों के भी राठोड़ों के साथ बगावत इख्तियार कर लेने से दोनों पक्षों को एक दूसरे से समय समय पर सहायता मिलती थी, और वे एक दूसरे के रहस्यों से भी बहुत कुछ परिचय रखते थे। परन्तु इससे यह सिद्ध करना कि जोधपुर के बालक महाराज को शरण देने के कारण ही महाराना को बादशाह का कोप-भाजन होना पड़ा था, नितांत असत्य है।

स्वर्गवासी महाराज की दोनो रानियो को भी रूपसिंह राठोड की हवेली से लाकर नूरगढ में रख दे, और यदि उनके साथ के राठोड इसमें बाधा दे, तो उन्हे दण्ड दे। इसी के अनुसार वह शाही सैनिको को लेकर राठोडो के स्थान पर जा पहुँचा, और उनसे बादशाह की आज्ञा के पालन करने का आग्रह करने लगा। परन्तु स्वामि-भक्त राठोड इसकी कुछ भी परवा न कर युद्ध के लिये तैयार हो गए।

जैसे ही यह समाचार महाराज की दोनो रानियो के पास पहुँचा, वैसे ही वे भी मर्दाना वेशकर अपने सुभटो का युद्ध देखने और उन्हे उत्साहित करने को मैदान में आ खडी हुई। यह देख शाही सेना ने राठोडो पर हमला कर दिया। इस पर दोनो तरफ से घमसान युद्ध मच गया। पहले पहल भाटी रघुनाथ (की अध्यक्षता में १०० राजपूत वीरो) ने बडी वीरता से यवन-वाहिनी का सामना किया। इस युद्ध में दोनो तरफ के अनेक योद्धा मारे गए। इसके बाद जब राठोडो की सख्या बहुत कम रह गई, तब दुर्गादास आदि बचे हुए सरदारो ने दोनो रानियो के क्षत-विक्षत शरीरो को[3] यमुना में

१ बादशाह ने इन्द्रसिह को जोधपुर का राज्य देने के साथ ही दिल्ली मे की महाराज की हवेली भी दे दी थी। इसलिये ये लोग किशनगढ-नरेश की हवेली मे ठहरे थे। 'अजितोदय' मे सरदारों का यमुना के किनारे ठहरना लिखा है। (देखो सर्ग ६, श्लो० ५८)।

२ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७७-१७८, अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० १०-१८।

३ अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० १६-२०। 'राजरूपक' मे लिखा है कि रानियों ने अपने सिर कटवाकर पति का अनुगमन किया था। किसी-किसी ख्यात मे इनके सिर काटनेवाले का नाम जोधा चद्रभान लिखा है। यदुनाथ सरकार ने अजितसिंहजी की माता का मेवाड राजवश की होना और उसका दिल्ली से मारवाड पहुँच महाराना से सहायता माँगना लिखा है। (हिस्ट्री ऑफ औरगजेब, भा० ३, पृ० ३७७-३७८ और ३८३-३८४) यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

वी० ए० स्मिथ ने भी अपनी 'ऑक्सफर्ड हिस्ट्री ऑफ इन्डिया' मे करीब करीब यही बात लिखी है। (देखो पृ० ४३८)।

बालकृष्ण दीक्षित-रचित 'अजित-चरित्र' मे लिखा है-

प्रेषणीयावतो देशे धात्रीभ्या सहितावुभौ,
युद्धेस्मिन्गतिरस्माक खड्गेनैव न सशयः।
तदा क्षत्रिया विस्मिता. प्रोचुरेना
स्वदेशेषु-युक्तो गम. श्रीमतीनाम्,
तथा नेति चोक्त गम. पुत्र योस्ते
ध्वजिन्या सम कारयामासुरेते।

(सर्ग ८, श्लो० ११-१२।)

प्रवाहित कर लड़ते-भिड़ते मारवाड़ का मार्ग लिया। तुगलकाबाद तक तो शाही सेना भी इनके पीछे लगी रही, परन्तु अंत को रात्रि के कारण उसे आगे बढ़ने का साहस न हुआ।

राठोड़ों के चले जाने के बाद जब फौलादखाँ को बालक महाराज का कुछ भी पता न चला, तब उसने उनके बदले एक दूध बेचनेवाले के बालक को लेजाकर बादशाह के सामने उपस्थित कर दिया। बादशाह ने भी उसे वास्तविक राजकुमार समझ उसका नाम मोहम्मदीराज रक्खा, और उसे अपनी कन्या जेबुन्निसा बेगम

---

१ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७८। उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि इस युद्ध में राठोड़ों के जोधा रणछोड़दास आदि ३० सरदार मारे गए, और बादशाह के बहुत से सैनिक कत्ल हुए।

अजितोदय, सर्ग ७ श्लो० १६-५५।

परन्तु यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि जिस समय भाटी रघुनाथ यवन सैनिकों का ध्यान अपनी तरफ खींचे हुए था, उसी समय राठोड़ दुर्गादास रानियों को मरदाने भेस में लेकर मय राजकुमार के मारवाड़ की तरफ चल पड़ा। परन्तु जब डेढ़ घंटे के युद्ध में अन्य ७० राजपूत-वीरों के साथ ही रघुनाथ भी मारा गया, तब यवनों ने दुर्गादास का पीछा किया, और उसको करीब ६ मील पहुँचते-पहुचते उसे जा घेरा। इस पर रणछोड़दास जोधा ने थोड़े से वीरों को लेकर उनका मार्ग रोक लिया। परन्तु इन मुट्ठी-भर वीरों के मारे जाने पर फिर मुगल सैनिकों ने इनका पीछा किया। तब दुर्गादास ने महाराज के परिवार को तो ८० योद्धाओं के साथ मारवाड़ की तरफ रवाना कर दिया, और स्वयं ५०० वीरों के साथ पलटकर मुगलों का सामना किया। इस बार घंटे भर के युद्ध के बाद ही सूर्यास्त का समय हो जाने और दिन भर के युद्ध से थक जाने के कारण यवन-सेना शिथिल पड़ गई। अतः जिस समय अपने बचे हुए ७ आहत योद्धाओं के साथ दुर्गादास यवन वाहिनी में से मार्ग काटकर निकल गया, उस समय मुगल सेना भी दिल्ली को लौट गई। इसके बाद दुर्गादास भी महाराज के परिवार के साथ श्रावण वदी ११ (२३ जुलाई) को मारवाड़ में पहुँच गया।

(हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भा० ३, पृ० ३७७-३७८)।

२ मआसिरेआलमगीरी में लिखा है कि बादशाह ने उस बालक को राठोड़ों के डेरे से पकड़ कर लाई गई दासियों को दिखलाकर अपनी तसल्ली करली थी।

परन्तु इतिहास से प्रतीत होता है कि स्वामि-भक्त दासियों ने उसे साफ धोका दिया था। उसमे यह भी लिखा है कि फौलादखाँ ने दूसरे दिन लड़के का कुछ जेवर भी लाकर बादशाह के सामने पेश किया था। राठोड़-सरदारों का कुछ माल भी बादशाह के हाथ आया। (देखो पृ० १७८)।

'मआसिरुलउमरा' मे भी अजितसिंहजी को जसवंतसिंहजी का असली पुत्र लिखा है। (देखो भाग ३ पृ० ७५५) 'सैरुल मुताखरीन' मे लिखा है कि राठोड़ों ने वहाँ पर असली महाराजकुमारों के बदले नकली बालकों को रख कर दिल्ली से कूच कर दिया, और पीछे ठहरनेवाले

को सौंप दिया।

इन दिनों मुगल सैनिक मारवाड में मनमाने अत्याचार करने लगे थे। यह देख सातलवास के (माधोदासोत) मेडतिए राजसिंह ने अपने भाई बन्धुओं को एकत्रित कर मेडते पर चढाई कर दी। इस पर वहाँ का हाकिम शेख सादुल्लाखाँ उससे लडने के लिये नगर के बाहर निकल आया। राजसिंह के निकट पहुँचने पर दोनों तरफ से घमासान युद्ध होने लगा। परन्तु शाम होने पर सादुल्लाखाँ नगर का भार (केशवदासोत) मेडतिये पृथ्वीसिंह को सौंपकर स्वय किले में चला गया। दूसरे दिन कुछ ही देर के युद्ध के बाद किला राजसिंह के हाथ आ गया, और सादुल्लाखाँ पकडा गया। इस पर मेडते के मन्दिरों में फिर से मूर्तिपूजन होने लगा।[2]

सावन वदि ११ (२३ जुलाई) को बचे हुए राठोड-सरदार भी दिल्ली से जोधपुर पहुँच गए। इनकी जबानी दिल्ली के युद्ध का हाल सुनकर चाँपावत वीर सोनग और भाटी राम आदि ने (अजमेर के फौजदार) तहव्वरखाँ को जोधपुर से निकाल कर नगर पर अधिकार कर लिया। इसी प्रकार ववेचा सुजानसिंह ने सिवाने के किले को भी हस्तगत कर लिया।[3]

इन घटनाओं की सूचना पाते ही बादशाह तहव्वरखाँ से नाराज हो गया और उसने उसका खाँ का खिताब छीनकर उससे अजमेर की फौजदारी भी ले ली। इसी प्रकार इंद्रसिंह को भी अयोग्य समझ उसके पास दिल्ली लौट आने की आज्ञा भेज दी। इसके बाद भादो वदि ६ (१७ अगस्त) को बादशाह ने फिर से राठोडों को परास्त कर जोधपुर पर अधिकार करने के लिये सरबलदखाँ की अधीनता में एक बडी सेना

अपने साथियों से कह दिया कि यदि किसी तरह यह भेद खुल जाय, तो वे शाही सैनिकों से युद्ध छेड कर कुछ समय तक उन्हें वहीं रोक रक्खे। इसके बाद वे ही नकली बालक बादशाही महल में पहुँचाए गए, और बहुत समय तक लोग उन्हें ही असली महाराजकुमार समझते रहे। (देखो पृ० ३४३)।

'मुतखिबुल्लुबाब' से भी इसी बात की पुष्टि होती है। उसमें यह भी लिखा है कि जब तक रानाजी ने अपने कुटुम्ब की कन्या से अजितसिंहजी का सबध नहीं कर दिया, तब तक बादशाह का उनके विषय का सदेह दूर नहीं हुआ। (देखो भाग २ पृ० २६०)।

१ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७८।

२ अजितोदय, सर्ग ८, श्लो० १-३४।

३. अजितोदय, सर्ग ८, श्लो० ३०-३२।

रवाना की। इस सेना ने जोधपुर पहुँच दुबारा वहाँ पर कब्जा कर लिया। इन्हीं दिनों इस गड़बड़ से मौका पाकर पड़िहारों ने भी फिर से अपनी पुरानी राजधानी मंडोर पर अधिकार कर लिया था।

इसी बीच मेड़तिया राजसिंह द्वारा मेड़ते के छीने जाने की सूचना पाकर अजमेर के फौजदार तहव्वरखाँ ने उस पर फिर अधिकार करने का विचार किया, और इसी के अनुसार वह अपनी सेना को लेकर पुष्कर पहुँचा। इतने में राजसिंह भी अपनी राठोड़-वाहिनी को लेकर उसके मुकाबले को आ गया। तीन दिन तक दोनों तरफ से वीर युद्ध होता रहा। अंत में शाही सेना को नष्ट करता हुआ राजसिंह भी अपने भाइयों के साथ इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। यह घटना भादों वदी २ (१२ अगस्त) की है।

भादों वदी १३ (२३ अगस्त) को जब बादशाह को इसकी सूचना मिली, तब भादों सुदी ८ (३ सितम्बर) को वह स्वयं अजमेर की तरफ रवाना हुआ, और उसी दिन उसने पालम के मुक़ाम से अपने शाहज़ादे मोहम्मद अकबर को आगे चलकर अजमेर पहुँचने की आज्ञा दी[3]।

आसोज (क्वार) सुदी १ (२५ सितम्बर) को जब बादशाह अजमेर पहुँच गया, तब भाटी रामसिंह ने खाँजहाँ बहादुर को पत्र लिखकर एक बार फिर बादशाह को समझाने और महाराज अजितसिंहजी को उनका पैतृक राज्य दिलवा देने की प्रार्थना की। परन्तु किसी प्रकार इसकी सूचना राव इन्द्रसिंह को मिल गई। अतः उनके आदमियों ने अचानक जोधपुर पहुँच रामसिंह के मकान को घेर लिया। इस पर वह वीर भी तलवार लेकर बाहर निकल आया, और सम्मुख रण में लड़ता हुआ शत्रुओं के हाथों मारा गया।

---

१ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७६।
(हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग ३, पृ० ३७६)।

२ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७६-१८० और 'अजितोदय', सर्ग ८, श्लो० ३५-७०।
'राजरूपक' में इस युद्ध का भादों सुदी ११ को होना लिखा है। (देखो पृ० १८)।

३ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८०।

४ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८१।

५ यह घटना 'अजितोदय' से लिखी गई है (सर्ग ६, श्लो० १४-२२)। 'अजितग्रंथ' से भी इसकी पुष्टि होती है। (देखो, छंद ३१४-३१६) 'मआसिरे-आलमगीरी' में सावन

इसी बीच बादशाह के अजमेर पहुँचते ही सरबलद और शाहजादे अकबर की सेनाओ ने मेड़ते की तरफ होकर जोधपुर पर चढ़ाई की। आश्विन बदी २ (२६ सितम्बर) को बादशाह ने इलाहाबाद के सूबेदार हिम्मतखॉं को भी अकबर की सहायता के लिये भेज दिया।

यद्यपि राठोड-वीर मार्ग मे स्थान-स्थान पर इस सम्मिलित मुगल-सैन्य का सामना कर इसकी गति मे बाधा खड़ी करने लगे, तथापि अत मे इस विशाल सेना ने अपना मार्ग साफकर हिन्दू-मन्दिरो को नष्ट-भ्रष्ट करना शुरू किया। मेडता, डीडवाना, रोहट, परबतसर आदि पर भी शाही सेना का कब्जा हो गया।

इसके बाद ही बादशाह ने मारवाड के भिन्न-भिन्न प्रातो में अपने फौजदार भेज दिए, और इस प्रकार मारवाड पर अधिकार हो जाने से उन्मत्त होकर यवनो ने हर तरफ अत्याचार करने शुरू किए। यह देख महाराना राजसिंहजी ने राठोडो का साथ देना उचित समझा। और इसीके अनुसार राठोडो के २५,००० और सीसोदियो के १२,००० सवारो ने मिलकर शाही सेना को हैरान करना प्रारम्भ किया। इस पर बादशाह और भी क्रुद्ध हो गया, और उसने तहव्वरखॉं आदि मुसलमान-अमीरो और

मे ही बादशाह का इद्रसिंह को दिल्ली बुला लेना लिखा है। परन्तु बादशाह के अजमेर आते समय वह भी शाही सेना के साथ था।

किसी-किसी ख्यात मे इसका भादों सुदी १ को बादशाह की आज्ञा से जोधपुर आना और भादों सुदी ७ को किले पर चढाई करना लिखा है। उसमे यह भी लिखा है कि आसोज सुदी १३ को यह फिर से सिवाने पर अधिकार करने को गया था। परन्तु वहॉं पर इसे सफलता नहीं हुई।

१ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८१।

2 Lord of Udaipur had to choose between rebellion and the loss of whatever is dearest to man The Mughal annexation of Marwar turned his left flank and exposed his country to invasion through the Aravali passes on its western side, while the eastern half of his State, being comparatively level, lay open to a foe as before The mountain fastness of Kamalmir, which had sheltered Partap during the dark days of Akber's invasion, would cease to be an impregnable refuge to his successor The annexation of Marwar was but the preliminary to an easy conquest of Mewar Besides, Aurangzeb's compaign of temple destruction was not likely to stop within the imperial dominions On the revival of the Jaziya tax, a demand for its enforcement throughout his State had been sent to the Maharana If the Sisodias did not stand by the Rathors now, the two clans would be crushed piecemeal, and the whole of Rajasthan would lie helpless under the tyrant's feet So thought Maharana Raj Singh. (History of Aurangzeb, Vol III P 382-383)

३. 'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब', भाग ३, पृ० ३८६।

मोहकमसिंह आदि हिन्दु सरदारो को मेवाड़ के भिन्न-भिन्न परगनों पर अधिकार करने के लिये रवाना किया । साथ ही मँगसिर सुदि ८ (३० नवम्बर) को वह स्वयं भी अजमेर से उदयपुर की तरफ़ चला । इस पर मोहम्मद अकबर, जो उस समय मेड़ते में था, दिवराई मे आकर बादशाह से मिला । पौष वदी ९ (१६ दिसम्बर) को शाहज़ादा मोहम्मदआज़म भी बंगाल से आकर बादशाह के साथ हो लिया । जब महाराना को यह समाचार मिला, तब वह उदयपुर छोड़कर पहाड़ों के आश्रय मे चले गए । इस पर मारवाड़ के बहुत से राठोड़ भी उनके पास जा पहुँचे । यह देख बादशाह ने इधर तो हसनअली को रानाजी का पीछा करने की आज्ञा दी, और उधर उदयपुर मे मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रबंध किया । यद्यपि वीर सीसोदियो ने भी ऐसे समय आत्म-बलि देकर यवनो को रोकने की बहुत कुछ चेष्टा की, तथापि उनके विशाल समूह के आगे वे कृतकार्य न हो सके ।

इस प्रकार मेवाड़ की दुर्दशा होते देख राठोड़ उत्तेजित हो उठे । दुर्गादास तथा सोनग ने और भी जोर-शोर से मारवाड़ में उपद्रव शुरू करने का प्रबंध किया । इसीके अनुसार ये लोग पहले जालोर पहुंचे । परन्तु इनके उत्पात से डरकर वहाँ के शासक फतेहखाँ ने इन्हे कुछ दे-दिलाकर संधि कर ली । इस पर ये लोग वहाँ से बीलाड़े की

१ 'मआसिरेआलमगीरी' मे इन्हीं मे इन्द्रसिंह का भी नाम है । (देखो पृ० १८२) ।

२ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८२ ।

३ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८६ ।

४ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८६ ।

५. 'तवारीखेपालनपुर' में लिखा है कि बादशाह ने वि० सं० १७३६ की फागुन सुदी १४ को गुजरात के सूबेदार की सिफ़ारिश से जालोर, साँचोर और भीनमाल के प्रांत फतेहखाँ को दे दिए थे । (देखो पृ० १४६) ये प्रांत पहले इसके पूर्वजों के अधिकार में भी रह चुके थे । परन्तु इस समय केवल पालनपुर पर ही इसका अधिकार था । यह प्रबंध बादशाह ने राठोडों को दबाने के लिये ही किया था ।

टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि जिस समय बादशाह उदयपुर पर हमला करने मे लगा था, उसी समय उसे दुर्गादास के जालोर पर आक्रमण करने की सूचना मिली । इस पर वह अपनी उदयपुर की विजय को छोड़ कर अजमेर लौट आया, और उसने मुकर्रबखाँ को बिहारियों की मदद पर भेजा । परन्तु उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही दुर्गादास दंड के रुपये लेकर जोधपुर की तरफ चला गया था । (देखो भाग २, पृ० ६६६) ।

'राजरूपक' मे भी बादशाह का मुकर्रब को जालोर की रक्षार्थ भेजना लिखा है । परन्तु 'मआसिरेआलमगीरी' मे लिखा है कि बादशाह ने उदयपुर से अजमेर की तरफ़ लौटते समय मुकर्रमखाँ को रणथंभोर (या बदनोर) की तरफ़ भेजा था ।(पृ० १६०) ।

तरफ चले गए[1]।

जैसे ही इसकी सूचना बादशाह को मिली वैसे ही वह चित्तौड़ की रक्षा का भार शाहजादे मोहम्मद अकबर को देकर, चैत्र वदी १ (ई० सन् १६८० की ६ मार्च) को उदयपुर से अजमेर को लौट चला[2] और वि० स० १७३७ की चैत्र सुदी २ (२२ मार्च) को वहाँ आ पहुँचा।

इसी प्रकार जब इन्द्रसिंह को राठोड़-सरदारों के बीलाड़े की तरफ जाने की सूचना मिली, तब वह भी बदनोर से इनके मुकाबले को चला[3]। खेतासर के तालाब के पास दोनों की मुठभेड़ हुई। दिन-भर तो दोनों तरफ के वीरों ने जी खोलकर तलवार चलाई। परन्तु सायकाल के समय इन्द्रसिंह की सेना के पैर उखड़ गए[4]। इसके बाद दुर्गादास आदि वीर चेराई गाँव में पहुँचे, और जोधपुर पर चढ़ाई करने का विचार करने लगे। इसकी सूचना पाते ही पहले तो इन्द्रसिंह ने राठोड़ों को अपनी तरफ मिलाने की चेष्टा[5] की। परन्तु जब अनेक प्रलोभन दिखलाने पर भी इसमें उसे सफलता नहीं हुई, तब वह स्वयं जोधपुर चला आया, और यहीं से बादशाह को सारा हाल लिख भेजा। इस पर उसने तत्काल नवाब मुकर्रमखाँ को जोधपुर की तरफ रवाना किया। अतः जिस समय राठोड़ों की सेना जोधपुर को घेरकर उस पर अधिकार करने का उद्योग कर रही थी, उसी समय वह यहाँ आ पहुँचा। इस पर ये लोग जोधपुर का घेरा उठाकर मेवाड़ की तरफ चले गए। यद्यपि नवाब और इन्द्रसिंह ने बहुत कुछ इनका पीछा करने की चेष्टा की, तथापि ये उनके हाथ न आए[6]।

१ अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० २७।

२ मआसिरुलउमरा, पृ० १९०।

३ 'राजरूपक' मे इस घटना का वि० स० १७३७ की ज्येष्ठ सुदी १० को होना लिखा है।

४ अजितोदय, सर्ग ९, श्लो० २८-४७। 'राजरूपक' मे इस युद्ध का वि० स० १७३७ की जेष्ठ सुदी १३ को होना लिखा है।

५ ख्यातों में लिखा है कि जब दुर्गादास आदि के सामने राव इन्द्रसिंह को सफलता की आशा नहीं रही, तब उसने पाली ठाकुर चांपावत उदैसिंह और कूंपावत प्रतापसिंह (सुदर सेखोत) को उन्हें समझाने के लिये भेजा। परन्तु दुर्गादास ने इनकी बात मानने से इन्कार करदिया और उदैसिंह को धिक्कारते हुए कहा कि तुम महाराजा जसवन्तसिंहजी की कृपा से ही पाली की जागीर का उपभोग करते थे, उसका बदला क्या इसी प्रकार देते हो?, यह सुन वह बहुत लज्जित हुआ और राव इन्द्रसिंह का साथ छोड़ दुर्गादास के साथ होगया।

६ अजितोदय, सर्ग १०, श्लो० १-१६। 'मआसिरे-आलमगीरी' मे बीलाड़े और जोधपुर की इस चढ़ाई का उल्लेख नही मिलता है।

इसके बाद राठोड़ सरदार रानाजी के साथ मिलकर सोजत और जैतारण के प्रांतों में मार-काट करने और वहाँ की रबी की फसल को लूटने लगे। यह देख वहाँ के शाही हाकिमों ने सारा हाल बादशाह को लिख भेजा। इस पर उसने वि० सं० १७३७ की जेठ वदी ४ (६ मई) को हामिदखाँ को सोजत और जैतारण में उपद्रव करने वाले राठोड़ों को दबाने के लिये रवाना किया। परन्तु जब उसे सफलता नहीं मिली, तब बादशाह ने शाहज़ादे मोहम्मद आज़म को तो चित्तौड़ की रक्षा के लिये भेजा, और शाहज़ादे अकबर को सोजत और जैतारण पहुँच राठोड़ों को दंड देने की आज्ञा दी[3]। इसी के अनुसार वह (वि० सं० १७३७ की आषाढ सुदी ९ = ई० सन् १६८० की २५ जून को) चित्तौड़ से रवाना होकर बाकी-घाटी के मार्ग से मारवाड़ को चला। उसकी सेना के अग्र-भाग का मार्ग साफ करने के लिये तहव्वरखाँ नियत किया गया। यह देख राठोड़ों ने मार्ग में स्थान-स्थान पर आक्रमण कर मुग़ल-सेना के बढ़ने में बाधा डालनी शुरू की। ब्यावर और मेड़ते के पास तो और भी जमकर सामना किया। परन्तु अंत में सावन सुदी ३ (१८ जुलाई) को शाहज़ादे अकबर ने दल-बल-सहित सोजत पहुँच उसे अपना सदर मुक़ाम बनाया।

इस पर राठोड़ अपने को भिन्न-भिन्न दलों में बाँटकर देश में चारों तरफ़ मार-काट करने और देश को उजाड़ने लगे। ये लोग जहाँ कहीं मौका पाते, मुग़लों की चौकियों पर टूटकर उन्हें नष्ट कर देते या मार्ग में उनकी रसद को लूटकर उन्हें तंग करते थे। इससे मुग़लों को हर समय अपनी चौकियों आदि की रक्षा के लिये चौकन्ना या इधर उधर घूमते रहना पड़ता था। यदि राठोड़ों का एक दल मारवाड़ के दक्षिणी भाग-जालोर और सिवाने पर अचानक आक्रमण करता था, तो दूसरा मारवाड़ के पूर्वी भाग-गोडवाड़ पर टूट पड़ता था। इसी प्रकार तीसरा दल देश के उत्तरी भाग में स्थित नागौर को लूटता, तो चौथा तत्काल ईशान-कोण के प्रदेश डीडवाना और साँभर में मार-काट मचा देता था। इससे मुग़ल सेना बहुत हैरान हो गई।

---

१ 'राजरूपक' से ज्ञात होता है कि राणा राजसिंहजी ने बादशाह से बदला लेने के लिये अपने पुत्र राजकुमार भीम को सेना देकर राठोड़ों के साथ कर दिया था।

२ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १९३।

३ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १९४। अजितोदय, सर्ग १०, श्लो० २६-२७।

४ 'हिस्ट्री ऑफ औरंगज़ेब', भाग ३, पृ० ३९२-३९३।

उन दिनो राठोडो का मुख्य शिविर नाडोल मे था, और वहीं से ये लोग रानाजी से मिलकर मेवाड के यवनो को भी तग किया करते थे। अत सोजत पहुँचते ही शाहजादे अकबर ने तहव्वरखॉ को नाडोल हस्तगत कर कुमलमेर पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। परन्तु अपने प्राणो के मोह को त्यागकर रणागण में जूँझनेवाले राठोड-वीरो का एकाएक मुकाबला करने की उसके सैनिको की हिम्मत न हुई। इसलिये कई महीने तो तैयारी में ही लगा दिए गए। इसके बाद मार्ग में फिर सैनिको के आगे बढने से इनकार कर देने पर उसे एक मास तक खरवे में रुकना पडा। अत में जब बडी मुशकिल से वह सेना नाडोल पहुँची, तब फिर मुगलो को भयने आ घेरा। इस पर लाचार होकर आश्विन सुदी ८ (२१ सितम्बर) को स्वय शाहजादे अकबर को सोजत से वहाँ जाना पडा। यद्यपि इस समय तक जोधपुर से (सोजत होते हुए) नाडोल तक मार्ग में स्थान-स्थान पर शाही चोकियो का प्रबन्ध कर रसद आदि के लिये मार्ग साफ कर दिया गया था, तथापि तहव्वरखॉ ने पहाडी मार्ग मे आगे बढने से इनकार कर दिया। अत मे अकबर के बहुत दबाव डालने पर आश्विन सुदी १४ (२७ सितम्बर) को जैसे ही वह आगे बढ देसूरी की घाटी के पास पहुँचा, वैसे ही राठोडो और राजकुमार भीम की सम्मिलित सेनाओं ने पहाडो से निकल उस पर आक्रमण कर दिया[1]। दोनो तरफ के वीर एक दूसरे को पछाडने मे बहादुरी दिखाने लगे। परन्तु पूरी सफलता किसी पक्ष को न मिली[2]। इसके बाद राठोडो ने वहाँ रहना अनुचित समझ बीटणी की तरफ प्रयाण किया और वहाँ पर लूट-मारकर ये लोग मेडते की तरफ चले आए। इस पर मँगसिर वदी १३ (९ नवम्बर) को हामिदखॉ को उधर जाने की आज्ञा दी गई। परन्तु राठोडो ने इसकी भी कुछ परवा नहीं की, और डीडवाने[3] तथा साभर मे जाकर उपद्रव शुरू कर दिया।

यह देख मँगसिर सुदी २ (१३ नवबर) को रुहुल्लाखॉ तो मोहम्मद अकबर की सहायता को भेजा गया[4], और मुगलखॉ को सॉभर और डीडवाने की रक्षा के लिये जाने

१ 'राजरूपक' मे इस युद्ध का नाडोल मे होना लिखा है।

२ हिस्ट्री ऑफ औरगजेब, भा० ३, पृ० ३६४-३६५।

३ अजितोदय, सर्ग १०, श्लो० ५१-५२।

४ 'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब' मे लिखा है –

मँगसिर सुदी ७ (१८ नवम्बर) को बादशाह का भेजा हुआ रुहल्लाखॉ नवीन सेना और खर्च के रुपयों के साथ नाडोल पहुँचा। उसके द्वारा बादशाह ने शाहजादे अकबर को शीघ्र ही आगे बढने

की आज्ञा मिली। इसी के १८वें रोज शाहजादे कामबख्श का बख्शी मोहम्मद नईम भी अकबर की सहायता के लिये भेज दिया गया। इस पर राठोड़-सरदार फलोदी की तरफ चले गए, और वहाँ पर युद्ध की सामग्री आदि का संग्रह कर फिर गोड़वाड़ की तरफ लौट आए। इसके बाद एक बार फिर ये मैदान के युद्धों में अपने सवारों द्वारा और पहाड़ी लड़ाइयों में पैदल सैनिकों द्वारा समय-समय पर शाही सेना से सम्मुख रण में लोहा लेकर अथवा उसकी रसद आदि को लूटकर या उस पर नैश आक्रमण कर यथासंभव उसे तंग करने लगे।

इधर यह सब हो रहा था और उधर दुर्गादास ने मारवाड़ के उद्धार के लिये पहले गुजरात की तरफ जाकर उपद्रव करने का इरादा किया। परन्तु अंत में एक नवीन युक्ति सोच निकाली। उसी के अनुसार इसने शाहजादे मुहम्मद मोअज्जम को अपने पिता का पदानुसरण कर राठोड़ों की सहायता से बादशाह बन जाने के विषय में पत्र लिखे। पर जब इसमें सफलता की आशा न देखी, तब इसी विषय की बातचीत शाहजादे मोहम्मद अकबर से शुरू की। इस पर उक्त शाहजादे ने अपने अधीनस्थ सेनापति तहव्वरखाँ से सलाह कर इस बात को अंगीकार कर लिया, और अपने बादशाह हो जाने पर महाराजा अजितसिंहजी को उनका राज्य लौटा देने की प्रतिज्ञा की[3]।

की आज्ञा भेजी थी। अतः वह दूसरे ही दिन नाडोल से देसूरी की तरफ चला, और वहाँ पहुँचकर मँगसिर सुदी ११ (२२ नवम्बर) को उसने तहव्वरखाँ को भीलवाड़े की तरफ रवाना किया। यद्यपि मार्ग में राजपूत-वीरों ने सम्मुख रण में प्रवृत्त हो भीषण मार-काट मचाई, तथापि अपनी संख्याधिकता के कारण अंत में किसी तरह मुगल-सेना कुम्भलमेर से ८ मील उत्तर के भीलवाड़ा ग्राम में पहुँच कर ठहर गई। (देखो भाग ३, पृ० ३६६-३६७)।

१ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १६५।

२ अजितोदय, सर्ग १० श्लो० ५२-५३।

(बादशाह राठोड़ों से इतना क्रुद्ध हो गया था कि वह मारवाड़ को उजाड़ देने तक को उद्यत था। उसने अपने अमीरों को आज्ञा दी थी कि जोधपुर और उसके आस पास के प्रदेशों को बर्बाद कर दो, शहर और गाँवों को जला दो, फलवाले दरख्तों को काट दो, स्त्री-पुरुषों को पकड़कर गुलाम बना डालो और सारी रसद को लूट लो।)।

३ 'अजितोदय' और 'राजरूपक' में अकबर की तरफ से इस प्रस्ताव का किया जाना लिखा है। (देखो सर्ग ११, श्लो० ४-६)।

इसके बाद ही दुर्गादास आदि सरदारों ने शाहजादे अकबर से मिलकर नाडोल में उसका बादशाह होना घोषित कर दिया[1], और साथ ही ये लोग उक्त नवीन बादशाह को लेकर पुराने बादशाह औरङ्गजेब पर चढ चले। जैसे ही इसकी सूचना औरङ्गजेब को मिली, वैसे ही एक बार तो वह बिलकुल ही घबरा गया, क्योंकि उस समय उसके पास कुल मिलाकर दस हजार से भी कम अनुयायी थे। अत उसने अपने निवासस्थान के चारो तरफ मोरचे बँधवाकर पास की पहाड़ियो पर तोपे लगवा दीं। इसी बीच वि० स० १७३७ की माघ बदी ३० (ई० सन् १६८१ की ९ जनवरी) को शहाबुद्दीनखाँ, जो सोनग और दुर्गादास को गुजरात की तरफ जाकर उपद्रव करने से रोकने के लिये सिरोही की तरफ भेजा गया था, अजमेर लौट आया। यह मीरकखाँ को भी, जो शाहजादे अकबर के साथ था, समझा-बुझाकर अपने साथ ले आया[2] था। परन्तु अपने बादशाहत पाने की खुशी में मस्त हुए और नाच-रग मे लगे अकबर ने इधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार धीरे-धीरे और भी कई अमीर उसकी सेना से निकल गए[3]।

जब चार-पाँच दिनो मे इधर-उधर से आकर कुछ और सेना औरङ्गजेब के शिविर मे इकट्ठी हो गई, तब वि० स० १७३७ की माघ सुदि ४ (ई० सन् १६८१ की १३ जनवरी) को वह अजमेर से निकल कर ६ मील दक्षिण के दोवराई नामक गाँव मे पहुँचा। वहीं पर उसे शाहजादे अकबर और राजपूत सैनिको के कुडकी में (अजमेर से नैर्ऋत कोण में २४ मील पर) होने की सूचना

१ यह घटना वि० स० १७३७ की माघ बदी ६ (ई० सन् १६८१ की ३ जनवरी) की है।

'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब' (भा० ३ पृ० ३६८) मे इस घटना का समय ई० सन् १६८१ की १ जनवरी लिखा है। उसमे यह भी लिखा है कि इस कार्य मे महाराना राजसिंह का भी हाथ था। परन्तु २२ अक्टोबर (वि० स० १७३७ की कार्त्तिक सुदी १०) को उनकी मृत्यु हो जाने से उस समय यह कार्य न हो सका। अत. कुछ दिन बाद उनके उत्तराधिकारी महाराना जयसिंह के समय यह कार्य सपन्न हुआ। (देखो भा० ३, पृ० ४०५)।

२ मआसिरेआलमगीरी, पृ० १९६-१९९।

३. इसी बीच हामिदखाँ भी बादशाह के पास पहुँच गया था, और शाहजादा मुअज्जम भी शीघ्र ही पहुँचने वाला था।

मिली। उस समय अकबर के पास क़रीब १६ हज़ार सेना थी। तीसरे दिन बादशाह औरङ्गजेब वहाँ से और भी दो चार मील दक्षिण के दोराहा स्थान पर पहुँचा। परन्तु यहाँ से आगे बढ़ने की उसकी हिम्मत न हुई।

जैसे-जैसे शाहज़ादे अकबर और बादशाह औरङ्गजेब की सेनाएँ परस्पर निकट होती जाती थीं, वैसे-वैसे बादशाही अमीर अकबर की सेना से निकल-निकलकर शाही लश्कर में मिलते जाते थे। यहीं पर शाहज़ादा मुअज्ज़म भी, मेवाड़ से आकर, शाही लश्कर के साथ हो गया। इसके बाद यहाँ से बादशाह ने पहले तो पत्र लिखकर अकबर को धोका देने की चेष्टा की, परन्तु जब इसमें उसे सफलता नहीं हुई, तब उसने उसके सेनापति तहव्वरख़ाँ को[3] (उसके ससुर) इनायतख़ाँ के द्वारा भय और लालच दिखलाकर अपनी तरफ मिला लिया। इस पर वह पहर रात जाने पर चुपचाप अकबर के शिविर से निकल बादशाह की डेवढ़ी पर जा पहुँचा। परन्तु वहाँ पर शस्त्र खोलकर अन्दर जाने से इनकार करने पर मार डाला गया।

इसी बीच राठोड़ों को भी तहव्वर के बादशाह के पास चले जाने की सूचना मिल गई। इससे ये संदेह में पड़ गए और इनका विश्वास अकबर पर से उठ गया। ऐसी अवस्था में ये लोग उसका साथ छोड पीछे हट गए। जब

१. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में ३० हज़ार सेना का होना लिखा है। (देखो भाग ३, पृ० ४१०)।

२. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में लिखा है कि यहाँ से दो रास्ते निकलते थे। एक पश्चिम की तरफ ब्यावर होता हुआ मारवाड़ को और दूसरा पूर्व की तरफ आगरे को जाता था। (देखो भा० ३, पृ० ४१०)।

३ 'मआसिरे आलमगीरी' में बादशाहकुलीख़ाँ नाम लिखा है। (देखो पृ० २००-२०१) यह तहव्वरख़ाँ ही का खिताब था, जो बादशाह ने उसको मेवाड़ के रणस्थल में दिखलाई हुई वीरता के उपलक्ष में दिया था। (देखो मआसिरुलउमरा, भा० १, पृ० ४४८ और हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० ३६६)।

४ उस समय दोनों सेनाओं के बीच केवल ३ मील का फासला था।

५ 'राजरूपक' में लिखा है कि जिस समय तहव्वरख़ाँ बादशाह के पास जाने लगा, उस समय उसने राठोड़ों से भी कहला दिया कि मैंने आपके और शाहज़ादे अकबर के बीच पड़कर संधि करवाई थी। परन्तु मुझे शाहज़ादे के बादशाह से मिल जाने का संदेह होता है। अतः अब मैं इसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं रख सकता। आप लोगों को भी सावधान होकर लौट जाना चाहिए।

प्रात:काल होने पर इस घटना की सूचना शाहजादे अकबर को मिली, तब वह बहुत घबराया। उस समय उसके पास केवल ३५० सवार ही रह गए थे। इसलिये वह बाप के क्रोध से बचने के लिये अपने कुटुम्ब और माल-असबाब को लेकर १० कोस के फासले पर ठहरे हुए राठोडो की शरण में चला गया। यह घटना वि० स० १७३७ की माघ सुदी ७ (ई० सन् १६८१ की १६ जनवरी) की है। उसकी यह दशा देख राठोड भी असली भेद को समझ गए। इसी से दूसरे दिन रात्रि मे दुर्गादास ने उसके पास पहुँच उसे अपनी शरण में ले लिया। परन्तु इस समय तक मौका हाथ से निकल चुका था, अत. वे उसको साथ लेकर जालोर की तरफ चले गए।

इस घटना से बादशाही शिविर मे बड़ा आनन्द मनाया गया। इसके बाद बादशाह शाहबुद्दीनखाँ, शाह आलम, कुलीचखाँ, इन्द्रसिंह आदि को बागियो का पीछा करने की आज्ञा देकर स्वय अजमेर लौट गया।

वी० ए० स्मिथ ने अपनी 'ऑक्सफर्ड हिस्ट्री ऑफ इन्डिया' मे लिखा है कि स्वय बादशाह ने राजपूतों को धोका देने के लिये अकबर के नाम का पत्र लिख कर उनके हाथ मे पहुँचवा दिया था। इसी से वे लोग शाहजादे को बाप से मिला हुआ समझ उससे अलग हो गए। (देखो पृ० ४४१)।

'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब' से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमे लिखा है कि बादशाह ने उस पत्र मे अकबर को लिखा था कि मै तेरे राठोडो को धोका देकर फसा लाने से बहुत प्रसन्न हूँ। कल प्रात:काल के युद्ध मे मैं आगे से उन पर आक्रमण करूँगा और तू पीछे मे हमला कर देना। इससे वे आसानी से नष्ट हो जायँगे। जब यह पत्र दुर्गादास को मिला, तब वह इसके बाबत अपना सदेह मिटाने को अकबर के शिविर मे पहुँचा। परन्तु उस समय अर्द्धरात्रि से भी अधिक समय बीत चुका था। अत. अकबर गहरी नीद मे सोया हुआ था। ऐसे समय यद्यपि दुर्गादास ने उसके अगरक्षकों से उसे जगाने को कहा, तथापि ऐसा करने की आज्ञा न होने के कारण उन्होंने इस बात के मानने से इनकार कर दिया। इससे दुर्गादास क्रुद्ध होकर लौट गया। इसके बाद उसने तहव्वरखाँ की तलाश की। परन्तु जब उसके भी शाही सेना मे चले जाने का समाचार मिला, तब राठोडों का सदेह दृढ हो गया, और वे प्रात काल होने के ३ घन्टे पूर्व ही अकबर के शिविर को लूटकर मारवाड की तरफ लौट गए। यह देख अन्य शाही सेना-नायक भी बादशाह से जा मिले। (देखो भा० ३, पृ० ४१४-४१५)।

१. अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० १२-१६।

२ मआसिरेआलमगीरी, पृ० २०३। 'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब' मे लिखा है कि बादशाह औरगजेब ने शाहज़ादे मोअज्जम को सेना देकर अकबर को पकडने के लिये मारवाड

वि० सं० १७३८ की चैत्र सुदी ११ (ई० सन् १६८१ की २० मार्च) को इनायतखाँ अजमेर का फौजदार बनाया गया, और उसे भी राठोड़ों को दबाने की आज्ञा मिली। जब इससे भी राठोड़-सरदारों का उपद्रव शांत न हुआ, तब बादशाह ने स्वर्गवासी महाराजा जसवन्तसिंहजी के बनावटी पुत्र मुहम्मदीराज को दिल्ली (शाहजहानाबाद) से अपने पास बुलवाया। परन्तु उपद्रव की भयंकरता के कारण वह उसे जोधपुर की गद्दी पर न बिठा सका।

पहले लिखे-अनुसार राठोड़ों की सेना भी अकबर को लिये हुए जालोर जा पहुँची। परन्तु शाह आलम की सेना ने इसका पीछा न छोड़ा। इससे जैसे ही उक्त सेना जालोर पहुँची, वैसे ही राठोड़-वाहिनी ने उस पर अचानक धावा कर दिया, और जो कुछ सामान हाथ लगा, उसे लेकर वह सांचोर चली गई। जब वहाँ पर भी शाही सेना ने उनका पीछा किया, तब फिर उन्होंने उनका सामना किया, और मार-काट मचा कर (सिवाने होती हुई) सिरोही की तरफ चली गई।

की तरफ रवाना किया और साथ ही तमाम शाही चौकियों के अफसरों के नाम भी इधर-उधर के मार्गों को रोक कर अकबर को राजपूताने से बाहर न जाने देने की आज्ञा लिख भेजी। (देखो भा० ३, पृ० ४०६-४०७)।

कापा (जोधपुर नगर के बाहर) के एक कीर्तिस्तम्भ पर के वि० सं० १७३८ की माघ सुदि १५ के लेख से उस समय जोधपुर का इन्द्रसिंह के शासन में होना प्रकट होता है।

१. मआसिरेआलमगीरी, पृ० २०६। वि० सं० १७४० के पौष (ई० स० १६८३ के दिसम्बर) में इसे जोधपुर के शासन के साथ ही अजमेर की फौजदारी भी दी गई थी। (हिस्ट्री ऑफ औरंगज़ेब, भा० ५, पृ० २०३ फुटनोट)।

२. 'मआसिरेआलमगीरी' में इसका वि० सं० १७३८ की वैशाख सुदि २ (ई० स० १६८१ की ६ अप्रेल) को अजमेर पहुँचना लिखा है। (देखो पृ० २०७)।

३. मआसिरेआलमगीरी, पृ० २०४।

४. अजितोदय, सर्ग ११ श्लो० १६-१८। उक्त इतिहास में बहादुरखाँ द्वारा राठोड़ों का पीछा किया जाना लिखा है। 'राजरूपक' में लिखा है कि बादशाह की आज्ञा से शाह आलम ने ८ हजार सुवर्ण मुद्राएँ भेजकर दुर्गादास को अपनी तरफ मिलाना चाहा था। परंतु वीर दुर्गादास ने वे मुहरें लेकर अकबर को खर्च के लिये दे दीं, और शरणागत के साथ विश्वासघात करने से साफ इनकार कर दिया।

'अजितोदय' में शाहआलम द्वारा चार हजार मुहरों का भेजा जाना लिखा है। (देखो सर्ग ११ श्लो० २०)।

इसके बाद सोनग[1] और दुर्गादास आदि मुख्य-मुख्य सरदारों ने अकबर को अपने साथ-साथ लिए फिरना उचित न समझा। इसलिये मारवाड का भार तो चॉपावत वीर सोनग को सौंपा गया, और दुर्गादास अकबर को लेकर ५०० सैनिकों के साथ राजपीपला के मार्ग से दक्षिण की तरफ रवाना हो गया[2]। यद्यपि बादशाह की आज्ञा से शाही सेना ने इनका बहुत कुछ पीछा किया, तथापि उसे सफलता नहीं हुई, और ये लोग जेठ सुदी ८ (१५ मई) को बुरहानपुर होकर वि० स० १७३८ की आषाढ बदी १० (ई० सन् १६८१ की १ जून) को शंभाजी के राज्य (पाली) में जा पहुँचे[3]। इन्हे आया देख यद्यपि पहले तो

१ यह सरेचा का ठाकुर था।

२ 'अजितोदय' मे लिखा है कि राठोड-सैनिक सिरोही से आबू की तरफ गए, और अकबर को वहॉं रखकर मारवाड की ओर चले आए। इसकी सूचना पाते ही इन्द्रसिंह भी जोधपुर आ पहुँचा। परन्तु शीघ्र ही बादशाह उससे नाराज होगया, और उसने उसे अपने पास बुलवा कर जोधपुर का प्रबन्ध इनायतखॉं को सौंप दिया। इस पर उस (इनायतखॉं) ने अपनी ओर से कासिमखॉं को वहॉं की देख-भाल सौंप दी।

इसी समय अकबर आबू से लौटकर सिरोही होता हुआ पालनपुर पहुँचा। वहीं पर पहुँच कर राठोड भी उसके शरीक होगए और फिर बडगॉंव होते हुए थिराद की तरफ चले गए। इसके बाद ये फिर सिवाने होते हुए सिरोही पहुँचे। यही पर दुर्गादास ने मारवाड का भार तो सोनग को सौंप दिया और स्वय अकबर के साथ मेवाड की तरफ चला गया। इसके बाद वह रानाजी से द्रव्य की सहायता लेकर (क्योंकि उस समय महाराना जयसिंहजी अकबर को शरण देने मे असमर्थ थे) अकबर के साथ नर्मदा को पार करता हुआ शंभाजी के पास जा पहुँचा (देखो सर्ग ११, श्लो० २१-२६)।

'हिस्ट्री ऑफ औरङ्गजेब' मे लिखा है कि अकबर साचोर से चलकर मेवाड पहुँचा। यद्यपि महाराना जयसिंह ने उसका अच्छा आदर सत्कार किया, तथापि वहॉं पर भी शाही सेना के आक्रमण का भय देख दुर्गादास उसे दक्षिण की ओर ले जाने का प्रबन्ध करने लगा। (देखो भा० ३, पृ० ४१७-४१८)।

'राजपूताने के इतिहास' मे लिखा है कि महाराना ने दुर्गादास को पत्र लिखकर अकबर को मेवाड मे लाने से मना कर दिया था। (देखो भा० ३, पृ० ८६७)।

कहीं-कहीं इनका मल्लानी के रेतीले भाग की ओर जाना भी लिखा है। वास्तव मे दुर्गादास का अकबर को दक्षिण की ओर ले जाने से यही तात्पर्य था कि इससे बादशाह का ध्यान उधर बट जायगा, और मारवाड का आक्रमण शिथिल हो जायगा।

३. 'हिस्ट्री ऑफ औरङ्गजेब' भा० ४, पृ० २४६। उस इतिहास मे यह भी लिखा है कि यद्यपि बादशाह ने सब मार्गों और घाटों का प्रबन्ध कर रक्खा था, तथापि दुर्गादास बडी चालाकी से अपना पीछा करनेवालों को धोके मे डालता हुआ डूॅंगरपूर से अहमदनगर

शंभाजी विचार मे पड़ गए, तथापि अंत में कवि कलश के समझाने से उन्होंने इनको बड़े आदर-सत्कार के साथ अपने यहाँ रख लिया।

इसकी सूचना पाने पर बादशाह को भय हुआ कि कहीं शाहजादा अकबर उधर भी इधर जैसा ही उपद्रव न खड़ा करदे। अतः उसने स्वयं दक्षिण की ओर जाने का इरादा किया। परन्तु मारवाड़ मे राठोडों और मेवाड़ मे सीसोदियों उसको हैरान कर रहे थे। इसलिये अंत मे उसने महाराना से संधि कर लेना ही उचित समझा। इसी के अनुसार बादशाह ने मोहम्मद आजम के द्वारा महाराना को संधि कर लेने को प्रस्तुत किया, और बातचीत तय हो जाने पर जजिया लेना बंद करके मेवाड़ का इलाका रानाजी को सौंप दियाँ। परन्तु उसके पुर, माडल और बदनोर के परगने अपने ही अधिकार मे रक्खे। इस संधि मे एक शर्त यह भी थी कि जिस समय महाराज अजितसिंहजी युवा हो जायँ, उस समय बादशाह की तरफ से मारवाड़ का राज्य उनको सौंप दिया जायँ।

की तरफ चला। परन्तु जब उसे इस मार्ग से जाने में सफलता न हुई, तब वह अग्निकोण की ओर लौटकर बाँसवाड़े और दक्षिण मालवे से होता हुआ ज्येष्ठ वदी ८ (१ मई) के निकट अकबरपुर के पास से नर्मदा के उस पार हो गया, और इसी के १५वें रोज बुरहानपुर से कुछ फासले पर तापती के किनारे जा पहुँचा। परन्तु यहाँ पर भी शाही अवरोध के मिलने से उसे पश्चिम की ओर मुड़कर खानदेश और बगलाने होते हुए चलना पड़ा। अन्त मे वह रायगढ से शंभाजी के पास पहुँच गया। (देखो भा० ३ पृ० ४१८)।

१ 'अजितोदय' सर्ग ११, श्लो० २७-२६।

२ 'अजितग्रन्थ' मे लिखा है कि सोनग ने भाटी वीरों को साथ लेकर आषाढ सुदी ६ (१४ जून) को जोधपुर के निकट इनायतखाँ से भीषण संग्राम किया। इसके बाद इसने फलोदी पहुँच उसे भी लूटा। (देखो छंद ६४४-६५४)।

३ मआसिरेआलमगीरी मे रानाजी की तरफ से संधि का प्रस्ताव होना लिखा है। यह संधि वि० सं० १७३८ की आषाढ सुदी ६ (ई० सन् १६८१ की १४ जून) को राजसमन्द तालाव पर शाहजादे आजम और राना जयसिंहजी के बीच हुई थी। (देखो पृ० २०८-२०९)।

कहीं कहीं ७ के बदले १७ जमादिउस्सानी मानकर श्रावण वदी ३ (२४ जून) को इस घटना का होना लिखा है।

४. एलफिंस्टन्स हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ६२७।

इसके बाद सावन सुदी १ (६ जुलाई) को शाहआलम बहादुर (मुहम्मद मुअज्जम) भी, जो राठोडो को दबाने के लिये भेजा गया था, सोजत और जैतारण की ओर से लौटकर अजमेर आ पहुँचा[2]।

भादों सुदी ३ (६ अगस्त) को बादशाह को खॉजहॉ बहादुर की अर्जी से सूचना मिली कि शाहजादा अकबर इस समय दक्षिण मे पाली के किले[3] में ठहरा हुआ है और उसके पास २०० सवार और ८०० पैदल है। इन सब के खर्च का प्रबध शभाजी की ही तरफ से होता है। यह हाल जानकर बादशाह ने मुहम्मद आजम को शाह का खिताब देकर दक्षिण की ओर भेजा, और प्रथम आश्विन सुदी ६ (८ सितबर) को स्वय भी उधर कूच किया[4]। साथ ही अजमेर का प्रबध शाहजादे मुहम्मद अजीम को सौंपा। बादशाह के दक्षिण की ओर जाते ही सोनग आदि राठोड-सरदारो ने और भी जोर-शोर से उपद्रव का झन्डा खडा किया, और लगभग तीन हजार सवार एकत्रित कर मेडता-प्रात को विध्वस्त करना प्रारम किया[5]। इस पर कार्तिक सुदी १४ (१४

१ 'राजरूपक' मे इसी वर्ष की आषाढ सुदी ६ को महाराज के सरदारों का जोधपुर पर चढाई कर युद्ध करना लिखा है। (देखो पृ० ७६)।

२ 'मआसिरेआलमगीरी' पृ० २०६। 'अजित ग्रन्थ' मे लिखा है कि उसी समय बादशाह ने इन्द्रसिंह से नाराज होकर जोधपुर जब्त कर लिया। परन्तु शाहआलम के कहने से नागोर उसी के पास रहने दिया (देखो छद ६३१-६३६) उसी में आगे लिखा है कि बादशाह ने इनायतखा, को जोधपुर का प्रबन्ध सौपा। अत. शाहबुद्दीनखॉ, जो हाल ही मे वहॉ गया था, वीलाडे चला गया। (देखो छन्द ६४०-६४३)।

३ यह किला रायगढ से २५ मील पर था। कही-कही अकबर का पादशाहपुर मे ठहरना भी लिखा मिलता है। यह पाली के किले से ६ मील पूर्व मे था।

४ 'मआसिरेआलमगीरी' पृ० २११।

५ उस समय मारवाड के उत्तर मे सॉभर और डीडवाने मे, ईशानकोण मे मेडते मे, पूर्व मे जैतारण, सोजत, पाली और गोडवाड मे, पश्चिम मे बालोतरा, पचपदरा और सिवाने मे तथा दक्षिण मे जालोर मे बडे-बडे शाही थाने मुकर्रर किए गए थे। (हिस्ट्री ऑफ् औरङ्ग-जेब, भा०५, पृ० २७५-२७६)।

६ 'मआसिरेआलमगीरी' पृ० २१२। 'अजित ग्रथ' मे लिखा है कि बादशाह ने इनायतखॉ के बदले कासिमखॉ को जोधपुर भेजा, और असदखॉ को शाहआलम के पुत्र अजीम के पास अजमेर मे रक्खा। (देखो छन्द ६८४-६८६)।

७ 'राजरूपक' मे इनका जोधपुर को घेरना, और बादशाह का घबराकर इनसे सधि करना लिखा है। उक्त इतिहास मे यह भी लिखा है कि इस अवसर पर अजितसिंहजी को सात हजारी

नवम्बर) को शाही सेनापति ऐतकादखॉ ने इन पर चढाई की । पूँदलोता के पास युद्ध होने पर दोनो तरफ के बहुत से वीर मारे गए । इन्हीं मे प्रसिद्ध वीर सोनग था । अत. उसकी मृत्यु के उपरात उसका बडा भाई चॉपावत अजबसिंह सेनापति नियत हुआ, और उसने इधर-उधर के गॉवो को लूट डीडवाने पर चढाई की । यह देख वहाँ का शाही हाकिम घबरा गया । परन्तु इसी अवसर पर एक शाही सेना उधर आ पहुँची । अत ये लोग वहॉ से कसूँबी को चले गए, और कुछ वीरों ने जाकर मेडते को लूट लिया । शाही सेना भी इनके पीछे लगी चली आती थी । इससे डीगराने मे पहुँचते-पहुँचते

मनसब के साथ ही जोधपुर लौटा देना भी तय हुआ था । परन्तु इस घटना के २-१ दिन बाद ही सोनग के मर जाने से यवनों ने यह सधि भग कर दी ।

'राजरूपक' मे अजमेर के सूबेदार अजीमदीन की मार्फत सधि का प्रस्ताव होना लिखा है । परतु अजितोदय मे अस्तीखॉ द्वारा सधि का प्रस्ताव किया जाना लिखा है । (देखो सर्ग ११, श्लो० ३२-३३) ।

१. 'मआसिरेआलमगीरी' पृ० २१४-२१५ ।

'राजरूपक' मे १७३८ की आसोज सुदी ७ शनिवार को सोनग का एकाएक मर जाना लिखा है । यथा.-

अठत्रीसै आसोज में, सित सातम सनवार,
गौ सोनागिर धाम हरि, नाम करे ससार ।

द्वितीय आश्विन सुदी ७ को शनिवार था । अत उस दिन ई० सन् १६८१ की ८ अक्टोबर आती है । 'अजित ग्रन्थ' मे भी यही तिथि लिखी है । यथा -

सुदी दूजो आसोज, वले सातम सनिवारे,
सुत वीठल गो सुरग, सुणे इम हाको सारे । ७२३

'अजितोदय' मे भी इसका एकाएक मरना ही लिखा है । उपर्युक्त ग्रथों से यह भी पता चलता है कि शाही सेनापतियों ने सोनग की मार से तग आकर ही सधि करने का निश्चय किया था । परन्तु उसके मरते ही अपना वचन भग कर दिया । (देखो 'राजरूपक', पृ० ८२ और 'अजितोदय', सर्ग ११, श्लो० ३२-३५) ।

'अजित ग्रन्थ' से भी इस बात की पुष्टि होती है । (देखो छन्द ६६४-७२६) ।

२ 'मआसिरेआलमगीरी' में सोनग के साथ ही अजबसिंह का मरना भी लिखा है । परन्तु 'अजितोदय' मे सोनग के बाद अजबसिंह का सेनापति होना लिखा है । (देखो सर्ग ११, श्लो० ३३) ।

यह बात ' राजरूपक ' से भी प्रकट होती है । (देखो पृ० ८३) ।

३ 'अजित ग्रन्थ' मे मकराने के लूटने का उल्लेख है । (देखो छन्द ७४५) ।

उसने राठोडो की सेना को पकड लिया। मारवाड के वीर भी शत्रु को आया देख मुडकर उस पर टूट पड़े। घोर युद्ध के बाद घोडे का पैर टूट जाने के कारण वीर अजबसिंह युद्ध-स्थल मे मारा गया[1]।

इसके बाद सरदारो ने चाँपावत धीरसिंह के पुत्र उदयसिंह को अपना सेनापति बनाया। इस पर वह भी सेना को सजाकर जालोर पहुँचा, और उक्त नगर को लूटकर माँडले[2], सरवाडपुर और तोडे को लूटता हुआ मारवाड मे लौट आया। इसके बाद इसने जाकर नगर नामक गाँव को लूट लिया[3]।

वि० स० १७३९ (ई० सन् १६८२) मे इधर ऊदावत जगरामसिंह ने जैतारण में जाकर मार-काट मचाई[4], और उधर भाद्राजन पर हमला करनेवाली यवन-वाहिनी को जोधा उदयभान[5] ने और बालोतरे की तरफ आई हुई शाही सेना को बाला अखैराज आदि ने मार भगाया[6]। इस प्रकार ऊदावत, कूँपावत, मेडतिया आदि राठोडो ने और भाटी

१ अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० ३४-४० । उक्त काव्य मे मेडते को लूटने की तिथि वि० स० १७३७ की कार्त्तिक वदी १४ (ई० सन् १६८० की ११ अक्टोबर) लिखी है। यथा.—

सवन्धैलभवाद्रिवारिधिशशाकाको न्मितेऽब्दे तथा-
प्यूर्जे कृष्णदले तु शम्भुदिवसे प्रात. समागम्य च ।

परन्तु इसमे एक वर्ष का अन्तर प्रतीत होता है। 'राजरूपक' मे अजबसिंह का वि० स० १७३८ की कार्त्तिक सुदी २ को युद्ध मे मरना लिखा है। (देखो पृ० ८५)।

'अजितग्रन्थ' मे अजबसिह के मरने की तिथि वि० स० १७३८ की कार्त्तिक सुदी १ (ई० सन् १६८१ की १ नवम्बर) लिखी है। (देखो छन्द ७७६-७८०)।

२ 'मआसिरेआलमगीरी' से ज्ञात होता है कि वि० स० १७३८ की फागुन सुदी ११ (ई० सन् १६८२ की ८ फरवरी) को बादशाह को ज्ञात हुआ कि राठोड माँडलपुर पर धावा करके बहुत सा माल-असबाब लूट ले गए हैं। (देखो पृ० २१७।) (मेवाड का यह परगना बादशाह के अधिकार मे था)।

'राजरूपक' मे फागुन सुदी ३ को माँडल का लूटना और चैत्र बदी ८ को सोजत का घेरना लिखा है। (देखो पृ० ८८)।

३ अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० ४७-४८।

४ अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० ४६-५२। 'राजरूपक' मे इस घटना का कार्त्तिक वदी १२ को होना लिखा है। यह युद्ध एक मास तक चलता रहा था।

५ अजितोदय, सर्ग १२, श्लो० २-७।

६ अजितोदय, सर्ग १२, श्लो० २६-३६। 'राजरूपक' मे इस घटना का समय भादों सुदी १३ लिखा है।

चौहान, सीसोदिया आदि उनके सबन्धियों ने मारवाड को उजाड़ कर देश-भर में गमनागमन के मार्ग रोक दिए।

इसी प्रकार चॉपावत उदयसिंह ने सोजत की यवन-वाहिनी को परास्त किया। जोधावतों के एक दल ने मारवाड़ के उत्तरी भाग के मुसलमानों का मार्ग रोका, और दूसरे ने शाही सेना-नायक नूरअली को मार भगाया।

इसके बाद चॉपावत उदयसिंह और मेड़तिया मोहकमसिंह[1] ने गुजरात की ओर जाकर उपद्रव आरम्भ किया। इसकी सूचना पाते ही सैयद मोहम्मद की सेना ने इनका पीछा किया। इस पर ये लोग उससे लडते-भिडते रतपुर होकर पाली पर टूट पड़े। यहाँ के युद्ध[2] में बाला राठोडों ने अच्छी वीरता दिखाई। इसके बाद मेड़तिये मोहकमसिंह ने सोजत और जैतारण लूट मेडते पर अधिकार कर लियाँ[3]।

वि० स० १७४१ (ई० सन् १६८४) में अजमेर के शाही सेना-नायक ने राठोडों पर चढाई की। इसी बीच मौका पाकर भाटियों ने मंडोर पर अधिकार कर लियाँ, परन्तु कुछ दिन बाद ही उक्त नगर फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया[4]।

---

१ 'राजरूपक' के अनुसार इसने शाही मनसब छोड़ कर बालक महाराज का पक्ष ग्रहण किया था।—

मोहकमसिंह किल्याण तण, मेडतियो पखवद,
तज मनसफ सुरताणरो, मिलियो फौज कमद।

(देखो पृ० ८३)।

'अजितग्रंथ' में इस घटना का करीब एक वर्ष पूर्व सोनग के समय होना प्रकट होता है। उसमे यह भी लिखा है कि यह मोहकमसिंह अकबर की बगावत के समय तहव्वरखाँ के साथ था। इसीसे उसके मारे जाते ही अपनी जागीर तोसीणे म चला गया था। जब बादशाह ने इसको मरवाने का विचार किया, तब यह आकर सोनग के साथ हो गया। (देखो छंद ६५४, ६६० और ६७४)।

'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' मे भी मोहकमसिंह का ई० सन् १६८१ मे राठोडों के साथ होना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० २७६)।

२ 'राजरूपक' मे पाली के युद्ध का वि० स० १७४० की पौष सुदी ६ को होना लिखा है। (देखो पृ० ६७)।

३ 'अजितग्रन्थ' मे लिखा है कि वि० स० १७४० की सावन वदी १४ (ई० सन् १६८३ की ६ जुलाई) को असदखाँ और शाहजादा अजमेर से दकन को चले और इनायतखाँ को मारवाड का भार सौंपा गया। यहा के सरदार बराबर उपद्रव कर रहे थे। (देखो छंद ६१८–१०२२)।

४ 'राजरूपक' मे भी इस घटना का वि० स० १७४१ के प्रारम्भ मे होना लिखा है। (देखो पृ० १००)।

इधर अनूपसिंह ने करमसोतो और कूँपावतो को लेकर लूनी के आस-पास मार-काट मचाई, और उधर मोहम्मदअली ने मौका पाकर मेडता छीन लेने के लिये चढ़ाई की । परन्तु जब यवन-सेनापति को सम्मुख युद्ध मे विजय की आशा न दिखाई दी, तब उसने मेडतिया मोकमसिंह को सधि के बहाने अपने पास बुलवाकर मार डाला[1][2] ।

इसके बाद कूँपावत, भाटी और चौहान-वीरो ने जोधपुर पर चढाई की । यह देख मुगल-सैनिक भी मुकाबले मे आ डटे । युद्ध होने पर महाराज की तरफ के अनेक वीर मारे गए । इस पर सग्रामसिंह ने शाही मनसब की आशा छोड अपने वशवालो का साथ दिया, और सुरजॉ मे मार-काट कर बालोतरे और पचपदरे को लूट लिया[3] ।

जोधा उदयभान के उपद्रव से तग आकर शाही फौज ने भादराजन पर चढाई की । परन्तु युद्ध मे उदयभान के आगे वह सफल मनोरथ न हो सकी[4] ।

वि० स० १७४२ (ई० सन् १६८५) के लगते ही कूँपावत-वीरो ने कारणाणे में पुरदिलखॉ पर हमला कर उसे मार डाला, और चैत्र सुदी ८ (ई० सन् १६८५ की २ अप्रेल) को सिवाने का किला छीन लिया[5] ।

इसी प्रकार अन्य राजपूत-वीर भी अपने बालक महाराज की अनुपस्थिति मे अपने-अपने दलो को साथ लेकर इधर-उधर घूमते रहते थे, और जब जहॉ मौका पाते, तब वहीं यवनो पर आक्रमण कर उनका नाश करते थे[6] ।

१ 'राजरूपक' मे वि० स० १७४१ के वैशाख मे इस युद्ध का होना लिखा है । (देखो पृ० १०४) ।

२ 'राजरूपक' मे इस घटना का समय १७४१ की आषाढ सुदी ६ लिखा है । (देखो पृ० १०५) ।

३ राजरूपक, पृ० १०५-११० ।

४ 'राजरूपक' मे इस युद्ध का वि० स० १७४१ की माघ सुदी ७ को होना लिखा है । (देखो पृ० १११) ।
'अजितग्रन्थ' मे भी इस घटना की यही तिथि लिखी है । (देखो छद १११२) ।

५ एशियाटिक सोसाइटी, बगाल की छपी 'मआसिरेआलमगीरी' मे इस घटना का १२ दिन बाद वैशाख वदी ६ (१४ अप्रेल) को होना लिखा है । (देखो पृ० २५६) 'अजितग्रन्थ' मे लिखा हे कि वि० स० १७४१ के ज्येष्ठ मे पुरदिल को सिवाना मिला था, और १० मास बाद फागुन मे उसने उस पर अधिकार किया था । (देखो पृ० १६२ की वार्ता और छद ११३८) ।

६ उस समय मारवाड के अनेक सरदार जहॉ तहॉ यवनो से लोहा लेने मे लगे थे । अत. उन सब के किए युद्धों का अलग-अलग वर्णन करना कठिन होने के कारण ही यहॉ पर केवल मुख्य-मुख्य लडाइयो का सक्षिप्त हाल दिया गया है ।

इसके बाद अगले वर्ष कुछ चाँपावत, कूँपावत और ऊदावत आदि शाखाओं के सरदारों ने महाराज को देखने और उनको प्रकट कर सरदारों के चित्त में और भी अधिक उत्साह बढ़ाने का संकल्प किया। इसी के अनुसार ये लोग खीची मुकुन्ददास के पास जाकर बालक महाराज के विषय में पूछताछ करने लगे। इसी समय बूँदी से आकर हाडा राव दुर्जनसालजी भी इनके साथ हो गए।[1] यद्यपि पहले तो मुकुन्ददास ने इस विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर उन सब को दुर्गादास के दक्षिण से लौट आने तक संतोष रखने की सलाह दी, तथापि अन्त में जब सरदारों का अत्यधिक आग्रह देखा, तब लाचार हो वि० सं० १७४४ की चैत्र सुदी १५ (ई० सन् १६८७ की १८ मार्च) को बालक महाराज को लाकर सब के सामने उपस्थित कर दिया।[2] उस समय महाराज की अवस्था लगभग ८ वर्ष की थी। फिर भी सब से पूर्व हाडा दुर्जनसालजी उनसे मिले,[3] और फिर क्रमशः मारवाड़ के सरदारों ने नजर और निछावर करके महाराज का अभिनन्दन किया।

इसके बाद महाराज अपने उपस्थित सरदारों के साथ आउवा, बगड़ी, रायपुर, बीलाडा, बलूँदा, रीयाँ, आसोप, लवेरा, खींवसर, फोलू आदि स्थानों में होते हुए और वहाँ के सरदारों को साथ लेते हुए पौकरन पहुँचे।

इस समय तक दुर्गादास को दक्षिण में रहते बहुत समय बीत चुका था। अतः उसे भी मारवाड़ के समाचार जानने की उत्कण्ठा हुई। परन्तु दक्षिण के मार्गों पर चारों ओर शाही सेना की चौकियाँ बैठी हुई थीं। इसलिये वह शाहजादे अकबर को

१ 'राजरूपक' में इनका १,००० सवारों के साथ आना लिखा है। (देखो पृ० १२१)।

२. 'राजरूपक' में इस विषय में लिखा है –

बरस तयाँलै चैत सुद, पूनम परम उजास।

उक्त काव्य में श्रावण से नया वर्ष माना गया है। अतः इसके अनुसार यह घटना वि० सं० १७४४ के चैत्र में ही हुई थी। (देखो पृ० १२२)।

परन्तु हमने जहाँ कहीं अन्यत्र 'राजरूपक' से तिथियाँ और संवत् उद्धृत किए हैं, वे उत्तरीय भारत में प्रचलित चैत्र शुक्ल १ से प्रारम्भ होनेवाले संवतों में परिवर्तन करके ही किए हैं।

'अजित-ग्रन्थ' में चैत्र सुदी १० को इनका प्रकट होना लिखा है (देखो छंद १४८२)।

३. 'अजित-ग्रन्थ' में इनका वि० सं० १७४३ में राठोड़ों के शरीक होना (देखो छंद १४४४) और महाराज अजित के अपने सरदारों के साथ सॉडेराव में पहुँचने पर उनसे मिलना लिखा है। (देखो छंद १४६३)।

जल-मार्ग से फारस की तरफ रवाना कर अपने वीरों के साथ शाही सैनिकों की दृष्टि को बचाता हुआ नर्मदा के पार हो गया, और वहाँ से मालवे के प्रदेशों को लूटता हुआ वि० स० १७४४ के भादों (ई० सन् १६८७ के अगस्त) में मारवाड आ पहुँचा।

ख्यातों में लिखा है कि दुर्गादास की सलाह के बिना ही सरदारों के आग्रह से महाराज प्रकट कर दिए गए थे। इसी से यहाँ पहुँचने पर उसके चित्त में कुछ उदासीनता आ गई। अत जब वह दक्षिण से लौटकर मारवाड़ में आया, तब उसने स्वय उपस्थित न होकर केवल पत्र द्वारा ही महाराज को अपने आगमन की सूचना भेज दी[2]। यह देख महाराज ने उसे ले आने के लिये अपना आदमी भेजा। परन्तु वह कुछ दिन के बाद उपस्थित होने की प्रतिज्ञा कर बात को टाल गया। इस पर महाराज स्वय जाकर दुर्गादास से मिले, और बाद मे उसी की सलाह से गूंधरोट के पर्वतो में चले गएँ। इसके बाद दुर्गादास ने भी अपने वीरों को एकत्रित कर इधर-उधर के यवन-शासकों को तग करना शुरू कियाँ।

१ अजितोदय मे लिखा है कि अकबर एक बार फिर दुर्गादास के साथ मारवाड मे आने को तैयार हो गया था। परन्तु मार्ग में मुगल-सैनिकों का सामना हो जाने और युद्ध मे मरहटों के पीछे हट जाने से उसने इस विचार को छोड दिया। इस युद्ध मे दुर्गादास और उसके राजपूत-अनुयायियों ने अच्छी वीरता दिखाई थी। इसके बाद दुर्गादास के मारवाड की तरफ लौट जाने पर अकबर जल-मार्ग से हबस-देश की तरफ चला गया। (देखो सर्ग १३ श्लोक १०) अन्य इतिहासों से उसका ई० सन् १६८६ के अक्टोबर के अत (वि० स० १७४३ के वैशाख) में पर्शिया के मार्ग से मस्कट की तरफ जाना प्रकट होता है।

'मआसिरेआलमगीरी' मे लिखा है कि हि० सन् १०६४ की १८ सफर (वि० स० १७४० की फागुन वदी ५=ई० सन् १६८३ की ६ फरवरी) को खाँजहाँ-बहादुर ने बादशाह को लिखा कि शाहजादा अकबर शभा के राज्य से निकल जहाज द्वारा भाग गया है। (देखो पृ० २२४) परन्तु वास्तव में उस समय कवि कलश और दुर्गादास ने उसे कह-सुनकर रोक लिया था। (देखो सरकार-रचित 'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब', भा० ४, पृ० २८५-२८६)।

२ उस समय महाराज का निवास सिवाने मे था। (देखो अजितग्रन्थ, छद १५०२)।

३. यहीं से कुछ दिन बाद यह सिवाने के किले मे चले गए थे।

४ 'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब' में लिखा है कि दुर्गादास और दुर्जनसाल हाडा ने मिलकर मोहन, रोहतक और रिवाडी को लूटा। इसमे बहुत-सा माल इनके हाथ लगा। इसका समाचार मिलने पर दिल्ली में भी गड़बड मच गई। यह देख वहाँ के प्रबधकर्ताओं ने ४,००० सवार इनके मुकाबले को भेजे। जब वे सवार इनसे २० मील के फासले पर पहुँच गए,

इस प्रकार महाराज के प्रकट होने से उनके सरदारों का उत्साहित होना देख अजमेर के शाही हाकिम ने शीघ्र ही इस घटना की सूचना बादशाह के पास भेज दी। इससे उसकी चिन्ता और भी बढ़ गई, और उसने अजमेर के सूबेदार के नाम महाराज को पकड़ लेने की आज्ञा लिख भेजी। यह कार्य कुछ ऐसा सहज नहीं था। इसलिये बहुत कुछ उद्योग करने पर भी उसे सफलता नहीं मिली[1]। यह देख एक बार फिर बादशाह ने स्वर्गवासी जसवन्तसिंहजी के बनावटी पुत्र मोहम्मदीराज को जोधपुर का राज्य सौंपने का इरादा किया। परन्तु वि० सं० १७४५ (ई० सन् १६८८) में वह बीजापुर में प्लेग की बीमारी से मर गया[2]।

इसके बाद बादशाह ने गुजरात के सूबेदार कारतलबखाँ को मारवाड़ का प्रबन्ध करने के लिये जाने की आज्ञा भेजी। परन्तु उसके गुजरात से रवाना होते ही वहाँ की सेना में बलवे की सूरत हो गई, इसलिये उसे मार्ग से ही वापस लौट जाना पड़ा।

तब ये दोनों सरहिंद होते हुए मारवाड़ में लौट आए। इसके बाद दुर्गादास ने पुर और माँडल पर हमला किया। वहाँ पर इनायतखाँ और दीनदारखाँ (मांडल के फौजदार) की सेनाओं से युद्ध होने पर दुर्गादास भाग गया।

कर्नल टॉड के लेखानुसार राठोड़ों ने मालपुरे की सेना को नष्ट कर वहाँ से दंड के रुपये वसूल किए थे। (देखो भा० ५, पृ० २८८)।

१. 'अजितोदय' (सर्ग १३, श्लो० ३३) और 'ख्यात' (पृ० १२५) में इस हाकिम का नाम इनायतखाँ लिखा है, और उसमें यह भी लिखा है कि उसी समय पीठ में फोड़ा हो जाने से वह मर गया था। अतः इस कार्य में सफल न हो सका। 'बॉम्बे गजेटियर' में लिखा है कि ई० सन् १६८६ में इनायतखाँ के मरने की सूचना पाकर कारतलबखाँ वहाँ के झगड़े को दबाने के लिये गुजरात से जोधपुर को रवाना हुआ। (देखो भा० १, खंड १, पृ० २८८) परन्तु 'मआसिरेआलमगीरी' में उसके मरने की सूचना का औरंगजेब के पास वि० सं० १७३९ की कार्तिक सुदी ३ (ई० सन् १६८२ की २३ अक्टोबर) को पहुँचना लिखा है। (देखो पृ० २२३)।

'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' में लिखा है कि हि० सन् १०९९ (वि० सं० १७४४=ई० सन् १६८७) में जोधपुर का फौजदार मर गया। परन्तु उस समय दक्षिण से फौज भेजना असम्भव था। अतः वहाँ की फौजदारी का भार भी गुजरात के सूबेदार को सौंप दिया गया। (देखो भाग ३, पृ० ४२३ फुटनोट *) उसी में यह भी लिखा है कि उसने अगले वर्ष राठोड़ों से यह समझौता कर लिया कि यदि वे व्यापारियों के गमनागमन में बाधा न डालेंगे, तो उनके माल पर के लगान का चौथाई हिस्सा उन्हें दिया जायगा। (देखो भा० ५, पृ० २७३)।

२ मआसिरेआलमगीरी, पृ० ३१८।

अन्त में जब उसने वहाँ पहुँच उस झगडे को दबा दिया, तब बादशाह ने प्रसन्न होकर उसका नाम शुजाअतखाँ रख दिया और गुजरात के साथ ही मारवाड़ का प्रबंध भी उसे सौंप दिया। इसके बाद शुजाअतखाँ गुजरात से जोधपुर पहुँचा और उसने काजमबेग मोहम्मद अमीन को जोधपुर में अपना प्रतिनिधि नियत किया। मेड़ता (राव इन्द्रसिंह के पुत्र) मोहकमसिंह को सौंपा गया। सोजत और जैतारण पर सैयदों का अधिकार रहा। इस प्रकार मारवाड का प्रबंध कर वह फिर गुजरात को लौट गया।[1][2]

यह देख मारवाड़ के सरदारों ने फिर से मार-काट शुरू कर दी। इसी समय इनायतखाँ का पुत्र मुहम्मदअली अपने कुटुम्ब को लेकर मेडते से दिल्ली को रवाना हुआ। यह बड़ा ही धूर्त था। अत. इसकी सूचना पाते ही चाँदावत जूँझारसिंह, सूरजमल और जोधा हरनाथ ने उसका पीछा किया। मार्ग में युद्ध होने पर मुहम्मद तो अपने कुटुम्ब को छोड कर भाग खडा हुआ, और उसका साज-सामान राठोडों के हाथ लगा।[3]

वि० स० १७४६ (ई० सन् १६८९) मे चाँपावत मुकुन्ददास और दुर्गादास आदि ने मिलकर जोधपुर के रक्षक काजमबेग और अजमेर के सेनापति शफीखाँ को तंग करना शुरू किया।[4] इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने उसकी शिथिलता के लिये बहुत कुछ उलाहना लिख भेजा। इस पर शफीखाँ ने और भी दृढता के साथ राठोडों का पीछा शुरू किया।[5]

---

१ बॅंबिगजेटियर, भा० १, खड १, पृ० २८८।

२ अजितोदय, सर्ग १३, श्लो० २४-२८।

३ अजितोदय, सर्ग १४, श्लो० १ और १६-३७, राजरूपक, पृ० १३३-१३४ और अजितग्रन्थ, छन्द १५८४-१५८८। 'राजरूपक' में इस घटना का वि० स० १७४६ में होना लिखा है। 'अजितोदय से ज्ञात होता है कि शुजाअतखाँ ने मेडते का प्रबन्ध भी इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को सौंप दिया था। इसी से मुहम्मदअली वहाँ से दिल्ली को रवाना हुआ था। (देखो सर्ग १३, श्लो० २९)।

इस मुहम्मदअली ने कोसाने के ठाकुर चाँदावत पृथ्वीसिंह को, दोहा के ठाकुर चाँदावत जैतसिंह को और मेडतिया मोहकमसिंह को धोके से मारा था। (अजितोदय सर्ग १४, श्लो० ३-१८)।

४ 'अजितग्रन्थ' मे इस घटना का वि० स० १७४७ मे होना लिखा है। (देखो छन्द १६०० और १६०४-१६०६)।

५ 'अजितग्रन्थ' मे वि० स० १७४७ (ई० सन् १६९०) मे शुजाअतखाँ का गुजरात से मारवाड मे आना और बादशाह का अपने पदाधिकारियों द्वारा मारवाड मे महाराज के

वि० सं० १७४७ के मंगसिर (ई० स० १६९० के नवम्बर) में अजमेर के शाही सेनापति शफ़ीख़ाँ ने महाराज को धोका देकर पकड़ लेने का इरादा किया, और इसीके अनुसार उसने इन्हें अजमेर आकर मारवाड़ के शासन का बादशाही फ़रमान ले जाने की सूचना दी। महाराज भी शफ़ीख़ाँ का पत्र पाकर अपने दल-बल सहित सिवाने से अजमेर की तरफ़ चले। यद्यपि इनके दल-बल को देख उसकी हिम्मत इनको पकड़ने की न हुई, तथापि इनके इधर चले आने से यवनों ने सिवाने पर अधिकार कर उसे जोधा सुजानसिंह को सौंप दिया। जैसे ही महाराज को इस कपट का पता चला, वैसे ही यह समेल के पहाड़ों में चले गए।

वि० सं० १७४८ (ई० स० १६९१) में महाराना जयसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंहजी ने पिता से राज्य छीन लेने का विचार किया। इस पर महाराना तत्काल कुंभलगढ़ चले आए, और वहां से उन्होंने मेड़तिये गोपीनाथ की सलाह के अनुसार महाराज अजितसिंहजी के पास आदमी भेजकर इनसे सहायता की प्रार्थना की। इस पर महाराज की तरफ़ से चांपावत उदयसिंह और दुर्गादास उनकी मदद में भेजे गए। इन्होंने वहां पहुंच साम, दान और भय द्वारा राजकुमार को शांत कर दिया। इस प्रकार पिता-पुत्र के बीच संधि हो जाने पर रानाजी उदयपुर चले गए और

सरदारों को चौथ (आमदनी का चौथा हिस्सा) देने का हाल सुन दक्षिण से उसके नाम उलाहना लिख भेजना लिखा है। ([illegible] १६५०-१७१४)।

१ 'अजितग्रन्थ' में वि० सं० १७५१ की चैत्र सुदी में अजमेर के फ़ौजदार शफ़ीख़ाँ का मरना लिखा है। (देखो पृ० ३६५) उसमें यह भी लिखा है कि इसके बाद इसका काम हामिदख़ाँ को सौंपा गया। (देखो पृ० ३६७)।

२ यह पिसांगण का था। 'राजरूपक' में सिवाना लेने का कुछ भी उल्लेख नहीं है। (हस्तलिखित प्रति, पृ० १३२-१३३)।

३ 'अजितग्रन्थ' में इस घटना का वि० सं० १७४६ के आश्विन में होना लिखा है। (देखो पृ० ३१५ और ३५६)।

'हिस्ट्री ऑफ् औरङ्गजेब' में ई० सन् १६९० में दुर्गादास द्वारा अजमेर में शफ़ीख़ाँ का हराया जाना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि इस घटना की सूचना पाकर शुजाअतख़ाँ को मारवाड़ में आना पड़ा और इसी समय उसने व्यापारियों के माल के लगान का चौथा हिस्सा राठोड़ों को देना तय किया। (देखो भा० ५, पृ० २७८-२७९)।

महाराजकुमार राजसमद तालाव पर रहने लगे । इसके बाद दुर्गादास आदि राठोड़ सरदार लौटकर मारवाड़ मे चले आए[1] ।

वि० स० १७४९ (ई० सन् १६९२) में औरङ्गजेब ने शाहजादे मुहम्मद अकबर की कन्या[2] को दुर्गादास से वापस लेने की कोशिश शुरू की । परन्तु इसका कुछ भी नतीजा न हुआ । उलटा राठोड-सरदारो का उपद्रव और भी बढ गया । इस पर शुजाअतखॉ खुद जोधपुर आया, और उसने कुछ बडे-बड़े सरदारो को उनकी जागीरे लौटाकर अपनी तरफ मिला लेने की चेष्टा की । उसी की आज्ञा से काजिमबेग ने भी दुर्गादास पर चढाई कर उसके दल को बिखेर दिया । परन्तु पूरी सफलता न होने के कारण पहले के समान ही मोहकमसिंह को मेडते मे छोड शुजाअतखॉ गुजरात को लौट गया[3] ।

ख्यातो मे लिखा है कि यद्यपि महाराज दुर्गादास से बिना पूछे ही अजमेर की तरफ चले गए थे, तथापि सिवाने के इस प्रकार हाथ से निकल जाने के कारण दुर्गादास को बहुत दु ख हुआ, और वह फिर उदासीन होकर घर बैठ रहा । इस पर महाराज वि० स० १७५० (ई० सन्० १६९३) में फिर उससे मिलने के लिये भीमरलाई पहुँचे । इसकी सूचना पाते ही दुर्गादास ने आगे आ महाराज की अभ्यर्थना की । परन्तु पीछे से आने का वादा कर महाराज के साथ चलने से इनकार कर दिया । यह बात महाराज को बुरी लगी, और वह कुछ असन्तुष्ट होकर कुडल की तरफ लोट गए[4] ।

वि० स० १७५० (ई० सन् १६९३) में मुसलमानो की सम्मिलित सेनाओ ने मोकलसर के बाला अखैसिंह पर चढाई की । परन्तु बाला राठोडो ने बडी वीरता से इनका सामना किया । इसी प्रकार और भी कई जगह शाही और महाराज की सेनाओ के बीच मुठभेडे हुईं । इस वर्ष भी शुजाअत को राठोड़ो के उपद्रव के कारण दो बार मारवाड में आना पड़ा[5] ।

---

१ 'अजितोदय' सर्ग १५, श्लो० १-१७ । 'वीरविनोद' मे प्रकाशित मारवाड के इतिहास मे इस घटना का समय वि० स० १७४६ (ई० सन् १६६२) लिखा है ।

२ 'मआसिरेआलमगीरी' मे पुत्र लिखा है । (देखो पृ० ३६५) ।

३ बॉबेगजेटियर, भा० १, खड १, पृ० २८६ । उसी मे यह भी लिखा है कि शुजाअतखॉ साल मे ६ महीने जोधपुर मे रह कर यहॉ के उपद्रव को दबाने मे लगा रहता था ।

४. यह बात 'राजरूपक' और 'अजितोदय' मे नहीं लिखी है ।

५. बॉबेगजेटियर, भा० १, खड १, पृ० २८६ ।

वि० सं० १७५१ (ई० सन् १६९४) में राठोड़ों ने और भी ज़ोर पकड़ा। इस पर बहुत से शाही हाकिम इनको अपने-अपने प्रदेशों की आमदनी का एक भाग देकर अपना बचाव करने लगे।

कुछ दिन बाद शुजाअतखाँ ने काज़िमखाँ को अपने पास गुजरात में बुला लिया। इस पर वह सोजत के लश्करीखाँ को जोधपुर का प्रबन्ध सौंप वहाँ चला गया। महाराज उस समय पीपलोद के पहाड़ों में थे, इसलिये चाँपावत उदयसिंह आदि ने लश्करीखाँ को गोड़वाड़ के युद्ध में मार भगाया। इसकी सूचना पाते ही शुजाअतखाँ ने काज़िम को फिर जोधपुर भेज दिया।[1]

ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष महाराज ने फिर से मुकुन्ददास आदि को दुर्गादास के पास भेजा। यह लोग उसे समझाकर महाराज के पास ले आए। इसके बाद सरदारों ने फिर से इधर-उधर के यवन-थानेदारों को दबाकर दण्ड के रुपये वसूल करने शुरू किए।

वि० सं० १७५२ (ई० सन् १६९५) में महाराज के वीरों और मुग़ल-सेना-पतियों के बीच किरमाल की घाटी के पास युद्ध हुआ। इसमें राठोड़ों ने पर्वत का सहारा पा अच्छी वीरता दिखाई। इसके बाद महाराज बीजापुर की तरफ़ चले गए।[2] इसी बीच बादशाह ने शाहज़ादे मोहम्मद अकबर के बालकों को लौटाने के लिये शुजाअतखाँ के द्वारा दुर्गादास से फिर बातचीत प्रारंभ की, और उसे मनसब देने का वादा भी किया। परन्तु दुर्गादास ने महाराज को मनसब मिलने के पहले स्वयं उसे स्वीकार करने में इनकार कर दिया।[3]

इसी वर्ष लोगों के सिखलाने से मेवाड़ के महाराजकुमार अमरसिंहजी ने फिर से पिता के साथ विरोध करने का विचार किया।[4] यह देख महाराना जयसिंहजी ने अपने भाई

---

१ अजितोदय, सर्ग १५, श्लो० २६-२८। इस काव्य में पीछे से महाराज का भी युद्ध-स्थल में आ जाना लिखा है। 'अजितग्रन्थ' में इसी वर्ष की फागुन वदी १० को काज़िमबेग का मरना और हामिदखाँ को उसका पद मिलना लिखा है। (देखो पृ० ४०४)।

२ अजितग्रन्थ, पृ० ४०५-४०८।

३ 'राजरूपक' में दुर्गादास का अकबर के पुत्र को अपने पास रखकर उसकी बेगम को बादशाह के पास भेज देना लिखा है (देखो पृ० १४१)।

४. इसकी पुष्टि 'राजपूताने के इतिहास' से भी होती है। उसके तीसरे भाग के पृ० ६०२ पर लिखा है कि, "इस प्रकार वि० सं० १७४८ (ई० सन् १६९१) के अन्त के आस पास इस गृह-कलह की समाप्ति हुई। परन्तु दोनों के दिल साफ़ न हुए, इत्यादि"।

गजसिंह की कन्या से महाराज का विवाह निश्चित कर इन्हे शीघ्रही उदयपुर आने को लिखा। इस पर महाराज भी अपने वीरो को लेकर तत्काल वहाँ जा पहुँचे। यह देख महाराजकुमार को शांत हो जाना पडा[1]। इसके बाद वि० स० १७५३ (ई० सन् १६९६) मे विवाह हो जाने पर महाराज लौटकर पीपलोद के पहाडो में चले आए।

इन्हीं दिनो शुजाअतखॉं फिर जोधपुर आया और यहाँ के उपद्रव के कारण कुछ मास तक उसे यहीं रहना पडा[3]। इसी बीच उसने दुर्गादास से संधि की शर्तें तय कर लीं। अत दुर्गादास ने पहले तो बादशाह की पोती को उस (बादशाह) के पास भेज दिया और फिर स्वय दक्षिण में पहुँच उसके पोते को भी उसे सौंप दिया। इसकी एवज में बादशाह ने उसे पहले मेडता और बाद में धधुका[4] तथा गुजरात के अन्य कई परगने जागीर मे दिए। वि० स० १७५५ (ई० सन् १६९८) में इत्तमादखॉं मर गया, और उसका बेटा मुहम्मदहुशीन दीवान बनाया गया। इस पर बादशाह ने उसे दुर्गादास को मेड़ता

---

१ यह घटना 'अजितोदय' (सर्ग १५, श्लो० २६-३५) और 'राजरूपक' (पृ० १४१) से ली गई है। 'अजितग्रथ' मे पिता-पुत्र मे फिर झगडा होने का उल्लेख नहीं है। (देखो पृ० ४२१)।

'वीरविनोद मे प्रकाशित मारवाड के इतिहास मे इस घटना का समय वि० स० १७५३ (ई० सन् १६९६) दिया है।

२ 'बॉंबेगजेटियर', भा० १, खड १, पृ० २८६।

३ दुर्गादास ने वहाँ के प्रबध के लिये अपना प्रतिनिधि भेज दिया था। 'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब' मे ई० सन् १६९४ से ही दुबारा इस विषय की बातचीत का शुरू होना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० ३८१)।

४. 'राजरूपक मे लिखा है कि वि० स० १७५३ (ई० सन् १६९६) के अत मे दुर्गादास ने अकबर की बेगम और कन्या को, जो शाहजादे के दक्षिण जाने के समय से ही मारवाड मे थीं, बादशाह के पास भेज दिया, और वि० स० १७५४ (ई० सन् १६९७) मे वह स्वय शाहजादे के पुत्र को लेकर बादशाह के पास दक्षिण मे पहुँचा। इस समय महाराज अपने वीरों के साथ कुडल के पहाडों मे ठहरे हुए थे। इसके बाद अगले वर्ष जालोर पर महाराज का अधिकार हो गया। (देखो पृ० १४३-१४६)।

'मआसिरेआलमगीरी मे लिखा है कि अहमदाबाद के नाजिम शुजाअतखॉं के समझाने से दुर्गादास ने वि० स० १७५५ की द्वितीय ज्येष्ठ बदी ५ (ई० सन् १६९८ की २० मई) को अकबर के पुत्र बुलदअख्तर को, जो उस (अकबर) के भागने के समय मारवाड मे पैदा हुआ था, ले जाकर बादशाह को सौंप दिया। इस पर बादशाह ने प्रसन्न होकर दुर्गादास को जड़ाऊ खिलअत, तीन हजारी जात और ढाई हजार सवारों का मनसब दिया।

सौंप देने की आज्ञा दी, और मुहम्मदमुनीम को जोधपुर का किलेदार बनाया। लगातार दो वर्षों से वर्षा न होने के कारण इस वर्ष मारवाड़ में बड़ा अकाल पड़ा। वि० सं० १७५६ (ई० सन् १६९९) में दुर्गादास के कहने से बादशाह ने महाराज को कुछ परगनों के साथ ही जालोर और साचोर का शासन सौंप दिया। इसके बाद वि० सं०

मआसिरेआलमगीरी, पृ० ३९५। 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' में जड़ाऊ खंजर, सोने का पदक, मोतियों की माला और १,००,००० रुपये देना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० २८६)।

वि० सं० १७५५ की पौष सुदी १२ (ई० सन् १६९९ की ३ जनवरी) को बादशाह ने दुर्गादास के नाम एक फरमान लिखा। उसमें उसे नेवस्तान की तरफ जाकर शाहजादे अकबर को ले आने की आज्ञा दी थी।

'मीरातेअहमदी' में लिखा है कि हि० सन् ११०७ (वि० सं० १७५२=ई० सन् १६९६) में ईश्वरदास और शुजाअतखाँ की लिखा पढ़ी से मामला तय हो जाने पर दुर्गादास ने शाहजादे अकबर की कन्या सफीयतुन्निसाँ बेगम को बादशाह के पास भेज दिया। दुर्गादास ने एक पढ़ी लिखी औरत को रख कर उक्त बेगम को कुरान याद करवा दिया था। बादशाह को बेगम के द्वारा यह बात ज्ञात होने पर बड़ी प्रसन्नता हुई, और उसने शुजाअतखाँ को लिखा कि जैसे हो, वैसे वह दुर्गादास को बड़ी इज्जत के साथ दरबार में भेज दे। इसी के साथ उसने यह भी आज्ञा दी कि दुर्गादास को (जोधपुर पहुँचने पर ५०,००० और अहमदाबाद पहुँचने पर ५०,००० कुल) १,००,००० रुपये दिए जायँ, और मेड़ता उसकी जागीर में कर दिया जाय। इस पर दुर्गादास भी अकबर के पुत्र (बुलंदअख्तर) को लेकर अगले वर्ष बादशाह के पास दक्षिण में जा पहुँचा। बादशाह की तरफ से उसके अमीरों ने दुर्गादास की पेशवाई में उपस्थित हो उसका बड़ा आदर सत्कार किया। (देखो भा० १, पृ० ३४९-३५०)।

उस समय बादशाह भीमा नदी पर स्थित इसलामपुर में था। जब दुर्गादास ने बादशाह की आज्ञानुसार शस्त्र खोलकर दरबार में जाना अंगीकार न किया, और बहुत दबाने पर तलवार पर हाथ रक्खा, तब उसे शस्त्र लेकर ही उपस्थित होने की आज्ञा दी गई। (हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भा० ५, पृ० २८५-२८६)।

१ अजितोदय, सर्ग १५, श्लो० ५१।

२ मुजाहिदखाँ जालोरी को, जो पहले वहाँ का शासक था, इनकी एवज में पालनपुर और डीसे में जागीर दी गई थी। 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' में ई० सन् १६९८ में बादशाह द्वारा महाराज को जालोर, साँचोर और सिवाना दिया जाना लिखा है (देखो भा० ५, पृ० २८४)।

'राजरूपक' में महाराज का वि० सं० १७५५ की आषाढ सुदी ५ को जालोर पहुंचना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि वि० सं० १७५४ (ई० सन् १६९८) में महाराज कुछ दिन जोधपुर जाकर रहे थे, और उस अवसर पर शाहजादे (अजीम) ने इनकी बड़ी खातिर की थी। इसके बाद यह जालोर लौट गए। परन्तु यह सब कवि कल्पना ही प्रतीत होती है।

१७५७ (ई० सन् १७००) में उसने इन्हे अपने पास आने को लिखा।[1]

वि० स० १७५७ के द्वितीय श्रावण (ई० सन् १७०० के अक्टोबर) में अजितसिंहजी ने ४,००० सवार लेकर शाही दरबार में उपस्थित होने की इच्छा प्रकट की। परन्तु इसके साथ ही इन्होने खर्च के लिये कुछ रुपये नकद और कुछ परगने दिए जाने का भी लिखा। बादशाह ने रुपयो के देने के लिये तो अजमेर के खजाने पर आज्ञा भेज दी, परन्तु जागीर के बाबत महाराज के दरबार में उपस्थित होने पर दिए जाने का वादा किया।[2]

इसके बाद बादशाह ने महाराज को कई बार बुलवाया। पर यह उसके पास नहीं गए।[3]

ख्यातों में लिखा है कि वि० स० १७५७ के पौष (ई० सन् १७०० की जनवरी) मे महाराज अजितसिंहजी ने शाही सेना को भगाकर जोधपुर पर अधिकार कर लिया था। परन्तु वि० स० १७५६ (ई० सन् १७०२) में शाहजादे मुहम्मद मुअज्जम ने उसे वापिस छीन लिया। यह भी ठीक प्रतीत नहीं होता। 'अजितोदय' में भी इसका उल्लेख नहीं है।

१ 'बॉबेगजेटियर', भा० १, खड १, पृ० २६०-२६१।

२. 'हिस्ट्री ऑफ औरगजेब', भा० ५, पृ० २८६।

३ हिस्ट्री ऑफ औरगजेब, भा० ५, पृ० २८७।

जोधपुर राज्य की मुनशीगीरी के दफ्तर से एक फरमान मिला है। यह औरगजेब के पौत्र (शाहजादे मुअज्जम बहादुरशाह के पुत्र) मुइजुद्दीन की तरफ से लिखा गया था। इसकी मुहर मे हि० सन् १११३ और आलमगीरी सने जलूस ४६ (वि० स० १७५८—ई० सन् १७०२) लिखा है। इससे प्रकट होता है कि पद्मसिंह के द्वारा लिखा पढी होने के बाद बादशाह की तरफ से उसी के साथ महाराज के लिये खासा खिलअत, निशान, सातहजारी जात, सात हजार सवारों का मनसब और जोधपुर के अधिकार का फरमान मय खास पजे के भेजा गया था। साथ ही इन्हे जहा तक हो शीघ्र २०-३० हजार सवार और इतने ही पैदल सिपाही साथ लेकर दिल्ली के निकट मिलने का लिखा गया था और ऐसा करने पर और भी पद और मर्यादा मे वृद्धि करने का वादा किया गया था। उसी में आगे अपने भी शीघ्र दिल्ली पहुँचने का जिक्र था।

यह फरमान २६ जिलहिज को लिखा गया था। परन्तु इसके लिखे जाने के सन् का निर्णय करना कठिन है। सम्भवत, यह वि० स० १७६३ की वैशाख सुदि १ (ई० सन् १७०६ की २ अप्रेल) को लिखा गया होगा, क्योंकि इसमे बादशाह के दिल्ली की तरफ रवाना होने का उल्लेख है।

वि० सं० १७५९ की मंगसिर वदी १४ (ई० सन् १७०२ की ७ नवम्बर) को महाराज की चौहान-वंश की रानी के गर्भ से महाराजकुमार अभयसिंहजी का जन्म हुआ। उस समय महाराज जालोर में थे, और चांपावत उदयसिंह उनका प्रधान था।

वि० सं० १७६० (ई० सन् १७०३) में शुजाअतखाँ के मरने पर शाहज़ादा मुहम्मदआज़म गुजरात का सूबेदार हुआ। उसने काज़म के पुत्र जाफ़रकुली को जोधपुर का और दुर्गादास को पाटन का फ़ौजदार बनाया।

इसके कुछ दिन बाद ही बादशाह की आज्ञा से शाहज़ादे आज़म ने दुर्गादास को अपने अहमदाबाद के दरबार में बुलाकर मार डालने का उद्योग किया। परन्तु उसकी जल्दबाज़ी से दुर्गादास को संदेह हो गया, और इसीसे वह बचकर निकल गया। यद्यपि आज़म की आज्ञा से सफ़दरखाँ बाबी ने उसका पीछा किया, तथापि दुर्गादास के पौत्र द्वारा मार्ग में ही रोक लिए जाने से उसे सफलता नहीं हुई। यहीं पर दुर्गादास का उक्त पौत्र मारा गया। परन्तु दुर्गादास अपने कुटुम्बियों के साथ मारवाड़ में पहुँच महाराज

१. अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक २५।

२. अजितोदय, सर्ग १५, श्लोक ५८।

३. हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब में शुजाअतखाँ का वि० सं० १७५८ की श्रावण सुदी १ (ई० सन् १७०१ की ६ जुलाई) को मरना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० २८७)।

४. 'मीराते अहमदी', भा० १ खंड १, पृ० ३६१, में वि० सं० १७५७ (ई० सन् १७००) में शुजाअतखाँ का मरना और आज़म का गुजरात का सूबेदार होना लिखा है। उसके अनुसार वि० सं० १७६१ में [illegible] का मारवाड़ में [illegible] प्रकट होता है। (देखो पृ० ३६०)।

५. शाहज़ादे की आज्ञा से दुर्गादास पाटन से आकर अहमदाबाद के पास ठहरा था। उस दिन [illegible] होने से [illegible] दुर्गादास का दरबार में उपस्थित होना चाहता था। उधर शाहज़ादे ने शिकार को जाने के बहाने से सेना और मनसबदारों को पहले से ही तैयार कर रखा था, और दुर्गादास के मारने का काम सफ़दरखाँ बाबी को सौंपा था। परन्तु दुर्गादास के आने में देर होती देख शाहज़ादे ने उसको बुला लाने के लिए बार बार हलकारे भेजने शुरू किए। इससे उसको संदेह हो गया, और वह [illegible] लिए बिना ही अपने डेरे को जलाकर मारवाड़ की तरफ़ चल दिया। (हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ५ पृ० २८७-२८८)।

६. यह युद्ध पाटन के मार्ग में हुआ था। इसमें सफ़दर का पुत्र और मुहम्मद अशरफ़ तूरानी ज़ख़्मी हुए।

अजितसिंहजी के दल में मिल गया।

वि० स० १७६२ (ई० सन् १७०५) में जबरदस्तखाँ अजमेर और जोधपुर का हाकिम नियत हुआ[1]। उसी समय बादशाह ने दुर्गादास का मारवाड़ में अधिक रहना हानिकारक समझ इधर तो उसे गुजरात जाने के लिये लिख भेजा, और उधर गुजरात के नायब अब्दुलहमीद[2] को उसकी पुरानी जागीर उसे लौटा देने की आज्ञा दी[3]। इसी वर्ष गुजरात के शासक शाहजादे मुहम्मद बेदारबख्त ने फिर से महाराजा अजितसिंहजी के उपद्रवों को दबाने का प्रयत्न प्रारंभ किया[4]। परन्तु उस समय गुजरात में मरहठों के कारण बड़ी गड़बड़ मची हुई थी। अतः दुर्गादास की सलाह से महाराज ने थिराद

इतने में दुर्गादास ६० मील पर के उम्मा-उनौवा में पहुँच गया, और वहाँ से पाटन पहुँच अपने कुटुम्ब के साथ थिराद चला आया। यहाँ पर इसने वि० स० १७५६ (ई० सन् १७०२) में महाराज के साथ होकर फिर मुगल-सैनिकों पर आक्रमण शुरू कर दिए। परन्तु इनमें विशेष सफलता नहीं हुई। (हिस्ट्री ऑफ् औरङ्गजेब, भा० ५, पृ० २८८-२८९)।

उक्त इतिहास में इसी वर्ष महाराज के और दुर्गादास के बीच मनोमालिन्य होना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० २८९-२९०)।

१ बॉंबेगजेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २९१-२९२।

२ बॉंबेगजेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २९३।

३ यह वि० स० १७६२ (ई० सन् १७०५) में गुजरात का सूबेदार नियत किया गया था।

'हिस्ट्री ऑफ् औरङ्गजेब' में लिखा है कि इसी वर्ष दुर्गादास ने शाहजादे आजम के द्वारा बादशाह से फिर मेल कर लिया। इसी से वह अपने पुराने मनसब और पाटन की फौजदारी के पद पर नियत किया गया। (देखो भा० ५, पृ० २९१)।

४ वि० स० १७६२ की कार्त्तिक वदि ? के बाली से लिखे मुकुन्ददास के पत्र से, जो बीलाड़े में भगवानदास के नाम भेजा गया था, ज्ञात होता है कि इस अवसर पर औरङ्गजेब ने महाराजा अजितसिंहजी को अपने पास बुलवाया था और इन्हें मनसब देने का वादा भी किया था।

५ बॉंबेगजेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २९४-२९५। उसमें यह भी लिखा है कि अन्त में अजितसिंह ने कुँवर मोहकमसिंह को हराकर जोधपुर पर चढ़ाई की, और उक्त नगर को काजमबेग के पुत्र जाफरकुली से छीन लिया। इसी बीच दुर्गादास जाकर सूरत के दक्षिण में रहनेवाले कोलियों के साथ छिप गया था। इससे मौका पाकर उसने नायब होकर पाटन को जाते हुए काजम के पुत्र शाहकुली को मार्ग में ही मार डाला, और इसके बाद चनियार से बीरमगाँव के हाकिम मासुमकुली की सेना का भी नाश कर दिया। मासुमकुली स्वयं बड़ी कठिनता से बचकर भाग सका। इस पर सफदरखाँ बाबी ने पाटन की हकूमत

पर चढ़ाई कर दी। परन्तु अन्त में यवन-वाहिनी के वहाँ पहुँच जाने से इनको जालोर लौट आना पड़ा।

इसी समय राव इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह ने बगड़ी ठाकुर दुर्जनसिंह के द्वारा, महाराज के मंत्री चांपावत उदयसिंह को अपनी तरफ़ मिला लिया, और वि० सं० १७६२ के माघ (ई० सन् १७०६ की जनवरी) में यवन-वाहिनी को लेकर चुपचाप जालोर पर चढ़ाई कर दी। इसमें ही महाराज को चांपावत तेजसिंह द्वारा चांपावत उदयसिंह के विश्वास-घात की सूचना मिली, वैसे ही वह भी युद्ध के लिये तैयार हो गए। परन्तु वहां का रंग-ढंग देख तेजसिंह ने कुछ समय के लिये महाराज के इस विचार को रोक दिया। इस पर महाराज अपने कुटुम्ब के साथ किले से निकलकर (५ कोस पर के) अगवरी नामक गाव में चले गए, और जालोर पर मोहकमसिंह का अधिकार हो गया। इसके बाद इधर तो चौंडावत का ठाकुर मेड़तिया कुशलसिंह और बलूंदे का चाँपावत विजयसिंह इस चढ़ाई की सूचना पाते ही अपने-अपने स्थानों से तत्काल रवाना होकर महाराज के पास आ पहुँचे, और उधर वीर जगरामसिंह और भाद्राजण का ठाकुर जोधा बिहारीसिंह भी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ वहाँ आ गए। बिहारीसिंह की सेना में राजपूतों के साथ ही बहुत से भील भी थे।

इस प्रकार बल संग्रह हो जाने पर महाराज ने जालोर पर हमला कर दिया। यह देख मोहकमसिंह और उदयसिंह किला छोड़कर सनदड़ी की तरफ चले गए। जब

पाने की आशा से दुर्गादास को मारने या पकड़ने का जिम्मा लिया। परन्तु इसके बाद दुर्गादास का कुछ पता नहीं चलता। अतः संभव है, शुजाकदर अपने कार्य में सफल हो गया हो। (देखो भा० १ भा० २, पृ० २६५) परन्तु दुर्गादास वि० सं० १७७४ (ई० सन् १७१७) तक जीवित था। इससे उपर्युक्त गजेटियर के लेखक का यह अनुमान ठीक प्रतीत नहीं होता।

'हिस्ट्री ऑफ् औरंगजेब' में लिखा है कि ई० सन् १७०४ की मई में औरंगजेब ने दुर्गादास के भाई खेमकरण और भतीजे देवकरण और दलकरण को अपनी नौकरी से हटा दिया। साथ ही उसने दुर्गादास को अहमदाबाद से दरबार में पकड़ लाने का भी हुक्म दिया। परन्तु अगले ही महीने यह हुक्म रद कर दिया गया। (हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ५, पृ० २६१ फुटनोट)।

१. इसका जन्म वि० सं० १७२८ की आश्विन सुदि ३ को हुआ था।

२. 'राजरूपक' में इस युद्ध का माघ सुदी १३ को होना लिखा है। (देखो पृ० १६६)।

महाराज ने वहाँ भी उनका पीछा किया, तब वे अपना साज-सामान छोड़ दुनाड़े[1] होते हुए मेड़ते की तरफ भाग गए। परन्तु इस घटना की सूचना पाते ही जोधपुर के हाकिम जाफरखाँ ने मोहकमसिंह से मेड़ते की हकूमत छीन ली[2]। अत लाचार होकर वह नागौर चला गया[3]।

वि० स० १७६३ की भादो वदी ७ (ई० सन् १७०६ की १९ अगस्त) को महाराज के द्वितीय पुत्र वख्तसिंहजी का जन्म हुआ[4]। इसके बाद महाराज ने रोहीचे पर चढाई कर वहाँ के चौहानो को हराया[5]।

वि० स० १७६३ की फागुन वदी १४ (ई० सन् १७०७ की २० फरवरी) को दक्षिण में अहमदनगर के पास बादशाह औरङ्गजेब का देहात हो गया[6]। इसकी सूचना पाते ही महाराज ने अपनी सेना को एकत्रित कर सूराचद से जोधपुर पर चढाई कर दी। वहाँ के किलेदार जाफरकुली ने भी पहले तो इनका सामना किया, परन्तु अन्त में वह राठोड-वाहिनी के वेग को रोकने मे असमर्थ हो किला छोडकर भाग गया[7]।

१ यहाँ पर दोनों सेनाओं के बीच घमसान युद्ध हुआ था।

२ 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' मे (ई० सन् १७०४ मे) औरंगजेब का महाराज को मेडते का अधिकार देना लिखा है। परन्तु उसमे यह भी लिखा है कि महाराज ने वहाँ का प्रबध कुशलसिह को सौंप दिया था। इससे (नागोर के स्वामी इन्द्रसिह का पुत्र) मोहकमसिह, जो अजितसिंहजी की बाल्यावस्था में इनकी तरफ से बादशाह से बराबर लड़ता रहा था, नाराज होकर (ई० सन् १७०५ मे) बादशाह की तरफ हो गया। (देखो भा० ५, पृ० २६०–२६१)। परन्तु इन्द्रसिंह का पुत्र मोहकमसिह प्रारभ से ही महाराज के विरुद्ध था। शाही मनसब छोडकर महाराज की तरफ से यवनों से लडने वाला मेडतिया मोहकमसिह उससे भिन्न था।

३ अजितोदय, सर्ग १६, श्लो० २०-४२। 'राजरूपक' मे अजितसिहजी के जोधपुर पर अधिकार कर लेने पर मोहकम का मेडता छोड नागोर जाना लिखा है। (देखो पृ० १६८)।

४ अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० २–३।

५ अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ४।

६ 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ मॉडर्न इन्डिया' मे उस दिन (हि० सन् १११८ की २८ जीकाद को) ३ मार्च का होना लिखा है। यह ठीक प्रतीत नही होता। (देखो पृ० १४६)।

कहीं–कहीं फागुन वदी ३० (ता० २१ फरवरी) भी लिखी मिलती है।

७. बॉम्बेगजेटियर, भा० १, ख० १, पृ० २६५। अजितोदय, सर्ग १७ श्लो० ४-७।

इस पर वि० सं० १७६३ की चैत्र वदी ५ (ई० सन् १७०७ की १२ मार्च) को, २८ वर्ष की अवस्था में, महाराज ने अपनी राजधानी जोधपुर-नगर में प्रवेश किया। इसके दूसरे दिन (माधोदासोत) मेड़तिया कुशलसिंह ने शाही सैनिकों से मेड़ता छीन लिया। इसी प्रकार कुछ दिनों में मारवाड़ के अन्य प्रदेशों (सोजत और पाली आदि) पर भी महाराज का अधिकार हो गया।

इस पर मुसलमानों और बगड़ीवालों ने मिलकर एक बनावटी दलथंभन को सोजत का मालिक बना दिया। इसकी सूचना पाते ही महाराज स्वयं सेना सहित वहाँ जा पहुँचे। छः दिन के भीषण युद्ध के बाद शत्रु तो हारकर भाग गया, और सोजत पर महाराज का अधिकार हो गया। इसके बाद कुछ दिनों में वहाँ का प्रबन्ध ठीककर यह फिर जोधपुर लौट आए।

महाराज अजितसिंहजी ने औरङ्गजेब के कारण २८ वर्षों तक बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाई थीं। यदि उस समय मारवाड़ के सरदार देश काल के अनुसार बुद्धिमानी, दृढ़ता और वीरता से अपना धर्म न निभाते, तो इनके प्राणों तक का बचना कठिन था। इसके अलावा इन २८ वर्षों में धर्मांध यवनों ने तमाम मारवाड़ के—खासकर जोधपुर के मंदिरों को नष्ट कर उनके स्थानों पर मसजिदें बनवा दी थीं। इससे चारों तरफ ब्राह्मणों के घंटा और शंखनाद की एवज में मुल्लाओं की अजां सुनाई देती थी। हिन्दुओं का धन, धर्म, इज्जत और प्राण तक संकट में पड़ गए थे। परन्तु महाराज ने राज्य पर अधिकार करते ही इन सब बातों को उलट दिया। चारों तरफ मसजिदों के स्थान पर मंदिर दिखाई देने लगे। अजाँ की आवाजों का स्थान फिर से घंटा और शंखनाद ने

१ अजितोदय सर्ग १७, श्लो० ११। राजरूपक में भी महाराज के जोधपुर प्रवेश की यही तिथि लिखी है। परन्तु उसमें किले पर जाने की तिथि चैत्र वदी १३ दी है। (देखो पृ० [illegible])।

२ अजितोदय सर्ग १७, श्लो० २८। उस समय किले का प्रत्येक स्थान गंगाजल और तुलसी दल से पवित्र किया गया था। (हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब भा० ५ पृ० २६२)।

३ 'अजितोदय' में वहीं पर दलथंभन का मारा जाना लिखा है। (देखो सर्ग १७ श्लो० २४-२७) परन्तु अन्य इतिहासों में इस घटना का उल्लेख नहीं मिलता।

किसी किसी ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १७६७ लिखा है। यह विचारणीय है।

४ अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० १४-१८।

५. मुन्तखिबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०५-६०६।

ले लिया। बहुत से यवन मारे गए या इधर उधर भाग गए। परन्तु जो बच रहे, उन्होंने दाढी मुँडवाकर अपने वेश को ही बदल लिया। इन कार्यों से निपटकर महाराज ने अपने पक्षवालों को उनकी सेवाओं के अनुसर जागीरें आदि देकर संतुष्ट किया, और विपक्षियों को यथासाध्य दण्ड देने का प्रबन्ध किया।

जब इन बातों की सूचना औरङ्गजेब के उत्तराधिकारी (मुहम्मद मुअज्जम) बादशाह बहादुरशाह[1] को मिली, तब वि० सं० १७६४ की कार्तिक सुदी ८ (ई० सन् १७०७ की २३ अक्टोबर) को वह महाराज से बदला लेने के लिये अजमेर की तरफ रवाना हुआ[2]। इस यात्रा में आँबेर-महाराज सवाई जयसिंहजी भी उसके साथ थे[3]।

उसके आगमन का समाचार पाते ही महाराज किले का साज-सामान ठीककर युद्ध की तैयारी करने लगे, और उनके अनेक सरदार भी प्राणों की बलि देकर किले की रक्षा करने को आ उपस्थित हुए।

---

१ यह वि० सं० १७६४ की आषाढ वदी ४ (ई० सन् १७०७ की ८ जून) को अपने भाई शाहजादे आजम को मारकर बादशाह बना था। 'मआसिरुलउमरा' में लिखा है कि मुहम्मद मुअज्जम ने अपने भाई आजमशाह पर चढाई करने के समय महाराज को अपनी सहायता के लिये बुलवाया था। परन्तु इन्होंने उसकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। इसी से आजम को परास्त करने के बाद उसने इन पर चढाई करने का प्रबंध किया, और खाँजमाँ को सेना देकर आगे भेजा। इसके बाद संधि हो जाने पर महाराज को ३,००० सवारों का मनसब दिया गया। (देखो पृ० ७५६)।

औरंगजेब के तीसरे पुत्र मोहम्मद आजम का, हि० सन् १११८ की ६ सफर (वि० सं० १७६३ की प्रथम ज्येष्ठ सुदि ८=ई० सन् १७०६ की ९ मई) का, महाराज के नाम का एक फरमान मिला है। उसमें इनको महाराजा का खिताब, सात हजारी जात और सात हजार सवारों का मनसब देने का उल्लेख है। परन्तु उस समय बादशाह औरंगजेब जीवित था। इससे ज्ञात होता है कि मोहम्मद आजम ने पिता से बगावत कर बादशाह बनने का इरादा किया होगा और उस समय राठोड नरेश को अपनी तरफ मिलाने के लिये इनके नाम यह फरमान भेजा होगा।

आजम के बगावत करने की पुष्टि ऐलफिन्स्टन की 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' और 'मुन्तखिबुल्लुबाब' में भी होती है। (देखो क्रमश: पृ० ६५१ और भा० २, पृ० ५४६)।

२ मुंतखिबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०५-६०६।

३ जयसिंहजी ने शाहजादे आजम का पक्ष लिया था। इसी से बहादुरशाह ने जयपुर पर अपने अनुयायी विजयसिंह का अधिकार करवा दिया था। यह विजयसिंह जयसिंहजी का छोटा भाई था।

बादशाह ने मार्ग से ही (पौष=दिसंबर में) शाहज़ादे अज़ीमुश्शान की सेना के साथ कुछ अमीरों को जोधपुर की तरफ रवाना किया। इसलिये वे लोग मारवाड़ के गावों को लूटते हुए पीपाड़ तक आ पहुँचे। परन्तु इसी बीच बादशाह को दक्षिण में कामबख्श के स्वाधीन हो जाने की सूचना मिली। इस पर दिखाने के लिये तो वह अजमेर पहुँच जोधपुर पर चढ़ाई करने का विचार प्रकट करता रहा, परन्तु मन-ही-मन उसने शीघ्र ही इधर का झगड़ा शांत कर दक्षिण की तरफ जाने का निश्चय कर लिया। इतने में उसे महरावखाँ और महाराज के बीच पीपाड़ में युद्ध होने की सूचना मिली। इस पर वि० सं० १७६४ की फागुन बदी ३ (ई० सन् १७०८ की २६ जनवरी) को[3] उसने महाराज से संधि करने के लिये दुर्गादास के नाम एक फरमान भेज दिया।

इस प्रकार आपस की लिखा-पढ़ी के बाद जब संधि की बातें तय हो गईं, तब उसने खानजहाँ, राजा बुधसिंह और निजाबतखाँ आदि अमीरों को महाराज से मिलने के लिये रवाना किया, और वि० सं० १७६४ की फागुन सुदी १२ (ई० सन् १७०८ की २१ फरवरी) को स्वयं भी मेड़ते आ पहुँचा। इस पर महाराज भी चौथे दिन वहां पहुंच उससे मिले। बादशाह ने अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ उपहार में देकर इनका आदर-सत्कार किया। इसके बाद उसने, चैत्र बदी १४ और (वि० सं० १७६५ की) वैशाख सुदी १५ (१० मार्च और २३ अप्रेल) को, आम दरबार कर

---

१ मुन्तखिबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०६।

'लेटरमुगल्स' में लिखा है कि मार्ग में मुबारक पहुँचने पर उसने फ़ौजदार महरावखाँ को जोधपुर पर अधिकार करने के लिये भेज दिया। इसके बाद जब वह जयपुर का अधिकार विजयसिंह को देकर अजमेर के करीब पहुँचा, तब उसने स्वयं जोधपुर पर चढ़ाई करने का इरादा प्रकट किया। इस पर महाराज के वकील मुकुंदसिंह और बख्तसिंह उसका क्रोध शान्त करने की चेष्टा करने लगे। (देखो भा० १, पृ० ४७)।

२ मुन्तखिबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०६।

३ यह तारीख असली फ़रमान से ली गई है। 'लेटरमुगल्स' में उस दिन १२ फ़रवरी का होना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ४७-४८)।

'अजितोदय' में लिखा है कि पीपाड़ में महरावखाँ की पराजय होने पर पहले तो बादशाह ने महाबतखाँ को उसकी मदद पर भेजा, पर पीछे शीघ्र ही संधि कर ली। उसमें पीपाड़ के युद्ध का उल्लेख नहीं है। (देखो सर्ग १७, श्लो० ३०-३१)।

इनको 'महाराजा' की पदवी के साथ ही ३,५०० जात और ३,००० सवारों का मनसब (जिसमें १,००० सवार दुअस्पा थे) दिया।[1]

इस प्रकार इधर के झगड़े को शांत कर जब बादशाह अजमेर को लौटा, तब महाराज भी दुर्गादास को लेकर उसके साथ हो लिए।[2] इसके बाद बहादुरशाह ने कामबख्श को दबाने के लिये, मेवाड़ की तरफ होते हुए, दक्षिण पर चढ़ाई की। इस यात्रा में भी महाराजा अजितसिंहजी, दुर्गादास और आंबेर-नरेश जयसिंहजी ये तीनों उसके साथ थे।

यद्यपि बादशाह ऊपर से महाराज के साथ खूब प्रेम दिखलाता रहा, तथापि उसने प्रबंध की देख-भाल करने के बहाने काजमखाँ और मेहराबखाँ आदि अमीरों को भेजकर जोधपुर पर चुपचाप अपना अधिकार[3] कर लिया। इसकी सूचना मिलने पर महाराज बहुत क्रुद्ध हुए, परन्तु मौका देख इन्हें चुप रहना पड़ा। इसके बाद जब शाही लश्कर नर्मदा के पार उतरने लगा, तब यह (अजितसिंहजी) आंबेर-नरेश जयसिंहजी और दुर्गादास के साथ वापस लौट चले[4] और मार्ग में महाराना अमरसिंहजी से मिलकर[5] मेवाड़ से गोडवाड़ होते हुए जोधपुर चले आए।

---

१ इसी समय बादशाह ने इन्हें निशान और नक्कारा भी दिया था। साथ ही उसने इनके महाराजकुमार अभयसिंहजी का मनसब १,५०० जात और ३०० सवारों का, तथा बख्तसिंहजी का ७०० जात और २०० सवारों का कर दिया था। (मि० विलियम इरविन ने अपने 'लेटर मुगल्स' नामक इतिहास (के प्रथम भाग के ४८ वें पृष्ठ) में उपर्युक्त बातों का उल्लेख करते हुए बख्तसिंह के स्थान पर राखीसिंह लिख दिया है)।

इसी प्रकार बादशाह की तरफ से महाराज के तृतीय और चतुर्थ महाराजकुमारों को भी ५०० जात और १०० सवारों का मनसब दिया गया था।

२ अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ३३।

३ 'लेटर मुगल्स' में लिखा है कि वि० सं० १७६४ की चैत्र बदी ४ (ई० सन् १७०८ की २८ फरवरी) को बहादुरशाह ने काजीखाँ और मुहम्मद गौस मुफ्ती को जोधपुर में फिर से नमाज आदि के प्रचार के लिये भेजा। (देखो भा० १, पृ० ४८)।

४ 'अजितोदय' (सर्ग १७, श्लो० ३४) में खाचरोद से और 'बहादुरशाहनामे' (के पृ ११०) में मालवे के मण्डेश्वर नामक स्थान से इनका लौटना लिखा है। पिछले इतिहास के अनुसार यह घटना वि० सं० १७६५ की ज्येष्ठ बदी ६ (ई० सन् १७०८ की ३० अप्रेल) को हुई थी।

५ महाराना अमरसिंहजी (द्वितीय) गाडवा नामक गाँव तक इनकी पेशवाई में आए थे।

वि० स० १७६५ की सावन सुदी १२ (ई० सन् १७०८ की १६ जुलाई) को महाराज ने मेहरावखाँ को भगाकर जोधपुर के किले पर फिर से अधिकार कर लिया[1], और इसके कुछ दिन बाद यह आंबेर-नरेश जयसिंहजी[2] को साथ लेकर अजमेर को लूटते हुए साभर जा पहुँचे। यह देख वहा का हाकिम सैयद अलीअहमद युद्ध के लिये तैयार हुआ। नारनौल के सैयद भी उसकी सहायता को आ गए। कुछ दिनो तक दोनो पक्षो के बीच विकट युद्ध होने के बाद यवन भाग चले, और साभर पर महाराज का अधिकार हो गया[3]। इसी बीच महाराज अजितसिंहजी और जयसिंहजी

१ 'अजितोदय' सर्ग १७, श्लो० ३४-३५। 'लेटरमुगल्स' मे लिखा है कि महाराज ने जोधपुर को ३० हजार सवारों से घेर कर विजय किया था, और दुर्गादास राठोड के बीच मे पड़ने से जोधपुर के फौजदार मेहरावखॉ को निकल जाने का मौका दिया था। (देखो भा० १, पृ० ६७)।

२ यह महाराज के साथ आकर जोधपुर मे सूरसागर के बगीचे मे ठहरे थे।

३ अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ३६-५०। 'राजरूपक' मे इस घटना का कार्त्तिक सुदी १ को होना और इसके अगले मास मे दोनों नरेशो का ऑबेर पर अधिकार करना लिखा है। (देखो पृ० १८२) ख्यातों मे लिखा है कि यहीं पर महाराज किसी बात पर दुर्गादास से कुछ अप्रसन्न हो गए। यह देख दुर्गादास ने महाराज से निवेदन किया कि नर्मदा से लौटते हुए आप कुछ दिन उदयपुर मे ठहरे थे, और महाराना ने आपका अच्छी तरह से स्वागत किया था। इसलिये यदि आज्ञा हो, तो मै जाकर महाराना को कुछ दिन के लिये यहाँ ले आऊँ, जिससे आप भी उनका वैसा ही सम्मान कर आपस की प्रीति को बढावे। महाराज ने इस बात को अगीकार कर लिया। इस पर वह महाराना को ले आने के बहाने से उदयपुर चला गया और वि० स० १७६६ मे सफरा नदी के किनारे इस वीर का स्वर्गवास हो गया। परंतु वास्तव मे दुर्गादास का देहात वि० स० १७७५ के करीब हुआ था। अत. ख्यातों का यह लेख ठीक नही है।

ख्यातों मे यह भी लिखा मिलता है कि दुर्गादास ने (अपने को बादशाही मनसबदार समझ) सॉभर मे अपना डेरा महाराज की सेना से अलग किया था, इसी से महाराज उससे नाराज हो गए थे। यह भी सभव है कि जोधपुर और जयपुर के नरेशों को सॉभर का विभाग करते देख दुर्गादास ने भी हिस्सा मागा हो, और यही महाराज की अप्रसन्नता का कारण हुआ हो। वि० स० १७६५ की कार्त्तिक सुदी १५ के, सॉभर से लिखे, भडारी विठलदास के, बीलाडे के चौधरी भगवानदास के नाम के, पत्र मे ज्ञात होता है कि कार्त्तिक बदी १३ को महाराज की सेना सॉभर पहुँची। वहाँ पर युद्ध होने पर अली अहमद हारा, और उसने एक लाख बीस हजार रुपये देने का वादा कर इनसे सधि कर ली। इसके बाद कार्त्तिक सुदी १ को नारनौल, मथुरा और ऑबेर के सूबेदार (फौजदार) ५-६ हजार सेना लेकर वहाँ पहुँचे। परन्तु तीसरे पहर के युद्ध मे वे तीनो मय तीन हजार सैनिको के मारे गए। उनकी सेना के बहुत-से हाथी, घोड़े, ऊँट, सुखपाल आदि महाराज की सेना के हाथ लगे।

की सम्मिलित सेनाओं ने आँबेर पर भी अधिकार कर लिया था। इसीसे जयसिंहजी

१. 'लेटर मुगल्स' में लिखा है कि बादशाह को दोनों नरेशों के आँबेर पर सम्मिलित आक्रमण करने की सूचना ई० सन् १७०८ की १६ जून को मिली थी, और इसके एक सप्ताह बाद यह भी ज्ञात हुआ कि इन दोनों नरेशों ने हिंदौन और बयाना के फौजदार को भी हरा दिया है। (ये दोनों प्रांत आगरे से क्रमशः ७० और ५० मील नैर्ऋत्य-कोण पर थे।) इस पर उसने अमीरखाँ को सेना एकत्रित कर उधर जाने की आज्ञा दी। इसके कुछ दिन बाद ही उसे अजमेर के सूबेदार शुजाअतखाँ बाराह का पत्र मिला। उसमें लिखा था कि दोनों नरेशों ने मिलकर अपने सेनापति रामचन्द्र और साँवलदास की अधीनता में २,००० सवार और १५,००० पैदल आँबेर पर आक्रमण करने के लिये भेजे थे। परन्तु वहाँ के सूबेदार ने उन्हे सफल न होने दिया। इस झूठी सूचना को सच्ची समझ बादशाह ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। इसी बीच बादशाह ने असदखाँ-वकीले मुतलक को दिल्ली से आगरे पहुँच उधर के उपद्रव को दबाने की आज्ञा भेजी। इसी प्रकार अवध के सूबेदार खाँदौराँ, इलाहाबाद के सूबेदार खाँजहाँ और मुरादाबाद के फौजदार मुहम्मद अमीनखाँ को भी आज्ञा दी गई कि वे अपनी आधी-आधी सेनाओं को लेकर असदखाँ की मदद पर जायँ। इसी अवसर पर मेवात के फौजदार ने भी दिल्ली के सूबेदार से सेना बढाने के लिये तीन लाख रुपये की मदद माँगी। परन्तु उसने वह पत्र असदखाँ के पास भेज दिया। इस पर असदखाँ ने १,००,००० रुपये नकद भेजकर अपनी सेना को वहाँ जाने की आज्ञा दे दी। परन्तु २१ अगस्त (आश्विन वदी १) को उपर्युक्त झूठी सूचना का भेद खुल गया, और बादशाह को ज्ञात हो गया कि राजा जयसिहजी ने २०,००० सैनिकों के साथ नैश आक्रमण कर आँबेर के किले पर अधिकार कर लिया है।

इसके बाद बरसात के समाप्त होते ही राजपूत-वीरों ने मेड़ते होते हुए अजमेर पर हमला किया, और वहाँ से आगे बढ साँभर पर चढाई की। इस पर मेवात, मेड़ता और नारनौल के फौजदार भी तत्काल इनके मुकाबले को आ पहुँचे। यद्यपि युद्ध मे एक बार तो राजपूत-सेना के पैर उखड़ गए, तथापि कुछ देर बाद ही उसे हुसैनखाँ के मारे जाने की सूचना मिल गई। इससे मैदान दोनों नरेशों के हाथ रहा। इसके अगले वर्ष महाराना के सेनापति साँवलदास ने पुर और माँडल के फौजदार को भगाकर युद्ध मे वीर-गति प्राप्त की। (भा० १, पृ० ६८-७०)।

'मआसिरेआलमगीरी' (भा० २, पृ० ५००) मे लिखा है कि जब आँबेर के फौजदार सैयद हुसैनखाँ को महाराजा अजितसिंहजी और राजा जयसिंहजी के युद्ध से हट जाने और आँबेर पर आक्रमण करने के विचार की सूचना मिली, तब उसने वहाँ के किले की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध किया। परंतु राजपूत-सैनिकों के पहुचते ही उसकी नई भरती की हुई सेना घबराकर भाग गई। इस पर खाँ ने बचे हुए सैनिकों के साथ किले से निकलकर राठोड़ दुर्गादास का सामना किया। यद्यपि राजपूत पूरी तौर से सफल न हो सके, तथापि खा का डेरा लूट लिया गया, और उसका पुत्र, जो शिविर

लौटकर अपनी राजधानी को चले गए, और महाराज साँभर से नागोर की तरफ चले। इनके आगमन की सूचना पा मोहकमसिंह लाडणू की तरफ भाग गया, और राव इन्द्रसिंह को किले का आश्रय लेना पड़ा। जब महाराज उक्त प्रांत के गावों को लूटते हुए मूँडवे पहुँचे, तब इन्द्रसिंह की माता अपने पौत्र को लेकर इनसे मिलने आई, और उसने कह-सुनकर इन्हे लौट जाने पर राजी कर लिया। इसलिये यह लौटकर जोधपुर चले आए।

की रक्षा के लिये नियत था, मार डाला गया। दूसरे दिन खाँ बडी गडबड के साथ भागकर नारनौल पहुँचा। परतु वहाँ से सैनिक इकट्ठे कर फिर एक बार लौट चला। साँभर के पास पहुँचते पहुँचते उसका राजा जयसिंहजी की सेना से सामना हो गया। यद्यपि पहले पहल खाँ की सेना कुछ सफल होती हुई दिखाई दी, तथापि शीघ्र ही खाँ और उसके सरदार रेत के टीले के पीछे छिपे हुए २-३ हजार बदूकधारी राजपूत-योद्धाओं के बीच घिरकर मारे गए। (लेटरमुगल्स, भा० १, पृ० ६८-७०)।

उसी मे 'बहादुरशाहनामे' के आधार पर यह भी लिखा है कि इसके बाद बादशाह ने नर्मी से काम लिया, और शाहजादे अजीमुश्शान को बीच मे डालकर ई० स० १७०८ की ६ अक्टोबर (वि० स० १७६५ की कार्तिक सुदी ४) को राजा जयसिंहजी और महाराजा अजितसिंहजी को मनसब दिए गए। परतु जोधपुर और मेडते के किले बाराह के सैयद अब्दुल्लाखाँ के अधिकार मे ही रक्खे गए। (लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० ७१)।

'हदीकतुल अकालीम' नामक इतिहास मे लिखा है कि आँबेर और जोधपुर के राजाओं के मालवे से ही अपने-अपने देशों को लौट जाने पर बादशाह ने असदखाँ को लिखा कि शाहजहानाबाद (दिल्ली) से अकबराबाद (आगरे) जाकर राजपूतों को तसल्ली दे। इसके बाद नर्मदा से पार उतरने पर उसे खबर मिली कि राना की मिलावट से कछवाहा और राठोड नरेशों के अपने-अपने देशों पर फौजे भेजने पर आँबेर का फौजदार हुसैनखाँ, मारे गए जानवर की तरह शत्रुओं के मुकाबले में हाथ-पॉव पटककर, और मेहराबखाँ लडाई से मुँह मोडकर जोधपुर से भाग गए हैं। इससे राजपूत और भी सुदृढ हो गए हैं, और राना के बहकाने से अधिक उपद्रव करना चाहते हैं। यह देख उसने असदखाँ को उन्हें दड देने का लिखा। (देखो पृ० १२८)।

१ कहीं-कहीं महाराज अजितसिंहजी का भी जयसिंहजी के साथ आँबेर जाना और कुछ दिन वहाँ रहकर लौट आना लिखा मिलता है।

२ अजितोदय, सर्ग १८, श्लो० १-६ तथा ६६-१०६।

ख्यातों मे लिखा है कि महाराजा अजितसिंहजी का प्रधान मन्त्री पाली का ठाकुर चापावत मुकुन्ददास (सुजाण सिंहोत) था। परतु उसकी उद्दण्डता के कारण कुछ ही समय बाद महाराज उस से नाराज हो गए। इसके बाद महाराज की आज्ञा से एक रोज छिपिये के ठाकुर ऊदावत प्रतापसिंह ने मुकुन्ददास और उसके भाई रघुनाथसिंह को मारडाला। परतु इस की सूचना मिलते ही

कुछ दिन बाद महाराज ने फिर अजमेर पर चढाई कर वहा के शाही हाकिम को तग करना शुरू किया। यह देख उसने बहुत-सा द्रव्य देकर इनसे सधि कर ली[1]। इस पर यह देवलिये होते हुए जोधपुर चले आए[2]।

इसी प्रकार महाराज के पराक्रम के सामने साँभर और डीडवाने के शाही अधिकारियो को भी सिर झुकाना पड़ा[3]।

इसकी सूचना पाकर बादशाह इनसे और भी नाराज हो गया। इसके बाद वह दक्षिण में अपने भाई कामबख्श[4] के मारे जाने से निश्चिन्त होकर अजमेर की तरफ लौटा। जब उसके नर्मदा से इस पार आने की सूचना मिली, तब

मुकुन्ददास के सेवक गुहिलोत धना और चौहान भीया ने (जो मामू भानजे थे) किले मे ही प्रतापसिंह को मार कर अपने स्वामी का बदला लिया। ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० स० १७६५ मे हुई थी।

इस विषय का यह दोहा मारवाड़ मे प्रचलित है.–

आजूणी अधरात, मैहला जु रोई मुकनरी।
पातल री परभात, भली रुआणी भीमडा॥

१ 'वीर विनोद' मे मुद्रित शाहपुरे के राजा भारतसिंहजी के, वि० स० १७६५ की माघ सुदी ६ (ई० सन् १७०६ की ६ जनवरी) के, पत्र से और उनके मुत्सद्दियो के वि० स० १७६५ की चैत्र वदी ३ (ई० सन् १७०६ की १६ फ़रवरी) के पत्र से जो उदयपुर के पचोली विहारीदास के नाम लिखे गए थे, प्रकट होता है कि भारतसिंहजी के बादशाह के साथ दक्षिण मे होने और अजितसिंहजी के अजमेरवालो से दड वसूल करने से उत्साहित होकर अजमेर प्रात के राठोड-सरदारों ने शाहपुरेवालो को तग करना शुरू किया था। अत. लाचार हो, उन्होंने ये पत्र, सहायता के लिये, उदयपुरवालों को लिखे थे।

२ अजितोदय, सर्ग १६, श्लो० ६-१४।

३ अजितोदय, सर्ग १६, श्लो० १७-१८। 'वीरविनोद' मे प्रकाशित नवाब असदखॉ के, हि० सन् ११२१ की ११ सफर (वि० स० १७६६ की प्रथम वैशाख सुदी १३ = ई० सन् १७०६ की ११ अप्रेल) के, पत्र से, जो अजमेर के सूबेदार शुजाअतखॉ के नाम लिखा गया था, प्रकट होता है कि उस (असदखॉ) की पूर्ण इच्छा थी कि मारवाड और मेवाड़ के नरेशों को समझा-बुझाकर अपनी तरफ कर लिया जाय।

४ मि० विलियम इरविन ने अपने 'लेटरमुगल्स' नामक इतिहास मे कामबख्श का ई० सन् १७०६ की जनवरी मे मरना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ६२-६४) इसके

महाराज ने राव इन्द्रसिंह को अपनी सेना लेकर जोधपुर में उपस्थित होने की आज्ञा भेजी। परंतु उसने अपने को शाही मनसबदार बतलाकर महाराज की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया। इस पर महाराज ने पहले उसी को दंड देने का विचार कर मँगसिर में फिर से नागोर पर चढ़ाई की। यह देख इन्द्रसिंह का सुखस्वप्न टूट गया। बादशाह अब तक यहाँ से बहुत दूर था, अतः उससे किसी प्रकार की सहायता की आशा नहीं की जा सकती थी। इससे लाचार होकर उसे फिर महाराज की शरण लेनी पड़ी[1]। महाराज ने भी उसे अपना भतीजा जान क्षमा कर दिया।

इसके बाद मार्ग में इन्द्रसिंह ने बीमारी के कारण अपना साथ में चलना कष्टकर बतलाकर महाराज से अपने पुत्र को साथ ले जाने की प्रार्थना की। इसी के अनुसार यह डीडवाने से उसके पुत्र को लेकर साँभर होते हुए मारोठ पहुँचे और वहाँ पर अधिकार कर बहादुरशाह के मुकाबले को चले[2]।

अनुसार वि० सं० १७६५ के फागुन में यह घटना हुई थी। परन्तु 'ओरियंटल बायोग्राफिकल डिक्शनरी' में इस घटना का हि० सन् ११२६ के ज़िलहिज (ई० सन् १७०८ की फरवरी या मार्च) में होना लिखा है। इसके अनुसार इसका समय करीब ११ मास पूर्व आता है। (देखो पृ० २०८) यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

१ महाराज के सिकदार दयालदास के नाम लिखे वि० सं० १७६६ की माघ सुदी १ के पत्र से ज्ञात होता है कि इस बार इन्द्रसिंह ने दो लाख रुपये नक़द देने और समय पर सेना लेकर फौज में उपस्थित होने का वादा किया था। इसके बाद इन्द्रसिंह के उपस्थित होने पर इनम के एक लाख रुपये माफ कर दिए गए, और महाराज उसको साथ लेकर वापस लौटे।

२ वि० सं० १७६६ की चैत्र-सुदी १५ के, साँभर में, महाराज के लिखे, दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है कि तू किसी बात की फिक्र न करना। हम बादशाह के साथ ऐसी चोट करेंगे कि वह बहुत दिन तक याद करेगा। हाँ, अगर वह मेल करेगा, तो उसे हमारी इच्छा के अनुसार शर्तें माननी होंगी।

बादशाह बहादुरशाह (शाह आलम) ने अपने सने जलूस ३ की १७ वीं रबिउल अव्वल (वि० सं० १७६६ की ज्येष्ठ वदि ४=ई० स० १७०९ की १६ मई) को महाराज के नाम एक फरमान लिखा था। उस से प्रकट होता है कि आसफुद्दौला के समझाने से बादशाह ने महाराज से मेल करना अङ्गीकार करलिया था।

१ अजितोदय, सर्ग १९, श्लोक १९ ३०।

इसी बीच पंजाब में सिक्खों का उपद्रव उठ खड़ा हुआ[1]। अतः बहादुरशाह ने राजपूताने में फिर से झगड़ा उत्पन्न करना उचित न समझा और, वि० सं० १७६७ के आषाढ (ई० सन् १७१० के जून) में, उसने अजमेर पहुँच, महाबतखाँ की मारफत महाराज से संधि करली[2]। इसके अनुसार जोधपुर पर भी महाराज का अधिकार स्वीकार कर लिया गया[3]।

१ 'लेटर मुगल्स' में पहले-पहल बादशाह को इसकी सूचना का, ई० सन् १७१० की ३० मई को, अजमेर के निकट पहुँचने पर मिलना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० १०४) परंतु अन्य गणितज्ञों के अनुसार उस दिन हि० सन् ११२२ की २ रबिउल आखीर को ई० सन् १७१० की २० मई (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ-सुदी ३) आती है।

२ बादशाह बहादुरशाह (शाह आलम) के सने जलूस ४ की १ रबिउल आखिर (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ सुदि २=ई० सन् १७१० की १६ मई) का एक खास पंजे वाला फरमान मिला है। इस में महाराज को जोधपुर देने और मेडता खालसे में रखने का उल्लेख है। साथ ही इस में महाराज को दरबार में पहुँचने पर मनसब देने का वादा भी किया गया है।

इसी साल की ६ रबिउल आखिर (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ सुदि ११ = ई० स० १७१० की २७ मई) का महाराज के नाम का एक बादशाही फरमान और भी मिला है। इस पर भी खास पंजा लगा है। इस में बहादुरशाह ने महाराज को अपने पास आने के लिये लिखा है।

इसी में पहले फरमान का हवाला भी है। इसी प्रकार अपने सने जलूस ५ की ५ सफर (वि० सं० १७६८ की चैत्र सुदि ६ = ई० स० १७११ की १४ मार्च) को बादशाह बहादुरशाह ने एक फरमान और भेज कर महाराजा अजितसिंहजी को अपने पास बुलवाया था।

वि० सं० १७६६ (चैत्रादि १७६७) की आषाढ बदी ११ के, महाराज के, दयालदास के नाम लिखे पत्र में लिखा है कि शाहजादे अजीम और महाबतखाँ ने आदमी भेजकर कहलाया था कि अपने भरोसे के पुरुष भेज दो, ताकि आपकी इच्छानुसार संधि करवा दी जाय। इस पर राठोड चाँपावत भगवानदास आदि ५ आदमी वहाँ भेजे गए। बादशाह ने हमारी सब बातें स्वीकार कर हमें बुलवाया। इस पर हम भी उससे मिलने को चले। यह देख उसने खानखाना मुहब्बतखाँ और बुंदेला चतुरसाल को हमारी पेशवाई में भेजा। आषाढ बदी ११ को इधर हमने डूमाडे से सवारी की, और उधर बादशाह राजोसी से चला। शाहजादा अजीम भी उसके साथ था। पास आने पर शाहजादा पालकी से उतर घोडे पर सवार हुआ, और हम अपने साथ ले जाकर बादशाह से मिलाया। उसने भी हमें जोधपुर का अधिकार, १६ हजारी जात और १४ हजार सवारों का मनसब, घोडा, हाथी, खिलअत, डुगडुगी, तलवार, जडाऊ सरपेच आदि दिए।

३ इसी समय आँबेर पर भी महाराज जयसिंहजी का स्वत्व मान लिया गया। इसके बाद ये दोनों नरेश बादशाह से मिलकर अपने-अपने देशों को लौट गए, और बादशाह पंजाब की तरफ

के उपद्रव को शांत करने के लिये वि० सं० १७६७ की आषाढ-सुदी २ (१७ जून) को अजमेर से पंजाब की तरफ़ गया।

ऐलफिंस्टन ने अपने हिंदोस्थान के इतिहास में लिखा है कि बादशाह ने अपने पुत्र के द्वारा संधि की थी। उस समय उसने जयपुर और जोधपुर के नरेशों की सारी शर्तें स्वीकार कर इनकी स्वाधीनता भी उदयपुर के राना के समान ही मान ली थी। (देखो पृ० ६६२)।

'अजितोदय' से भी शाहज़ादे अज़ीमुश्शान के द्वारा संधि का होना प्रकट होता है। (देखो सर्ग १६, श्लो० ३१-३८)।

'हिस्ट्री ऑफ् औरंगज़ेब' में लिखा है कि ई० सन् १७०६ के अगस्त में अजितसिंह ने अंतिम बार दल-बल सहित जोधपुर में प्रवेश किया, और बादशाह ने उसका स्वत्व पूरी तौर से स्वीकार कर लिया। (देखो भा० ३, पृ० ४२४)।

'लेटर मुग़ल्स' में लिखा है कि जिस समय बहादुरशाह का शिविर बनास के तट पर था, उस समय हाँसी का नाहरख़ाँ और यारमुहम्मद, जो राजस्थान के नरेशों को दबाने के लिये भेजे गए थे, उनके मंत्रियों को लेकर हाज़िर हुए। ई० सन् १७१० की २२ मई (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ सुदी ५) को शाहज़ादे अज़ीमुश्शान के द्वारा उक्त नरेशों के पत्र बादशाह के सामने पेश किए गए, साथ ही शाहज़ादे की प्रार्थना पर उनके कुसूर माफ़ कर दिए गए, और उसी (शाहज़ादे) के द्वारा उनके मंत्रियों को खिलअत दिए गए। इसके पाँचवें दिन जब बादशाह का डेरा टोडे के पास हुआ, तब उसने राना अमरसिंह, महाराजा अजितसिंह और राजा जयसिंह के आदमियों को १८ खिलअत दिए। साथ ही १ खिलअत राठोड़ दुर्गादास का पत्र लानेवाले को भी दिया गया। इसी बीच बादशाह को सरहिंद के उत्तर में (बन्दा की अधिनायकता में) सिक्खों के उपद्रव उठाने की सूचना मिली। अतः उसने महाबतख़ाँ को उपर्युक्त नरेशों को समझाकर अपने पास ले आने के लिये भेजा। इसके बाद जब इन्होंने संधि करना स्वीकार कर लिया, तब बादशाह ने अपने वज़ीर मुनअमख़ाँ को इनकी अगवानी को रवाना किया। २१ जून को जोधपुर और जयपुर के नरेश आकर उससे मिले, और प्रत्येक ने १०० मुहरें और २,००० रुपये उसकी भेट किए। बादशाह ने भी उन्हें खिलअत, जड़ाऊ तलवारें, कटार, पट्टे, हाथी और फारस के घोड़े देकर अपनी अपनी राजधानियों को लौट जाने की आज्ञा दी। इससे पुष्कर तक तो दोनों राजा एक साथ लौटे, परंतु वहाँ से जयसिंहजी तो जयपुर की तरफ़ रवाना हो गए और महाराज जुलाई (आषाढ) के अंतिम भाग में जोधपुर चले आए। बादशाह भी २२ जून (आषाढ-सुदी ७) को अजमेर पहुँचा।

उसी इतिहास में कमवरख़ाँ के लेख के आधार पर यह भी लिखा है कि जिस समय दोनों राजा बादशाह से मिलने आए, उस समय कमवर ने देखा कि शाही कैंप के चारों ओर की पहाड़ियाँ और मैदान राजपूतों से भरे हैं। उस समय कई हज़ार शुतर-सवार पहाड़ों के दर्रों में छिपे थे और प्रत्येक ऊँट पर बन्दूकों या तीर-कमानों से सजे हुए दो-दो या तीन-तीन योद्धा बैठे थे। उनका उद्देश्य यह था कि यदि बादशाह की तरफ़ से किसी प्रकार का धोका हो, तो अपने प्राण देकर भी अपने स्वामियों की रक्षा करें। (देखो भा० १, पृ० ७१-७३)।

महाराज के रामपुर से लिखे वि० सं० १७६६ (चैत्रादि १७६७) की वैशाख वदी १३ के दयालदास के नाम के पत्र से बादशाह का महाराज को जोधपुर और जयसिंहजी को आँबेर देने का वादा करना प्रकट होता है।

इसी वर्ष महाराज ने तीर्थ-यात्रा का विचार किया[1]। इसीसे यह जोधपुर से चलकर राजगढ, पाटनें और दिल्ली होते हुए कुरुक्षेत्र पहुँचे, और वहाँ से अन्य तीर्थों में स्नान करते हुए साढोर होकर हरद्वार गए। यहीं पर इन्हे राव इन्द्रसिंह का भेजा हुआ एक पत्र मिला। उसमें महाराज की अनुपस्थिति में तहव्वरअली द्वारा मारवाड़ में किए गए उपद्रवो का वर्णन था[3]। इस पत्र को पढते ही महाराज मारवाड़ को लौट चले, और कुछ ही दिनो में मारोठ आ पहुँचे। इनके आगमन का समाचार सुन तहव्वरअली गोठ-माँगलोद से भागकर अजमेर चला गया। इसपर महाराज पुष्कर स्नान कर मेड़ते होते हुए जोधपुर को चले। मार्ग में ही इन्हें बहादुरशाह के लाहौर में मरने की सूचना मिली[4]।

इसके बाद उसके चारो पुत्रो के बीच बादशाहत के लिये झगड़ा उठ खड़ा हुआ। यह देख महाराज ने भी आस-पास के यवन शासको का नाश करना शुरू कर दिया।

इसके बाद बहादुरशाह का पुत्र मोइजुद्दीन जहाँदारशाह अपने भाइयो को मारकर, वि० स० १७६९ की चैत्र सुदी १५ (ई० स० १७१२ की १० अप्रेल) को, तख़्त पर बैठा[5]।

१ कर्नल टॉड ने लिखा है कि वि० स० १७६८ मे महाराज ने बादशाह की तरफ मे नाहन (सिरमूर=पजाब) के राजा पर चढाई कर उसे हराया और वहाँ से लौटते हुए यह तीर्थ-यात्रा को गए। (क्रुकसपादित टॉड का राजस्थान का इतिहास, भा० २, पृ० १०२०) 'राजरूपक' मे भी नाहन-विजय का उल्लेख है। (देखो पृ० १८७)।

२ बहादुरशाह (शाह आलम) के, सने जलूस ५ की १२ शव्वाल) (वि० स० १७६८ की कार्तिक सुदी १३=ई० सन् १७११ की १२ नवम्बर) के, महाराज के नाम के शाही फर्मान से ज्ञात होता है कि उस ने महाराज को सूरत की फौजदारी दी थी। इसीसे शायद यह वहाँ का प्रबन्ध कर तीर्थयात्रा को गए होंगे।

३. 'राजरूपक' मे इस घटना का उल्लेख नहीं है।

४ अजितोदय, सर्ग १६ श्लो० ७०-६०।

बहादुरशाह वि० स० १७६८ की फागुन वदी ७ (ई० सन् १७१२ की १८ फरवरी) को मरा था। 'क्रॉनोलॉजी ऑफ् मॉडर्न इडिया' मे २८ फरवरी लिखी है। (देखो पृ० १५३) परतु 'लेटर मुगल्स' में ई० सन् १७१२ की २७ फरवरी की रात को उसका मरना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० १३५)।

५ 'लेटर मुगल्स' मे उस दिन (हि० सन् ११२४ की २१ सफर मानकर) २६ (वास्तवमें १६) मार्च का होना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० १८६) और 'क्रॉनोलॉजी ऑफ मॉडर्न इडिया' मे उस दिन २० अप्रेल लिखा है। (देखो पृ० १५४)।

किशनगढ़ नरेश राजसिंहजी के विपक्षी का साथ देने के कारण[1] यह उनसे नाराज़ था। इसलिये वह लाहौर से लौटकर रूपनगर चले आए, और उन्होंने महाराज को पत्र लिखकर समय पड़ने पर सहायता करने की प्रार्थना की। इस पर इन्होंने भी उन्हें अपना भतीजा समझ यह बात स्वीकार करली। इसके कुछ दिन बाद महाराज ने आस-पास के प्रदेशों पर अधिकार करने का विचार कर किशनगढ़-नरेश राजसिंहजी को भी सेना लेकर उपस्थित होने का लिखा।[2] परन्तु उन्होंने इसकी कुछ भी परवा न की। यह देख महाराज बाँदरवाड़ा, भिणाय और विजयगढ़ को विजय करते हुए देवगढ़ पहुँचे[3]। जिस समय इनका निवास उक्त स्थान पर था, उस समय फिर इन्होंने पत्र लिखकर राजसिंहजी को अपने पास बुलवाया। परन्तु जब इस बार भी उन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया, तब (वि० स० १७६९=ई० सन् १७१२ में) इन्होंने किशनगढ़ पर आक्रमण कर वहां पर अधिकार कर लिया और उसके बाद ही रूपनगर को भी घेर लिया। पहले तो राजसिंहजी ने बड़ी वीरता से इनका सामना किया, परन्तु अन्त में उन्हें महाराज की

'राजरूपक' में लिखा है कि उसने महाराज को गुजरात की सूबेदारी दी थी। परन्तु महाराज के उधर जाने के पूर्व ही वह मर गया, और फर्रुखसियर दिल्ली के तख्त पर बैठा। (हस्त लिखित पुस्तक पृ० १८८)।

जहाँदारशाह का जलूसी सन् हि० सन् ११२४ की १४ रबीउल अव्वल (वि० स० १७६६ की चैत्र सुदी १५=ई० सन १७१२ की १० अप्रेल) से माना गया था।

१ इन्होंने शायद लाहौर के युद्ध में अज़ीमुश्शान का पक्ष लिया था। इसी से मोइज़ुद्दीन जहाँदारशाह इनसे नाराज़ था।

२ इसकी पुष्टि किशनगढ़-नरेश के वि० स० १७६८ की माघ सुदी ८ के महाराज के नाम के पत्र से भी होती है।

३. महाराज के लिखे वि० स० १७६६ (चैत्रादि संवत् १७७०) के, पँचोली बालकृष्ण के नाम के पत्रों से ज्ञात होता है कि महाराज ने उसे जुनिया, मसदा, तोडा, बाँदरवाड़ा और शक्तावतों के अधीन के प्रदेशों को विजय करने के लिये भेजा था और उसने वे प्रदेश विजय कर लिए थे।

ऐसा ज्ञात होता है कि महाराज के उधर से लौट कर जोधपुर आने पर उपर्युक्त लोगों ने फिर कहीं-कहीं सिर उठाया होगा। इसीसे पचोली बालकृष्ण ने उन को फिर से जीता।

बात मानलेनी पड़ी। इसके बाद यह रायसिंहजी को साथ लेकर साभर पहुचे[2]। इसकी सूचना पाते ही आंबेर-नरेश जयसिंहजी, राजा उदयसिंहजी और राव मनोहरदास शेखावत वहाँ आकर इनसे मिले[3]। इसी समय बादशाह मोईजुद्दीन भी लाहौर से दिल्ली की तरफ चला आया था। परतु शीघ्र ही उसे हाजीपुर से शाहजादे (अजीमुश्शान के पुत्र) फर्रुखसियर की चढाई का समाचार मिल जाने से उसने महाराज से छेड़-छाड़ करना उचित न समझा। महाराज भी आँबेर-नरेश जयसिंहजी आदि के लौट जाने पर जोधपुर चले आए[4]।

कुछ दिन बाद जब मोइजुद्दीन जहाँदारशाह को कैद कर फर्रुखसियर बादशाही तख्त पर बैठा, तब राव इद्रसिंह का पुत्र मोहकमसिंह बगड़ी के ठाकुर दुर्जनसिंह

१ महाराज के, दयालदास के नाम लिखे, एक पत्र में (इसका नीचे का भाग फटा हुआ है) लिखा है कि हमारे राजसिंहजी को बुलाने पर उन्होंने आप न आकर अपने तीनों लड़कों को भेजने का लिखा। इस पर हमने किशनगढ आदि पर अधिकार कर रूपनगर को भी घेर लिया। जब किला फतह हो जाने की सूरत हुई, तब राजसिंहजी ने अपना कुसूर मान-कर माफी माँग ली और आश्विन वदी १ को वह हमारे पास चले आए। साथ ही उन्होंने हाथी और तोपें भी नजर कीं। वि० स० १७६६ (चैत्रादि संवत् १७७०) की वैशाख वदी ६ के महाराज के लिखे अपने फौजबख्शी पचोली बालकृष्ण के नाम के पत्र से उस समय सरवाड आदि पर महाराज का कब्जा होना प्रकट होता है।

२ महाराज के वि० स- १७६६ की मँगसिर वदी १० के लिखे, दयालदास के नाम के पत्र मे लिखा है कि आज राय रघुनाथ का पत्र आया। उससे ज्ञात हुआ कि बादशाह ने हमारी कही सब बातें मान लीं हैं। उसने अहमदाबाद का सूबा और सोरठ, ईडर तथा पट्टन का दरोबस्त हमको दिया है। और हमने उज्जैन का सूबा और मदसोर आदि का दरोबस्त राजा जयसिंहजी को दिलवाया है। साथ ही इद्रसिंहजी और राजसिंहजी को क्रमश. नागोर और किशनगढ तथा रूपनगर दिलवाया है। जिन-जिन लोगों ने हमारी सेवा की थी उन-उनके सब काम ठीक तौर से करवा दिए हैं।

३ 'राजरूपक' मे इन घटनाओं का उल्लेख नहीं है। 'वीरविनोद' मे प्रकाशित मारवाड के इतिहास मे किशनगढ की चढाई का वि स० १७६८ के भादों (ई० सन् १७११ के सितम्बर) मे होना लिखा है।

४ 'अजितोदय', सर्ग २०, श्लो० १-२१। उक्त काव्य मे यह भी लिखा है कि बादशाह ने जयपुर और जोधपुर के नरेशों का साँभर में एकत्रित होना सुनकर ही लाहौर से लौटने में शीघ्रता की थी।

५ फर्रुखसियर वि० स० १७६६ की माघ वदी १० (ई० सन् १७१३ की १० जनवरी) को बादशाह हुआ था।

को साथ लेकर, दिल्ली चला गया, और वहाँ पर महाराज के विरुद्ध बादशाह के कान भरने लगा। यह बात महाराज को बहुत बुरी लगी। अत: इन्होंने भाटी अमरसिंह को भेज मोहकमसिंह को मरवा डाला[1]। इस पर दुर्जनसिंह भागकर दक्षिण में चला गया।

इसके बाद महाराज ५ महीने तक मेड़ते में रहे, और वहीं से फिर इन्होंने राव इन्द्रसिंह को अपने पास आने को लिखा। परंतु वह इनके पास न आकर कुछ दिन के लिये सैयदों के पास दिल्ली चला गया। इसी प्रकार किशनगढ़-नरेश राजसिंहजी भी दिल्ली पहुँच बादशाह के पास रहने लगे[2]।

ये लोग फर्रुखसियर को महाराज के विरुद्ध भड़काते रहते थे। अतः उसने इनके कहने से पहले तो पत्र लिखकर महाराज-कुमार अभयसिंहजी को दरबार में बुलाने की कोशिश की। परन्तु जब महाराज ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया, तब वि० स० १७७० (ई० सन् १७१३) में उसने सैयद हुसैनअलीखाँ (अमीरुल उमरा) को जोधपुर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी[3]। इसकी सूचना पाते ही महाराज ने खींवसी

१. अजितोदय, सर्ग २०, श्लो० २४-२६। 'लेटरमुगल्स' (भा० १, पृ० २८५ का फुटनोट) में मोहकम के स्थान पर मुकद (और मुल्कन) लिखा है। 'वीरविनोद' में प्रकाशित मारवाड के इतिहास में इस घटना का वि० स० १७७० की भादों सुदी ५ (ई० सन् १७१३ की २७ अगस्त?) को होना लिखा है। 'सिहरुल मुताखरीन' में जिस राजा मोहकमसिंह का हि० सन् ११३३ की १३ मुहर्रम (वि स० १७७७ की कार्तिक सुदी १५=ई० सन् १७२० की ३ नवम्बर) को बादशाह मुहम्मदशाह की सेना को छोडकर अब्दुल्लाखाँ से मिल जाना, और युद्ध होने पर दूसरे दिन रात को उसकी सेना से भी भाग जाना लिखा है, वह इस मोहकम से भिन्न था, क्योंकि उसके नाम के आगे राव न लगा होकर राजा की उपाधि लगी है। (देखो भा० २, पृ० ४४०) साथ ही 'मआसिरुलउमरा' मे उसे खत्री लिखा है। (देखो भा० २, पृ० ३३०)।

२. अजितोदय, सर्ग २०, श्लो० ३६-३६।

३ मि० इरविन ने अपने 'लेटर मुगल्स' नामक इतिहास के भा० १ पृ० २८५-२६० में लिखा है कि बहादुरशाह महाराज अजितसिंहजी को दबाने में कृतकार्य न हो सका, और उसके मरते ही शाही तख्त के लिये झगड़ा उठ खड़ा हुआ। यह देख महाराज ने भी मारवाड़ के आस पास गो-वध बन्दकर मुसलमानी धर्म के प्रचार को रोक दिया। इसके बाद अजमेर पर भी इन्होंने अपना अधिकार कर लिया। उसी इतिहास मे कमवरखाँ के लेख के आधार पर यह भी लिखा है कि इधर तो बादशाह ने हुसेनकुली को जोधपुर पर चढाई करने के लिये भेजा और उधर अनेक प्रलोभनों से पूर्ण पत्र लिखकर महाराज से उसे मार डालने का आग्रह किया। (लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० २८६)।

को हुसैनअली से मिलकर बातचीत तय करने के लिये भेज दिया, और स्वयं सेना सजाकर नगर से बाहर राईकेबाग के पास डेरा लगाया। खींवसी ने मेड़ते के पास (बूध्यावास में)) पहुँच शाही सेना-नायक से संधि कर ली। इस पर वह महाराज-कुमार अभयसिंहजी[3] को लेकर दिल्ली लौट गया। वहाँ पर वि० सं० १७७१ की सावन वदी ४ (ई० सन् १७१४ की १६ जुलाई) को बादशाह ने महाराज-कुमार से मिलकर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया।

'बॉबे गजेटियर' में लिखा है कि इसी अवसर पर बादशाह ने महाराज-कुमार को सोरठ की हकूमत (फौजदारी) दी। इस पर वह स्वयं तो बादशाह के पास ही रहे,

१ फ़ारसी-इतिहासों में हुसैनअली का मारवाड के गाँवों को लूटते हुए मेडते पहुँचना लिखा है।

२ बादशाह फर्रुखसियर के सने जलूस १ की ११ सफर (वि० सं० १७७० की फागुन सुदी १२=ई० सन् १७१४ की १५ फरवरी) का महाराज के नाम का एक फरमान मिला है। उसमें अजितसिंहजी के (पहले के अनुसार ही) मनसब और रियासत के अधिकार के अङ्गीकार करने का उल्लेख है।

कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि मीरजुमला ने ही दोनों सैयद-भ्राताओं को एक स्थान से हटाने के लिये बादशाह से कहकर हुसैनअली को जोधपुर पर चढाई करने के लिये भिजवाया था। साथ ही उसने एक फरमान महाराज के नाम भी भिजवाया था। उसमें उसने हुसैनअली को मार डालने का आग्रह किया था। इसके बाद बादशाह ने अब्दुल्लाखाँ को पकडने की कोशिश शुरू की। परंतु इस बात के प्रकट हो जाने से उसने अपने भाई (हुसैनअली) को शीघ्र लौट आने के लिये लिख भेजा। इसी समय महाराज ने हुसैनअली को उसके मारने के लिये आया हुआ शाही फरमान भी दिखला दिया। इस पर वह महाराज से संधि कर तत्काल लौट गया।

'मुतखिबुललुबाब' से भी इस बात की बहुत कुछ पुष्टि होती है। (देखो भा० २, पृ० ७३८)।

'अजितोदय' में लिखा है कि जब बादशाह के कहने से हुसैनअली मारवाड की तरफ चला आया, तब पीछे दिल्ली में मीरजुमला के बहकाने से बादशाह ने उसके बडे भाई को मारडालने का प्रबन्ध किया। परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं हुई। इसकी सूचना पाते ही हुसैनअली महाराज से संधि कर दिल्ली लौट गया। (देखो सर्ग २१, श्लो० १-३८) उक्त काव्य में इस चढाई के कारणों में मोहकमसिंह का दिल्ली में मारा जाना भी एक कारण माना है। परन्तु कुछ भी हो, इतना तो मानना ही पड़ता है कि इस बार की संधि में मारवाड के वीरों का वह पूर्व का-सा पौरुष प्रकट न हो सका।

३. वि० सं० १७७० (चैत्रादि १७७१) की ज्येष्ठ वदी १४ के, महाराज के, खींवसी के नाम लिखे पत्र से प्रकट होता है कि इसके एक दिन पूर्व हुसैनअली के तीन अमीर आकर अभयसिंहजी से मिले और उन्हें हाथी पर चढाकर नवाब के पास ले गए। वहाँ पर उसने इनका बड़ा सत्कार किया, और १ हाथी, १ पोशाक तथा १ कलगी भेट की।

परन्तु कायस्थ फतहसिंह को उन्होंने अपना नायब बनाकर वहाँ का प्रबंध करने के लिये जूनागढ भेज दिया। इसके बाद वि० सं० १७७२ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७१५ की मई) में महाराज-कुमार लौटकर जोधपुर चले आए।

इसी वर्ष (वि० सं० १७७२=ई० सन् १७१५ में) महाराज को गुजरात की सूबेदारी और ५,००० सवारों का मनसब मिला। इस पर यह जालोर[3] होते हुए भीनमाल पहुँचे और वहाँ से व्यास दीपचंद की सलाह से चाँपावत हरिसिंह और भाटी खेतसी को जैतावत दुर्जनसिंह और बनावटी दलथंभन के पीछे रवाना किया। इनको आज्ञा दी गई थी कि ये उक्त दुर्जनसिंह और दलथंभन का पता लगाकर उन्हें मार डालें। (इसी के साथ मेड़ते के शासक पेमसी को भी नागोर पर चढाई करने की आज्ञा भेजी गई।) इसके बाद महाराज बड़गाँव की तरफ होते हुए आबू के पास पहुँचे और वहाँ के देवड़ा शक्तिसिंह को हराकर पालनपुर की तरफ चले। इन्हें आया देख वहाँ के यवन-शासक (फीरोजखाँ) ने और बावडी के पचायण ने इनसे संधि कर ली। इसके बाद यह कोलीवाड़े से कर लेते हुए पाटन पहुँचे। वहाँ से महाराज ने अपनी सेना के एक भाग को मालगढ़ पर चढाई करने की आज्ञा दी, और दूसरे भाग के साथ यह स्वयं अहमदाबाद की तरफ चले। महाराज की आज्ञा के अनुसार सेना का वह भाग भी कोलियों के उपद्रव को शांत कर मार्ग में महाराज से आ मिला। इसके बाद यह अहमदाबाद पहुँच वहाँ के सूबे का प्रबंध करने में लग गए।

---

१ बँबे गजेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६७।

२ बँबे गजेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६६ और 'लेटर मुगल्स' भा० १, पृ० २६ का फुटनोट।

महाराजा अजितसिंहजी के नाम का अहमदाबाद की सूबेदारी का फरमान बादशाह फर्रुखसियर के सने जलूस ३ की २३ जिलहिज (वि० सं० १७७२ की पौष वदी १०=ई० स० १७१५ की ६ दिसम्बर) को लिखा गया था। इस फरमान में बादशाह की तरफ से महाराज को एक खिलअत दिए जाने का भी उल्लेख है।

३ 'राजरूपक' में भादों के अंत तक महाराज का जालोर में निवास करना लिखा है। (देखो पृ० १६८)।

४ अजितोदय, सर्ग २२, श्लो० ७-३५। उक्त काव्य में दलथंभन का उल्लेख नहीं है, क्योंकि उसके लेखानुसार वह सोजत के युद्ध में ही मारा गया था।

'बॉबे गजेटियर' में लिखा है कि अहमदाबाद पहुँचकर महाराज ने गज़नीखाँ जालोरी को पालनपुर और जवाँमर्दखाँ बाबी को राधनपुर का हाकिम (फौजदार) बनाया था[1]।

'मीरातेअहमदी' से ज्ञात होता है कि उसी वर्ष महाराज को प्रसन्न करने के लिये कोल्हापुर के कोतवाल ने ईद के त्योहार पर गाय की कुरबानी रोक दी। इससे वहाँ के सारे मुसलमान भड़क उठे[2]।

पहले लिखा जा चुका है कि महाराज ने पेमसी को नागोर विजय की आज्ञा दी थी। उसी के अनुसार उसने नागोर को घेरकर युद्ध छेड़ दिया। इसी अवसर पर इन्द्रसिंह के बहुत-से सरदार भी लालच में पड़कर महाराज के पक्ष में चले आए। इससे जब नगर पर महाराज का अधिकार हो गया, तब राव इन्द्रसिंह किला छोड़कर[3] अपने परिवार के साथ कासली नामक गाँव में जा रहा। परन्तु उसका पीछा करता हुआ जोधा दुर्जनसिंह रात्रि में वहाँ जा पहुँचा, और उसने उसके द्वितीय पुत्र मोहन-सिंह को भी मार डाला। यह देख इन्द्रसिंह भागकर दिल्ली में बादशाह के पास चला गया, और फिर से महाराज के विरुद्ध उसके कान भरने लगा। परतु इस बार उसे विशेष सफलता नहीं हुई[4]। यह घटना वि० स० १७७३ के श्रावण (ई० सन् १७१६ की जुलाई) की है।

इसी वर्ष बादशाह ने हैदरकुली को सोरठ का फौजदार बनाया। उस समय वहाँ का प्रबंध महाराजकुमार अभयसिंहजी के अधिकार में होने से पहले तो उसे हस्तगत करने की उसकी हिम्मत न हुई, परतु अंत में किसी तरह वहाँ पर उसका अधिकार हो गया[5]।

१ बॉबे गजेटियर, भा १, खड १, पृ० २९९।

२ बॉबे गजेटियर, भा १, खड १, पृ० २९९, फुटनोट ३।

३ 'राजरूपक' मे इस घटना की तिथि सावन सुदी ३ लिखी है। (देखो पृ० २००)।

४ अजितोदय, सर्ग २३, श्लो० २-१३, और राजरूपक, पृ० २०१-२०२। वि० स० १७७३ की सावन सुदी ७ के एक पत्र से भी इसी वर्ष नागोर पर महाराज का अधिकार होना सिद्ध होता है।

५ बॉबे गजेटियर, भा ,१, खड १, पृ० २९९-३००।

वि० सं० १७७३ की माघ सुदि १२ (ई० स० १७१७ की १३ जनवरी) को बादशाह ने महाराज को शाही खिलअत, जड़ाऊ सरपेच, जड़ाऊ दस्तारबंद, जड़ाऊ कटार और सोने के साज का हाथी दिया।

इसके बाद फागुन (फरवरी) में उस (बादशाह) ने इन्हें नागोर का परगना, जो उस समय अजमेर की सूबेदारी में था, जागीर में देदिया।

अगले वर्ष महाराज ने गुजरात में दौरा करते समय द्वारका की यात्रा की, और मार्ग में हलवद के झालों की कूटनीति से क्रुद्ध हो उन्हें दंड दिया। इसके बाद यह अहमदाबाद लौट आए। इसी बीच हरिसिंह ने कर्मागेजी की गद्दी पर आक्रमण कर दलथमन और दुर्जनसिंह को मार डाला।

मुसलमानों के स्वेच्छाचार से नफरत होने के कारण महाराज अपने अधिकृत-स्थानों में उनकी स्वच्छन्दताओं को दबाए रखते थे। इसी से वि० सं० १७७४ (ई० सन् १७१७) में इस प्रकार की शिकायतों से नाराज होकर बादशाह ने गुजरात का सूबा शम्सामुद्दौला खानदौरां नसरतजंग को सौंप दिया। अतः महाराज लौटकर जोधपुर चले आए।

---

१ फर्रुखसियर के सने जलूस ४ की १० सफ़र का महाराज के नाम का एक फ़रमान मिला है। इसमें सिक्खों की हार का उल्लेख है।

२ फर्रुखसियर के सने जलूस ५ की रबीउल अव्वल का भी महाराज के नाम का एक फ़रमान मिला है। इसमें की तारीख फट गई है। सम्भव है यह १ रबीउल अव्वल हो, क्योंकि उसी दिन फर्रुखसियर का सने जलूस शुरू हुआ था।

इस फ़रमान में उस अवसर पर बादशाह द्वारा एक खास खिलअत और दो ईराकी घोड़ों का महाराज को दिया जाना लिखा है। ये घोड़े ईरान के बादशाह ने भेजे थे।

३. अजितोदय, सर्ग २३, श्लो० २४-३५। वहीं पर यह भी लिखा है कि हलवद पहुँचने पर रात्रि में महाराज की सेना के साथ के व्यापारियों के ऊँट चुरा लिए गए। इस पर जब वहाँ के झाला वंशी शासक से शिकायत की गई, तब उसने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसलिये महाराज को उससे युद्ध करना पड़ा। अन्त में झाला भागकर नवानगर वालों की शरण में चला गया। इस पर पहले तो नवानगरवालों ने भी झाला का पक्ष लेकर महाराज का सामना किया। परन्तु अन्त में उन्होंने दंड के रुपये देकर महाराज से संधि करली।

४ अजितोदय, सर्ग २४, श्लो० ३४-३६ और राजरूपक, पृ० २०१।

५ बॉम्बे गजेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०० और अजितोदय, सर्ग २४ श्लो० ४०।

इसके बाद यह मडोर, नागोर और मेडते का दौरा करते हुए पुष्कर पहुँचे। इसी बीच बादशाह फर्रुखसियर और सैयदों के बीच के मनोमालिन्य ने उग्र रूप धारण कर लिया। यह देख बादशाह ने कुतुबुल्मुल्क को धोके से पकडकर मारना चाहा। परतु चालाक सैयद को इस बात का पता लग जाने से वह सचेत होगया। इस पर बादशाह ने नाहरखाँ के द्वारा महाराज को अपनी सहायता के लिये बुलवाया[1]। परतु नाहरखाँ स्वय भी गुप्त रूप से सैयदो से मिला हुआ था। इसीसे उसने बादशाह की अव्यवस्थितचित्तता का वर्णन कर महाराज का चित्त भी उसकी तरफ से फिरा दिया[2]।

वि० स० १७७५ की भादो सुदी ६ (ई० सन् १७१८ की २० अगस्त) को जब महाराज दिल्ली के पास पहुचे, तब बादशाह ने इनके लिये एतकादखाँ[3] के साथ एक कटार भेजी, और इनकी अगवानी के लिये शम्सामुद्दौला को नियत कर उसे आज्ञा दी कि वह महाराज के सामने जाकर जहाँ तक हो, खुशामद आदि से उन्हे अपनी तरफ मिलाने का प्रयत्न करे। परतु महाराज बादशाह की अस्थिरता[4] और शाही दरबार की हालत से परिचित हो चुके थे। अत ईन्होने कुतुबुल्मुल्क के साथ जाकर ही बादशाह से मिलना उचित समझा। इसी के अनुसार जब यह दूसरे दिन मत्री के साथ जाकर बादशाह से मिले, तब ऊपर से तो उसने खिलअत आदि देकर इनका

१ अजितोदय, सर्ग २५, श्लो० ४-२३। परन्तु उक्त काव्य मे इनका जयपुर नरेश जयसिंहजी की सलाह से बुलाया जाना और यह देख सैयद-भ्राताओं का इनसे मेल कर लेना लिखा है। 'मुतखिबुल्लुबाब' मे बादशाह का महाराज को अहमदाबाद से बुलवाना और 'महाराजा' के खिताब के साथ ही अन्य तरह से भी इनके पद और मान मे वृद्धि कर इन्हे अपनी तरफ मिलाने की चेष्टा करना लिखा है। (देखो भा २, पृ० ७६२)।

फर्रुखसियर के लिखे इस विषय के दो फरमान मिले हैं। इनमे बडी खुशामद के साथ महाराज से दिल्ली आने का आग्रह किया गया है। परन्तु दोनों मे ही सन् और तारीख नही दी गई है।

हा, इनमे के एक फरमान से प्रकट होता है कि यह लिखा पढी महाराज के द्वारका की यात्रा कर अहमदाबाद से जोधपुर चले आने पर की गई थी।

२ लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० ३४८।

३ अजितोदय, सर्ग २६, श्लो० ३ और राजरूपक, पृ० २०६।

४ 'मुतखिबुल्लुबाब' मे फर्रुखसियर की अव्यवस्थितचित्तता के बारे में ये शब्द लिखे हैं-"इज्मो राय बादशाह बरयक हाल करार न मे गिरिफ्त" (देखो भा० २, पृ० ७६४)।

सम्मान किया, परन्तु इनके मंत्री के साथ आकर मिलने के कारण वह मन-ही मन इनसे नाराज़ हो गया। यह देख इन्होंने भी बादशाही दरबार में जाना छोड़ दिया। परन्तु आश्विन बदी १३ (११ सितंबर) को बादशाह ने, मेल करने की इच्छा से, खाँदौराँ और सरबलंदख़ाँ को भेजकर इन्हें फिर अपने पास बुलवाया[3]। इस पर महाराज और कुतुबुल्मुल्क अब्दुल्लाख़ाँ, दोनों एक ही हाथी पर सवार होकर[4] बादशाह के पास पहुँचे। बादशाह ने भी ऊपर से बड़ी प्रीति दिखलाई[5] और वज़ीर की सलाह से बीकानेर का अधिकार भी महाराज को दे दिया[6]। परन्तु भीतरही-भीतर वह निज़ामुल्मुल्क, मीर जुमला और ऐतक़ादख़ाँ आदि अनेक अमीरों को मिलाकर इनके मारने का षड्यंत्र रचने लगा। यह देख इधर कुतुबुल्मुल्क ने अपने भाई को, जो उस समय दक्षिण में था, सारा हाल लिख भेजा और, उधर बादशाह भी, जो सैयदों से पूरा पूरा द्वेष रखता था

---

१ अजितोदय, सर्ग २६, श्लो॰ ३६-४७।

वि॰ सं॰ १७७५ की भादों सुदी ८ के दिल्ली से महाराज के लिखे दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है कि भादों सुदी ७ को हम बादशाह से मिले। बादशाह भी हमसे बड़े आदर के साथ बाँह फैलाकर मिला और हमें अपनी दाहनी तरफ़ सब से ऊपर खड़ाकर 'राजराजेश्वर' का खिताब, खिलअत, घोड़ा, हाथी, माही मरातब, मोतियों की माला, जड़ाऊ कटार, जड़ाऊ सरपेच १,००० सवार दुअस्पा का इज़ाफ़ा और १ करोड़ दाम दिए।

इसकी पुष्टि इसी तिथि के पचोली अजबसिंह के नाम लिखे महाराज के पत्र से भी होती है।

२ 'अजितोदय में लिखा है कि महाराज किले से लौटते हुए मार्ग में कुतुबुल्मुल्क के मकान पर ठहरे थे (देखो सर्ग २६, श्लो॰ ४६) परन्तु किसी ने इसकी सूचना बादशाह को दे दी। इससे बादशाह इनसे और भी अप्रसन्न हो गया। (देखो सर्ग २७, श्लो॰ २)।

३ किसी किसी तवारीख में बादशाह का महाराज के द्वारा वज़ीर से मेल करने की इच्छा प्रकट करना भी लिखा है।

४ इस प्रकार महाराज को अकेले अब्दुल्लाख़ाँ के हाथी पर सवार होते देख नींबाज का ठाकुर अमरसिंह उनके पीछे चढ़ बैठा। उसी दिन से सरदार लोग महाराज के पीछे बैठने लगे हैं।

५ महाराज के, सिकदार दयालदास के नाम लिखे, वि॰ सं॰ १७७५ की पौष बदी ४ के पत्र में लिखा है कि बादशाह ने इन्हें खिलअत, मोतियों की माला, जड़ाऊ कलगी और एक करोड़ दाम देकर इनके मनसब में एक हजार सवार दुअस्पा की वृद्धि की। इसके अलावा अहमदाबाद का सूबा देने का भी हुक्म दिया।

६ 'लेटर मुगल्स' भा॰ १, पृ॰ ३४८-३५१।

इनके विरुद्ध बराबर षड्यन्त्र करने लगा। एक-दो बार तो उसने महाराज के मार डालने या पकड़ लेने की कोशिश भी की[1], परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं हुई[2]।

अंत में (अब्दुल्लाखाँ) कुतुबुल्मुल्क के समझाने से पौष सुदी ३ (१३ दिसंबर) को स्वयं बादशाह उसे साथ लेकर महाराज के डेरे पर आया, और घंटे-भर से भी अधिक समय तक मेल-मिलाप की बातें करता रहा। इस पर दूसरे दिन महाराज भी दरबार में उपस्थित हुए। इस प्रकार एकबार फिर इनके आपस में मेल हो गया[3]। इसके बाद माघ बदी २ (२८ दिसम्बर) को बादशाह ने इन्हें 'राजराजेश्वर' की उपाधि देकर गुजरात की सूबेदारी दी[4]।

१ एकबार बादशाह ने सोचा कि उसके शिकार से लौटते हुए वजीर के मकान के पास पहुँचने पर जिस समय महाराज (जिनका पड़ाव उसी के मकान के पास था) अपने खेमे से निकलकर सत्कार के लिये सामने आवे, उस समय उन्हें पकड़ लिया जाय। परन्तु यह बात प्रकट हो जाने से महाराज हुसैनअली के मकान पर जाकर खड़े हो गए। इससे बादशाह की उधर आने की हिम्मत ही नहीं हुई।

इसी प्रकार स्वयं महाराज द्वारा अपने विश्वासपात्र सरदारों को लिखे गए उस समय के पत्रों में भी बादशाह की तरफ से इनके विरुद्ध किए गए षड्यन्त्रों का उल्लेख मिलता है। उन पत्रों में महाराज ने जयपुर नरेश जयसिंहजी का भी अपने विरुद्ध बादशाह को भड़काना सूचित किया है।

'अजितोदय' में भी महाराज को मारने के लिये बादशाह द्वारा षड्यन्त्रों के रचे जाने का उल्लेख मिलता है। (देखो सर्ग २७, श्लो० ३-५)।

२ 'लेटर मुगल्स' में लिखा है कि पौष बदी १४ (६ दिसम्बर) को महाराजा अजितसिंहजी और शाही तोपखाने के नायक (बीका हजारी) के बीच लड़ाई छिड़ गई। यह लड़ाई तीन घंटे तक जारी रही, और इसमें दोनों तरफ के बहुत से योद्धा मारे गए। रात हो जाने पर जब झगड़ा शांत हुआ, तब बादशाह ने जफरखाँ को महाराज के पास भेजकर इस गलती के लिये क्षमा चाही। (देखो भा० १, ३६३)।

३ 'अजितोदय' सर्ग २७, श्लो० ७-११ और राजरूपक, पृ० २१२।

४ लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० ३६३-३६४। ऊपर उद्धृत किए भादों सुदी ८ के स्वयं महाराज के पत्र में भी इन बातों का उल्लेख मिलता है।

अजितोदय में लिखा है कि इसके बाद एक दिन बादशाह ने राजराजेश्वर महाराजा अजितसिंहजी को और कुतुबुल्मुल्क को किले में बुलवाकर मार डालने का प्रबन्ध किया। इसके लिये पहले से ही सशस्त्र सिपाही महल में छिपाकर बिठा दिए गए थे। परन्तु इसका भेद खुल जाने से ये दोनों वहाँ से सकुशल निकल आए। (देखो सर्ग २७ श्लो० १२-१३)।

'लेटर मुगल्स' में इस घटना का संबंध केवल कुतुबुल्मुल्क से ही बतलाया है। (देखो भा० १, पृ० ३५४-३५५)।

कुतुबुल्मुल्क का खयाल था कि आँबेर-नरेश राजा जयसिंहजी भी उसके विरुद्ध बादशाह को भड़काते रहते हैं। इससे उसने फर्रुखसियर पर दबाव डालकर उन्हें अपने देश को लौट जाने की आज्ञा दिलवा दी।

इसी बीच सैयद हुसैन अलीखाँ (अमीरुल्उमरा) अपनी सेना लेकर दक्षिण से दिल्ली आ पहुँचा। अतः इन लोगों ने स्थायी संधि कर लेने के लिये फिर एकबार बादशाह से बातचीत शुरू की। परंतु अंत में फर्रुखसियर की अव्यवस्थितचित्तता से सैयदों का और महाराज का विश्वास उस पर से बिलकुल ही उठ गया। इसलिये फागुन सुदी ९ (ई० सन् १७१९ की १७ फरवरी)[3] को इन्होंने किले पर अधिकार कर लिया। यह देख फर्रुखसियर जनाने में घुस गया। यद्यपि इन लोगों ने उसे बाहर आकर मामला तय कर लेने के लिये कई बार कहलाया, तथापि उसने इनकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इससे क्रुद्ध होकर इन लोगों ने दूसरे ही दिन रफीउद्दरजात को कैद से निकालकर तख्त पर बिठा दिया और फर्रुखसियर को जनाने में से पकड़वाकर कैद कर लिया।

---

१ 'लेटर मुगल्स' भा० १, पृ० ३७६ और अजितोदय, सर्ग २७, श्लो० ३७ और ४०।

२ अजितोदय, सर्ग ३७, श्लो० १६।

३. 'हदीकतुल्अकालीम' में ८ रबीउल आखीर के बदले ८ रबीउल् अव्वल लिखा है। (देखो पृ० १३४) यह ठीक नहीं है।

४. अजितोदय, सर्ग २७ श्लो० ४१ ४७।

५ अजितोदय सर्ग २७ श्लो० ४८ और ५१। यह बहादुरशाह का पौत्र और रफीउश्शान का पुत्र था।

'अजितोदय' में लिखा है कि मुगल गाजिउद्दीन ने एकबार फर्रुखसियर को छुड़वाने की चेष्टा की थी। परन्तु हुसैनअलीखाँ ने उसे नगर के पूर्वी द्वार के पास हराकर भगा दिया। (देखो सर्ग २७, श्लो० ४६-५०) इसकी पुष्टि 'लेटर मुगल्स' से भी होती है। (देखो भा० १ पृ० ३८६)।

६ रफीउद्दरजात को तख्त पर बिठाते समय उसका एक हाथ कुतुबुल्मुल्क ने और दूसरा महाराज अजितसिंहजी ने पकड़ा था। (देखो लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० ३८६)।

७ वि० स १७७५ (चैत्रादि १७७६) की ज्येष्ठ वदी ११ के महाराज के सिकदार दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है.—

बादशाह फर्रुखसियर ने हमें अपनी सहायता के लिये यहाँ बुलवाया था। परन्तु हमारे यहाँ पहुँचने पर जयसिंहजी के कहने-सुनने से वह हमसे नाराज हो गया। इस पर हमने और नवाब अब्दुल्लाखाँ ने हसनअली को दक्षिण से यहाँ बुलवा लिया। उसके (१७७५ की) फागुन वदी १४ को

इसके बाद महाराज के कहने से नए बादशाह ने अपने पहले ही दरबार में जजिया उठा देने और तीर्थों पर लगने वाले कर को हटा देने[1] की आज्ञा देदी[2]।

इस प्रकार दिल्ली के झगड़े से निपटकर वि० स० १७७६ की ज्येष्ठ वदी ४ (ई० सन् १७१९ की २६ अप्रेल) को महाराज ने वहां (दिल्ली) से गुजरात की तरफ़ जाने का विचार किया। परन्तु रफ़ीउद्दरजात के गद्दी पर बैठने का समाचार फैलते ही

दिल्ली पहुँचने पर फागुन सुदी २ को किला घेर लिया गया। फागुन सुदी १० बुधवार को फर्रुखसियर को कैद कर लिया, और रफ़ीउद्दरजात को गद्दी पर बिठा दिया। साथ ही हमने उससे कहकर जजिया माफ़ करवा दिया, और तीर्थों पर की रुकावट भी दूर करवा दी।

इसके बाद वैशाख सुदी १० को फर्रुखसियर के गले में तसमा डलवाकर मरवा डाला। फिर ज्येष्ठ वदी ११ रविवार को हमने बादशाह से मारवाड़ में आने की आज्ञा माँगी। इस पर बादशाह ने खिलअत, जड़ाऊ साज का घोड़ा, कानों में पहनने के लिये क़ीमती मोती, जड़ाऊ सरपेच, जड़ाऊ तलवार, हाथी, हथनी, तुमनतोग (बड़ा मरातब) आदि दिए।

पहले जब हम फर्रुखसियर से मिले, तो उसने जयसिंहजी से सलाहकर हमको मरवाना चाहा। दूसरी दफ़े फिर घातकों को भीतर छिपाकर हमें बुलवाया। इसी प्रकार तीसरी बार शिकार में बुलाकर धोका देने का विचार किया। चौथी दफ़े पास बिठा कर मरवाना चाहा। इसी प्रकार एक बार बाग में बारूद बिछाकर और आग लगानेवालों को पास में खड़े कर हमको वहाँ बुलवाया। परन्तु उसे इनमें सफलता नहीं हुई। हम चाहते, तो जयसिंहजी को मार कर जयपुर की गद्दी पर किसी दूसरे को बिठा देते। परन्तु हमने उसे बचा दिया। पहले तो उसके वहीं पर (दिल्ली में ही) मारने का इरादा किया गया था। इसके बाद जब वह जयपुर की तरफ़ चला, तो उसके पीछे फौज रवाना की गई। परन्तु हमने नवाब को समझाकर फौज की चढ़ाई रुकवा दी। फिर उसे (जयसिंहजी को) मनसब में आँबेर दिलवाकर वहाँ (आँबेर) से ७०० कोस पर के दक्षिण में के बीदर की फौजदारी दिलवाई। इसलिये अब वह वहाँ जायगा। हम उसे एकबार पहले भी आँबेर की गद्दी दिलवा चुके हैं।

लेटर मुगल्स में लिखा है कि वि० स० १७७६ की वैशाख सुदी ६ (ई० सन् १७१९ की १७ अप्रेल) की रात को फर्रुखसियर मार डाला गया। (देखो भा० १, पृ० ३७९-३९३)।

१. मुतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ८१७। यद्यपि फर्रुखसियर ने भी पहले अपने राज्य के प्रथम वर्ष (वि० स० १७७०=ई० सन् १७१३) में ही जजिया उठा दिया था, तथापि बाद में इनायतउल्लाख़ाँ के जो इस विषय में मक्के के शरीफ़ की एक अर्जी लाया था, कहने से अपने राज्य के छठे वर्ष (वि० स० १७७४=ई० सन् १७१८) में इसे फिर से जारी कर दिया। (देखो लेटर मुगल्स, भा० १ पृ० ३३८ और मुतख़िबुल्लुबाब, भा० २ पृ० ७७५)।

२. महाराजा अजितसिंहजी के नामका महाराना सग्रामसिंहजी द्वितीय का वि स० १७७५ की वैशाख वदी ११ का पत्र। इसमें उन्होंने जजिया और तीर्थों पर की रुकावट उठवा देने के कारण महाराज को धन्यवाद दिया है।

आगरे की मुगल-सेना ने बगावत का झंडा खड़ाकर, वि० सं० १७७६ की ज्येष्ठ वदी ३० (ई० सन् १७१९ की ८ मई) को, शाहजादे मुहम्मद अकबर के पुत्र निकोसियर को तिमूर सानी के नाम से बादशाह घोषित कर दिया[1]। इससे इन्हें अपना विचार स्थगित करना पड़ा।

इसके कुछ दिन बाद ही रफीउद्दरजात[2] सख्त बीमार हो गया। अतः महाराज अजितसिंहजी ने और सैयद-भ्राताओं ने मिलकर आषाढ वदी ३ (२५ मई) को उसे तो जनाने में भेज[3] दिया और उसकी इच्छानुसार उसके बड़े भाई रफीउद्दौला को आषाढ वदी ५ (२७ मई) के दिन शाहजहाँ सानी के नाम से गद्दी पर बिठा दिया[4]। इसके बाद ही इन्हें शाइस्ताखाँ और आँबेर-नरेश जयसिंहजी के मिलकर आगरे में उपद्रव करने के विचार की सूचना मिली। अतः वहाँ पर अधिकार करने के लिये पहले सैयद हुसैनअली भेजा गया, और इसके कुछ दिन बाद कुतुबुल्मुल्क (अब्दुल्लाखाँ) और महाराज ने भी रफीउद्दौला को लेकर उधर प्रयाण किया[5]। अब्दुल्लाखाँ का विचार मार्ग से ही आँबेर पर चढ़ाई कर राजा जयसिंहजी को दण्ड देने का था, परन्तु महाराजा अजितसिंहजी ने कह सुनकर उसे उधर जाने से रोक लिया[7]। इसके बाद वि० सं० १७७६ की भादों वदी ५ (ई० सन् १७१९ की २५ जुलाई) को महाराज तो कोरी के मुकाम से मथुरा स्नान के लिये चले गए और कुतुबुल्मुल्क बादशाह को लेकर फतेहपुर-सीकरी की तरफ मुड़ गया। भादों वदी १२ (१ अगस्त) को आगरे के

१. मुतखिबुल्लुबाब, भा० २, पृ० २५।

२ वि० सं० १७७६ की आषाढ वदी १० (ई० सन् १७१९ की १ जून) को रफीउद्दरजात राजयक्ष्मा की बीमारी से मर गया। (देखो लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० ४१८) इसने केवल ३ महीने के करीब राज्य किया था।

३ 'लेटर मुगल्स' में रफीउद्दरजात का गद्दी से उतारा जाकर जनाने में भेजा जाना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ४१८)।

४. मुतखिबुल्लुबाब, भा० १, पृ० ८२६।

५. अजितोदय, सर्ग २७, श्लो० ५३ और लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० ४२०।

६. मुतखिबुल्लुबाब, भा० १, पृ० ८३३।

७. यह बात महाराज द्वारा अपने एक सरदार के नाम लिखे उस समय के पत्र से भी प्रकट होती है। उसमें लिखा है कि अपने पर होनेवाली सैयदों की चढ़ाई की सूचना पाते ही आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने अपने सरदारों को भेज हमसे सहायता की प्रार्थना की। इसी से हमने सैयदों से कह सुनकर उक्त चढ़ाई रुकवा दी।

किले पर सैयदो का अधिकार हो गया, और निकोसियर कैद कर लिया गया। इसकी सूचना पाते ही अब्दुल्लाखाँ अपनी चाल तेजकर भादो सुदी १३ (१६ अगस्त) को 'ओल' के मुकाम पर पहुँचा। यही पर महाराज भी मथुरा की यात्रा से लौटकर उससे आ मिले। इतने ही मे हुसैनअली भी लौटकर इनके पास आ गया। अत यह सब लोग मिलकर दिल्ली को लौट चले। विद्यापुर में[2] पहुँचने पर प्रथम आश्विन सुदी ५ या ६ (७ या ८ सितम्बर) को रफीउद्दौला भी बीमार होकर मर गया। परन्तु कुतुबुल्मुल्क ने दूसरे शाहजादे के दिल्ली से आने तक इस बात को गुप्त रक्खा[3]। इसके बाद शाहजादे रोशनअख्तर[4] के दिल्ली से वहाँ पहुँच जाने पर रफीउद्दौला की मृत्यु प्रकट की गई,

'अजितोदय' से भी इस बात की पुष्टि होती है। परन्तु उसमे एक तो आगरे पर की चढाई का रफीउद्दौला की मृत्यु के बाद मुहम्मदशाह के समय होना लिखा है और दूसरा निकोसियर के पकडे जाने के बाद महाराज का आगरे से मथुरा जाना और वहा से लौटने पर सैयद-भ्राताओं को आँवेर पर चढाई करने से रोकना लिखा है। (देखो सर्ग २७, श्लो० ५३-५७ और सर्ग २८, श्लो० १-२६) और (राजरूपक, पृ० २१६-२१७) महाराज के दयालदास के नाम लिखे एक पत्र मे (पत्र का कुछ हिस्सा फट जाने से तिथि आदि नहीं मिली है।) लिखा है कि अकबर के बेटे आगरे के किले मे कैद थे। उन्होंने जयसिंह आदि के कहने से बगावत की। इस पर हम और हसनअलीखाँ वहाँ भेजे गए। हमने बादशाह को भी चढाई करने को तैयार किया। इससे भादों बदी ३० को आगरे का किला फतह हुआ। निकोसियर दोनो भतीजों-सहित पकडा जाकर कैद किया गया। इसके बाद जयसिंह पर चारों तरफ से फौजों की चढाई हुई। इससे उसके मुल्क के हाथ से निकल जाने की नौबत आ पहुँची। यह देख उसने अपने ५ आदमी हमारे पास भेजे, और आजिजी करवाई। हमारी हर आज्ञा के पालन का वादा किया। इस पर हमने उसे साढे तीन हजारी मनसब दिलवाकर आँवेर को बचाया, और सोरठ की फौजदारी दिलवाकर उसे अपने पास नियत किया। साथ ही उस पर गई हुई फौजो को भी पीछा बुलवा लिया। इसके बाद हमने उसकी इच्छा के अनुसार अपने ४ आदमी भेज कर उसकी तसल्ली करवाई। अनतर शीघ्र ही शाहजहा (सानी) भी बीमार होने के कारण मर गया। इस पर हमने जहाँशाह के बेटे रोशनअख्तर को दिल्ली से बुलवा कर और आश्विन बदी २ को हाथ पकड कर शाही तख्त पर बिठा दिया। साथ ही उसका नाम मोहम्मदशाह गाजी रक्खा। इसके बाद हमारे देश को लौटने का इरादा करने पर बादशाह ने खिलअत, जड़ाऊ साज का घोडा, हाथी, मोतियों की माला, जडाऊ सरपेच और जडाऊ कटार भेट किए। इनके अलावा अजमेर का (यही से पत्र खडित है)।

१. लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० ४२२-४३०। परन्तु इसमे अब्दुल्लाखाँ का स्वय ही कोसी के मुकाम पर आँवेर जाने का विचार स्थगित करना लिखा है।

२ विद्यापुर फतेहपुर-सीकरी से ३ कोस उत्तर मे है।

३ लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० ४३१।

४ यह बहादुरशाह के चौथे पुत्र खुजिस्ताअख्तर का पुत्र था।

और इसके दो दिन बाद ही द्वितीय आश्विन बदी १ (१८ सितम्बर) को रौशनअख्तर नासिरुद्दीन मोहम्मदशाह के नाम से गद्दी पर बिठा दिया गया[1]।

वि० स० १७७६ की कार्तिक बदी ५ (ई० सन् १७१९ की २२ अक्टोबर) को बादशाह ने अजमेर के सूबे का प्रबन्ध सैयद नुसरतयारखाँ से लेकर महाराज के अधीन कर दिया और साथ ही मनसब में भी ३०० सवारों की वृद्धि कर शायद २,५०० सवार दुअस्पा सेअस्पा कर दिए[2]।

इसके बाद महाराज जोधपुर की तरफ रवाना हुए, और मार्ग से जयसिंहजी को साथ लेकर मनोहरपुर होते हुए जोधपुर चले आए[3]। यहाँ पर जयसिंहजी का बड़ा आदर-सत्कार किया गया। वह भी कुछ दिनों तक यहाँ रहकर अपने देश को लौट गए[4]।

१ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० १-२।

२ हिजरी सन् ११३१ की १६ जिलहिज का फर्मान। इसमें के २,५०० सवारों के बाद के कुछ शब्द नष्ट हो गए हैं।

'लेटर मुगल्स' से भी अजमेर की सूबेदारी मिलने की पुष्टि होती है। देखो भा० २, पृ० ४।

३ अजितोदय, सर्ग २८, श्लो० ३०-३३। 'लेटर मुगल्स' में लिखा है कि महाराज अजितसिंहजी के बीच में पड़ने पर भी जयसिंहजी ने अबतक शत्रुता नहीं छोड़ी थी। इसलिये सैयदों का विचार उनपर चढ़ाई करने का था। (देखो भा० २, पृ० ३) परन्तु महाराज अजितसिंहजी ने जोधपुर जाते हुए मार्ग में जयसिंहजी को समझा कर शांत करने का वादा कर लिया। इससे यह चढ़ाई रोक दी गई। इसके बाद द्वितीय आश्विन सुदी ३ (५ अक्टोबर) को जयसिंहजी के टोडे से वापिस आँबेर लौट जाने की सूचना मिल गई। अत यह झगड़ा शान्त हो गया। (देखो भा० २, पृ० ४) 'राजरूपक' में महाराज का मँगसिर में जोधपुर आना लिखा है। उसके अनुसार बूँदी-नरेश बुधसिंहजी भी इनके साथ थे। (देखो पृ० २१८)।

४ अजितोदय, सर्ग २९ श्लो० १-३५। परन्तु उक्त काव्य में सैयद-भ्राताओं में से एक के मारे और दूसरे के कैद किए जाने पर जयसिंहजी का जोधपुर से लौटना लिखा है।

इसी के आगे उसमें महाराज का ८ महीनों के लिये मेड़ते जाकर रहना और फिर अजमेर पर चढ़ाई करना भी लिखा है। (देखो सर्ग २९, श्लो० १-६६) 'राजरूपक' में भी जयसिंहजी का एक सैयद के मारे जाने पर जोधपुर से जाना लिखा है। इसके बाद वि० स० १७७७ की कार्तिक-बदी १२ को महाराज का मेड़ते पहुँचना और फिर अजमेर पर अधिकार कर लेना भी उससे प्रकट होता है। (देखो पृ० २२०)।

इसी बीच बादशाह ने सोरठ का सूबा जयसिंहजी को दे दिया, परंतु बाकी के[1] अहमदाबाद सूबे का प्रबन्ध महाराज के ही अधिकार में रक्खा। उस समय मरहटों का प्रभाव बहुत बढ़ा हुआ था। साथ ही महाराज भी अत्याचारी मुसलमानों से हार्दिक घृणा रखते थे। इसी से यह गुप्त रूप से मरहटों को प्रोत्साहन देते रहते थे, और मौका पाकर इन्हों ने मारवाड की सरहद से मिलते हुए गुजरात के प्रदेशों को भी अपने राज्य में मिला लिया था। यद्यपि बाद मे इनको वापस हस्तगत करने के लिये सर-बुलन्दखाँ ने बहुत कुछ उद्योग किया, तथापि वह कृतकार्य न हो सका[2]।

वि० स० १७७७ (ई० सन् १७२०) मे सैयदहुसेनअली मारा गया, और इसके करीब एक मास बाद ही सैयद अब्दुल्लाखाँ कैद कर लिया गया[3]। इसलिये महाराज ने स्वय मारवाड से बाहर जाना अनुचित समझ भंडारी अनोपसिंह को गुजरात के प्रबंध की देख-भाल के लिये भेज दिया। वहाँ पर उसके और अहमदाबाद के एक बडे व्यापारी कपूरचन्द भसाली के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ, और वह व्यापारी अनोप-सिंह के कार्य में गडबड करने लगा। इससे क्रुद्ध होकर अनोप ने भसाली को मरवा डाला[4]।

इस प्रकार गुजरात के सूबे का प्रबंध हो जाने के बाद महाराज स्वय मेडते होते हुए अजमेर पहुँचे और वहाँ पर इन्होंने अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद यह बादशाह की परवा छोड़ स्वाधीनता-पूर्वक आनासागर के शाही महलों मे रहने लगे और इन्होने अपने दोनो सूबों में गोवध का होना बंद कर दिया[5]।

---

१ 'बॉबे गजेटियर' में लिखा है कि उस समय दिल्ली के पास सबसे प्रतापी-नरेश महाराज अजितसिंहजी ही थे। इसी से उनको प्रसन्न रखने के लिये ई० सन १७१६ में, सैयदों ने इन्हें गुजरात की सूबेदारी दे दी थी। यह सूबेदारी ई० सन् १७२१ तक इन्हीं के अधिकार मे रही। (देखो भा० १, खंड १, पृ० ३०१)।

२ बॉम्बे गजेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०१।

३ वि० स० १७७६ (ई० सन १७२२) में यह भी मार डाला गया। इसी बीच एक बार महाराज ने बादशाह मोहम्मदशाह से मिलकर अपने मित्र अब्दुल्लाखाँ को छुडवाने की कोशिश करने का इरादा किया था, परंतु उस समय दिल्ली के शाही दरबार मे विरोधी-पक्ष का प्रभाव देख इन्हें यह विचार छोड़ देना पडा।

४ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० ५६-६० और ६१।

५ बॉबे गजेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०१।

६ अजितोदय, सर्ग २६, श्लो० ६७-६८ और सर्ग ३०, श्लो० १।

७. लेटर मुगल्स, भा० २ पृ० १०८।

इन कामों से निपटकर महाराज ने राजकुमार अभयसिंहजी को और भंडारी रघुनाथ को सांभर की तरफ भेजा। उन्होंने वहाँ के शाही फौजदार को भगाकर साँभर पर अपना अधिकार कर लिया। इसी प्रकार महाराज की सेनाओं ने डीडवाना, टोडा, झाडोद और अमरसर पर भी कब्जा कर लिया।

महाराज के इस प्रकार बढ़ते हुए प्रताप को देखकर बादशाह ने आगरे के शासक सआदतखाँ को अजमेर की सूबेदारी देने के साथ ही इन पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। परन्तु इस कार्य में एक भी शाही अमीर उसका साथ देने को तैयार न हो सका। इससे उसकी चढ़ाई करने की हिम्मत न हुई। इसके बाद क्रमशः शम्सामुद्दौला, कमरुद्दीनखाँ बहादुर और हैदरकुलीखाँ बहादुर को इस कार्य के लिये तैयार किया गया। परन्तु इनमें के प्रत्येक व्यक्ति ने चढ़ाई करने का वादा करके भी दिल्ली से आगे बढ़ने का साहस नहीं किया। खासकर शम्सामुद्दौला तो अपना पेशखेमा दिल्ली के बाहर खड़ा करवाकर भी इधर-उधर के बहाने कर नगर से बाहर न निकला। वह अच्छी तरह जानता था कि एक तो इस समय शाही खजाना खाली होने से सैनिकों के वेतन और रसद आदि का प्रबन्ध करना ही कठिन होगा। दूसरे यदि इस कार्य में असफलता हुई, तो दूसरों को भी सिर उठाने का साहस हो जायगा। इन हालतों में महाराजा अजितसिंहजी जैसे प्रबल शत्रु से भिड़ना मूर्खता ही होगी[3]।

कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि बुद्धिमान् और दूरदर्शी शम्सामुद्दौला को भय था कि यदि ऐसे अवसर पर महाराज ने स्वयं ही दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, तो यह घुन लगी हुई शाही इमारत बहुत शीघ्र गिरकर नष्ट हो जायगी। इसलिये जहाँ तक संभव हो सका, उसने नम्रतापूर्ण पत्र भेज-भेजकर महाराज को संतुष्ट रक्खा, और इस प्रकार दिल्ली को भावी संकट से बचा लिया।

१ अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० २-५।

२ मुतखिबुल्लुबाब, भा० २ पृ० ९३६-९३७।

३ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० १०८, सैरुल मुताखरीन, पृ० ४५४ और मुतखिबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ९३७।

४ 'सैरुल मुताखरीन' से भी इस बात की बहुत कुछ पुष्टि होती है। (देखो पृ० ४५४)।

५ ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७७७ में बादशाह रतलामनरेश राजा मानसिंहजी से नाराज हो गया और उसने उनसे रतलाम का अधिकार छीन लिया। इस पर उन्होंने महाराजा अजितसिंहजी से सहायता की प्रार्थना की। महाराज ने बादशाह से कह कर

शम्सामुद्दौला का विचार था कि यदि बादशाह का ऐसा ही आग्रह हो, तो महाराज से अजमेर का सूबा लेकर गुजरात का सूबा उन्ही की अधीनता मे छोड दिया जाय। परतु हैदरकुलीखॉ आदि को यह बात पसद न थी। इसीसे सआदतखॉ को महाराज पर चढाई करने की आज्ञा दी गई थी। परतु जब वह पहले लिखे अनुसार कृतकार्य न हो सका, तब यह काम कमरुद्दीनखॉ को सौपा गया। इस पर उसने बादशाह से प्रार्थना की कि सैयद अब्दुल्लाखॉ और उसके रिश्तेदारो के अपराधो को क्षमा कर उन्हे उसके साथ जाने की आज्ञा दी जाय। परन्तु बादशाह ने यह बात स्वीकार न की।

इसके बाद वि० स० १७७८ के कार्तिक (ई० स० १७२१ के अक्टोबर) मे हैदरकुलीखॉ को गुजरात की और सैयद मुजफ्फरअलीखॉ को अजमेर की सूबेदारी दी गई। इस पर हैदरकुली ने अपना नायब भेजकर महाराज के प्रतिनिधि अनोपचन्द और नाहरखॉ से गुजरात का शासन ले लिया, परतु मुजफ्फरखॉ ने स्वय जाकर अजमेर पर अधिकार करने का इरादा किया। इसी के अनुसार जिस समय वह मनोहरपुर[2] पहुँचा, उस समय तक उसके पास करीब २०,००० सैनिक जमा हो गए थे। इसकी सूचना पाते ही महाराज ने भी महाराजकुमार अभयसिंहजी को मुजफ्फर का मार्ग रोकने के लिये रवाना कर दिया[3]।

बादशाह को खयाल था कि शाही सेना की चढाई का समाचार पाते ही महाराज डरकर उसकी अधीनता स्वीकार कर लेगे। परतु जब उसे अपनी यह इच्छा पूर्ण होती न दिखाई दी, तब उसने मुजफ्फर को मनोहरपुर में ही ठहर जाने की आज्ञा लिख भेजी। इसके अनुसार उसे तीन मास तक वहॉ रुकना पडा। इसी बीच उसका सारा खजाना समाप्त हो गया, और रसद की कमी हो जाने के कारण उसकी सेना के बहुत से सिपाही उसे छोडकर अपने-अपने घरो को लौट गए। उसकी यह दशा देख ऑबेर-नरेश जयसिंहजी ने अपने सेनापति के द्वारा उसे ऑबेर बुलवा लिया। परतु अपनी

रतलाम का अधिकार फिर से राजा मानसिंहजी को दिलवा दिया। परतु इस घटना के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जासकता।

१ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० १०८ और सैरुल मुताखरीन, पृ० ४५२।

२ यह नगर जयपुर से ३५ मील उत्तर और अजमेर से १३० मील ईशान कोण मे है।

३ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० १०८-१०६।

असमर्थता का विचार कर मुजफ्फर को इतनी ग्लानि हुई कि वहीं से उसने अजमेर की सूबेदारी का फरमान और खिलअत बादशाह को लौटा दिया और स्वय फकीर हो गया।[1]

इसके बाद सैयद नुसरतयारखॉं बाराह को अजितसिंहजी पर चढाई करने की आज्ञा दी गई। इसी बीच (भरतपुर-राज्य के सस्थापक) चूडामन जाट ने अपने पुत्र मोहकमसिंह को सेना देकर महाराज के पास अजमेर भेज दिया। अनन्तर जैसे ही महाराज को नुसरतयारखॉं के चढाई करने के विचार की सूचना मिली, वैसे ही इन्होंने महाराजकुमार अभयसिंहजी को उत्तर की तरफ आगे बढ नारनौल को और दिल्ली तथा आगरे के आस-पास के प्रदेशो को लूटने की आज्ञा दी। इसके अनुसार वह बारह हजार शुतर्-सवारों[2] के साथ नारनौल जा पहुँचे। यद्यपि पहले तो वहॉं के फौजदार बयाजिदखॉं मेवाती के प्रतिनिधि ने इनका यथा सामर्थ्य सामना किया, तथापि अन्त में राठोड़ों की तीक्ष्ण तलवार के सामने से उसे मेवात की तरफ भागना पडा। महाराजकुमार भी नारनौल को लूटने के बाद अलवर, तिजारा और शाहजहॉंपुर को लूटते हुए दिल्ली से केवल नौ[3] कोस के फासले पर स्थित सराय अलीवर्दीखॉं तक जा पहुँचे।[3]

इससे दिल्ली के शाही दरबार में फिर गड-बड मच गई। इस पर सब से पहले शम्सामुद्दौला ने महाराज से भयकर बदला लेने की कसमें खाकर बादशाह से अजमेर पर चढाई करने की आज्ञा प्राप्त की और इसीके अनुसार वह अपने डेरे (एक बार फिर) दिल्ली के बाहर खडे करवा कर बडे जोर-शोर से चढाई की तैयारी करने लगा।[4]

१ लेटर मुगल्स, भा० २ पृ० १०९-११० और सैरुल मुताखरीन, पृ० ४५४। पिछले इतिहास मे यह भी लिखा है कि महाराज अजितसिंहजी के दो राजकुमारों ने मुजफ्फर का पीछा कर ४-५ शाही गॉवों को लूट लिया। परतु उसमे इस घटना के बाद शाही अमीरों को अजमेर पर चढाई करने की आज्ञा का मिलना और उनका बाहने बनाकर इस कार्य को टालना लिखा है।

अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ६-११। उक्त काव्य मे अभयसिंहजी की चढाई का समाचार सुनकर मुज (द) फ्फर का मनोहरपुर से भागना और इसके बाद अभयसिंहजी का सॉंभर की तरफ जाना लिखा है।

२ इनमें के प्रत्येक ऊँट पर बदूकों या तीर कमानों से सजे दो-दो सवार चढे हुए थे।

३ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० ११०। अजितोदय मे महाराजकुमार अभयसिंहजी का नारनौल को लूटकर सॉंभर को लौटना और इसके बाद जाकर शाहजहॉंपुर को लूटना लिखा है। इसके बाद यह फिर साभर लौट आए थे। (देखो सर्ग ३०, श्लो० १२-२१)।

४ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० ११०।

परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी उसकी आगे बढने की हिम्मत न हुई। यह देख बादशाह उससे नाराज़ हो गया। अतः शम्सामुद्दौला को अपना दरबार मे जाना ही बन्द करना पडा। इसके बाद बादशाह ने हैदरकुलीखाँ को इस कार्य के लिये तैयार किया। यद्यपि पहले तो उसने बादशाह के सामने अनेक प्रबंध-संबंधी प्रार्थनाएँ उपस्थित कर इस कार्य में बडी तत्परता दिखाई, तथापि अन्त में जब सारा शाही तोपखाना ही उसके अधिकार में दे दिया गया, और उसके डेरे भी नगर से बाहर खडे करवा दिए गए, तब उसने आगे बढने से एकाएक इनकार कर दिया। इसके बाद कमरुद्दीनख़ाँ को भी इसी प्रकार अपनी असमर्थता प्रकट करनी पडी। अन्त में बहुत कुछ कहा सुनी के बाद नुसरतयारखाँ ने किसी तरह महाराज के विरुद्ध चढाई की। परन्तु इसी बीच महाराज स्वयं ही अजमेर से जोधपुर लौट आए[1]। इसलिये यह झगड़ा यहीं शान्त हो गया।

इस घटना के क़रीब एक मास बाद (ई० सन् १७२२ की २१ मार्च=वि० स० १७७९ की चैत्र सुदी १५ को) महाराज ने बादशाह के पास अपने प्रतिनिधि भेजकर कहलाया कि तख़्त पर बैठते समय आपने गुजरात और अजमेर के उपद्रव को दबाने के लिये उक्त दोनो सूबे मुझे सौंपे थे। इसके बाद जब सारे उपद्रव शांत हो चुके, तब गुजरात का सूबा हैदरकुली को दे दिया गया। फिर भी मैंने इस पर कुछ आपत्ति नहीं की। परन्तु अब आप अजमेर का सूबा भी मुझसे लेना चाहते हैं। यह कहाँ तक न्याय्य है। इसे आप स्वयं ही सोच देखें[2]।

'अजितोदय' मे लिखा है कि इसी अवसर पर आँबेर नरेश जयसिंहजी ने महाराजकुमार के बढते हुए प्रताप को देख अपने प्रधान पुरुषों को महाराज के पास भेजा, और उनके द्वारा बहुत कुछ कह सुन और क्षमा मागकर महाराज से मैत्री कर ली। इसी समय महाराज ने आँबेर नरेश की तरफ से आए हुए नगारोत श्यामसिंह के बड़े पुत्र को नराणा गाव जागीर में दिया था। (देखो सर्ग ३० श्लो० २२-२६)।

१. लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० ११०-१११। उक्त इतिहास मे यह भी लिखा है कि निज़ामुल्मुल्क के दक्षिण से दिल्ली के निकट पहुँचने की सूचना मिलने से ही महाराज अजमेर से जोधपुर लौट गए थे।

२. लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० १११। उक्त इतिहास मे यह भी लिखा है कि अजितसिंहजी ने बादशाह को यह भी सूचित किया था कि यदि मुजफ्फ़रअली यहाँ आ जाता, तो मैं उसे अजमेर भी सौंप देता। परन्तु वह तो यहाँ तक पहुँचा ही नहीं। इसके अलावा नारनौल पर के हमले का कारण केवल मेवातियों के साथ का व्यक्तिगत मनोमालिन्य ही था। शत्रु लोग इससे बादशाह से विरोध करने का तात्पर्य बतलाकर अन्याय करते हैं।

इस पर बादशाह ने भी सहज ही झगड़ा मिटता देख उत्तर मे महाराज के नाम एक फरमान लिख भेजा। उसमें इनके पहले के किए कार्यों की प्रशसा के बाद दोनो सूबो के ले लेने के विषय मे इधर-उधर के बहाने बनाए गए थे। अन्त मे यह भी लिखा था कि अजमेर का सूबा तो तुम्हारे ही अधीन रक्खा जाता है, कुछ दिनो में अहमदाबाद का सूबा भी तुम्हे लौटा दिया जायगा। इस फरमान के साथ ही बादशाह की तरफ से महाराज के लिये खासा खिलअत, जड़ाऊ सरपेच, एक हाथी और एक घोड़ा उपहार मे भेजा गया।[1]

वि० स० १७७९ के मॅगसिर (ई० सन् १७२२ के दिसम्बर) में[2] बादशाह ने नाहरखॉ को अजमेर की दीवानी और साभर की फौजदारी तथा उसके भाई रुहल्लाखॉ को गढ बीटली की किलेदारी दी। इसपर वे दोनो महाराज के वकील खेमसी भडारी के साथ दिल्ली से अजमेर चले आए[3]। इस घटना को अभी तक एक महीना भी न होने पाया था कि एक रोज नाहरखॉ ने महाराज के सामने कुछ अॅनुचित शब्द कह दिए। इससे क्रुद्ध होकर इन्होने उसे और उसके भाई को मरवा डाला, औा उसका शिविर लूट लिया। उसके साथ के यवनो मे से कुछ तो हमले में मारे गए और कुछ बचकर निकल भॅागे।

१ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० १११–११२। ग्राटडफ की 'हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज' मे लिखा है कि इसी समय बादशाह ने खॉ दौरॉ के कहने से आगरे के सूबे का प्रबन्ध भी महाराज को सौप दिया था। (देखो भा० १, पृ० ३५१)।

२ वि० स० १७७६ की मॅगसिर बदी १ के महाराज के, दयालदास के नाम, साभर से लिखे, पत्र से प्रकट होता है कि गेसूखॉ ने हिंडौन से जयपुर-नरेश जयसिहजी का थाना उठाकर वहॉ पर अधिकार कर लिया था। इस पर महाराज ने अपनी सेना को ऑबेरवालों की फौज के साथ भेजकर कार्तिक बदी ५ को वहॉ पर फिर जयसिहजी का अधिकार करवा दिया। गेसूखॉ मय फौज के मारा गया।

३ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० ११२। नाहरखॉ और रघुनाथ भडारी ये दोनों ही महाराज का पत्र लेकर सधि के लिये पहले बादशाह के पास गए थे।

४ अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ३१-३३।

५. लेटर मुगल्स, मे नाहरखॉ के मुख से अनुचित शब्दों के निकलने का उल्लेख नहीं है। (देखो भा० २, पृ० ११२) वि० स० १७८० की पौष वदि ६ के, मेड़ते से लिखे, महाराज के दयालदास के नाम के पत्र मे लिखा है कि नाहरखॉ ७-८ दिन मे मारवाड मे पहुॅचेगा। परतु इस पत्र के पिछले दो अकों मे कुछ गड़बड़ मालूम होती है।

इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने शरफुद्दौला इरादतमदखॉ को ७,००० जात और ६,००० सवारो का मनसब तथा २,००,००० रुपये नकद देकर महाराज पर चढाई करने की आज्ञा दी। साथ ही ५०,००० शाही सवारो और अनेक अमीरो को भी उसके साथ कर दिया। इनके अलावा उसने आंबेर-नरेश जयसिंहजी, मुहम्मदखॉ बगश और राजा गिरधर बहादुर आदि अमीरो को भी उसके साथ जाने को लिख दिया। इसके बाद ही वि० स० १७८० की ज्येष्ठ सुदी १३ (ई० सन् १७२३ की ५ जून) को नागोर का परगना राव इन्द्रसिंह को दे दिया गया[1]। परन्तु उस समय उसके शाही सेना के साथ दक्षिण में होने के कारण समयानुसार नजर आदि का कार्य उसके पौत्र मानसिंह ने पूरा किया[2]।

इसी समय हैदरकुलीखॉ भी अहमदाबाद से लौटकर रिवाड़ी आ पहुॅचा। इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने उसे अजमेर की सूबेदारी और सॉभर की फौजदारी देकर उधर जाने की आज्ञा दी। अत. वह भी वहीं से लौटकर नारनौल में इरादतखॉ के साथ हो लिया[3]।

इस प्रकार शाही दल को आता देख महाराज ने गढ बीटली (के किले) की रक्षा का भार तो ऊदावत वीर अमरसिंह को सौपा और स्वय सॉभर होते हुए जोधपुर चले आऍ[4]।

१ कुछ दिन बाद जयपुर नरेश जयसिंहजी ने आकर शाही सेना की सहायता से नागोर पर इद्रसिंह का अधिकार करवा दिया। इस पर राज्य की तरफ से महाराजकुमार आनन्दसिंह उसके मुकाबले को भेजे गए। परतु इन्होंने डीडवाना पहुॅच स्वय ही स्वतत्रता का भण्डा खडाकर दिया। अन्त मे बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर यह तो शात हो गए, पर इस गड़बड के कारण नागोर इद्रसिंह के अधिकार मे ही रह गया।

२. लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० ११३ और अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ३३-४० और ४२-४४।

३. लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० ११३ और अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ४१।

४. लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० ११३ और पृ० ११४ का फुटनोट *।

'अजितोदय' मे महाराज का शाही सेना से युद्ध करने के लिये त्रिवेणी से आगे पहुॅचना, जयसिंहजी का बीच मे पड, इन्हे युद्ध से रोकना और इनका वापस अजमेर लौट आना लिखा है। (देखो सर्ग ३०, श्लो० ४६-५२) पर यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

वि० स० १७८० के आषाढ़[1] (ई० स० १७२३ के जून) में शाही सेना के अजमेर पहुँचने पर ऊदावत वीर अमरसिंह ने किले का आश्रय लेकर उसका सामना किया। कुछ दिनों तक तो बराबर युद्ध होता रहा, परन्तु इसके बाद आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने बीच में पड़ उक्त किला शाही सेना को दिलवा दिया[2], और बादशाह को संधि का विश्वास कराने के लिये महाराजकुमार अभयसिंहजी को दिल्ली भिजवा दिया[3]। बादशाह ने भी महाराजकुमार के वहाँ (दिल्ली) पहुँचने पर उनकी बड़ी खातिर की[4]। इसके बाद महाराज स्वयं, जो इन दिनों मेड़ते के मुकाम पर थे, जोधपुर लौट आए[5]।

१ 'राजरूपक' में सावन में फौज का आना और ४ मास तक युद्ध होना लिखा है। (देखो पृ० २३८)।

वि० स० १७७६ (चैत्रादि १७८०) की वैशाख सुदी १५ के बूँदी के, रावराजा बुधसिंहजी के लिखे, महाराज के नाम के, पत्र से प्रकट होता है कि उस समय उन्हो ने भी कुछ सेना महाराज की सहायता के लिये भेजने का प्रबंध किया था।

२ अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ५३-६५। परन्तु 'राजरूपक' में जयसिंहजी के बीच मे पड़ने का उल्लेख नहीं है। (देखो पृ० २३६)।

कर्नल टॉड के राजस्थान के इतिहास से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमे लिखा है कि ४ महीने के युद्ध के बाद अजमेर शाही अमीरो के हवाले किया गया। परंतु उसमे किले का नाम तारागढ लिखा है। (देखो भा० २, पृ० १०२८)।

'लेटर मुगल्स' मे मीराते वारिदात' के आधार पर लिखा है कि यद्यपि इस किले मे केवल ४०० योद्धा थे, तथापि आपस की बातचीत के बाद ही यह किला शाही लश्कर को सौंपा गया था, और किलेवाले अपने-अपने शस्त्र लिए निशान उड़ाते और नक्कारा बजाते हुए किले से बाहर निकले थे। (देखो भा० २ पृ० ११४ का फुटनोट*)

ख्यातों में लिखा है कि इस अवसर पर महाराजा अजितसिंहजी को १ अजमेर, २ टोडा, ३ भिणाय, ४ केकड़ी, ५ परबतसर, ६ मारोठ, ७ हरसोर, ८ मैंसेर, ६ तोसीणा, १० बाहाल, ११ बॅवाल, १२ सॉभर, १३ नागोर और १४ डीडवाने के परगनों का अधिकार छोड देना पड़ा था।

३. 'राजरूपक' मे मॅगसिर सुदी ७ को इनका दिल्ली को रवाना होना लिखा है।) देखो पृ० २४५)।

४, अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ६६-८५। उसमे यह भी लिखा है कि जिस समय यवन-सेना रीयां मे थी, उस समय महाराज ने जयसिहजी के आग्रह से संधिकर महाराजकुमार को बादशाह के पास जाने की आज्ञा दी थी।

५ अजितोदय, सर्ग ३१, श्लो० १।

यद्यपि बादशाह ने महाराज से अजमेर ले लिया था, तथापि उसे हर समय इनका भय बना रहता था और वह इनको मारकर निश्चिन्त होने का मौका ढूँढता था। इसीलिये उसने महाराजकुमार अभयसिंहजी से घनिष्ठता बढानी प्रारंभ की, और राजा जयसिंहजी के द्वारा भंडारी रघुनाथ को अपनी तरफ मिला लिया। इसके बाद इन्हीं दोनो के द्वारा वह अभयसिंहजी को उनके पिता के विरुद्ध भडकाने का षड्यन्त्र रचने लगा। परन्तु इस पर भी जब महाराजकुमार ने उसके भय और प्रलोभनो पर ध्यान नहीं दिया, तब एक रोज उसने राजा जयसिंहजी और भंडारी रघुनाथ के द्वारा एक जाली पत्र लिखवाकर किसी तरह उस पर उन (महाराजकुमार) के दस्तखत करवा लिए। इसके बाद वही पत्र गुप्त रूप से अभयसिंहजी के छोटे भ्राता बखतसिंहजी के पास भेज दिया गया। इसमें राज्य की रक्षा के लिये वृद्ध महाराज को मार डालने का आग्रह किया गया था। जैसे ही यह पत्र उनको मिला, वैसे ही एकबार तो वह चकित और किंकर्तव्य-विमूढ से हो गए। परतु अन्त में उन्होने देश और भ्राता पर आनेवाले भावी सकट का विचार कर भवितव्यता के आगे सिर झुकाना ही स्थिर किया। इसी के अनुसार वि० स० १७८१ की आषाढ सुदी १३ (ई० सन् १७२४ की २३ जून) को, रात्रि के पिछले पहर, निद्रित अवस्था में ही, महाराजा अजित इस लोक से विदा हो गए।

महाराज के प्रताप से मुसलमान लोग जितना भय खाते थे, हिन्दू उतना ही निर्भय रहते थे। इन्होने बालकपन से ही ससार के अनेक परिवर्तन देखे थे। एक समय वह था कि जब यह अपनी माता के गर्भ में ही थे कि इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद इनके जन्म लेते ही औरङ्गजेब जैसा प्रबल बादशाह इनका शत्रु बन बैठा, और उसकी शत्रुता के कारण इनकी वीर-माता को भी प्राणो

१ मआसिरुल उमरा, भा० ३ पृ० ७५८। (इसी पृष्ठ की टिप्पणी मे 'तारीखे मुजफ्फरी' का हवाला देकर लिखा है कि कुछ लोगों का कहना है कि महाराजा अजितसिंह बादशाह की कुछ भी परवा नहीं करते थे। इसीसे बादशाह ने और उसके वजीर ऐतमादुद्दौला कमरुद्दीनखाँ ने उसके बेटे बखतसिह को, बाप का उत्तराधिकारी बना देने का प्रलोभन देकर, उसको मारने के लिये तैयार कर लिया। इडियन ऐटिक्वेरी, भा० ५८, पृ० ४७-५१।

महाराज के साथ कुल मिलाकर ६२ या ६६ प्राणियों ने अपनी खुशी से चिता मे प्रवेशकर हृदय-ज्वाला को शांत किया था। इनमे ६ रानियाँ थी। (देखो अजितोदय, सर्ग ३१, श्लो० ३२-३३ और राजरूपक, पृ० २४७-२५४)।

से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद ८ वर्ष की आयु तक यह अज्ञातवास में रहे, और इनके पैतृक-राज्य पर यवनो का अधिकार रहा। परंतु इनके स्वामि-भक्त सरदार उस समय भी प्राणो का मोह छोड बिना नायक के ही शत्रुओ से लोहा लेते रहे। इसके बाद २० वर्षों तक इनके सरदारों और इन्होने समय-समय पर यवनो के दांत खट्टे कर अन्त में अपने गए हुए राज्य को पुन प्राप्त कर लिया। परंतु आश्चर्य तो उस समय होता है, जब एक मातृ-पितृ-हीन नवजात बालक कालांतर मे ऐसा प्रतापी निकलता है कि जिसकी सहायता से फर्रुखसियर सा बादशाह दिल्ली के शाही तख़्त से हटाया जाता है और उसके रिक्त स्थान पर क्रमशः तीन नए बादशाह बिठाए जाते हैं।

यहाँ पर यह प्रकट करना कुछ अनुचित न होगा कि उस सकट के समय मारवाड के अधिकतर सरदारो ने अपने स्वामि-धर्म का स्मरण कर बडी निर्भीकता से महाराज का साथ दिया था। यह उन्हीं की वीरता का फल था कि औरङ्गजेब जैसा प्रबल बादशाह भी मारवाड़ राज्य को नहीं पचा सका, और उसके उत्तराधिकारी को उसे उगलना पड़ा।

ख्यातो के अनुसार महाराज के १२ पुत्र थे १ अभयसिंहजी, २ बखतसिंहजी, ३ अखेसिंह, ४ बुधसिंह, ५ प्रतापसिंह[१], ६ रत्नसिंह, ७ सोनग (सोभागसिंह) ८ रूप सिंह, ९ सुलतानसिंह, १० आनन्दसिंह[२], ११ किशोरसिंह[३], १२ रायसिंह[४]। इनमें से बड़े

१ रफीउद्दरजात ने १५ जमादिउल आखिर हि० स० ११३१ को (अपने राज्य के पहले वर्ष मे) महाराजा अजितसिंहजी के पुत्र प्रतापसिंह को १,००० जात और ५०० सवारों के मनसब की जागीर दी थी। यह बात अमीरउल उमरा के परवाने मे जाहिर होती है। उसी मे महाराज के पुत्र चतुरसिंह की, जिसका पहले से यह मनसब था, मृत्यु का भी उल्लेख है।

२. इनका जन्म वि० स० १७६५ की आषाढ सुदी ५ (ई० सन् १७०८ की ११ जून) को हुआ था (देखो अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० २०-२१)।

३ इनका जन्म वि० स० १७६६ की आश्विन वदी ११ (ई० सन् १७०९ की १८ सितंबर) को हुआ था।

४. इनका जन्म वि० स० १७६७ की श्रावण वदी ३० (ई० सन् १७१० की १५ जुलाई) को हुआ था। (देखो अजितोदय, सर्ग १९, श्लो० ६३-६४)।

वि० स० १७६० की आषाढ वदी १ के अजितसिंहजी के ताम्रपत्र मे इनके बडे महाराजकुमार का नाम उद्योतसिंहजी लिखा है। उनका जन्म वि० स० १७५९ की आश्विन वदि ३० को हुआ था। परंतु अनुमान होता है कि उनकी मृत्यु बाल्यावस्था मे ही हो जाने से उस समय के ग्रन्थों मे अभयसिंहजी ही ज्येष्ठ राजकुमार मान लिए गए थे।



वीरों का दालान, मंडोर

यह महाराजा अजितसिंहजी ने वि० स० १७७१ (ई० स० १७१४) मे बनवाया था।

आदि भी बनवाए थे।

कर्नल टॉड ने अपने 'राजस्थान के इतिहास' में लिखा है कि अजितसिंहजी ने अपने सिक्के अलग ढलवाए थे, और इसी तरह अपना नाप (गज़), अपना तोल, अपनी अदालतें और अपने ओहदे (पद) भी अलग कायम किए थे। परन्तु अब तक उस समय का सिक्का देखने में नहीं आया है।

२४ छोटे जनाने महल। (इन्होंने चामुण्डा के मन्दिर की मरम्मत भी करवाई थी।) नगर में घनश्यामजी का मन्दिर (पच-मदिरों वाला), मूल नायकजी का मन्दिर, मण्डोर में—एक थम्भे के आकार का महल, वहाँ के जनाने मकानात (वि० स० १७७५ में), जसवतसिंहजी का देवल, गणेशजी की मूर्ति-सहित भैरवोंवाला दालान और पहाड़ में काटकर बनाई हुई वीरों की मूर्तियोंवाला दालान। (यह दालान वि० स० १७७१ में बनवाया था)।

१ किले मे की चाँदी की पूरे कद की मुरलीमनहोर, शिवपार्वती, चतुर्भुज विष्णु और हिंगलाज (देवी) की मूर्तियाँ भी इन्होंने ही वि० स० १७७६ में बनवाई थीं।

२ ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ़ राजस्थान (क्रुक सपादित), भा० २, पृ० १०२६।

२७. महाराजा अभयसिंहजी

यह महाराजा अजितसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे[१][२]। इनका जन्म वि० स० १७५९ की मँगसिर वदी १४ (ई० सन् १७०२ की ७ नवबर) को जालोर मे हुआ था[३]। जिस समय इनके पिता का स्वर्गवास हुआ, उस समय यह दिल्ली में थे। इसलिये पिता की और्ध्वदेहिक क्रिया से निपटने पर वि० स० १७८१ की सावन सुदी ८ (ई० सन् १७२४ की १७ जुलाई) को वहीं पर इनका राज्याभिषेक हुआ। उस अवसर पर बादशाह भी इनके स्थान पर आया और उसने नागोर प्रात और खिलअत आदि देकर इनका सत्कार किया[४]।

१ परन्तु वि० स० १७६० की जालोर की सनद के अनुसार यदि उद्योतसिंहजी को, जिनकी मृत्यु बचपन मे ही हो गई थी, अजितसिंहजी का ज्येष्ठ पुत्र माना जाय तो अभयसिंहजी उनके द्वितीय राजकुमार होंगे।

२ पहले लिखे अनुसार इन्होंने पिता की आज्ञा मे, वि० स० १७७८ के कार्तिक (ई० सन् १७२१ के अक्टोबर) मे, मुजफ्फरअलीखॉ के विरुद्ध चढाई की थी। इसके बाद जब उसके हतोत्साह हो जाने पर बादशाह ने नुसरतयारखॉ को अजमेर पर अधिकार करने के लिये नियत किया, तब इन्होंने, उसके वहाँ पहुचने के पूर्व ही, १२,००० शुतर-सवारों के साथ जाकर नारनौल को लूट लिया। यह देख वहाँ के फौजदार के आदमी मैदान छोड कर भाग गए।

इसके बाद इन्होंने अलवर, तिजारा और शाहजहाँपुर को लूटकर दिल्ली से ८ कोस दक्षिण में स्थित सराय अलीवर्दीखॉ तक चढाई की (देखो लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० १०९-११०)।

इन्होंने मुसलमानों से साँभर आदि भी छीने थे।

३ अभयोदय, सर्ग २, श्लो० ४।

४ ख्यातों में लिखा है कि उस अवसर पर बादशाह ने इन्हें, वे १४ परगने, जो वि० स० १७८० मे इनके पिता के समय जब्त करलिए गए थे, वापस देदिए।

'अभयोदय'[1] से ज्ञात होता है कि इसी समय बादशाह ने इन्हे 'राजराजेश्वर' की उपाधि भी दी थी। इसके बाद, वि० सं० १७८१ के भादो (ई० सन् १७२४ के अगस्त) में, इन्होंने मथुरा जाकर आँबेर-नरेश जयसिंहजी की कन्या से विवाह किया[2], और फिर यह वृदावन-यात्रा कर दिल्ली लौट आए।

इसके बाद वि० स० १७८२ (ई० सन् १७२५) में यह सरबुलदखाँ (मुबारिजुलमुल्क) के साथ हामिदखाँ और दक्षिणियो के उपद्रवो को दबाने के लिये गुजरात की तरफ गए[3]।

वहा से लौटने पर जिस समय महाराज दिल्ली में थे, उस समय इन्हे सूचना मिली कि (इनके छोटे भाई) आनदसिंहजी और रायसिंहजी, जैतावत, कूँपावत,

१. देखो सर्ग ६, श्लो० ११-१२।

२ ख्यातों म लिखा है कि जोधपुर के सरदारों का विश्वास था कि राजा जयसिंहजी की सलाह स ही महाराज अजितसिंहजी मारे गए थ। इसलिये उन्होंने, इस विवाह को टालने के लिये महाराज से पहले जोधपुर चलने का आग्रह किया। परन्तु जब महाराज ने इस बात को नहीं माना, तब बहुत-से सरदार नाराज होकर अपने-अपने घरों को चल दिए और बहुत से महाराज के छोटे भ्राता आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी के दल मे जा मिले। महाराज के, वि० स० १७८१ की भादों सुदी १० के, दिल्ली से लिखे, दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के नाम के पत्र से भी सरदारों के अपने-अपने घरों को चले जाने की पुष्टि होती है।

सरदार लोग भडारी रघुनाथ को भी महाराजा अजितसिंहजी के मरवाने मे सम्मिलित समझते थे। परन्तु फिर भी उस समय तक अभयसिंहजी का सारा कार-बार भडारियों के ही हाथ मे होने से वे लोग नाराज थे और महाराज को उनके कैद करने के लिये बार-बार दबाते थे। अत मे लाचार होकर महाराज को उन्हें कैद करने का हुक्म देना पडा। इस अवसर पर कई भडारी मारे गए। इसके बाद महाराज ने मथुरा के मुकाम पर स्वय भडारी रघुनाथ को भी कैद कर लिया और उसका काम पचोली रामकिशन को सौंपा। परन्तु इसके बाद वि० स० १७८२ के ज्येष्ठ मे जब महाराज ने उस (रघुनाथ) को और अन्य भडारियों को कैद से निकाला, तब फिर सरदार नाराज होकर जालोर की तरफ चले गए। इस पर महाराज ने, उनको प्रसन्न करने के लिये, भडारी रघुनाथ और खींवसी को दुबारा कैद कर दिया।

३ अभयोदय, सर्ग ६, श्लो० १७-४२।

४ बॉम्बेगजेटियर, भा० १, खड १, पृ० ३ ६। परन्तु 'राजरूपक' मे इसका उल्लेख नहीं है। वि० स० १७८२ की कार्त्तिक सुदी ४ के जयपुर-नरेश जयसिंहजी के, महाराज के नाम लिखे, पत्र से भी इसकी पुष्टि होती है।

ऊदावत आदि मारवाड़ के कुछ सरदारो को साथ लेकर देश में उपद्रव मचा रहे हैं[1]। उन्होने गोढवाड में लूट-मार करने के बाद सोजत और जैतारण पर अधिकार कर लिया है और साथ ही मेड़ते पहुँच उसे भी लूट लिया है। जब यह सूचना महाराज को दिल्ली में मिली, तव यह वहा से लौट आए[3] और मेड़ते पहुँच इन्होने वहा की रक्षा का भार मेड़तिया (माधवसिंह के वशज) शेरसिंह को सौंप दिया। इसके बाद चिर-प्रचलित प्रथा के अनुसार जोधपुर में इनका राजतिलकोत्सव मनाया गया। इन कामो से निपटकर चैत्र में इन्होने नागोर पर चढाई की। उस समय इनके छोटे भ्राता वखतसिंहजी भी इनके साथ थे। जैसे ही इद्रसिंह को इनके मेड़ते और रैण होते हुए खजवाने पहुँचने की सूचना मिली, वैसे ही उसने अपने पुत्र को सेना देकर इनका सामना करने के लिये मूँडवे की तरफ रवाना किया। परन्तु वहा पहुँचने पर जब उसे महाराज की विशाल-सेना का हाल मालूम हुआ, तब वह बिना लडे ही भागकर नागोर लौट गया। इसके बाद महाराज ने आगे बढ नागोर को घेर लिया। यद्यपि कुछ दिन तक इद्रसिंह ने भी इनका सामना बडी वीरता से किया, तथापि अन्त मे नगर पर महाराज का अधिकार हो जाने से वह किला खाली कर इनकी शरण में चला आया। महाराज ने उसके निर्वाह के लिये कुछ गाव निकालकर नागोर का अधिकार अपने छोटे भ्राता वखतसिंहजी को देना निश्चित किया। इसीके साथ उन्हे 'राजाधिराज'

१ महाराज के, वि० स० १७८१ (चैत्रादि १७८२) की आषाढ सुदी ११ के, दिल्ली से, दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के नाम लिखे पत्र से भी इस बात की पुष्टि होती है।

२. वि० स० १७८१ की मँगसिर वदी ७ के महाराज के दिल्ली से लिखे अभयकरण के नाम के पत्र से इसकी पुष्टि होती है।

३. वि० स० १७८२ की फागुन वदी ६ के एक पट्टे से उस समय महाराज का निवास जालोर मे होना प्रकट होता है। इस पट्टे मे इनके महाराजकुमार का नाम जोरावरसिंह लिखा है।

४ वि० स० १७८६ की सावन वदी ८ के स्वय राजाधिराज वखतसिंहजी के, नागोर से लिखे, पचोली बालकृष्ण के नाम के पत्र से प्रकट होता है कि नागोर का वास्तविक अधिकार उनको वि० स० १७८६ की सावन वदी १ मे मिला था।

परन्तु वि० स० १७८४ (चैत्रादि सवत् १७८५) की आषाढ सुदी ६ के आनन्दसिंहजी के पत्र से इस बात का पहले से ही तय हो जाना सिद्ध होता है। उस पत्र म उन्होंने अपने हक पर भी उदारता से विचार करने की प्रार्थना की है।

की उपाधि देना भी तय हुआ। यह देख इन्द्रसिंह वहा से दिल्ली की तरफ चला गया।

जिस समय महाराज नागोर-विजय में लगे थे, उस समय इनके छोटे भ्राता आनन्दसिंहजी ने एक वार फिर मेडते पर चढाई की। परन्तु वहाँ के रक्षक मेडतिये शेरसिंह के आगे उन्हे सफलता नहीं हुई, और वे नगर के वाहर ही लूट-मारकर वापस लौट गए। इसकी सूचना पाते ही महाराज भी अपने भ्राता राजाधिराज बखतसिंहजी को साथ लेकर मेडते आ पहुँचे।

ख्यातो से ज्ञात होता है कि आँवेर-नरेश जयसिंहजी के और उनके बहनोई बूँदी-नरेश रावराजा बुधसिंहजी के आपस मे मनोमालिन्य हो गया था। इसी से जयसिंहजी ने उनसे बूँदी का अधिकार छीन कर हाडा दलेलसिंह को दे दिया। इस पर बुधसिंहजी को कुछ दिन जोधपुर में आकर रहना पड़ा।

इसी प्रकार जयसलमेर रावल अखेराजजी को भी कुछ दिन के लिये मारवाड में आकर अपनी रक्षा करनी पडी थी।

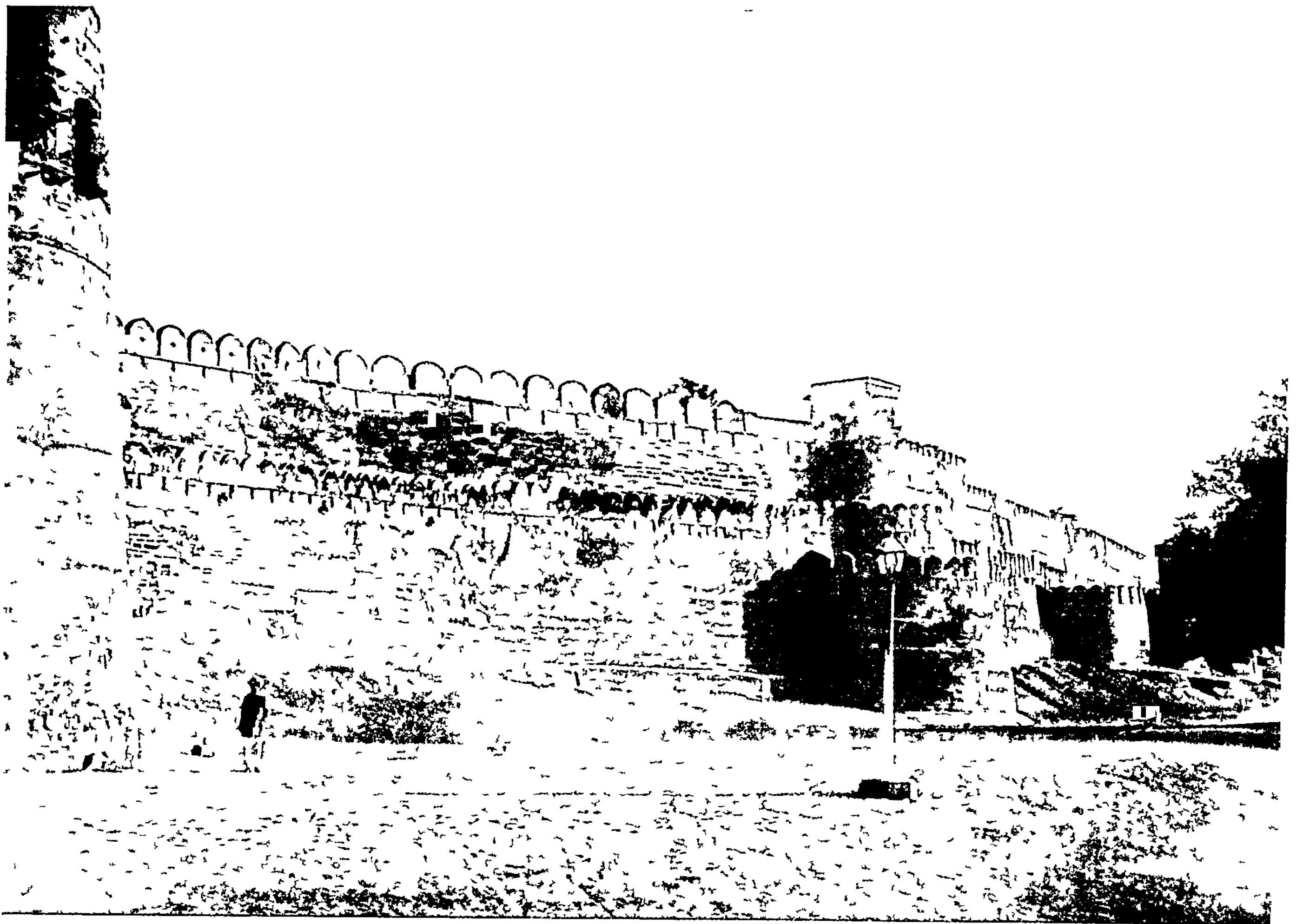
ख्यातो मे यह भी लिखा है कि इसी वर्ष रायसिंहजी और आनन्दसिंहजी के कहने से कतजी कदम और पीलाजी गायकवाड ने आकर जालोर में उपद्रव शुरू किया। परन्तु भडारी खींवसी ने जाकर उनसे सधि करली। इससे वे वहाँ से वापस लौट गएँ।

१ अभयोदय, सर्ग ७, श्लो० ४-३३। परन्तु उक्त काव्य मे और 'राजरूपक' मे इन्द्रसिंह को निर्वाह के लिये गॉव देने का उल्लेख नहीं है (देखो राजरूपक, पृ० २८६)।

२ अभयोदय, सर्ग ७, श्लो० ३६-४०। उक्त काव्य मे महाराज के साथ बखतसिंहजी के मेडते आने का उल्लेख नही है। 'राजरूपक' मे महाराजा अभयसिंहजी का मेडते लौटकर बखतसिंहजी को नागोर देना लिखा है। साथ ही उसमें यह भी लिखा है कि इसके बाद महाराज जैतारण, जालोर और सिवाने होकर जोधपुर लौटे थे (देखो पृ० २७७-२७८)। कहीं कहीं वि० स० १७८३ के कार्तिक (ई० सन् १७२६ के अक्टोबर) मे बखतसिंहजी को नागोर का अधिकार देने का तय होना लिखा है।

वि० स० १७८२ की आश्विन सुदी ५ के, महाराज के लिखे, पचोली बालकृष्ण के नाम के पत्र से आश्विन सुदी ४ को महाराज का मेडते से जैतारण की तरफ जाना प्रकट होता है।

३ ख्यातों मे लिखा है कि वि० स० १७८५ (ई० सन् १७२८) में बखतसिंहजी ने नरावत राठोडों से पौकरन छीन लिया और उसे, भीनमाल की एवज मे, चॉपावत महासिंह को दे दिया।



नागोर का किला

यह किला समतल भूमि पर बना है। इसके गिर्द की दुहेरी दीवार घिराव मे करीब १ मील लबी है। इनमे की बाहर की दीवार की ऊँचाई २५ फुट और भीतर की ५० फुट है। ये दीवारे नीचे ३० फुट और ऊपर १२ फुट के करीब मोटी है।

वि० स० १७८४ के श्रावण (ई० सन् १७२७ के जून-जुलाई) के क़रीब (बादशाह मुहम्मदशाह के बुलाने पर) महाराज लौटकर दिल्ली चले गए और इसी वर्ष के कार्तिक में इन्होने गढमुक्तेश्वर की यात्रा की[2]।

वि० स० १७८५ (ई० सन् १७२८) में आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी ने ईडर पर अधिकार कर लिया[3]। यद्यपि उस समय उक्त प्रदेश महाराज के मनसब में था[4], तथापि इन्होने मारवाड़ की तरफ का उपद्रव शांत होता देख इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं की[5]।

१ अभयोदय, सर्ग ७, श्लो० ४१-४२।

'राजरूपक' मे लिखा है कि मार्ग में परवतसर पहुँचने पर महाराज को चेचक निकल आई थी। (देखो पृ० २७८)।

२ अभयोदय, सर्ग ८, श्लो० २।

३ रासमाला, भा० २, पृ० १२५ की टिप्पणी १।

४ वि० स० १७८२ की भादों सुदी ५ के, महाराज के नाम लिखे, पचोली दौलतसिंह के, पत्र से इसी समय बादशाह की तरफ़ से महाराज को ईडर और थिराद का मिलना प्रकट होता है।

५. इसी बीच महाराना संग्रामसिंहजी (द्वितीय) ने ईडर-प्रांत को ठेके के तौर पर लेने के लिये, जयपुर-नरेश सवाई राजा जयसिंहजी के द्वारा, महाराज से बात तय करना चाहा। महाराज ने भी रायसिंहजी से तंग आकर उनकी यह प्रार्थना स्वीकार करली। इससे वहाँ का बहुत-सा प्रांत मेवाड के राज्य मे मिला लिया गया। वि० स० १७८६ की श्रावण बदी ८ के, और वि० स० १७८६ (चैत्रादि स० १७८७) की ज्येष्ठ सुदी ७ के राजाधिराज बखतसिंहजी के पचोली बालकृष्ण के नाम लिखे पत्रों से प्रकट होता है कि उस समय तक महाराज ने रायसिंहजी और आनन्दसिंहजी का ईडर पर का अधिकार स्वीकार नहीं किया था। इससे ज्ञात होता है कि यह अधिकार बाद में ही स्वीकार किया गया होगा। 'गुजरात राजस्थान' में लिखा है कि आनन्दसिंहजी ने वि० स० १७८७ की फागुन सुदि ७ (ई० सन् १७३१ की ४ मार्च) को ईडर में प्रवेश किया था। नहीं कह सकते कि यह कहा तक ठीक है। वि० स० १७९४ की माघ सुदी ७ के आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी के लिखे पुष्करणे ब्राह्मण जग्गू (जगन्नाथ) के नाम के पत्र मे लिखा है कि तूने ही हमको महाराज से कहकर ईडर का राज्य दिलवाया है। इसलिये तू अपने किसी वंशज को यहाँ भेज दे।

वि० स० १७८७ के आषाढ (ई० सन् १७३० के जून) में गुजरात के सूबेदार सरबुलदखाँ के कार्यों को देखकर बादशाह उससे नाराज हो गया।[1] इससे उसने (अजमेर के साथ ही[2]) गुजरात का सूबा महाराज अभयसिंहजी को दे दिया।[3] इसी अवसर पर इन्हे खिलअत आदि के अलावा १८ लाख रुपये नकद और मय गोला-बारूद के ५० छोटी-बड़ी तोपे भी दी गईं।[4] इस पर यह अलवर होते हुए अजमेर पहुँचे और वहाँ पर अधिकार कर मेड़ते होते हुए जोधपुर चले आए। कुछ दिनों मे जब २० हजार सवारो का रिसाला तैयार हो गया, तब यह यहाँ से चलकर जालोर पहुँचे[6]। यहीं पर इनके छोटे भ्राता बखतसिंहजी आकर इनके साथ हो गए। इसके

---

१ इतिहास से ज्ञात होता है कि सरबुलद ने गुजरात में होनेवाले मरहटों के उपद्रव को दबाने मे असमर्थ होकर उन्हें वहाँ की आमदनी का चौथा भाग देने का वादा कर लिया था। साथ ही वह स्वय भी बादशाह की परवाह न कर गुजरात मे बड़ी लूट-मार करने लगा था। इसी से बादशाह उससे नाराज हो गया।

२. श्रीयुत सारडा का 'अजमेर', पृ० १६७।

३. ग्राट डफ की 'हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज' मे इस घटना का समय ई० सन् १७३१ लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ३७६)। परन्तु 'मआसिरुल उमरा' में दिए हि० सन् ११४० के हिसाब से ई० सन् १७२७ (वि० स० १७८४) आता है। उसमें इसी के अगले साल इनका गुजरात जाना भी लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ७५६)।

'राजरूपक' में इस घटना का समय वि० स० १७८६ लिखा है। उससे यह भी ज्ञात होता है कि इसी के बाद यह गुजरात की चढाई का प्रबन्ध करने के लिये आषाढ मे दिल्ली से जोधपुर को रवाना हो गए (देखो पृ० २८३ और २८८) और यहाँ पर सारा प्रबन्ध कर लेने के बाद, वि० स० १७८७ की चैत्र सुदी मे, इन्होंने गुजरात की तरफ़ प्रयाण किया (देखो पृ० ३८७)।

४. महाराज के, शाही दरबार में रहनेवाले अपने वकील, भडारी अमरसिंह के नाम लिखे, वि० स० १७८७ की कार्त्तिक सुदी १२ के, पत्र में १५ लाख रुपये, ४० तोपें, २०० मन बारूद और १०० मन सीसे का दिया जाना लिखा है।

५ 'लेटर मुगल्स' में लिखा है कि महाराज ने दिल्ली से जोधपुर पहुँच मारवाड और नागोर से २० हजार कुशल राठोड-सवार एकत्रित किए थे। इसके बाद यह मय अपने छोटे भाई बखतसिंहजी के अहमदाबाद की तरफ़ रवाना हुए। इनके पालनपुर के पास पहुँचने पर वहाँ का फ़ौजदार करीमदादखाँ भी इनके साथ हो लिया (देखो भा० २, पृ० २०५)।

६. अभयोदय, सर्ग १०, श्लो० १-१६। 'लेटरमुगल्स' नामक इतिहास से ज्ञात होता है कि वि० स० १७८७ के द्वितीय भादों (ई० सन् १७३० के सितम्बर) में महाराज का कैंप जालोर मे था। (देखो भा० २, पृ० २०३) और 'राजरूपक' से वि० स० १७८७ के श्रावण मे भी महाराज का निवास जालोर मे होना प्रकट होता है (देखो पृ० ३१०)

बाद महाराज अपनी इस वीर-वाहिनी को लेकर सिरोही की तरफ के कुछ जागीरदारों को दंड देते हुए पालनपुर जा पहुँचे[1]। इस पर वहाँ के शासक ने सामने आकर इनकी अभ्यर्थना की। जैसे ही इसकी सूचना (मुबारिजुलमुल्क) सरबुलंद को मिली, वैसे ही उसने अहमदाबाद से आगे बढ मार्ग में ही इनके रोक लेने की तैयारी शुरू की[2]। अपने गुप्तचरों के द्वारा यह हाल मालूम होने पर इन्हों (महाराज) ने २०,००० रुपये की हुंडी और नायबी की आज्ञा लिखकर सरदार मुहम्मदखाँ के पास भेज दी, और साथ ही उसे यह भी कहला दिया कि संभव हो, तो वह चुपचाप अहमदाबाद पर अधिकार कर ले। इस पर वह गुजरातियों की सेना इकट्ठी कर मौका ढूँढने लगा। परन्तु सरबुलंद के पक्षवाले नगर के दरवाजों को ईंटों से बंदकर पूरी सतर्कता से नगर की रक्षा करने लगे थे। इससे वह सफल न हो सका[3]।

इसके बाद जिस समय महाराज सिद्धपुर के निकट पहुँचे[4], उस समय आस-पास के कई मुसलमान अमीर भी सरबुलंद का पक्ष छोड़ कर इनके झंडे के नीचे चले आए[5]।

इसी वर्ष के आश्विन (सितंबर) में महाराज ने अपना डेरा साबरमती-तट पर के मोजिरे गाँव में कर वहीं पर अपने मोरचे बनवाने शुरू किए[6]। यहाँ से सरबुलंद

ख्यातों में लिखा है कि जिस समय महाराज सलावास में ठहरे हुए थे, उस समय भादराजन का ठाकुर नाराज होकर अपनी जागीर को लौट गया। यह देख महाराज के छोटे भ्राता बखतसिंहजी कुछ सैनिकों के साथ एकाएक वहाँ जा पहुँचे। इससे उसे लौट आकर महाराज की सेना में सम्मिलित होना पड़ा।

१ रेवाड़े का ठाकुर बहुधा जालोर की तरफ आकर उपद्रव किया करता था, इसी से उसे दंड दिया गया था।

२ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० २०३।

३ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० २०५ और बॉंबे गजेटियर, भा० १, खंड १, पृ ३११-३१२।

४ वि० सं० १७८७ की द्वितीय भादों सुदी ३ के महाराज के पत्र से उस समय महाराज का सिद्धपुर में होना प्रकट होता है।

५ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० २०५-२०६।

६ महाराज के अपने वकील अमरसिंह के नाम के वि० सं० १७८७ की कार्तिक सुदी १२ के पत्र में उस समय की गुजरात की दशा का वर्णन इस प्रकार दिया है –

मरहटे सिर्फ चौथ ही नहीं लेते प्रत्युत बडौदा डभोई और जंबूसर आदि ३ लाख की आमदनी के प्रांतों पर भी उन्हीं का अधिकार है। इनमें सूरत आदि २८ प्रांत पीलू के अधिकार में हैं। उसका जी चाहता है, तो वहाँ की कुछ आमदनी शाही सूबेदार को दे देता है और नहीं चाहता

का शिविर केवल एक कोस की दूरी पर था। इससे रात होते ही वह अपनी तोपों को महाराज की सेना की पङ्क्ति की सीध में लगवाकर उस पर गोले बरसाने लगा। इसके बाद प्रातःकाल होने पर उसने अपनी सेना को युद्ध के लिये तयार होने की आज्ञा दी। परन्तु रात की घटना से महाराज को अपने अधिकृत-स्थान की अनुपयोगिता सिद्ध हो चुकी थी। इसीसे वह अपनी सेना में आए हुए गुजरातियों की सलाह से अपनी राठोड़-वाहिनी को लेकर डेढ़-दो कोस पीछे के सुरक्षित स्थान (खानपुर) में चले आए। यह स्थान वास्तव में ही सैनिक दृष्टि से बड़ा उपयोगी था। इसी से यहाँ पर नवीन मोरचे बनवाने की आज्ञा दी गई। इसके साथ ही इन्होंने कुछ चुने हुए सवारों को साबरमती नदी के उस पार के केशरामपुर और बड़े नायनपुर पर अधिकार करने के लिये भेज दिया, क्योंकि उक्त स्थान अहमदाबाद पर गोलाबारी करने के लिये बड़े उपयोगी थे। महाराज की सैन्य के इस स्थान-परिवर्तन की सूचना सरबुलंदखाँ (मुबारिजुलमुल्क) को सायंकाल के समय मिली थी। इसलिये उसने रात्रि में होनेवाले आक्रमण से बचने के लिये अपने सैनिकों को तत्काल समुचित स्थानों पर नियत कर दिया। इसके बाद प्रातःकाल होते ही उसने शाही बाग के सामने पहुँच अपने मोरचे लगवा दिए। इसके साथ ही उसने अपनी सेना का एक भाग, मय एक तोपखाने के, नगर की रक्षा के लिये भेज दिया। इन कामों से निपटकर उसने फिर एक बार महाराज की सेना पर गोलबारी शुरू की।

इसके बाद जैसे ही महाराज की सेना के मोरचे यथास्थान लग चुके, वैसे ही उसने शत्रु-सेना की तोपों का जवाब देने के साथ-ही-साथ अहमदाबाद नगर और वहाँ के किले पर भी गोले बरसाने शुरू किए। राठोड़-वाहिनी का मोरचा ऊँचे स्थान पर होने के कारण इनके गोलों की चोट कारगर होती थी। यह देख दूसरे दिन (वि० सं० १७८७ की कार्तिक वदी ५) (ई० स० १७३० की २० अक्टोबर) को सरबुलंद ने आगे बढ़ महाराज की सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि इस युद्ध में उसके मुसलमान सैनिकों ने बड़ी वीरता दिखलाई, और एक बार खानपुर में घुसकर उसके एक भाग पर अधिकार भी कर लिया, तथापि अन्त में महाराज के तोपखाने और

है तो नहीं देता है। पावागढ चिमनाजी के कब्जे में है। चॉपानेर का किला कंठाजी के पास है। इसके अलावा ये लोग देश से चौथ, देशमुखी और पेशकशी के लेने के साथ ही कुछ स्थानों में दरोबस्त (धर पकड़) भी करते रहते हैं।

सवारों की मार से घबराकर सरबुलंद को अपनी सेना को लौट चलने की आज्ञा देनी पड़ी।

इसके बाद स्वयं महाराज ने अपने राठोड-रिसाले के साथ आगे बढ शत्रु-सेना पर धावा किया। यद्यपि यवनों ने गाँव की आड लेकर तोपों और बन्दूकों की मार से इनके रोकने की जी-तोड चेष्टा की, तथापि समुद्र-तरंग की तरह आगे बढती हुई राठोड-सेना ने, सब विघ्न बाधाओं को दूरकर, शत्रुओं को मार भगाया, और उनके अधिकृत स्थान पर अपना झंडा खडा कर दिया। यह देख सरबुलंद भी अपनी सेना को उत्साहित करता हुआ पलट पडा, और बडी वीरता से महाराज की सेना का सामना करने लगा। अन्त में उसने एक बार राठोडों को पीछे ढकेलकर ही दम लिया। परतु इस युद्ध में एक तो उसके बहुत-से बडे-बडे वीर सरदार काम आ गए, और दूसरे उसके बहुत-से सैनिक राठोडों के दूसरे आक्रमण की आशका से चुपचाप मैदान छोड कर चल दिए, इससे उसका बल क्षीण हो गया। शत्रु की इस प्रकार की दुर्दशा से उत्साहित होकर राठोडों ने सरबुलद पर दूसरा हमला कर दिया। परतु ऐसे ही समय उसके दो सेनापति अमीनबेगखाँ और शेख अल्लाहयारखाँ नगर-रक्षिणी सेना को लेकर रण-स्थल में आ पहुँचे। इससे यद्यपि आक्रमण में राठोडों को सफलता न हो सकी, तथापि सरबुलद की सेना के बहुत से सैनिकों के घायल हो जाने से उसका उत्साह शिथिल पड गया। इसके बाद जैसे ही सायकाल होने पर युद्ध बद हुआ, वैसे ही उसने अपना शिविर युद्ध-स्थल से उखड़वाकर अहमदाबाद के बाहर की तरफ किले के नीचे लगवा दिया।

१ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० २०६-२०८।

२ लेटर मुगल्स भा० २, पृ० २०८-२११।

'राजरूपक' में लिखा है –

सतरै समत सत्यासियो, आसू उज्जल पक्ख
विजै-दशम भागा विचित्र, अभै प्रतिज्ञा अक्ख।

(देखो पृ० ३६३)।

'मीराते अहमदी' में लिखा है कि सायकाल के समय सरबुलद के पास केवल ४०० सवार ही रह गए थे।

परन्तु महाराज द्वारा, शाही दरबार में स्थित, अपने वकील के नाम लिखे, वि० स० १७८७ की कार्तिक बदी २ के, पत्र से प्रकट होता है कि आश्विन सुदी ५ को महाराज ने शहर से डेढ कोस पूर्व के हाँसोल-नामक गाँव के पास साबरमती के किनारे मोरचे लगाए थे। परन्तु सरबुलद के शाही

इसके बाद ही नींबाज ठाकुर ऊदावत अमरसिंह आदि के द्वारा बातचीत तय होकर महाराज और सरबुलंद के बीच संधि हो गई। इससे गुजरात का सूबा उसने महाराज को सौंप दिया और इसकी एवज में महाराज ने उसे उसकी सेना के वेतन आदि के लिये एक लाख रुपये नक़द और वहाँ से जाने के समय भार-बरदारी की गाड़ियाँ और ऊँट देने का वादा किया।

इस प्रकार झगड़ा शांत हो जाने पर सरबुलंदख़ाँ स्वयं महाराज के कैंप में आकर उनसे मिला। बातों ही बातों में उसने स्वर्गवासी महाराजा अजितसिंहजी के साथ की अपनी मित्रता का वर्णन कर महाराज की पगड़ी से अपनी पगड़ी बदल ली[1]।

बाग और मुहम्मद अमीनख़ाँ के बाग की तरफ चले जाने से ७वीं के दिन नगर के पश्चिम की तरफ भादर के किले के सामने (फ़तेपुर के पास नदी के किनारे) मोरचे खड़े किए गए। यह देख किले और शहरपनाह से शत्रु की तोपें गोले बरसाने लगीं। तीन दिन तक मोरचों की लड़ाई होती रही। परन्तु चौथे दिन १०वीं को, किले के पतन के लक्षण देख, सरबुलंद ने ८ हजार सवारों और १ हजार पैदल सिपाहियों के साथ महाराज की सेना पर हमला कर दिया। इससे शत्रु के बहुतसे योद्धा मारे गए। इसके बाद महाराज और राजाधिराज ने मोरचों से आगे बढ़ सरबुलंद पर प्रत्याक्रमण किया। यह देख उसका तोपखाना इन पर गोले बरसाने लगा और शत्रु-सैनिक बाग की आड़ में छिप गए। परन्तु महाराज ने इसकी कुछ भी परवा न कर सवारों की ३ अनियाँ बनाईं और ये सब एक ही बार में तोपखाने की ओर बढ़ तत्काल शत्रु के सामने जा पहुँचीं। दो घंटे के युद्ध के बाद शत्रु के पैर उखड़ गए, और वह भाग कर डेढ़ कोस पर के हाजिमपुर में चला गया। महाराज के सैनिक भी उसके पीछे लगे हुए थे। इसलिये ज्यों ही ये वहाँ पहुँचे, वैसे ही शत्रु ने मकानों की आड़ लेकर इनका सामना किया। यहाँ पर करीब ५-६ घंटे तक युद्ध होता रहा। इसके बाद जब सेना के बिखर जाने से सरबुलंद के पास केवल ८०० सवार रह गए, तब वह वहाँ से भागकर नदी पार के अपने शिविर में चला गया। इसी बीच शेख अल्लायारख़ाँ शहर से निकल उसकी मदद को पहुँचा था। परन्तु वह शीघ्र ही मारा गया। इसके बाद शाम हो जाने से महाराज भी अपने शिविर को लौट गए। इस युद्ध में शत्रु के बहुत से घोड़े, तोपें आदि राठोड़ों के हाथ लगे। उसके हजार बारह सौ आदमी मारे गए और सात आठ सौ घायल हुए। महाराज की सेना में यद्यपि मरनेवालों की संख्या कम रही, तथापि घायल अधिक हुए। महाराज की सवारी के घोड़े के भी तलवार के तीन और तीरों के दो जख्म लगे। तीन तीर उनका चमड़ा छीलते हुए निकल गए। इस युद्ध में राजाधिराज भी जख्मी हुए। परन्तु ईश्वर ने सहायता की। शिविर में पहुँचने पर सरबुलंद की तरफ से संधि का प्रस्ताव हुआ। दूसरे दिन महाराज ने फिर चढ़ाई की, परन्तु शत्रु बाहर नहीं आया।

१ लेटर मुगल्स, भा० २ पृ० २११-२१२। उसमें यह भी लिखा है कि इस युद्ध में राजाधिराज बखतसिंहजी के एक तीर का घाव लग गया था। इसीसे वह उस समय दरबार में उपस्थित न थे। परन्तु ख्यातों में उस समय उनका सम्मुख वहाँ पर उपस्थित होना प्रकट

कुछ दिनों में यात्रा का प्रबन्ध ठीक हो जाने पर सरबुलंद आगरे की तरफ चला गया, और महाराज ने वि० सं० १७८७ की कार्तिक सुदी ९ (ई० सन् १७३० की ७ नवंबर) को अपने भ्राता बखतसिंहजी के साथ नगर में प्रवेश कर भादर के किले में निवास किया। इसके बाद इन्होंने वहाँ के प्रबन्ध की देख-भाल के लिये भंडारी रत्नसिंह को अपना नायब नियुक्त किया।

होता है। इसी प्रकार किसी-किसी ख्यात में आश्विन सुदी १२ को सरबुलंद का हिम्मत हारकर नींबाज ठाकुर अमरसिंह को संधि के लिये बुलवाना और फिर दोनों पक्षों के बीच संधि होना, तथा इसके बाद कार्तिक बदी ७ को सरबुलंद का गुजरात से रवाना होना लिखा है।

मूल में इस युद्ध की जो तिथियाँ दी गई हैं, वे 'लेटर मुगल्स' के अनुसार हैं।

महाराज के, शाही दरबार में स्थित, अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की कार्तिक सुदी १२ के, उपर्युक्त पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि इस युद्ध का सारा प्रबन्ध महाराज ने अपनी ही तरफ से किया था। बादशाह की तरफ से तो केवल करीमखाँ, २०० सिपाहियों के साथ, उनके पास नियुक्त किया गया था।

१ लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० २१२-२१३।

परंतु महाराज की तरफ से शाही दरबार में स्थित अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की कार्तिक बदी ४ के पत्र में सरबुलंद के सूबा छोड़ कर चले जाने और भादर के किले के विजय होने का उल्लेख मिलता है।

'सहरुलमुताखरीन' में इस घटना का हाल इस प्रकार लिखा है —

जब बादशाह रिश्वत की शिकायतों के कारण रौशनुद्दौला से अप्रसन्न हो गया, तब शाही दरबार में शम्सामुद्दौला का प्रभाव बढ़ने लगा। इसी अवसर पर उस (शम्सामुद्दौला) ने रौशनुद्दौला के पक्ष वाले सरबुलंदखाँ के एवज में महाराजा अभयसिंहजी को गुजरात का सूबेदार नियुक्त करवा कर उक्त पद की सनद इनके पास भेज दी। साथ ही उसने इन्हें शीघ्र गुजरात पहुँच सरबुलंद को दिल्ली भेज देने का भी लिख भेजा। परंतु अभयसिंहजी ने सरबुलंद से गुजरात का अधिकार ले लेना एक साधारण कार्य जान अपने प्रतिनिधि को कुछ सेना देकर वहाँ भेज दिया। जब वहाँ पर उसे सफलता नहीं हुई, तब महाराज ने एक दूसरे प्रतिनिधि को वहाँ जाने की आज्ञा दी। इसके साथ पहले से कुछ अधिक सेना भेजी गई थी। परंतु सरबुलंद ने उसे भी कृतकार्य न होने दिया। यह देख स्वयं महाराज अभयसिंहजी ४०-५० हजार सैनिक लेकर गुजरात को चले। इस पर सरबुलंद ने कई कोस आगे बढ़ इनका सामना किया। यद्यपि एक बार तो उसने इनको पीछे हटा दिया, तथापि अन्त में उसे संधि का प्रस्ताव करना पड़ा। इसके बाद वह स्वयं सायंकाल के समय सादे कपड़े पहन और थोड़े से नौकरों को साथ ले महाराज के डेरे पर पहुँचा। महाराज को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। पर इन्होंने उसे यथोचित सत्कार के साथ अपने पास बिठाया। इसके बाद उसने महाराज से कहा कि महाराजा अजितसिंहजी मेरे पगड़ी-बदल भाई थे, अतः आप मेरे भतीजे हैं। मैंने यह युद्ध केवल अपनी इज्जत बचाने के

इसी वर्ष महाराज ने राजाधिराज बख्तसिंहजी को पाटन का सूबेदार नियत कर उनके नायब को वहां पर प्रबन्ध करने के लिये भेज दिया।

अगले वर्ष (वि० सं० १७८८-ई० सन् १७३१ में) बाजीराव पेशवा ने बड़ोदे पर चढ़ाई की। उस समय उक्त नगर पीलाजी गायकवाड़ के अधिकार में था। इसकी सूचना पाकर महाराजा अभयसिंहजी ने पेशवा को अहमदाबाद बुलवाया, और उसे,

लिये लिया है। मेरे और आपके बीच किसी तरह की [illegible] नहीं है। अब आप इस सूबे का कार्य सँभालें, और मेरे [illegible] के लिये कुछ रुपया [illegible] प्रबन्ध कर दें। महाराज ने तत्काल उसके कहने के अनुसार सब प्रबन्ध कर [illegible]। जब सरबुलन्द को महाराज की तरफ का पूरा पूरा विश्वास हो गया, तब उसने [illegible] सफेद पगड़ी महाराज के सिर पर रख दी, और उनकी [illegible] पगड़ी, जिसमें [illegible] उतारकर अपने सिर पर रख ली। इसके बाद वह महाराज का अभिवादन कर विदा हो गया।

परन्तु जिस समय सरबुलन्द दिल्ली के मार्ग में था, उस समय [illegible] कुछ [illegible] साथ उसके पास [illegible]। [illegible] अभयसिंहजी का सामना करने [illegible] उसके लिये दरबार में उपस्थित होने [illegible]। इसलिये जब तक [illegible] बादशाही [illegible] न मिले, तब तक वह दिल्ली न आकर [illegible] ठहरा रहे।

बादशाही दरबार का [illegible] बाजीराव [illegible] को अभयसिंहजी के प्रतिनिधि ने गुजरात [illegible] अपना [illegible] प्रदेश मरहटों के अधिकार में चला गया। इस पर बादशाह ने भी उधर विशेष ध्यान नहीं दिया। ([illegible] भा० २ पृ० ४६२-४६३)।

महाराज के बादशाही दरबार [illegible] वकील [illegible] के नाम लिखे खास पत्रों से प्रकट होता है कि मरहटों के लगातार के उपद्रवों और सरबुलन्द की लूट-खसोट के कारण गुजरात का सूबा उजड़ गया था। इससे वहाँ की आमदनी [illegible] नहीं [illegible] सकता था। परन्तु बादशाह [illegible] रुपये भेजने में ढील करता था। इसलिये स्वयं महाराज भी वहाँ अधिक समय नहीं रहने [illegible]।

१. बॉम्बे गैज़ेटियर, भा० १, पार्ट १, पृ० [illegible]। वहीं पर यह भी लिखा है कि महाराज के अहमदाबाद पहुँचने पर (सलाबत मुहम्मदखां बाबी के पुत्र) जोरावरखां बाबी ने हाज़िर होकर एक हाथी और कुछ घोड़े नज़र किए। इस पर महाराज ने उसके बाप-दादा की जागीर उसे देकर इसकी सूचना बादशाह के पास भेज दी। [illegible] (खंभात) के पास के प्रदेश का, जिसकी आमदनी स्वयं महाराज के लिये नियत थी, प्रबन्ध फिदाउद्दीनखाँ को सौंपा। (देखो भा० १ [illegible] पृ० [illegible])।

२. महाराज के अपने वकील के नाम लिखे वि० सं० १७८७ की माघ बदी ८ के, पत्र से ज्ञात होता है कि इस से पूर्व ही बाजीराव और चिमनाजी ४० हजार सवारों के साथ माही के उस पार उतर चुके थे, और कंठाजी, पीलू, मुदा और [illegible] आदि एक बड़ी सेना लेकर सूरत पहुँच चुके थे।

बड़ोदे पर अधिकार करने में, पीलाजी के विरुद्ध, अजमतुल्ला की सहायता करने को तैयार किया। उस समय महाराज की तरफ से बडोदे का शासन-भार अजमतुल्ला को सौंपा हुआ था। इसी के अनुसार महाराज की और पेशवा की सम्मिलित सेनाओं ने बडोदे पर चढ़ाई की। परंतु इसी बीच सूचना मिली कि निजामुल्मुल्क स्वयं बाजीराव पेशवा को दबाने के लिये गुजरात की तरफ चला आ रहा है। इस पर पेशवा बडोदे की चढाई का विचार छोडकर दक्षिण की तरफ चला गया।

---

१ महाराज के अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की चैत्र सुदी १४ के, पत्र में लिखा है:–

त्र्यंबकराव दाभाडे से हमारी और बाजीराव की सेनाओं का युद्ध हुआ। इसमें त्र्यंबकराव, निजाम की फौज का सरदार मुगल मोमीनयारखाँ और मूलाजी पँवार मारे गये, और पँवार ऊदा, चिमना और पंडित के साथ ही पीलू का बेटा भी पकडा गया। इस प्रकार हमारी विजय हुई। पीलू, कंठा और आनंदराव की फौजें भागी। पीलू भागकर डभोई में जा छिपा। बडोदे का प्रबंध उसके भाई के हाथ में है। दोनों स्थानों पर हमारी फौजें पहुँच गई हैं। शीघ्र ही दोनों स्थान उनसे खाली करवा लिये जायँगे। कंठा भागकर निजाम के पास गया है। इसलिये तुम नवाब से कहकर निजाम को बादशाह की तरफ से हिदायत करवा देना, जिससे वह हमारे कथनानुसार चले, और कंठा, पीलू वगैरह को पनाह न दे। इस युद्ध में निजाम की फौज भी मारी गई है। इससे मुमकिन है निजाम इधर चढ आवे, और उससे युद्ध हो। अतः बादशाह से शीघ्र ही उसको हिदायत करवा दी जाय।

इस बार बाजीराव ने बादशाह की अच्छी सेवा की है। इसलिये उसको और राजा साहू को खिलअत, फरमान और हाथी तथा चिमना को खिलअत भिजवाने की कोशिश होनी चाहिए। साथ ही नवाब से बातचीत कर इनके लिये मनसब की भी कोशिश होनी चाहिए। निजामुल्मुल्क के कहने से नवाब ने लिखा है कि बाजीराव को किसी प्रकार की मदद न देकर निकाल दो। परंतु बाजीराव ने बादशाह की सहायता की है। पीलू और कंठा आठ वर्ष से परगने दबाए बैठे हैं। ऐसी हालत में यदि नवाब लोगों के कहने से गड़बड़ करेगा, तो हम गुजरात का सूबा छोडकर चले आवेंगे। निजाम तो सिर्फ हम लोगों को आपस में लडाना चाहता है। यदि वह इधर आया, तो अवश्य ही उसे दंड दिया जायगा।

वि० सं० १७८७ की चैत्र सुदी १४ के दूसरे पत्र में महाराज ने लिखा है कि बाजीराव के पत्र से ज्ञात हुआ कि निजाम ने हमारे और बादशाह के असली पत्र उस (बाजीराव) के पास भेजकर उसको लिखा है कि बादशाह तो उसे पकडना या दंड देना चाहता है, और वह नाहक ही अपने सजातीयों से लडकर अपना बल क्षीण कर रहा है। इस पर उसका विश्वास उठ गया है, और वह यहाँ से जाना चाहता है। इसलिये उसके नाम का फरमान शीघ्र भिजवाना चाहिए, वरना वह चला जायगा। नवाब को भी अब निजाम से सावधान हो जाना चाहिए। इस समय कंठा निजामुल्मुल्क के पास गया हुआ है। अगर वह यहाँ वापस आवेगा, तो अवश्य ही मारा जायगा।

इसके बाद बखतसिंहजी भी लौटकर नागोर चले आए।

उस समय स्वर्गवासी सेनापति खांडेराव दाभाडे का प्रतिनिधि पीलाजी भीलों और कोलियों की सहायता से स्वतंत्र हो रहा था, और महाराज की आज्ञा की कुछ भी परवा नहीं करता था। इसलिये वि० सं० १७८८ के माघ (ई० सन् १७३२ की जनवरी) में महाराज ने ईंदा लखधीर को उसे मारने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उसने डाकोर पहुँच उसे धोके से मार डाला। यह देख मरहटे बड़ोदा-प्रांत को छोड़कर डभोई के किले में चले गए। इस पर महाराज ने बड़ोदे पर अधिकार कर तत्काल ही डभोई के दुर्ग को भी घेर लिया। परन्तु अन्त में वर्षा-ऋतु के आ जाने से कुछ ही दिनों में इन्हें वहाँ का घेरा उठा लेना पड़ा।

---

१ बँबे गैजेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३१२।

ख्यातों में इसके बाद महाराज का हुरजी गाँव के निकट सेना में आ मिलना और उनका वापस लौट जाना लिखा है। उनमें इसी के बाद महाराज के हुक्म पर राजाधिराज बखतसिंहजी का अहमदाबाद वापस आना भी लिखा है।

यह बात महाराज के वि० सं० १७८८ की फागुन बदी १० के पत्र से भी प्रकट होती है। परन्तु उसमें पीलाजी पर चढ़ाई करने का उल्लेख है।

उसी पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय महाराज के सवारों में दो हजार सवारों की वृद्धि की गई थी।

२ बॉंबे गैजेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३१३। वि० सं० १७८८ (आषाढादि) की वि० सं० १७८९ की चैत्र सुदि १० के महाराज के पत्र में, जो नागौर से लिखा गया था, लिखा है—पीलाजी के मारे जाने पर हमारी सेना आगे बढ़ी तो वे लोग युद्ध की तैयारी करने लगे। यह देख पीलाजी के आदमी हमसे मिलने को आए। हमने उनसे बड़ोदा, डभोई आदि बादशाही थाने छोड़, बादशाही सेवा स्वीकार करने को कहा। परन्तु पीला ने उत्तर में कहलाया कि वह तीन सूबेदारों के समय से बड़ोदे पर काबिज है। सरबुलंद ने उस पर चढ़ाई की थी परन्तु उलटा उसे चौथ देने का वादा कर लौटना पड़ा।

ये लोग सम्मुख रण में लोहा न लेकर इधर-उधर से हमला कर शत्रु-सैन्य को तंग करते हैं। इससे जैसे ही हमारी अगाड़ी की सेना पाँच कोस आगे बढ़ी, वैसे ही वह भागकर डाकोर जा पहुँचा।

इस पर हमने सोचा कि इस प्रकार चढ़ाई करने से वह और भी दूर भाग जायगा। अतः पञ्चोली रामानंद, ईंदा लखधीर और भंडारी अजबसिंह को उससे बातचीत तय करने के बहाने उधर रवाना किया। उनसे यह भी कह दिया गया था कि तुम्हारी तरफ से सूचना मिलने ही यहाँ से सेना रवाना कर दी जायगी।

इसके बाद चैत्र सुदी ६ को २,००० चुने हुए सवार भेजे गए। बातचीत करने को गए हुए हमारे आदमियों ने पीलू को मार डाला। इसी अवसर पर (दो घटे रात जाते-जाते) हमारी सेना के सवार भी वहाँ जा पहुँचे। इससे पीलू का भाई मैमा और उसके बहुत-से सैनिक भी मारे गए। ७०० घोडे और जजाले (लम्बी बदूके) तथा अन्य बहुत-सा सामान लूट मे हमारे सैनिकों के हाथ लगा।

अब हम शीघ्र ही बडोदे पहुँच उसे भी दुश्मन से खाली करवाने वाले है। हमारी सेना के ४० सिपाही मारे गए, और ५० जमादार और १००-११० वीर घायल हुए हैं।

इस बात की पुष्टि वि० स० १७८८ (चैत्रादि स० १७८६) की वैशाख सुदी १३ के महाराज के पत्र से भी होती है। उसम पीलू के साथ १,५०० सवारो और ५,००० पैदल सिपाहियों के होने का उल्लेख है। साथ ही उसमे यह भी लिखा हे कि बातचीत करने को गए हुए हमारे आदमियों का पत्र मिलते ही हमने सेना भेज दी थी। जैसे ही यह सेना पीलाजी के लश्कर के पास पहुँची, वैसे ही लखधीर ने अपनी वापस रवानगी की आज्ञा प्राप्त करने के बहाने पीला के निवास स्थान मे घुसकर उसे मार डाला। इसी अवसर पर पीला का भाई भी सख्त घायल हुआ, और उसके साथ के ५ सरदार मारे गए। शत्रु के सवारों के ८०० घोडे हमारी सेना के हाथ आए।

इसके बाद हम सेना लेकर वैशाख सुदी ८ को बडोदे पहुँचे। कडाली की गढी और दूसरे दो चार स्थानों से शत्रु मार भगाया गया। अब वे लोग नर्मदा पर के कोरल गॉव और डभोई के किले मे एकत्रित हुए हैं। इनकी सख्या अत्यधिक है। साथ ही त्र्यबकराव की मा और ऊदा पॅवार के भी इनकी सहायता मे आने की सूचना है। आने पर उनको भी सजा दी जायगी।

कल हम बडोदे से रवाना होकर नर्बदा की तरफ़ जानेवाले हैं। अब तक २४ किले तो शत्रुओं से छीन लिए गए हैं, और जो बच गए हैं, उन पर भी शीघ्र ही दखल कर लिया जायगा।

वि० स० १७८८ (चैत्रादि सवत् १७८६) की ज्येष्ठ वदी २ के महाराज के पत्र म लिखा है कि शत्रुओं ने डभोई के किले मे एकत्रित होकर उपद्रव उठाया है। एक तो वहाँ शत्रुओं की बहुत बडी सख्या है। दूसरे वह किला भी बहुत मजबूत हे और हमारे पास उसके मआसरे के योग्य बडी बडी तोपों का अभाव है। शीघ्र ही बरसात का मौसम आनेवाला है। यदि इससे पूर्व ही उक्त किला हाथ न आया, तो यहाँ पर मरहटों का दल और भी बढ जायगा। उस समय इसका हाथ आना कठिन होगा। वि० स० १७८८ (चैत्रादि सवत् १७८६) की आषाढ बदी ११ के महाराज के पत्र मे भी येही बाते लिखी हैं। परतु उससे यह भी ज्ञात होता है कि बडोदा और जबूसर के किले तो इसके पूर्व ही जीत लिए गए थे, उस समय डभोई के किलेवालों के साथ युद्ध हो रहा था। चॉपानेर का बड़ा किला भी शत्रुओं के अधिकार मे था। महाराज की सेना को लम्बी नालियोंवाली तोपों की सख्त जरूरत थी। इसलिये महाराज ने अपने वकील को लिखा था कि वह नवाब (शाही प्रधान मत्री) से कहकर सूरत के किलेदार के नाम शीघ्र ही दो बडी तोपे भेजने की आज्ञा भिजवा दे। काम हो जाने पर वे तोपें लौटा दी जायँगी। इसी के साथ सोहराबखॉ को भी अपनी सेना लेकर वहाँ पहुँचने का हुक्म भिजवाने मे शीघ्रता करने को लिखा गया था।

ये सब पत्र महाराज ने शाही दरबार मे रहनेवाले अपने वकील के नाम लिखे थे।

इन बराबर के झगड़ों से नष्ट-भ्रष्ट होते हुए गुजरात में भयंकर दुर्भिक्ष ने और भी हालत खराब कर दी[1]।

वि० सं० १७८८ के फागुन (ई० सन् १७३२ की फरवरी) में खँडेराव की विधवा स्त्री ऊमाबाई ने, पीलाजी की मृत्यु का बदला लेने के लिये उसके पुत्र दामाजी गायकवाड़ आदि को साथ लेकर, अहमदाबाद पर चढ़ाई कर दी। परन्तु इसमें उसे पूरी सफलता नहीं हुई। अन्त में दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के द्वारा यह तय किया गया कि उसे वहाँ की आमदनी की चौथ (चौथा भाग) और दसोत (दसवा भाग) के अलावा अहमदाबाद के खजाने से अस्सी हजार रुपये और दिए जायँ। बादशाह ने भी समय देख महाराज की की हुई इस सन्धि को पसन्द किया, और इनके लिये एक खिलअत भेजा[2]।

वि० सं० १७९० (ई० सन् १७३३) में महाराज ने गुजरात के सूबे का प्रबन्ध रत्नसिंह भंडारी को सौंप दिया[3], और स्वयं बख्तसिंहजी के साथ जालोर होते हुए शाहपुरवालों से दंड के रुपये लेकर जोधपुर चले आए[4]।

---

१. वि० सं० १७८९ की भादों वदि १ के, महाराज के अपने वकील के नाम लिखे, पत्र में लिखा है कि गुजरात में भयंकर अकाल है। नाज एक रुपये का सेर भर तक बिक चुका है, फौज की तनख्वाह के तीस लाख रुपये चढ़ गए हैं। इस लिये लोग भागने का इरादा कर रहे हैं। ऐसी हालत में यदि नवाब रुपयों का प्रबंध शीघ्र नहीं करेगा, तो हम द्वारका यात्रा कर यहाँ से लौट आवेंगे।

२. बॉम्बे गजेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३१४।

३. बॉम्बे गजेटियर भा० १, खंड १, पृ० ३१४। इसमें महाराज का जोधपुर होते हुए दिल्ली जाना भी लिखा है। इसी से अगले वर्ष जवाँमर्दखाँ ने महाराज के भ्राता आनन्दसिंह और रायसिंह से ईडर छीन लेने के लिये चढ़ाई की। परन्तु उन्होंने मल्हारराव होल्कर और रानोजी सिंधिया की (जो उस समय मालवे में थे) सहायता प्राप्त कर उलटा उसे १,७५,००० रुपये दंड के देने को बाध्य किया। इसमें से २५,००० रुपये तो उसी समय ले लिए गए, और बाकी के रुपयों के एवज में जवाँमर्दखाँ का भाई जोरावरखाँ और अभाजी कोली का प्रतिनिधि अजबसिंह अमानत के तौर पर रक्खे गए। (बॉम्बे गजेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१५)। ई० सन् १७३५ में महाराज के प्रतिनिधि रत्नसिंह को उसके खर्च के लिये धौलका-प्रांत दिया था। (बॉम्बे गजेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३१५)।

४. 'मआसिरुल उमरा' में इनका वि० सं० १७८९-९० (ई० सन १७३२-३३) में जोधपुर लौटना लिखा है। परन्तु वहीं पर उक्त इतिहास के लेखक ने अजितसिंहजी के मरने

इसी वर्ष के भादो (ई० सन् १७३३ के अगस्त) में राजाधिराज बखतसिंहजी के और बीकानेर-नरेश सुजानसिंहजी के बीच एक सरहदी मामले पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इससे बखतसिंहजी ने बीकानेर पर चढाई कर दी। आश्विन सुदी में महाराज भी अपने दल-बल-सहित उनकी सहायता को वहाँ जा पहुँचे। कुछ दिन तक तो दोनों तरफ से लडाई होती रही। परतु अन्त में फागुन के महीने में लोगो ने बीच में पड़ आपस में मेल करवा दिया। फिर भी बीकानेर के कुछ सरहदी प्रदेशो पर वि० स० १७९२ (ई० सन् १७३५) तक जोधपुरवालो का ही अधिकार बना रहा।

वि० स० १७९१ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७३४ की मई) मे महाराज नागोर, पुष्कर और अजमेर होते हुए मेवाड की तरफ चले। हुरडे मे इन्होने जयपुर, उदयपुर, कोटा, बीकानेर और किशनगढ के नरेशो से मिलकर[3] एक शानदार दरबार

पर बखतसिंहजी का गद्दी बैठना लिख दिया है। यह ठीक नही है। 'ग्राट डफ् की हिस्ट्री ऑफ् मरहटाज' मे लिखा है कि ई० सन् १७३२ (वि० स० १७८९) मे पीलाजी का ज्येष्ठ पुत्र धम्माजी सोनगढ स रवाना हुआ, और उसने गुजरात के पूर्व की तरफ के बहुत स प्रदेशों पर अधिकार कर जोधपुर तक चढाई की। इसीसे महाराज अभयसिंहजी को गुजरात से लौटकर मारवाड मे आना पडा। (देखो भा० १, पृ० ३८१)।

१ 'बीकानेर की तवारीख' मे महाराज का स्वय वहाँ न जाकर सेना भेजना ही लिखा है। उसमे यह भी लिखा है कि इस युद्ध मे बीकानेर के राजकुमार जोरावरसिंहजी ने अच्छी वीरता दिखाई थी। इसी मे जोधपुर की फौज को (पूरी) सफलता नहीं हुई। (देखो पृ० १९२)।

२ यह बात बीकानेर के राजकीय इतिहास से भी प्रकट होती है। (देखो पृ० १९४) महाराज के, अपने शाही दरबार म रहनेवाले वकील के नाम लिखे, वि० स० १७९० की मॅगसिर सुदी ७ के, पत्र मे लिखा है– "तुमने बादशाह के कथनानुसार शीघ्र ही हमे फिर अहमदाबाद जाने के बारे मे लिखा, सो ज्ञात हुआ। बीकानेर का शहर हमारे अधिकार मे आ गया ह। किलेवाले अभी लड रहे है।" इसी वर्ष की फागुन सुदी १० के नागोर मे लिखे महाराज के पत्र स प्रकट होता है कि बीकानेरवालों ने १२ लाख रुपये देने और समय-समय पर सेवा मे हाजिर रहने का वादा कर महाराज से सधि कर ली थी। इन १२ लाख मे से ८ लाख तो नकद देने का इकरार था और ४ लाख के एवज मे खरबूजी और सारूडा के प्रात देने तय हुए थे।

३ उस समय ये सब नरेश वहाँ आ गए थे।

किया। इसमें उपस्थित होनेवालों ने एक दूसरे की सहायता करने की प्रतिज्ञा कर वि० सं० १७९१ की श्रावण वदी १३ (ई० सन् १७३४ की १७ जुलाई) को एक प्रतिज्ञा-पत्र लिखा। इसके बाद वर्षा-ऋतु के अंत में रामपुरे में अगला कार्य निश्चित करने का वादा कर यह देवलिये होते हुए जोधपुर लौट आए।

इसी वर्ष वि० सं० १७९१-९२ (ई० सन् १७३४-३५) में यह मल्हारराव को दबाने के लिये शम्सामुद्दौला के साथ अजमेर और साँभर की तरफ गए। यद्यपि उस समय महाराज की सम्मति युद्ध के पक्ष में थी, तथापि राजा जयसिंहजी ने बीच में पड़ उसे रोक दिया, और बादशाह की तरफ से मरहटों को चौथ देने का प्रबन्ध करवा दिया।

वि० सं० १७९२ (ई० सन् १७३५) में राजाधिराज बखतसिंहजी ने दौलतसिंह सांखला आदि की सिलावट से एक बार फिर बीकानेर पर चढ़ाई करने का प्रबन्ध किया। परन्तु इसमें उन्हें विशेष सफलता नहीं हुई।

इसके बाद वि० सं० १७९२ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७३५ की मई) में शम्सामुद्दौला के साथ ही महाराज भी दिल्ली चले गए।

१. ख्यातों में लिखा है कि उस स्थान पर महाराज के [illegible] का [illegible] था। यह सूचना पाकर बादशाह इनसे नाराज हो गया। परन्तु इनके [illegible] ने उसे समझाया कि मरहटों के बढ़ते हुए [illegible] को रोकने का प्रबन्ध करने के लिये राजस्थान के नरेशों का एकत्रित होना आवश्यक था। परन्तु साथ ही ऐसा [illegible] होना असम्भव होने से ही महाराज ने [illegible] था। यह सुन बादशाह ने महाराज को खिलअत और फरमान भेजकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

२. कुछ ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १७९० और कुछ में वि० सं० १७९२ दिया है। उनमें महाराज का शाहपुरेवालों से [illegible] दौलतसिंह राठोड़ रघुनाथसिंह को देना और शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंहजी का इनके पास आकर आधीनी प्रकट करना भी लिखा है।

३. लेटर मुगल्स, भा० २ पृ० २८०। यद्यपि इसमें महाराज का नाम नहीं है तथापि मारवाड़ की ख्यातों से इस बात की पुष्टि होती है।

महाराज के, अपने वकील के नाम लिखे वि० सं० १७९० की आश्विन वदी ? के, पत्र में इनके मरहटों की सहायता के लिये शीघ्र ही जयपुर की तरफ रवाना होने के विचार का उल्लेख है।

४. इसी वर्ष बुरहानुल्मुल्क ने सोहराबखाँ को बीरमगाँव का शासक नियत किया। परन्तु भंडारी रत्नसिंह के विरोध करने पर बादशाह ने उक्त नगर फिर से महाराज की जागीर में रख

शाही सेना की मदद करने के कारण मल्हार-राव होल्कर महाराज से अप्रसन्न था। इसी से वि० स० १७९३ (ई० सन् १७३६) में उसने कतजी के साथ गुजरात से आगे बढ मारवाड पर चढाई की[1]। यद्यपि कुछ दिन तक वह यहाँ के जालोर, सोजत, बीलाड़ा, मेड़ता और जोधपुर आदि प्रातो में लूट-खसोट करता रहा, तथापि महाराज के सरदारो और मुसाहिबो ने उसे शीघ्र ही लौट जाने पर बाध्य करदिया। महाराज भी इस घटना की सूचना पाकर दिल्ली से रवाना होनेवाले थे, परन्तु इतने ही में होल्कर के लौट जाने का समाचार मिल जाने से इन्होने अपना विचार स्थगित कर दिया।

इसके बाद बादशाह ने दरबारियो के कहने-सुनने से वि० स० १७९३ (ई० सन् १७३७) में, गुजरात का सूबा मोमीनखॉ को दे दिया[2]। परन्तु जब उसने उक्त प्रात पर अधिकार करने में अपने को असमर्थ पाया, तब रगोजी को, खास अहमदाबाद नगर, उसके आस-पास का प्रदेश और कैबे (खमात) बदर को छोड़कर

दिया। इसके बाद सोहराब ने बुरहानुल्मुल्क से कह-सुनकर दुबारा उसे अपने नाम लिख-वालिया। यह बात रत्नसिंह को बुरी लगी। इसमे उसने इधर-उधर से सहायता लेकर उस पर चढाई कर दी। परतु सोहराबखॉ के पडाव के पास पहुँच उसने उससे कहलाया कि यदि वह बादशाह की तरफ से महाराज के पक्ष मे अतिम आज्ञा आ जाने पर उक्त स्थान को खाली कर देने का वादा कर ले, तो आपस मे सधि हो सकती है। यह बात सोहराबखॉ को मजूर न हुई। इस पर दोनों तरफ से युद्ध की तैयारी होने लगी। परतु इसके दूसरे ही दिन रत्नसिंह ने नैश-आक्रमण कर उसकी सेना को भगा दिया। सोहराबखॉ स्वय भी घायल हो जाने के कारण बाद को शीघ्र ही मर गया। (बॉबे गजेटियर, भा० १, ख० १, पृ० ३१५-३१६)।

वि० स० १७९२ की आश्विन वदी २ के एक पत्र मे राजाधिराज बखतसिहजी के फिर से खरबूजी प्रात पर चढाई करने का उल्लेख मिलता है।

१ बॉबे गजेटियर, भा० १, ख० १, पृ० ३१७।

२ ग्राटडफ की 'हिस्ट्री ऑफ् मरहटाज' मे इस घटना का समय ई० सन् १७३५ लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ३९०)।

मारवाड की ख्यातों मे लिखा है कि इसी समय राजाधिराज बखतसिंहजी ने जाकर गोपालपुरे की गढी को घेर लिया। उस समय बीकानेर-नरेश जोरावरसिहजी उसी मे ठहरे हुए थे। इसी बीच दिल्ली से महाराज की आज्ञा आ जाने के कारण जोधपुर की फौज का एक दस्ता भी राजाधिराज की मदद में वहाँ जा पहुँचा। यह देख बीकानेरवाले घबरा गए और उन्होंने कुछ रुपये और सरहदी इलाका राजाधिराज को देकर उनसे सधि कर ली।

उक्त सूबे की सारी आय का आधा भाग देने की प्रतिज्ञा पर, अपनी सहायता के लिये तैयार किया। यह देख महाराज ने (अपने प्रतिनिधि) रत्नसिंह को उनके सम्मिलित बल का यथा-शक्ति मुकाबला करने की आज्ञा भेज दी। परन्तु जब मोमीनखाँ और मरहटों की विशाल सेनाएँ अहमदाबाद के बिलकुल निकट पहुँच गईं, तब रत्नसिंह ने लाचार होकर वहाँ का सारा हाल महाराज को लिख भेजा। इस पर महाराज को इतना क्रोध आया कि यह बादशाह के सामने ही दरबार से उठकर रवाना हो गए। यह देख उपस्थित शाही अमीरों में घबराहट छा गई, और उन्होंने महाराज को वापस बुलवाकर बादशाह से गुजरात की सूबेदारी फिर से इन्हीं के नाम लिखवा दी[1]। परन्तु इसी के साथ बादशाह ने यह इच्छा प्रकट की कि गुजरात की नायबी भंडारी रत्नसिंह से लेकर राठोड़ अभयकरण को दे दी जाय। इस आज्ञा के पहुँचने पर मोमीनखाँ ने यह प्रस्ताव किया कि यदि रत्नसिंह बादशाही हुक्म के अनुसार अपना कार्य-भार अभयकरण को सौंप दे, और नगर की रक्षा का भार फिदाउद्दीनखाँ को दे दे, तो मैं कैंबे (खंभात) की तरफ जाने को तयार हूँ। परन्तु रत्नसिंह ने यह बात नहीं मानी। इस पर खाँ ने दामाजी मरहटे को भी अपनी सहायता के लिये बुलवा लिया। इस प्रकार मरहटों की सहायता लेकर मोमीन ने अहमदाबाद पर चढ़ाई की। यद्यपि रत्नसिंह ने एक बार तो बड़ी वीरता से उनके सम्मिलित सैन्य को मार भगाया, तथापि अंत में नगर को अधिक काल तक सुरक्षित रखना असंभव समझ मोमीन से संधि करली। इसी के अनुसार वह (रत्नसिंह) उस (मोमीनखा) से अपने मार्ग-व्यय के लिये कुछ रुपये लेकर, शस्त्रों से सजे अपने दल के साथ, नगर से रवाना हो गया। उसके इस प्रकार चले जाने पर अहमदाबाद पर मोमीनखाँ का अधिकार हो गया। परन्तु इसके साथ ही उक्त प्रांत की आधी आमदनी के साथ-साथ अहमदाबाद का आधा नगर भी मरहटों के अधिकार में चला गया[2]।

---

१ बँबे गजेटियर भा० १, खंड १, पृ० ३१८-३१९।

२ बँबे गजेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१९-३२०। वि० सं० १७९५ (ई० सन् १७३८-१७३९) में नादिरशाह के आक्रमण ने मुगल बादशाहत को और भी शिथिल कर दिया। (क्रॉनॉलॉजी ऑफ् मोडर्न इंडिया, पृ० १७७-१७८)।

वि० सं० १७९४ (ई० सन् १७३७) में महाराजा ने शाहपुरे के राजा उम्मैदसिंहजी को ले जाकर बादशाह से मिलाया था। (राजपूताने का इतिहास, खंड ३, पृ० ९४३)।

१७४१) में, महाराज अभयसिंहजी बीकानेर का घेरा उठाकर जोधपुर चले आए[1]। इसी गड़बड़ में मौका पाकर बखतसिंहजी ने फिर मेड़ते पर अधिकार कर लिया। परन्तु अन्त में दोनों भाइयों के आपस में फिर सुलह हो गई[2]। जयपुर-महाराज भी कुछ दिन जोधपुर में रहकर और भंडारी रघुनाथ के समझाने पर फौज खर्च के रुपये वसूल कर वापस लौट गए[3]।

इसके बाद वि० सं० १७९८ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७४१ की मई) में महाराज ने जयपुरवालों से बदला लेने का इरादा किया, और इसकी सूचना बखतसिंहजी के पास भी भेज दी। इस पर उन्होंने अजमेर पहुँच उस पर अधिकार कर लिया। जैसे ही आगरे में राजा जयसिंहजी को जोधपुरवालों के अजमेर पर अधिकार कर जयपुर पर आक्रमण करने के विचार की सूचना मिली, वैसे ही वह ५०,००० सवारों को लेकर इनके मुकाबले को चल पड़े। परन्तु अभी महाराज अभयसिंहजी का मुकाम रीयाँ में ही था कि राजाधिराज बखतसिंहजी को शत्रु-सैन्य के (अजमेर के पास) गँगवाना नामक स्थान पर पहुँचने का समाचार मिला। इस पर वह महाराज के आने की राह न देख अकेले ही जयपुर की सेना से जा भिड़े[4]। ख्यातों से ज्ञात

१ बीकानेर के इतिहास में इस घेरे का तीन महीने और पाँच दिन रहना लिखा है (देखो पृ० १६८)।

मारवाड़ की ख्यातों में महाराज का सावन सुदी ४ को जोधपुर पहुँचना लिखा है।

२ किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि मेल करते समय महाराज ने बखतसिंहजी की इच्छा के अनुसार मेड़ते के बदले जालोर का प्रांत उनको दे दिया था।

३ ख्यातों में लिखा है कि जोधपुर में मुकाबला होने के पूर्व ही सुलह होजाने से जयपुर वालों को मिथ्याभिमान होगया था। इसीसे उनके लौटने के समय भखरी के ठाकुर मेड़तिया केसरीसिंह ने उनका गर्व मिटाने के लिये बड़ी वीरता से इनका सामना किया। इस विषय का यह सोरठा प्रसिद्ध है.—

केहरिया करनाल, जो न जुडत जयसाह सूँ।
आ मोटी अवगाल, रहती सिर मारूधरा॥

४ किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि जयसिंहजी ने जोधपुर से लौटते हुए अजमेर पर अधिकार कर लिया था। इसी से बखतसिंहजी ने वहाँ पहुँच उनके आदमियों को भगा दिया। श्रीयुत सारडा ने अपने 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है—

ई० सन् १७३१ (वि० सं० १७८८) के कुछ काल बाद भरतपुर के जाटों ने राजा चूड़ामन की अधीनता में आगरे पर आक्रमण शुरू कर दिए। बादशाह ने वहाँ की रक्षा का भार जयपुर-नरेश

होता है कि यद्यपि उस समय बखतसिंहजी के पास केवल ५,००० और जयसिंहजी के पास करीब ५०,००० सैनिक थे, तथापि उन्होने बड़ी वीरता से जयपुरवालो पर आक्रमण किया। एक बार तो जयपुरवालो के पैर ही उखड गए थे। परतु बखतसिंहजी

जयसिंहजी को सौंप अजमेर का शासन भी उन्हीं के अधिकार मे दे दिया। परन्तु ई० सन् १७४० (वि० स० १७९७) मे महाराजा अभयसिंहजी और उनके छोटे भ्राता बखतसिंहजी ने जयपुर और अजमेर पर चढाई करने का इरादा किया। इसी के अनुसार बखतसिंहजी ने जाकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। इस कार्य मे भिणाय और पिसॉगण के राठोड-शासकों ने भी उन्हें सहायता दी थी। जब इसकी सूचना जयसिंहजी को मिली, तब वे ५०,००० सैनिकों को लेकर आगरे मे उनके मुकाबले को चले। परन्तु उनके गॅगवाना स्थान पर पहुँचने पर, ई० सन् १७४१ की ८ जून (वि० स० १७९८ की आषाढ सुदी ६) को अकेले बखतसिंहजी ने केवल ५,००० सवारो को साथ लेकर जयपुर-नरेश का सामना किया। इसके बाद वह पुष्कर मे अपने बडे भ्राता अभयसिंहजी के पास चले गए। अनतर दोनों भाइयों न मिलकर फिर (अजमेर स ८ कोस पूर्व पर के) लाडपुरा नामक गॉव मे जयसिंहजी की सेना को जा घेरा। परन्तु इस वार के हमले म जयसिंहजी ने अपने को राठोडों से लोहा लेने मे असमर्थ समझ, रघुनाथ भडारी के द्वारा, सधि करली। इसी के अनुसार जयसिंहजी ने परबतसर, रामसर, अजमेर आदि के सात परगने अभयसिंहजी को सौंप दिए। परन्तु फिर भी अजमेर के किले पर जयसिंहजी का ही अधिकार रहा। अत. ई० सन् १७४३ के अक्टोबर (वि स० १८०० के कार्त्तिक) में उनके मरने पर अभयसिंहजी ने सेना भेज कर उस पर अधिकार कर लिया। इसी के साथ राजा सूरजमल गौड से राजगढ भी छीन लिया।

इसके बाद सवाई राजा जयसिंहजी के उत्तराधिकारी राजा ईश्वरीसिंहजी ने फिर स अजमेर पर अधिकार करने के लिये चढाई की। इसकी सूचना पाते ही महाराजा अभयसिंहजी अपने छोटे भ्राता बखतसिंहजी के साथ वहा जा पहुँचे और इन्होंने अजमेर की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लिया। यहीं पर कोटे का भट्ट गोविंदराम भी ५,००० सवारों के साथ आकर महाराज के साथ हो गया। अभयसिंहजी के पास उस समय ३०,००० सवार हो गए थे। अत ईश्वरीसिंहजी के (अजमेर से ८ कोस पर के) ढानी नामक स्थान पर पहुँचने पर दोनों तरफ से युद्ध की तैयारी हुई। परन्तु इसी बीच जयपुर के रायमल और जोधपुर के पुरोहित जग्गू (जगन्नाथ) ने बीच मे पड दोनों नरेशों मे सधि करवा दी (देखो पृ० १६७-१६६)।

परन्तु वास्तव मे चूडामन जाट हि० सन् ११३३ (वि० स० १७७८=ई० सन् १७२१) म ही मर चुका था। अत ई० सन् १७३१ मे वह इस उपद्रव मे कैसे शरीक हुआ होगा? (देखो लेटर मुगल्स भा० २, पृ० १२२ और ऑरियटल बायोग्राफिकल डिक्शनरी, पृ० ११५)।

कर्नल टॉड ने गॅगवाने के युद्ध का वर्णन इसप्रकार किया है.–

जैसे ही दोनों तरफ की सेनाएँ एक दूसरी के पास पहुँचीं, वैसे ही बखतसिह ने अपनी सेना लेकर ऑबेर की विशाल-वाहिनी पर हमला कर दिया। इसके बाद वह तलवार की धार और भाले की नोक से शत्रु-सैन्य को नष्ट करता और चीरता हुआ उसके भीतर प्रवेश करने लगा। परन्तु जिस समय उसने मुडकर देखा, उस समय उसके साथ के सवारों मे से केवल ६० सवार ही बाकी बचे

के भी बहुत-से वीर मारे जा चुके थे, इसलिये वहाँ पर अधिक ठहरना हानिकारक समझ वह रीयाँ में महाराज के पास चले आए। इसके बाद फिर शीघ्र ही दोनो भाइयो ने मिलकर दुबारा राजा जयसिंहजी पर चढाई की। परन्तु जयसिंहजी हाल मे ही राठोडो के बाहु-बल की परीक्षा कर चुके थे, इसलिये उन्होंने महाराज से मेल कर लेने में ही अपना हित समझा, और इसीसे मारवाड के परबतसर आदि सातो परगने, जिन पर उन्होने पहली बार की चढाई के समय अधिकार कर लिया था, महाराज को सौंप दिए। इसके साथ ही हाल के गँगवाने के युद्ध में हाथ लगी बखतसिंहजी की सेना की दो तोपे और मुरलीमनोहरजी की मूर्ति-सहित हाथी[2] भी वापस देकर इनसे संधि कर ली। इसके बाद महाराना जगत-

---

थे। ऐसे अवसर पर यद्यपि राजसिंहपुरे के ठाकुर ने पीछे के जगल की तरफ इशारा कर उसमे उधर लौट चलने का आग्रह किया, तथापि राठोड-वीर ने पीछे पैर रखने म साफ इनकार कर दिया, और सामने ही जयपुर-नरेश जयसिंहजी के पचरगे झडे को देख उस पर हमला कर दिया। इस पर चतुर कुमानी ने, जो राजा जयसिंह और उनके झडे के पास ही खड़ा था, उन्हें (जयसिंहजी को) शीघ्र ही वहाँ से टल जाने की सलाह दी। इसके अनुसार वह शत्रु के सामने पीठ दिखाना लज्जा-जनक समझ बाजू की ओर के खडेले की तरफ निकल गए। परन्तु रणागण छोड़ते समय उनके मुख मे आप ही आप ये शब्द निकल पडे.–

"यद्यपि आज तक मैंने १७ युद्धों मे भाग लिया है, तथापि आज से पहले एक भी युद्ध ऐसा नहीं हुआ, जिसमे आज के युद्ध की तरह केवल तलवार के बल से ही विजय का फैसला हुआ हो।"

कर्नल टॉड ने आगे लिखा है कि इस प्रकार सफलताओं से पूर्ण आयु व्यतीत करनेवाले राजस्थान के एक सबसे जबरदस्त, विद्वान् और बुद्धिमान् नरेश को मुट्ठी-भर वीरों के सामने से इस बेइज्जती के साथ हटना पड़ा। इससे यह कहावत और भी पुष्ट हो गई

"युद्ध मे एक राठोड़ ने दस कछवाहों की बराबरी की।"

इसी के आगे कर्नल टॉड जयपुर-नरेश जयसिंहजी के कवियों द्वारा की गई बखतसिंहजी की तारीफ के विषय मे इस प्रकार लिखता है –

"Jai Singh's own bards could not refrain from awarding the meed of valour to their foes, and composed the following stanzas on the occasion "Is it the battle cry of Kali, or the war shout of Hanumanta or the hissing of Seshnag, or the denunciation of Kapaliswar? Is it the incarnation of Narsingh, or the darting beam of Surya? or the death glance of the Dakini? or that from the central orb of Trinetra? Who could support the flames from this volcano of steel when Bakhta's sword became the sickle of time?"

(ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान (क्रुक-सपादित) भा० २, पृ० १०५०-१०५१)।

१. ख्यातों में इन्हीं के साथ 'फेकडी' का भी वापस देना लिखा है।

२. राजाधिराज बखतसिंहजी को मुरलीमनोहरजी का इष्ट था। इसी से उनकी मूर्ति, हाथी के हौदे मे बिठलाई जाकर, युद्ध मे साथ रक्खी जाती थी। यही हाथी गँगवाने के युद्ध

सिंहजी (द्वितीय) ने बीच में पड इस संधि को पक्की करने के लिये दोनों पक्षों के बीच मित्रता करवा दी । यह घटना वि० सं० १७९८ (ई० सन् १७४१) की है ।

वि० सं० १८०० (ई० सन् १७४३) में जयपुर-नरेश जयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया, और उनके उत्तराधिकारी राजा ईश्वरीसिंहजी वहाँ की गद्दी पर बैठे[2] । इसी वर्ष महाराज अभयसिंहजी ने सेना भेजकर अजमेर के किले पर अधिकार कर लियाँ[3] । यह समाचार सुन जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी ने अजमेर पर चढाई की । इसी समय भट्ट गोविंदराम ने कोटे से ५,००० सवारों के साथ आकर महाराज का पक्ष ग्रहण किया । परंतु अन्त में बिना लडे ही दोनों पक्षों के बीच संधि हो गई । इस से अजमेर महाराजा अभयसिंहजी के अधिकार में ही रह गया । यह घटना वि० सं० १८०१ (ई० सन् १७४४) की है ।

वि० सं० १८०४ (ई० सन् १७४७) में महाराज ने बीकानेर पर फिर एक फौज भेजी । उस समय वहाँ पर स्वर्गवासी महाराजा जोरावरसिंहजी के चचा आनन्दसिंहजी के द्वितीय पुत्र गजसिंहजी का अधिकार था । अतः महाराज की सेना को आई देख महाराज गजसिंहजी के बडे भ्राता अमरसिंहजी भी उससे आ मिले[4] । इस पर राजा गजसिंहजी ने बडी वीरता से इनका सामना किया । यह घटना श्रावण (जुलाई) महीने की है । इसके बाद महाराज ने एक सेना वहाँ और भेज दी[5] । परन्तु कुछ काल बाद ही दोनों पक्षों के बीच संधि हो गई । इससे महाराज की सेना जोधपुर लौट आई ।

में भटककर शत्रु-सेना में चला गया था । इसी प्रकार राजाधिराज की सेना के करीब-करीब सारे वीरों के मारे जाने के कारण उनकी दो तोपें भी जयपुरवालों के हाथ लग गई थीं ।

१. ख्यातों में इस घटना का आश्विन सुदी १४ को होना लिखा है ।

२ क्रॉनोलॉजी ऑफ मॉडर्न इंडिया, पृ० १८३ ।

३ ख्यातों में लिखा है कि इसी समय महाराज के सेनापति ने राजा किशोरसिंहजी को १२ गाँवों-सहित गजगढ का अधिकार सौंप दिया था । उनमें यह भी लिखा है कि महाराज की आज्ञा से राजा किशोरसिंह और पचोली बालकृष्ण ने जाकर राव उम्मैदसिंहजी को बूँदी पर अधिकार करने में सहायता दी थी ।

४. 'बीकानेर की तवारीख' में अमरसिंह का महाराज के पास सहायता के लिये अजमेर आना और उसी के लिये महाराज का बीकानेर पर फौज भेजना लिखा है । उसमें यह भी लिखा है कि अंत में उसे असफल होकर लौटना पड़ा था (देखो पृ० १७३-१७५) ।

५ अगली सेना के सेनापति भंडारी रतसी के मारे जाने से यह नई सेना भेजी गई थी ।

इसी वर्ष के माघ (ई० सन् १७४८ की जनवरी) में अहमदशाह दुर्रानी ने पंजाब पर चढ़ाई की[1]। यह देख बादशाह ने महाराजा अभयसिंहजी और राजा बखतसिंहजी को अपनी सहायता के लिये दिल्ली बुलवाया। यद्यपि महाराज राज्य के कार्यों में लगे होने से उधर न जा सके, तथापि राजाधिराज बखतसिंहजी वहाँ जा पहुँचे।

इसके बाद वि० सं० १८०४ की फागुन वदी ५ (ई० सन् १७४८ की ८ फरवरी) को बादशाह ने उन्हें शाहजादे अहमदशाह के साथ शत्रुओं के मुकाबले को भेजा। सरहिंद में युद्ध होने पर अफग़ान हारकर भाग गए, और लाहौर पर फिर मुहम्मदशाह का अधिकार हो गया।

वि० सं० १८०५ की वैशाख वदी १४ (ई० सन् १७४८ की १५ अप्रेल) को बादशाह मुहम्मदशाह मर गया, और उसका पुत्र अहमदशाह दिल्ली के तख़्त पर बैठा। इसके बाद वि० सं० १८०५ की सावन सुदी १ (ई० सन् १७४८ की १५ जुलाई) को उसने राजाधिराज बखतसिंहजी को गुजरात की सूबेदारी दी[4]। परन्तु उस समय चारों तरफ मरहटों के आक्रमण हो रहे थे। अतः उन्होंने गुजरात जाना उचित न समझा, और वह दिल्ली से लौटकर जोधपुर चले आए। यहाँ पर कुछ दिन बाद ही फिर महाराज और बखतसिंहजी के बीच मनोमालिन्य उठ खड़ा हुआ। परन्तु शीघ्र ही मल्हारराव ने बीच में पड़ दोनों में मित्रता करवा दी।

इसी वर्ष जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी और उनके छोटे भाई माधोसिंहजी के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस पर मल्हारराव होल्कर ने माधोसिंहजी और बूँदी के उम्मेदसिंहजी का पक्ष लेकर जयपुर पर चढ़ाई की। इस समय महाराना जगतसिंहजी

१ क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इन्डिया, पृ० १८८।

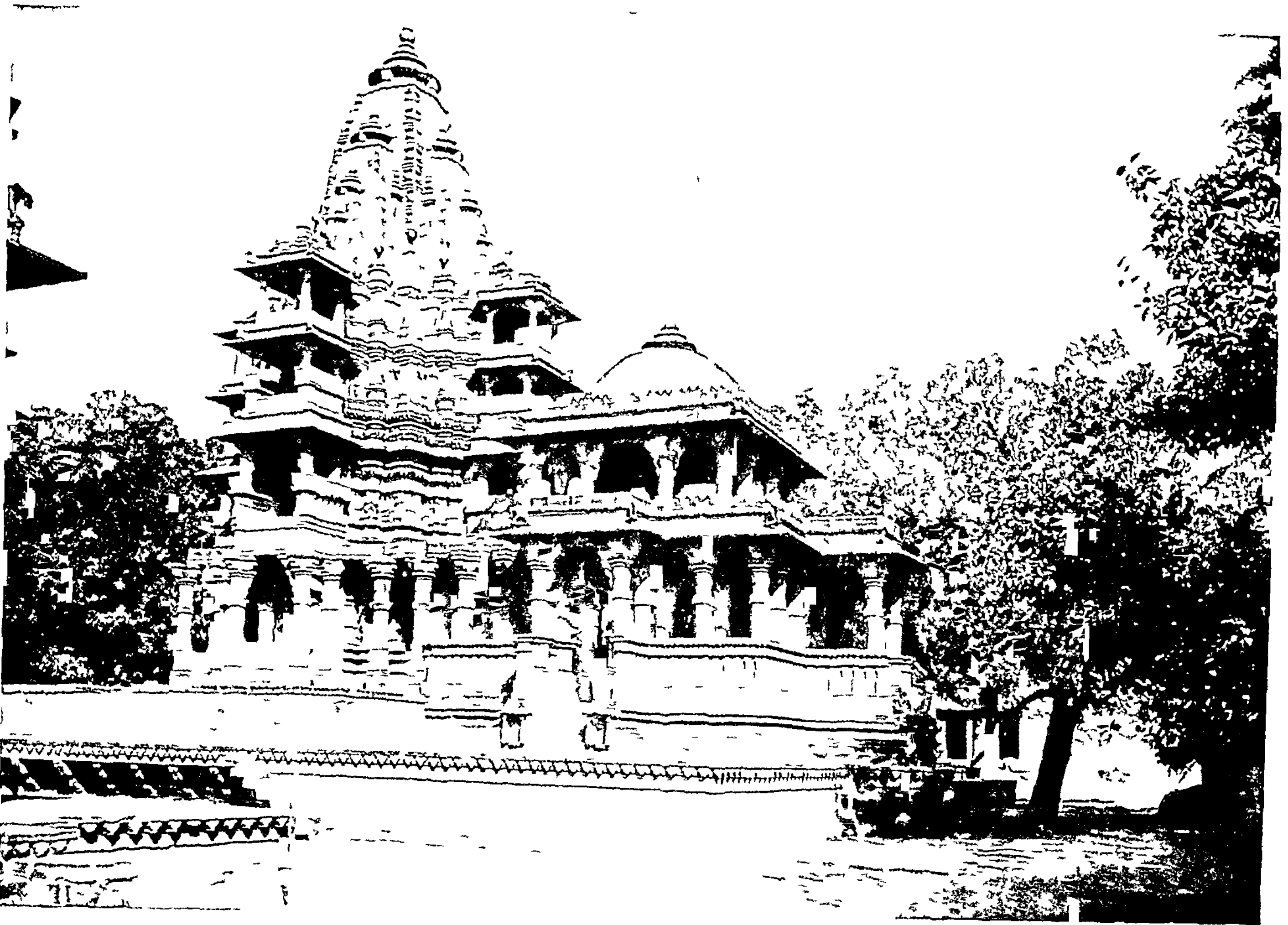
२ क्रॉनोलॉजी ऑफ मॉडर्न इन्डिया, पृ० १८८। (यद्यपि उसमें उस दिन १८ फरवरी का होना लिखा है, तथापि गणना में १६ सफर को ८ फरवरी आती है)।

३ 'क्रॉनोलॉजी ऑफ मॉडर्न इन्डिया' में उस दिन हि० सन् ११६१ की २७ रबिउल आखीर को ई० सन् १७४८ की २७ अप्रेल का होना लिखा है। (देखो पृ० १८८)।

४ बाँबे गजेटियर, भा० १, ख० १, पृ० ३३२।

५. किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि इसी समय महाराज ने बखतसिंहजी से जालोर लेकर उसकी एवज में उन्हें डीडवाने का प्रांत दिया था।

६ ख्यातों में साँभर, डीडवाने और जालोर के बारे में मनोमालिन्य होना लिखा है।



महाराजा अजितसिंहजी का स्मारक, मंडोर

(द्वितीय) की प्रार्थना पर महाराज ने भी अपने दो हजार सवार रीयाँ ठाकुर शेरसिंह और ऊदावत कल्याणसिंह के साथ माधोसिंहजी की सहायता को भेज दिए[2]।

वि० स० १८०६ की आषाढ सुदी १५ (ई० सन् १७४९ की १९ जून) को अजमेर में महाराजा अभयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया।

महाराजा अभयसिंहजी अपने पिता के समान ही वीर, साहसी, बुद्धिमान् और दानी थे[3]।

महाराजा अभयसिंहजी के महाराजकुमार का नाम रामसिंहजी था[4]।

महाराज अभयसिंहजी ने निम्न-लिखित स्थान बनवाए थे –

अभयसागर तालाव (जोधपुर के चाँदपोल दरवाजे के बाहर), चौखाँ गाँव का बगीचा, अठपहलू कूँआ, कोट और महल (इन महलो का बनना प्रारम्भ होकर ही रह गया था), महाराजा अजितसिंहजी का देवल (यह मण्डोर मे है। पर उनके समय

---

१ इस युद्ध मे ईश्वरीसिंहजी की पराजय हुई। इसी से उन्हे उम्मैदसिंहजी को बूंदी और माधोसिंहजी को टोंक के ४ परगने देने पडे। (राजपूताने का इतिहास, खण्ड ३ पृ० ६४७)।

२. किशनगढ नरेश महाराजा राजसिंहजी के चतुर्थ पुत्र बहादुरसिंहजी पर महाराज की पूर्ण कृपा थी।

३ महाराज ने शायद निम्न-लिखित ७ गाँव दान दिए थे.–

१. आलावास, २ लोलावस (जोधपुर परगने का) ३ कूँपडावास (बीलाड़ा परगने का) ४ टाटरवा, ५ रॉणावास (मेडत परगने का) और ६ चाँचलवा (शेरगढ परगने का)। इनमे का पिछला गाँव वि० स० १७८६ मे और बाकी के वि० स० १७८१ (ई० सन् १७२४) मे दिए गए थे। इनके अलावा वि० स० १७८६ (ई० सन् १७२९) मे इन्होंने गोसाईंजी को कोटे से बुलवाकर चौपासनी नामक गाँव दिया था, और साथ ही उनके लिये मारवाड के प्रत्येक गाँव के पीछे १ रुपया लाग का नियत कर दिया था।

४ वि० स० १७८२ की फागुन बदी ६ के महाराज की तरफ मे लिखे गए एक पट्टे मे इनके महाराजकुमार का नाम जोरावरसिंह लिखा है (यह बात पहले भी यथास्थान फुटनोट मे लिखी जा चुकी है)।

तक यह अधूरा ही रह गया था । इसीसे बाद में वि० स० १८६० (ई० सन् १८०३) मे समाप्त हुआ), मंडोर का दरवाजा (ड्योढी) और उस पर का मकान, देवताओ की मूर्तियाँ (जो महाराजा अजितसिंहजी की बनवाई पाबू आदि वीरो की मूर्तियो के पास ही पहाड़ काटकर बनवाई गई थी), उन मूर्तियो का दालान, जोधपुर के किले का पक्का कोट, गोल की तरफ की पूर्वी बुर्जे (ये अधूरी ही पड़ी हैं, और अभयशाही बुर्जो के नाम से प्रसिद्ध हे), किले में का चौकेलाव का कूँआ, बाग और फतहपोल (यह दरवाजा अहमदाबाद-विजय की यादगार में बनवाया गया था । इस युद्ध मे विजय प्राप्त करने के बाद महाराज बहुत-से द्रव्य के साथ ही अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ भी जोधपुर मे लाए थे । उनमे का 'दल-बादल' नामक बड़ा शामियाना आज तक बड़े-बड़े दरबारो के समय काम मे लाया जाता है, और 'इंद्रविमान' नामक हाथी का रथ सूरसागर नामक स्थान मे रक्खा हुआ है) ।

---

१ जोधपुर के किले मे का फतहमहल पर का फूलमहल और कछवाहीजी का महल भी इन्ही के बनवाए बतलाए जाते हैं ।

२८. महाराजा रामसिंहजी

यह मारवाड-नरेश महाराजा अभयसिंहजी के पुत्र थे। इनका जन्म वि० स० १७८७ की प्रथम भादो वदी १० (ई० सन् १७३० की २८ जुलाई) को हुआ था, और पिता की मृत्यु के बाद वि० स० १८०६ की सावन सुदी १० (ई० सन् १७४९ की १३ जुलाई) को यह मारवाड की गद्दी पर बैठे। यद्यपि यह भी अपने पिता के समान ही वीर प्रकृति के पुरुष थे, तथापि उस समय केवल उन्नीस वर्ष की अवस्था होने के कारण इनके स्वभाव मे चचलता अधिक थी। इसी से इनके राज्याधिकार प्राप्त कर लेने पर, मुँह-लगे लोगो के कहने-सुनने से, इनके और इनके चचा राजाधिराज बखतसिंहजी के बीच मनोमालिन्य हो गया और यह उनको जालोर का प्रात लौटा देने के लिये दबाने लगे। इसी बीच मौंडा ठाकुर कुशलसिंह, चडावल ठाकुर कूँपावत पृथ्वीसिंह, रायण ठाकुर वनेसिंह आदि मारवाड़ के कई सरदार इनसे अप्रसन्न हो गए। उनमें से जब कुछ लोग राजाधिराज बखतसिंहजी के पास नागोर पहुँचे, तब उन्होने बडे आदर-मान के साथ उन्हे अपने पास रख लिया। इससे अप्रसन्न होकर महाराजा रामसिंहजी ने नागोर पर चढाई की। यह देख राजाधिराज बखतसिंहजी ने भी अपने अधीन के प्रत्येक

---

१. कुछ ख्यातों से ज्ञात होता है कि महाराजा रामसिंहजी ने, अपने राजतिलक के सम्बन्ध मे आया हुआ, अपने चचा की तरफ का 'टीका' (उपहार) यह कहकर लौटा दिया था कि जब तक नागोर का प्रात हमें नहीं सौंपा जायगा तब तक हम यह स्वीकार नहीं करेंगे।

२ ख्यातों से ज्ञात होता है कि अपनी मृत्यु के पूर्व महाराजा अभयसिंहजी ने रीयाँ के ठाकुर शेरसिंह से राजकुमार रामसिंहजी के पक्ष म बने रहने की प्रतिज्ञा करवा ली थी। परतु एक बार रामसिंहजी ने उस ठाकुर के एक सेवक को ले लेने का हठ किया। इस कारण वह भी अप्रसन्न होकर अपनी जागीर मे चला गया। अन्त मे जब महाराजा रामसिंहजी ने नागोर पर चढाई की, तब कोसाने के चादावत देवीसिंह को भेजकर शेरसिंह को नागोर की इस चढाई में साथ देने के लिये सहमत कर लिया और इसके बाद यह स्वय रीयाँ जाकर उसे साथ ले आए।

समुचित स्थान पर इनके मुकाबले का प्रबन्ध करवा दिया। इसीसे वहाँ पहुँचने पर महाराज की सेना के आगे बढ़ने में जगह-जगह बाधा उपस्थित होने लगी। फिर भी महाराज अपनी वीर-वाहिनी के साथ, बड़ी वीरता से शत्रुओं का दमन करते और उनकी उपस्थित की हुई बाधाओं को हटाते हुए, नागोर के पास जा पहुँचे। इस पर इनके बढ़ते हुए दल का मार्ग रोकने के लिये स्वयं राजाधिराज को आगे आकर मुकाबला करना पड़ा। कुछ दिनों तक तो दोनों तरफ के राठोड़-वीर आपस में लड़कर अपने ही कुटुंबियों और मित्रों के रक्त से रणभूमि को सींचते रहे। परन्तु अन्त में बखतसिंहजी के जालोर का प्रांत लौटा देने की प्रतिज्ञा कर लेने पर महाराज अपनी सेना के साथ मेड़ते लौट आए। इसके कुछ दिन बाद ही राजाधिराज बखतसिंहजी, जालोर लौटाने का विचार त्यागकर, बादशाह अहमदशाह की सहायता प्राप्त करने के लिये दिल्ली चले गए। परन्तु उस समय मरहटों के उपद्रव के कारण दिल्ली की बादशाहत नाम-मात्र की रह गई थी। इसलिये उधर से सहायता मिलना असंभव था। यह देख राजाधिराज ने 'अमीरुलउमरा' सलाबतखाँ[3] (जुल्फिकारजंग) को अजमेर पर अधिकार करने में, मरहटों के विरुद्ध, सहायता देने का वादा कर, उससे जोधपुर पर अधिकार करने में सहायता माँगी। जैसे ही इस घटना की सूचना महाराजा रामसिंहजी को मिली, वैसे ही इन्होंने भी जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी से सहायता प्राप्त करने का प्रबंध कर लिया। इसी बीच रास ठाकुर ऊदावत केसरीसिंह, नींबाज ठाकुर कल्याण-

१ राजाधिराज बखतसिंहजी ने सोचा कि मार्ग में जिस समय महाराजा रामसिंहजी की सेना देसवाल आदि की गढ़ियों पर अधिकार करने में उलझी होगी, उस समय पीछे से आक्रमण कर उसका शिविर और सामान आसानी से लूट लिया जायगा। परन्तु महाराज के साथ के दूरदर्शी सरदारों ने ऐसा अवसर ही न आने दिया।

२ ऐसा भी लिखा मिलता है कि जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी ने यह सुनकर यह प्रबंध कर दिया था कि बखतसिंहजी को जालोर के बदले अजमेर प्रांत के कुछ स्थान सौंप दिए जायँ और जालोर की मोरचेबंदी को ठीक करने में जो तीन लाख रुपये खर्च हुए हैं, वे भी जोधपुर के खजाने से दे दिए जायँ। परन्तु जब तक यह रुपया न दिया जाय, तब तक जालोर पर बखतसिंहजी का ही अधिकार रहे। (तवारिख राज श्री बीकानेर पृ० १७७)।

३ विक्रम संवत् १८०५ (ईसवी सन १७४८) में बादशाह अहमदशाह ने इसे अपना 'मीर बख्शी' बनाया था।

४ जयपुर-नरेश महाराजा ईश्वरीसिंहजी की कन्या का विवाह महाराजा रामसिंहजी से होना निश्चित हो चुका था। इसी से वह इनकी सहायता को तैयार हुए थे।



IAHAPAI, RAM SINCH

२८. महाराजा रामसिहजी

वि० स० १८०६-१८०८ (ई० स० १७४९-१७५१)

सिंह, आसोप ठाकुर कूँपावत कनीराम और आउवा ठाकुर चाँपावत कुशलसिंह महाराज से नाराज होकर नागोर चले गए, और बखतसिंहजी के दिल्ली में होने के कारण उनके राजकुमार विजयसिंहजी को साथ लेकर जोधपुर-राज्य के बीसलपुर, काकेलाव, बनाड़ आदि गाँवों में उपद्रव करने लगे। कुछ दिन बाद इसी प्रकार पौकरन ठाकुर चाँपावत देवीसिंह और पाली ठाकुर चाँपावत पेमसिंह भी महाराज से अप्रसन्न होकर राजकुमार विजयसिंहजी के पास जा पहुँचे। बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और रूपनगर (किशनगढ) के स्वामी बहादुरसिंहजी ने पहले से ही राजाधिराज का पक्ष ले रक्खा था। परन्तु जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी और मल्हारराव होल्कर, महाराज रामसिंहजी की तरफ थे। बखतसिंहजी के दिल्ली से लौट आने पर पीपाड के पास दोनों पक्षों के बीच घमसान युद्ध हुआ। ख्यातों मे लिखा है कि इस युद्ध के समय बखतसिंहजी ने, सलावतखाँ को समझाकर, सेना-संचालन का भार अपने जिम्मे लेना चाहा। परन्तु वह इसमें अपना अपमान समझ, सहमत न हुआ। इससे युद्ध के समय महाराज रामसिंहजी की सेना के प्रहार से बहुत-सी यवन-सेना नष्ट होगई और रण-खेत महाराजा रामसिंहजी के ही हाथ रहा। यह घटना विक्रम-संवत् १८०७ (ईसवी सन् १७५०) की है।

'सहरुल मुताखरीन'[1] में इस घटना का हाल इस प्रकार लिखा है:—

"हि० स० ११६१ (वि० सं० १८०५=ई० स० १७४८) में राजा बखतसिंह, जो अपने समय के राजपूताने के सब नरेशों में श्रेष्ठ था और जिसकी वीरता और बुद्धिमानी उस समय के सब राजाओं से बढ़ी-चढ़ी थी, दिल्ली आकर बादशाह अहमदशाह से मिला। वह अपने भतीजे राजा रामसिंह से जोधपुर, मेड़ता आदि का अधिकार छीनना चाहता था। इसलिये उसने, हर तरह की मदद देने का वादा कर, जुल्फिकारजंग को अजमेर की सूबेदारी लेने के लिये तैयार किया और इसके बाद वह नागोर को लौट गया। कुछ समय बाद जब 'अमीरुल उमरा' (जुल्फिकारजंग) को अजमेर की सूबेदारी मिली, तब वह अगले साल के अखीर (वि० स० १८०६=ई० सन् १७४९) में कई अमीरों के साथ चौदह-पंद्रह हजार सैनिक लेकर दिल्ली से रवाना हुआ। मार्ग में यद्यपि साथ के अमीरों ने उसे बहुत मना किया, तथापि उसने नीमराने के स्वामी जाट-नरेश सूरजमल पर चढ़ाई कर दी। परंतु अन्त में, युद्ध मे हार जाने के कारण

1. सहरुल मुताखरीन, भा० ३, पृ० ८८३-८८५।

उसे सूरजमल से संधि करनी पड़ी। इसके बाद जब वह (जुल्फिकार) नारनौल पहुँचा, तब राजा बखतसिंह भी पूर्व-प्रतिज्ञानुसार वहाँ चला आया। उसके आने का समाचार पाते ही जुल्फिकार सामने जाकर उसे लिवा लाया। उस समय राजा ने उसे जाट-नरेश सूरजमल की अधीनता स्वीकार कर लेने के कारण बहुत धिक्कारा। इसके बाद बखत-सिंह और जुल्फिकारजंग दोनों अजमेर की तरफ रवाना हुए। इनके गोकलवाट के करीब (अजमेर के निकट) पहुँचने पर राजा रामसिंह भी जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह के साथ तीस हजार सवार लेकर इनके मुकाबले को चला। 'अमीरुलउमरा', जुल्फिकार-जंग राजा बखतसिंह के साथ पुष्कर, गेरसिंह की गीयाँ और मेड़ते होता हुआ पीपाड़ के पास पहुँचा। यहाँ पर बखतसिंह ने 'अमीरुल उमरा' को समझाया कि जिस मार्ग से शाही सेना चल रही है, उस मार्ग मे रामसिंह का तोपखाना लगा है। इसलिये तुमको इधर-उधर का ध्यान छोड़कर मेरे पीछे-पीछे चलना चाहिए। परन्तु मूर्ख और अभिमानी जुल्फिकार ने जवाब दिया कि आदमी एक दफा जिधर मुँह कर लेते हैं फिर उधर से उसे नहीं मोड़ते। इस पर बखतसिंह को लाचार हो, शत्रु की तोपों की मार से बचने के लिये, जुल्फिकार की सेना से हटकर चलना पड़ा। अपनी तोपों के पीछे खड़ी राजा रामसिंह की राजपूत-सेना भी जुल्फिकार की सेना के अपनी मार के भीतर पहुँचने तक धीरज बाँधे खड़ी रही। परन्तु जैसे ही उसकी फौज राजपूत-सेना की तोपों की मार में आ गई, वैसे ही उसने उस पर गोले बरसाने शुरू कर दिए। इससे जुल्फिकार के बहुत से सिपाही मारे गए। यह देख मुग़ल-फौज ने भी झटपट अपनी तोपों को ठीक कर युद्ध छेड़ दिया। कुछ देर की गोलाबारी के बाद मुग़ल-सेना को पानी की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। परन्तु उस मैदान में पानी का कहीं भी पता न था। इससे प्यास के मारे वह और भी घबरा गई। इसके बाद जैसे ही राजा रामसिंह के तरफ की गोलाबारी का वेग घटा, वैसे ही वह मैदान छोड़ पानी की तलाश करने लगी, और उसकी खोज में भटकती हुई संयोग से राजा रामसिंह की सेना के सामने जा पहुँची। उसकी यह दशा देख राजपूत सैनिकों ने अपने आदमियों को उसके लिये जल का प्रबन्ध कर देने की आज्ञा दी और उन्होंने कुओं से पानी निकालकर मुग़ल-सैनिकों को और उनके घोड़ों को तृप्त कर दिया। इस प्रकार अपने शत्रुओं को स्वस्थ हुआ देख राजपूतों ने उनसे कहा कि इस समय तुम्हारे और हमारे बीच युद्ध चल रहा है, इसलिये अब तुम्हें यहाँ से शीघ्र भाग जाना चाहिए"।

इसी के आगे 'सहरुल मुताखरीन' का लेखक लिखता है—"यद्यपि यह घटना अपूर्व है, तथापि मैंने इसे अपने मौसेरे भाई इस्माइलअलीखा की जबानी, जो उस समय जुल्फिकारजग के साथ था, सुनकर ही लिखा है। इसलिये यह बिलकुल सही है। राजपूतो का यह गुण और उच्च-स्वभाव प्रशसनीय है। ईश्वर उनको और भी सद्गुण दे'। इसके बाद यद्यपि बखतसिंह ने जुल्फिकारजग को हर तरह से समझाकर हिम्मत बँधानी चाही, तथापि वह घबराकर अजमेर की तरफ होता हुआ लौट गया। इस युद्ध में मल्हारराव होल्कर का पुत्र[2] और जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंह रामसिंह की तरफ थे, फिर भी बखतसिंह ने रसद आदि के सग्रह करने में चतुरता से और युद्ध में वीरता से काम लिया था। परन्तु जुल्फिकारजग के इस प्रकार हतोत्साह होकर लौट जाने से उसे भी युद्ध से मुँह मोड़ना पडा।"

वि० स० १८०७ की कार्तिक सुदी ९ (ई० सन् १७५० की २८ अक्टोबर) को बखतसिंहजी ने मेड़ते पर चढाई की[3]। परन्तु इसमें भी उन्हे सफलता नहीं

१ شنیده شد که وقت دوپهر که هوا چون تنورها نهایت گرم شد و نائرهٔ حرب افسردگی
پذیرفت در نواح راجپوتانه خصوص دران میدان که قلت آب در مرتبهٔ اتم و اکمل است و رفقای
امیرالامرا را بنابر بی‌آبی مضطرب گشته در تفحص آب اکثری تا نزدیک لشکر رام سنگه
رسیدند — راجپوتیه اثر عطش از سیمای آنها دریافته از چاه‌ها بدست ملازمان خود آب
کشانیده اسپ و سوار را سیراب گردانیدند، بعده الحال برگردید که میان ما و شما جنگ
است حکایت احوال در اثنای جنگ، آب دادن راجپوتیه بدشمنان نهایت صحت دارد —
چه سید اسمعیل علی خان بهادر خاله‌زاد عبدالعلی خان برادر خالوزاد فقیر دران سفر
رفیق و شریک آن لشکر بود — فقیر از زبان او استماع نموده بسلک تحریر کشید این صفت
راجپوتان از عجائب اوصاف و محامد اخلاق است، اوتعالی جمع اصناف امم عالم را
صفات حمیده و اخلاق پسندیده کرامت فرمایند—

(सहरुल मुताखरीन, भा० ३, पृष्ठ ८८५)।

२ सभव है, यह खाँडेराव हो, जो वि० स० १८११ (ई० सन् १७५४) मे जाट-नरेश सूरजमल से लडता हुआ डीग मे मारा गया था।

३ इस अवसर पर महाराजा रामसिहजी की तरफ से रीयाँ के ठाकुर शेरसिंह और राजाधिराज बखतसिंहजी की तरफ के आउवे के ठाकुर कुशलसिंह के बीच बडी वीरता से युद्ध हुआ। अन्त मे दोनों ही योद्धा आपस मे लडकर वीरगति को पहुचे। यह युद्ध वि० स० १८०७ की अगहन सुदी ६ (ई० सन् १७५० की २६ नवम्बर) को हुआ था।

मिली[1]। यह देख उन्होंने बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और रूपनगर (किशनगढ़)-नरेश बहादुरसिंहजी को साथ लेकर रायपुर पर आक्रमण किया और वहाँ के ठाकुर को आधीनस्थ करने के बाद सोजत पर भी अधिकार कर लिया। वि० सं० १८०८ के वैशाख (ई० सन् १७५१ के अप्रेल) में महाराजा रामसिंहजी के और बखतसिंहजी के बीच सालावास में युद्ध हुआ और उसके बाद 'कृपाराम' आदि में भी कई लड़ाइयाँ हुईं। अन्त में हारे ही महाराज लौटकर जोधपुर पहुँचे, वैसे ही [illegible] के मेड़ते की तरफ आने की सूचना मिली। इसलिये वह जोधपुर में [illegible] शीघ्र ही मेड़ते जा पहुँचे। इसकी खबर पाते ही बखतसिंहजी अजमेर में ठहर गए, और इन्होंने रास-ठाकुर केसरीसिंह की सलाह से, सेतारण होकर नागौर पर चढ़ाई की। परन्तु मार्ग में बाला[illegible] के मुकाम पर बलूंदे के ठाकुर ने साथ जाकर उनकी अधीनता स्वीकार करली। इसलिये वह उधर न जाकर नागौर की तरफ चले। वहाँ के ठाकुर [illegible]सिंह ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। इसके बाद वह रायपुर होकर और मार्ग को लूटते हुए, वि० सं० १८०८ के आषाढ़ (ई० सन् १७५१ के जून) में, जोधपुर पर अधिकार करने के विचार से, गंगानाडा-तालाब के स्थान पर आकर ठहरे।

वि० सं० १८०७ (ई० सन् १७५०) में जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी का देहान्त हो चुका था। इसलिये महाराजा रामसिंहजी को उस तरफ से सहायता मिलनी बंद होगई थी। इधर मारवाड़ के मेड़तिये सरदारों के सिवा करीब करीब सब ही सरदार, महाराज से बदल गए थे। इसी से जोधपुर पर बखतसिंहजी के आक्रमण करने पर थोड़ी ही देर की लड़ाई के बाद नगर के भीतरी सिपाहियों ने जोधपुर-शहर का सिवानची नामक दरवाजा खोल दिया। इस घटना से नगर पर महाराजा बखतसिंहजी का अधिकार

१. 'तवारीख राज श्री बीकानेर' में इसी वर्ष की मगसिर सुदी ६ (ई० स० १७५० की [illegible] नवम्बर) को मेड़ते के युद्ध में गजसिंहजी का हारना लिखा है। (पृ० १७८)। इसी के बाद की लड़ाई में रीयाँ का ठाकुर शेरसिंह मारा गया था।

२. इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में प्रसिद्ध है —

"रामे सूं राजी नहीं, दीनो [illegible] देस।
जोधाणो झाला रे, आप भगी [illegible]॥"

३. यह घटना वि० सं० १८०८ की आषाढ़ बदी १० (ई० सन् १७५१ की ७ जून) की है।

हो गया। यह देख किलेवालो ने कुछ देर तक तो गोलाबारी कर इनका सामना किया, परन्तु अन्त में वि० स० १८०८ की सावन बदी २ (ई० सन् १७५१ की २६ जून) को किले पर भी राजाधिराज का अधिकार हो गया। जब इस घटना की सूचना महाराजा रामसिंहजी को मिली, तब यह शीघ्र ही जोधपुर की तरफ चले। परन्तु राजाधिराज ने नगर के द्वार बद करवाकर उसकी रक्षा का पूरा-पूरा प्रबध कर लिया था। इससे नगर को कुछ दिन तक घेर रखने पर भी रामसिंहजी को सफलता न मिली। यह देख यह सिंधिया से सहायता प्राप्त करने के लिये जयपुर की तरफ चले गए। वि० स० १८०६ (ई० सन् १७५२) मे सिंधिया की सहायता से रामसिंहजी ने एक बार फिर जोधपुर पर चढाई की। इससे कुछ दिन के लिये अजमेर और फलोदी पर इन (रामसिंहजी) का अधिकार हो गया। परन्तु शीघ्र ही इन्हे उक्त स्थानो को छोड़कर रामसर होते हुए मदसोर की तरफ जाना पडा। अन्त मे बहुत कुछ चेष्टा करने के बाद बखतसिंहजी को सॉभर का परगना इन्हे सौप देना पडा। वि० स० १८११ (ई० सन् १८५४) में विजयसिंहजी (बखतसिंहजी के पुत्र) के समय, मरहॅटो (जय आपा सिंधिया) की सहायता से, इन्होने

१ नगर मे प्रवेश करने पर राजाधिराज ने अपना निवास तलहटी के महलों मे किया था। 'तवारीख राज श्री बीकानेर' मे लिखा है कि वि० स० १८०८ की आपाढ सुदी ६ (ई० सन् १७५१ की २१ जून) को चार पहर तक जोधपुर-नगर लूटा गया। (पृ० १७८)। परतु ज्ञात होता है कि इसमे 'बदी' के स्थान मे 'सुदी' और तिथि 'दशमी' के स्थान मे 'नवमी' भूल से लिखी गई है।

२ 'तवारीख राज श्री बीकानेर' मे लिखा है कि उस समय जोधपुर का किला भाटी राजपूतों की देख-रेख मे था (पृ० १७८)। मारवाड की ख्यातों मे किलेदार का नाम भाटी सुजानसिंह लिखा है। यह लवेरे का ठाकुर था। इस विपय का यह दोहा प्रसिद्ध है.–

"थारो नाम सुजाण थो, अबके हुओ अजाण।
आश्रम चौथे आवियो, औ चूको अवसाण।"

बखतसिंहजी को किला सौपने मे साचोर का चौहान मोहकमसिह भी शरीक था। इसलिये बखतसिंहजी, इन दोनों से, अपने स्वामी महाराजा रामसिंहजी के साथ विश्वासधात करने के कारण, नाराज हो गए थे।

३ ग्राट डफ की 'हिस्ट्री ऑफ मरहटाज' मे इस घटना का समय ई० सन् १७५६ (वि० स० १८१६) लिखा है (भाग १, पृ० ५१३)। यह भूल प्रतीत होती है। वि० स० १८११ की पौप बदी १० का, रामसिंहजी का एक खास रुक्का मिला है। यह ताउसर (नागोर के निकट) से लिखा गया था। सभव है, उस समय मरहटों के साथ होने से यह उधर भी गए हों।

फिर एक बार अपना गया हुआ राज्य प्राप्त करने की चेष्टा की। परन्तु अन्त में इन्हें मारवाड़ के सिवाना, मारोठ, मेड़ता, सोजत, परबतसर, सांभर और जालोर प्रान्त लेकर ही सन्तोष करना पड़ा। वि० सं० १८१३ (ई० सन् १७५६) में अपने अधिकृत प्रान्तों के महाराजा विजयसिंहजी द्वारा छीन लिए जाने पर महाराजा रामसिंहजी ने फिर मरहठों से सहायता ली थी। वि० सं० १८२९ की भादों सुदी ६ (ई० स० १७७२ की ३ सितम्बर) को जयपुर में महाराजा रामसिंहजी का स्वर्गवास हो गया।[1]

१. किसी-किसी ख्यात में इनकी मृत्यु की तिथि [illegible] (ई० स० १७७३ की ३० [illegible]) भी लिखी मिलती है। कहते हैं कि महाराजा रामसिंहजी के [illegible] (जैसे [illegible]) [illegible] और [illegible] (जो [illegible]) पुत्रियाँ [illegible] थे।

महाराजा रामसिंहजी के [illegible] सहित लिखा ही दिया गया है, क्योंकि उसका [illegible] महाराजा बखतसिंहजी और महाराजा विजयसिंहजी के इतिहासों में [illegible]।

२६. महाराजा बखतसिंहजी

यह महाराजा अजितसिंहजी के पुत्र और महाराजा अभयसिंहजी के छोटे भाई थे[1]। इनका जन्म वि० स० १७६३ की भादो वदी ७ (ई० सन् १७०६ की १६ अगस्त) को हुआ था। वि० स० १८०८ की सावन वदी २ (ई० सन् १७५१ की २१ जून) को इन्होने अपने भतीजे महाराजा रामसिंहजी को हराकर जोधपुर की गद्दी पर अधिकार कर लिया[2]। इसके बाद ही इनके राजकुमार विजयसिंहजी ने चढ़ाई कर भाद्राजन भी ले लिया।

कुछ दिन बाद जब जय-आपा सिंधिया की सहायता[3] से रामसिंहजी ने अजमेर और फलोदी पर फिर से अधिकार कर लिया, तब इन्होने मेड़ते से डावड़े के ठाकुर चाँदावत बहादुरसिंह को एक बड़ी सेना के साथ उधर रवाना किया, और साथ ही रामसिंहजी के साथ के सरदारो के नाम की बनावटी चिट्ठियाँ लिखवाकर, एक सेवक के हाथ, बड़ी चालाकी से, मरहटा फौज के सेनापति, सायबजी पटेल के पास पहुँचवादीं। इससे उसे उन सरदारो के महाराजा बखतसिंहजी से मिले होने का भ्रम हो गया और वह घबराकर रामसिंहजी को साथ लिए रामसर की तरफ चला गया। इसप्रकार राम-सिंहजी के एकाएक मरहटो के साथ चले जाने से उनके साथ के कुछ सरदार तो डर कर अपनी-अपनी जागीरो को लौट गए और कुछ रामसिंहजी के पास रामसर जा पहुँचे। इससे मौका पाकर बहादुरसिंह ने सहज ही अजमेर के किले पर अधिकार कर लिया। अन्त में जब सायबजी पटेल को सरदारो के नाम के पत्रो का बनावटी होना ज्ञात हुआ, तब वह बहुत पछताया। परन्तु समय हाथ मे निकल चुका था। इसलिये वह दक्षिण को चला गया और रामसिंहजी मदसोर जा बैठे।

---

१ मआसिरुल उमरा मे लिखा है –

अजितसिंह के दो लड़के थ। पहला अभयसिंह और दूसरा बखतसिंह। बाप के मरने पर यही बखतसिंह मुल्क पर काबिज हुआ (भा० ३, पृ० ७५६)।

परन्तु उसमे का यह लेख भ्रम-पूर्ण है।

२ इस घटना के पहले का इनका इतिहास महाराजा अजितसिंहजी, अभयसिंहजी और रामसिंहजी के इतिहासों के साथ दिया जा चुका है।

३ ख्यातों म लिखा है कि आपाजी ने सायबजी पटेल को सेना देकर इनके साथ कर दिया था। परन्तु कर्नल टॉड ने महादजी पटेल का सेना लेकर इनके साथ आना लिखा है। (एनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० १०५८)।

इस झगड़े से छुट्टी पाकर महाराजा बखतसिंहजी ने जयपुर की तरफ यात्रा की। इनके सींवेर्ली[1] स्थान पर पहुँचने पर जयपुर-नरेश महाराजा माधवसिंहजी भी सामने आकर इनसे मिले। महाराजा बखतसिंहजी का विचार था कि यदि जयपुर-नरेश साथ देने को तैयार हो, तो मरहटों पर चढाई कर उन्हें मालवे से भगा दिया जाय। परन्तु इस विचार को कार्य-रूप में परिणत करने के पूर्व, वहीं पर, यह बीमार हो गए और वि० सं० १८०९ की भादो सुदी १३ (ई० सन् १७५२ की २१ सितंबर) को उसी स्थान पर इनका स्वर्गवास हो गया[2]।

महाराजा बखतसिंहजी वीर, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और कार्य-कुशल शासक थे। जोधपुर लेने के पूर्व नागोर का प्रबंध भी इन्होंने बड़ी खूबी के साथ किया था। साथ ही वहाँ के किले को सुदृढ़ और सुसज्जित करने में भी इन्होंने कोई कसर उठा न रक्खी थी[3]। यद्यपि यह जोधपुर की गद्दी पर बैठने के १३ मास बाद ही स्वर्गवासी हो गए थे, तथापि इन्होंने यहाँ के प्रबंध में भी बहुत कुछ सुधार किए थे। मुरलीमनोहरजी के मंदिर के सामने की और नौ चौकियों की घनी बस्ती के कुछ मकानों और दूकानों को गिरवा-कर वहाँ पर नगर-वासियों के स्वास्थ्य के लिये चौक बनवा दिए थे, और गिराए गए

१ यह स्थान जयपुर-राज्य में है।

२. ख्यातों में लिखा है कि महाराजा बखतसिंहजी जयपुर नरेश महाराजा माधवसिंहजी को साथ लेकर मरहटों पर चढ़ाई करना चाहते थे। मेवाड़ नरेश महाराणा जगतसिंहजी द्वितीय की भी इस कार्य में सम्मति थी। परन्तु जगतसिंहजी का स्वर्गवास तो इनके जोधपुर लेने के पहले ही हो गया, और माधवसिंहजी को इस कार्य में साथ देने का साहस न हुआ। साथ ही उन (माधवसिंहजी) को यह भय हुआ कि बखतसिंहजी के जयपुर की तरफ आने से कहीं उनके राज्य में भी कोई बखेड़ा न उठ खड़ा हो। इसलिये उन्होंने अपनी रानी से, जो किशनगढ-नरेश की कन्या होने के कारण महाराज की भतीजी थी, कहकर महाराज को उससे मिलने के लिये बुलवाया, और वहाँ पर इन्हें एक ऐसा फूलों का हार पहनवाया, जिसके विषाक्त स्पर्श से यह शीघ्र ही बीमार होकर स्वर्गवासी हो गए।

वि० सं० १८२२ (ई० सन् १७६५) में इनके राजकुमार महाराजा विजयसिंहजी ने उक्त स्थान पर इनका एक स्मारक बनवाया था। यह अब तक विद्यमान है।

३. इन्होंने महाराजा बहादुरसिंहजी को किशनगढ पर अधिकार करने में सहायता दी थी। इसीसे बादशाह अहमदशाह के मदद देने पर भी उनके बड़े भ्राता सामंतसिंहजी वहाँ पर अधिकार करने में सफल न होसके।



२६ महाराजा बखतसिंहजी

वि० स० १८०८-१८०९ (ई० स० १७५१-१७५२)

मकानो और दूकानो के स्वामियो को हरजाना देकर सतुष्ट कर दिया था। सर्वसाधारण के सुभीते के लिये, शहर के बीच, कोतवाली का स्थान बनवाया था। इसी प्रकार 'मडी' में की मसजिद गिरवाकर वहाँ पर नाज की बिक्री के लिये एक चौक बनवाया था। राव मालदेवजी के समय की बनी शहरपनाह का घिराव कम होने के कारण उसका फिर से विस्तार करवाया था। यह कार्य इन्होने अपनी कुशलता से केवल ६ मास मे ही सपूर्ण करवा लिया था। साथ ही इन्होने जोधपुर के किले में भी अनेक सुधार किए थे। महाराजा जसवंतसिहजी (प्रथम) का बनवाया महल गिरवाकर दौलतखाने का चौक बनवाया, और लोहापौल के पास के कोठारो को तुडवाकर वहाँ का मार्ग चौड़ा करवा दिया। इनके अलावा किले मे की मसजिद हटवाकर जनानी डेवढी की नई पौल (दरवाजा), नई सूरजपौल, आनदघनजी का मदिर आदि स्थान बनवाए।

महाराजा बखतसिंहजी के महाराजकुमार का नाम विजयसिहजी था।

महाराजा बखतसिंहजी ने, घटना-वश, चारणो और पुरोहितो से अप्रसन्न होकर उनके अनेक गॉव जब्त कर लिए थे। परतु अन्त समय पौकरन ठाकुर देवीसिह की प्रार्थना पर वे सब-के-सब वापस कर दिए[1]।

'सइरुल मुताखरीन' के लेखक[2] गुलामहुसैनखॉ ने और कर्नल जेम्स टॉड[3] ने इनकी वीरता और बुद्धिमानी की बडी तारीफ लिखी है, और इन्हे अपने समय का श्रेष्ठ योद्धा और बुद्धिमान् शासक लिखा है।

१ ख्यातों मे लिखा है कि यद्यपि महाराज के अत समय वे चारण और पुरोहित, जिनके गॉव जब्त कर लिए गए थे, उपस्थित न थे, तथापि स्वय ठाकुर देवीसिंह ने महाराज के हाथ से सकल्प का जल ग्रहण कर दान का कार्य सपन्न किया था।

इसके अलावा बखतसिंहजी ने और भी कई गॉव दान किए थे:—

१ इद्रपुरा (डीडवाने परगने का, वि० स० १७८५ मे) नाथद्वारेवालों को, २ इद्रपुरा (डीडवाने परगने का वि० स० १७८६ मे) और ३ चगावडा छोटा (जोधपुर परगने का वि० स० १८०८ मे) चारणों को, ४ धुनाडी (नागोर परगने का वि० स० १७८६ मे) पुरोहितों को और ५ गुणसली (मेडते परगने का १८०८ मे) पीरजादों को दिया था। इसी प्रकार कीरतपुरे की २,००० बीघा भूमि भी चारणों को दी थी।

२ इसका खुलासा उल्लेख महाराजा रामसिहजी के इतिहास मे किया जा चुका है।

३ इसका कुछ वर्णन महाराजा अभयसिहजी के इतिहास मे दिया गया है।

कर्नल टॉड ने एक स्थान पर लिखा है[1]:—

बखता (महाराजा बखतसिंह) प्रसन्न चित्त, बिलकुल निर्भय और अत्यधिक दानी होने के कारण एक आदर्श राजपूत था। उसका रूप तेजस्वी, शरीर बलिष्ठ और बुद्धि स्थानिक-साहित्य में पारंगत थी। वह एक श्रेष्ठ कवि था। यदि उसके हाथ से एक बड़ा अपराध न हुआ होता, तो वह भविष्य संतति के लिये, राजस्थान में होनेवाले राजाओं में, सब से श्रेष्ठ आदर्श नरेश होता। इन गुणों के कारण वह केवल अपने बंधुओं का ही प्रिय नहीं था, बल्कि अन्य बाहर के संबंधी भी उसका आदर करते थे।

कर्नल टॉड ने आगे फिर लिखा है[2]:—

यदि बखतसिंह कुछ वर्षों तक और जीवित रहता तो अधिक संभव था कि राजपूत, सारे हिंदोस्तान में, फिर से अपना पुराना अधिकार प्राप्त कर लेते।

---

१ "There was a joyousness of soul about Bakhta which united to an intrepidity and a liberality alike unbounded, made him the very model of a Rajpoot. To these qualifications were superadded a majestic mien and Herculean frame, with a mind versed in all the literature of his country, besides poetic talent of no mean order, and but for that one damning crime, he would have been handed down to posterity as one of the noblest princes Rajwara ever knew. These qualities not only riveted the attachment of the household clans, but secured the respect of all his exterior relations . . ."

एनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १०५७।

२ "Had he been spared a few years to direct the storm then accumulating, which transferred power from the haughty Tatar of Delhi to the present soldier of the Kistna the probability was eminently in favour of the Rajputs resuming their ancient rights throughout India."

एनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १०५८।

३० महाराजा विजयसिंहजी

यह महाराजा बखतसिंहजी के पुत्र थे। इनका जन्म वि० स० १७८६ की[1] मॅगसिर वदि ११ (ई० सन् १७२९ की ६ नवम्बर) को हुआ था। जिस समय सीधोली के मुकाम पर इनके पिता का स्वर्गवास हुआ, उस समय यह मारोठ[2] (मारवाड़) मे थे। पिता की अचानक मृत्यु का समाचार मिलने पर वहीं पर, वि० सं० १८०९ की भादो सुदि (ई० सन् १७५२ के सितम्बर) में, यह गद्दी पर बैठे[3]। इसके बाद यह मेड़ते होते हुए जोधपुर पहुँचे और वि० स० १८०९ की माघ[4] वदि १२ (ई० सन् १७५३ की ३१ जनवरी) को यहा पर इन्होने अपने राज-तिलक का उत्सव मनाया[5]।

१. कही-कहीं सवत् १७८७ भी लिखा मिलता है।

२ ख्यातों मे लिखा है कि-इस अवसर पर महाराजा अजितसिंहजी के पुत्र किशोरसिंह ने भिणाय पर अधिकार कर लिया था। परन्तु महाराजा विजयसिंहजी ने मारोठ से रास-ठाकुर केसरीसिंह, भाटी किशनसिंह, आदि को वहाँ भेज दिया। इससे किशोरसिंह युद्ध मे मारा गया और भिणाय फिर महाराज के शासन मे आगया।

३ महाराजा विजयसिंहजी के समय का, वि० स० १८०६ की माघ वदि १ (ई० सन् १७५३ की २० जनवरी) का, एक लेख फलोदी से मिला है। इसमे इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम फतैसिंह लिखा है। [जर्नल बगाल एशियाटिक सोसाइटी (ई० सन् १९१६), पृ० १००]।

४ एक ख्यात मे माघ के बदले मॅगसिर लिखा है।

५ जोधपुर के किले मे एक सगमरमर का चबूतरा बना है। इसे 'शृगार चौकी' कहते हैं और इसी पर यहा के महाराजाओं का राज-तिलक होता है। इस पर वि० स० १८१० की माघ वदि ५ रविवार (ई० सन् १७५४ की १३ जनवरी) का एक लेख खुदा है। उससे ज्ञात होता है कि यह चौकी विजयसिंहजी के राज्य समय उक्त तिथि को बन कर तैयार हुई थी। इस लेख मे इनके महाराज कुमार का नाम फतैसिंह लिखा है। परन्तु उनकी मृत्यु महाराज की जीवितावस्था मे ही हो गई थी।

वि० स० १८११ (ई० सन् १७५४) मे रामसिहजी ने जयापा सिंधिया की सहायता प्राप्त कर अपने गए हुए राज्य को फिर से प्राप्त करने के लिये मारवाड़ पर चढाई की। इस पर महाराजा विजयसिहजी जोधपुर का प्रबन्ध कर, शत्रु सैन्य का सामना करने के लिये, मेडते जा पहुँचे। बीकानेर-नरेश गजसिहजी और किशनगढ़-नरेश बहादुरसिंहजी भी, अपनी अपनी सेनाएं लेकर, महाराज की मदद को वहाँ आ गए।

कुछ दिनो बाद जब रामसिहजी जयापा को साथ लिए, किशनगढ को लूटते हुए, अजमेर पर अधिकार कर, पुष्कर पहुँचे और वहा से आगे बढ आलणियावास को लूटते हुए गंगारडे मे ठहरे, तब महाराजा विजयसिहजी भी अपने दलबल सहित उनके मुकाबले को चले। इससे शीघ्र ही दोनो तरफ की सेनाओं के बीच युद्ध शुरू हो गया।

इसी बीच मरहटो की सेना का एक भाग ऊदावत भरतसिह की अध्यक्षता में जैतारण मे इकट्ठा हुआ। परन्तु डेवढी का दारोगा अणद् शीघ्र ही मेड़ते से कुछ चुने हुए वीरो को लेकर वहा जा पहुँचा। इससे मरहटो को हारकर जैतारण से लौट जाना पडा।

यद्यपि गंगारडे मे भी पहली बार के युद्ध मे महाराजा विजयसिहजी की ही विजय हुई थी, तथापि वि० स० १८११ की आसोज बदि १३ (ई० सन् १७५४ की १४ सितम्बर) को, दूसरी बार के युद्ध में महाराज का तोपखाना पीछे छूट जाने

१. ख्यातों मे दत्ताजी का भी इस चढाई में साथ होना लिखा है। इस युद्ध मे जयपुर-नरेश माधवसिंहजी प्रथम ने रामसिहजी की सहायता की थी। (अजमेर, पृ० १७०)।

२ किशनगढ राज्य के दावेदार, सामन्तसिंहजी के पुत्र, सरदारसिंहजी भी मरहटों के साथ थे, क्योंकि जयापा ने उनके चचा बहादुरसिंहजी से किशनगढ-राज्य का अधिकार छीन कर, उन्हे वहाँ की गद्दी पर बिठाने का वादा किया था।

३ श्रीयुत हरबिलास सारडा ने अपने 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है कि अजमेर प्रान्त के खरवा और मसूदा के स्वामियों ने रामसिह का और भिणाय, देवलिया और टटोती के स्वामियों ने विजयसिंह का पक्ष लिया था। (देखो पृ० १७०)।

४ 'तवारीख राज श्री बीकानेर' मे लिखा है कि मरहटों को हार कर सात कोस पीछे हटना पडा था। (देखो पृ० १८२)।



३० महाराजा विजयसिंहजी

वि० स० १८०९-१८५० (ई० स० १७५२-१७९३)

से पासा पलट गया। मौका पाते ही मरहटों ने एकाएक उस तोपखाने पर हमला कर दिया। यह देख यद्यपि राठोड़-सरदारों ने प्राण देकर भी मान की रक्षा करने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, तथापि उनकी सेना का व्यूह भग हो जाने से बहुत से राठोड़-सरदार वीरगति को प्राप्त हुए और मैदान जयापा के हाथ रहा। इसके बाद सायकाल हो जाने से महाराज अपने बचे हुए सरदारों आदि को साथ लेकर मेड़ते लौट गए और रात्रि के पिछले पहर मे ही वहा से नागोर की तरफ चल दिए। इसी समय बीकानेर और किशनगढ के नरेशों को भी अपने-अपने देशों की रक्षार्थ लौट जाना पड़ा।[2]

मेडते के पास की उपर्युक्त विजय के बाद जयापा ने अपनी और रामसिंहजी की सेना के चार भाग किए। इनमें के मुख्य भाग ने जयापा की आधीनता मे नागोर पर घेरा लगाया और अन्य तीनो भागो ने जोधपुर, जालोर और फलोदी पर आक्रमण किया। परन्तु जोधपुर में वहा के दुर्ग-रक्षक चापावत सूरतसिंह[3] और नगर-रक्षक डेवढीदार सोभावत गोयददास आदि ने उनको सफल न होने दिया। इसी प्रकार जालोर मे भी भडारी पोमसिंह के आगे उनकी एक न चली।

यद्यपि नागोर मे स्वय महाराज ने भी बड़ी वीरता से जयापा का सामना किया, तथापि किले के शत्रु-सैन्य के बीच घिर जाने के कारण कुछ दिनो मे वहाँ की रसद

कर्नल टॉड ने लिखा है कि राठोड-सैनिकों ने अपने ही वीरों पर, जो मरहटों को हरा कर लौट रहे थे, भ्रम से गोलाबारी शुरू करदी। इससे उनकी विजय पराजय मे बदल गई। (ऐनाल्स ऐण्ड ऐण्टिकिटीज ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १६१-१६२)।

१. 'अजमेर' नामक इतिहास मे लिखा है कि सिंधिया मैदान छोड कर भागने ही वाला था, परन्तु इसी बीच किशनगढ-राज्य के दावेदार सरदारसिंहजी ने महाराजा विजयसिंहजी के मारे जाने की झूठी अफ़वाह फैलादी। इससे हतोत्साह होकर राठोड-सैनिक मैदान से हट गए और महाराज को, मौका हाथ से निकल जाने के कारण, लाचार होकर नागोर का आश्रय लेना पडा। देखो पृ० १७०)।

कर्नल टॉड ने भी इस घटना का उल्लेख किया है (ऐनाल्स ऐण्ड ऐण्टिकिटीज ऑफ राजस्थान, भाग २ पृ० १०६२-१०६३)।

२ 'तवारीख राज श्री बीकानेर' मे किशनगढ नरेश का मेडते से ही अपने राज्य की तरफ लौट जाना लिखा है (देखो पृ० १८२)। परतु बीकानेर का मार्ग नागोर की तरफ से होने के कारण बीकानेर महाराज वहा तक महाराजा विजयसिंहजी के साथ गए होंगे।

३ यह हरसोलाव का ठाकुर था।

समाप्त हो चली। यह देख किले वालों ने एक उपाय सोच निकाला। उन्होंने खोखर केसरखाँ को और एक गहलोत वीर को जयापा को छल से मार डालने के लिये नियत किया। इस पर वे दोनो बनियों का सा वेश बना कर आपस में लड़ते-झगड़ते जयापा के शिविर में जा पहुँचे। उस समय वह स्नान कर रहा था। परन्तु उनको लड़ता हुआ देख जिस समय उसने कारण जानने के लिये उन्हें अपने पास बुलाया, उस समय मौका पाकर उन्होंने उसे मार डाला। इस घटना से मरहटा-सेना में गड़बड़ मच गई। इसी समय मौके की फिराक में बैठी हुई राठोड़-सेना ने किले से निकल उन पर आक्रमण कर दिया। इससे एक बार तो मरहटों के पैर उखड़ गए और वे किले का घेरा छोड़ भाग खड़े हुए। परन्तु शीघ्र ही जयापा के भाई दत्ताजी ने बिखरी हुई मरहटा सेना को एकत्रित कर फिर से नागोर पर घेरा डालने का प्रबन्ध किया। जनकोजी ने भी इस काम में योग देना अपना कर्तव्य समझा। यह घटना वि० सं० १८१२ (ई० स० १७५५) की है[4]। इसकी सूचना मिलते

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि उस समय तक जोधपुर, जालोर, नागोर, और डीडवाने को छोड़ मारवाड़ राज्य के बाकी के सारे ही प्रदेशों पर रामसिंहजी का अधिकार हो गया था। यह देख महाराजा विजयसिंहजी ने विजयभारती नामक पुरुष को महाराना राजसिंहजी (द्वितीय) के पास भेजा और उनसे जयापा से संधि करवा देने का अनुरोध किया। इस पर उनकी तरफ से सलूंबर का रावत जैतसिंह इस कार्य के लिए नागोर पहुँचा। परन्तु मरहटों ने उनका संधि का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। इसी से महाराजा विजयसिंहजी के सरदारों को जयापा के साथ कूटनीति का व्यवहार करना पड़ा। इस घटना से क्रुद्ध होकर मरहटों ने किले के बाहर ठहरे हुए उक्त रावत के शिविर पर हमला कर उसे और महाराज के सेवक विजयभारती को भी मार डाला।

२. मारवाड़ में इस विषय की यह कहावत प्रचलित है:--

'खोखर बड़ो खुराकी, खाय गयो आपा सरीखो डाकी'

जयापा के स्मारक में जो छतरी बनाई गई थी वह नागोर से तीन मील दक्षिण में विद्यमान है। ख्यातों से ज्ञात होता है कि जयापा को मारने वाले दोनों गुप्तचर मरहटों द्वारा उसी समय मार डाले गए थे।

३. यह जयापा का पुत्र था।

४. ग्रांट डफ की 'हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज' में इस घटना का समय ई० स० १७५९ (वि० सं० १८१६) लिखा है। (परन्तु साथ ही उक्त इतिहास के भा० १, पृ० ५१४ की टिप्पणी १ में इस घटना के दिए गए समय पर सन्देह प्रकट किया है।) उसमें यह भी लिखा है

ही रघुनाथराव ने भी मारवाड पर चढ़ाई की[1]। इस प्रकार जयापा के भाई दत्ताजी, पुत्र जनकोजी और रघुनाथ राव की सम्मिलित सेनाओं ने जोधपुर और नागोर को घेर लिया। इस विशाल मरहटा-वाहिनी से अकेले सामना करना हानिकारक जान महाराजा विजयसिंहजी बीकानेर पहुँचे और वहा से महाराजा गजसिंहजी को साथ लेकर महाराजा माधोसिंहजी से सहायता प्राप्त करने के लिये जयपुर गए। परन्तु माधोसिंहजी ने इनकी सहायता करने से इन्कार कर दिया। इस पर यह लौट कर बीकानेर होते हुए नागोर चले आए[2]। इसी बीच मारवाड में अकाल होने से मरहटों ने सधि करना स्वीकार कर लिया। इसलिये महाराज ने उन्हे २० लाख रुपये और अजमेर का प्रान्त देकर उनसे सधि करली। साथ ही मेडता, परबतसर, मारोठ, सोजत, जालोर आदि के परगने रामसिंहजी को दे दिए[3]। इस प्रकार आपस का झगडा शान्त हो जाने पर महाराजा विजयसिंहजी जोधपुर लौट आए।

कि जयापा के घातकों मे से एक वहीं पर मारा गया और दूसरा बचकर निकल गया। परतु उक्त इतिहास मे रामसिंहजी और विजयसिंहजी दोनो को अभयसिंहजी का पुत्र लिखा है। यह ठीक नहीं है। (देखो भाग १, पृ० ५१३)।

'अजमेर' नामक इतिहास मे इस घटना का समय ई० स० १७५६ (वि० स० १८१३) लिखा है। (पृ० १७०)।

१ 'हिन्दू पद पादशाही' नामक इतिहास मे अन्ताजी मानकेश्वर का १०,००० सैनिकों के साथ आकर राजपूताने मे उपद्रव करना लिखा है।

२ 'तवारीख राज श्री बीकानेर' मे लिखा है कि जयपुर नरेश का विचार महाराजा विजयसिंहजी को धोके से मार डालने का था। परतु वह सफल न हो सके। (देखो पृ० १८४-१८५)।

मारवाड की ख्यातों मे लिखा है कि पहले जयपुर-नरेश महाराजा माधोसिंहजी ने महाराजा विजयसिंहजी का पक्ष लेना चाहा था। परतु फिर रामसिंहजी के साथ के, स्वर्गवासी जयपुर नरेश ईश्वरीसिंहजी की कन्या के, सम्बन्ध का और अपने कर्मचारियों के कहने का विचार कर उन्होंने अपना मत बदल दिया।

इसके बाद उन्होंने महाराजा विजयसिंहजी को कैद कर लेने का विचार किया। परतु रीयाँ-ठाकुर जवानसिंह के कारण वह सफल न हो सके। ख्यातों से यह भी प्रकट होता है कि जयपुर नरेश ने बीकानेर-नरेश गजसिंहजी को भी महाराज से जुदा करने के लिये उनका विवाह मिलाय ठाकुर की कन्या से निश्चित कर दिया था।

३. ख्यातों मे लिखा है कि इन परगनों के साथ ही खरवा, मसूदा, भिणाय, केकडी, देवलिये के १६ गॉव और मसूदे के २७ गॉव रामसिंहजी को दिए गए थे। (कहीं कही साभर, सिवाना, और नावे का भी रामसिंहजी को दिया जाना लिखा है)।

वि० सं० १८१३ (ई० सन् १७५६) में जिस समय रामसिंहजी जयपुर के स्वर्गवासी नरेश ईश्वरीसिंहजी की कन्या से विवाह करने (जयपुर) गए, उस समय मारवाड़ के सरदारों ने, महाराज की अनुमति प्राप्त कर, उनके अधिकृत प्रान्तों पर चढ़ाई की और मेड़ता, जालोर और सोजत के परगने उनके पक्षवालों से छीन लिए। इसकी सूचना मिलने पर रामसिंहजी ने एकबार फिर मरहटों से सहायता माँगी। इससे जयापा के भाई महादजी (माधोजी) को अपने भाई का बदला लेने का अच्छा मौका मिल गया। उसने पेशवा से आज्ञा लेकर मारवाड़ में ऐसी लूट-मार मचाई की बहुत कुछ कोशिश करने पर भी महाराज को सफलता नहीं मिली। अन्त में महाराज को महादजी (माधोजी) से सन्धि करनी पड़ी। इसके अनुसार रामसिंहजी से छीने हुए परगने तो वापस उन्हें लौटा देने पड़े और ३६ लाख रुपया सिंधिया को देना निश्चित हुआ। इसके बाद महादजी (माधोजी) अजमेर का प्रबन्ध गोविन्दराव को सौंप दक्षिण को लौट गया। परन्तु इस पराजय से मारवाड़ का प्रबन्ध शिथिल होगया

इससे उस समय महाराजा विजयसिंहजी के अधिकार में केवल नागोर, डीडवाना, परबतसर और जैतारण के प्रांत ही रह गए थे। महाराज के पक्ष के जिन जागीरदारों की जागीरें रामसिंहजी को दिए गए प्रांतों में थीं उनके खर्च के लिये महाराज को नकद रुपये देने पड़ते थे।

१ ख्यातों में लिखा है कि जिस समय मेड़ते पर चढ़ाई करने का विचार हो रहा था, उस समय पोकरन-ठाकुर देवीसिंह ने महाराज से प्रार्थना की कि मरहटों के साथ अपने वचन से हुई सन्धि को कम से कम एक वर्ष तक पालन करने का वचन दिया जा चुका है और उस अवधि के समाप्त होने में अभी ५ महीने बाकी हैं, इसलिये जहां तक हो अभी रामसिंहजी को दिए गए प्रांतों पर चढ़ाई न की जाय। परन्तु अन्य सरदारों के इस उचित परामर्श का विरोध करने पर वह अप्रसन्न हो गया और गुप्त रूप से मरहटों के साथ सहानुभूति रखने लगा। इसी से मरहटों को मारवाड़ में लूट-मार करने में बहुत कुछ सहायता मिली थी।

२. 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है कि ई० स० १७५६ से १७५८ (वि० सं० १८१३ से १८१५) तक अजमेर नगर पर रामसिंहजी और मरहटों दोनों का अधिकार रहा था। इसके अलावा सरवा, मसूदा और भिणाय रामसिंहजी के हिस्से में आए थे और बाकी का सारा प्रांत जयापा के भाई जनकूजी (?) और दत्तूजी के अधिकार में गया था। परन्तु ई० स० १७५८ में जिस समय रामसिंहजी जयपुर की तरफ चले गए, उस समय गोविन्दराव ने रामसिंहजी की तरफ के हाकिम को निकालकर अजमेर पर पूरा अधिकार कर लिया। परन्तु इस पर जब महाराजा विजयसिंहजी ने रामसिंहजी को दिए गए प्रांतों पर अपना हक प्रकट किया, तब उसने सरवा, मसूदा और भिणाय इन्हें सौंप दिए। इसके बाद महाराज ने टटोती में अपना थाना कायम किया। ये प्रांत ई० स० १७९१ (वि० सं० १८४८) तक मारवाड़ के अधिकार में रहे। (पृ० १७१)।

और सरदार लोग स्वाधीन होने की कोशिश करने लगे। वि० स० १८१४ के फागुन (ई० सन् १७५८ के मार्च) मे जब इन झगडो से निपट कर महाराज फिर जोधपुर लौटे, तब पौकरन-ठाकुर देवीसिंह[1] आदि सरदार बिना इनकी आज्ञा प्राप्त किए ही अपनी-अपनी जागीरो मे जा बैठे और महाराज के बुलाने पर भी आने में बहाने करने लगे।

अगले वर्ष छोटी खाटू के ठाकुर जोधा जालिमसिंह ने, मेगरासर (बीकानेर राज्य मे) के हटीसिंह ने, डीडवाने की तरफ के शेखावतो ने और नागोर के पश्चिम मे स्थित करमसोतो ने आस-पास के गॉवो को लूट कर नागोर प्रान्त मे उपद्रव शुरू किया। परन्तु महाराज के कृपा-पात्र जगन्नाथ[2] ने जाकर उसे बडी वीरता से दबा दिया।

इन्ही दिनो नींबाज-ठाकुर कल्याणसिंह का स्वर्गवास हो गया और रास-ठाकुर ने, महाराज से बिना अनुमति प्राप्त किए ही, अपने पुत्र दौलतसिंह को उसके गोद बिठा दिया। यद्यपि यह बात महाराज को बुरी लगी, तथापि समय की गति देख इन्हे चुप रह जाना पडा[3]। परन्तु इतने पर भी मारवाड़ के सरदार शान्त न हुए और अपनी-अपनी जागीरो मे बैठे हुए रामसिंहजी से पत्र-व्यवहार करने लगे। इस पर महाराज ने सिंघी फतेचन्द को भेजकर सब सरदारो को जोधपुर में इकट्ठा किया। परन्तु ये लोग नगर के बाहर बखतसागर तालाब के पास डेरे डालकर ठहर गए। यह देख महाराज ने अपने विश्वस्त-सेवक जगन्नाथ को उन्हे समझाकर नगर में ले आने

१ वि० स० १८१५ (ई० स० १७५६) मे महाराज ने रास के ठाकुर केसरीसिंह को पौकरन के ठाकुर देवीसिंह को समझा कर ले आने के लिए भेजा। परतु वहा पर आपस मे झगडा हो जाने से देवीसिंह ने जोधपुर आने से इनकार कर दिया।

कर्नल टॉड ने लिखा है कि यह देवीसिंह महाराजा अजितसिंहजी का पुत्र था और पौकरन-ठाकुर (महासिंह) ने अपने औरस पुत्र के न होने से इसे गोद लिया था। (एनाल्स ऐराड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० १०६६) परतु यह ठीक नही है। देवीसिंह वास्तव मे महासिंह का ही पुत्र था। यह देवीसिंह वीर और उद्दण्ड होने के कारण जोधपुर राज्य के अधिकार का अपनी तलवार के पट्टे (परतले) मे होना बतलाया करता था।

२. यह महाराज को दूध पिलाने वाली धाय का पुत्र था।

३ इस घटना से अप्रसन्न होकर महाराज ने नींबाज की जागीर का एक गाव-पीपाड देने से इनकार कर दिया। इस से केसरीसिंह नाराज हो गया। इसके बाद सब सरदारों ने नींबाज मे इकट्ठे होकर रामसिंहजी से मिलावट करने का षड्यन्त्र शुरू किया।

के लिये भेजा । लेकिन बात चीत के सिलसिले में झगड़ा हो जाने के कारण सरदार लोग लौट कर बनाड़ की तरफ चले गए । इसकी सूचना मिलने पर महाराज ने फिर फतेचन्द आदि के द्वारा उन्हें समझाने की बहुत कुछ चेष्टा की, परन्तु सरदार लोग जोधपुर न आकर बीसलपुर की तरफ चल दिए । इस प्रकार आपस के विरोध को बढ़ता देख स्वयं महाराज उन्हें समझाने को रवाना हुए । जैसे ही सरदारों को महाराज के आने की सूचना मिली, वैसे ही उन्होंने सामने आकर इनकी पेशवाई की और दूसरे ही दिन वे सब महाराज के साथ जोधपुर चले आए ।

वि० सं० १८१६ की फागुन बदी १ (ई० सन १७६० की २ फरवरी) को महाराज के गुरु आत्मारामजी का देहान्त हो गया । उनकी समाधि के समय बड़े-बड़े सरदारों को किले पर उपस्थित होने की आज्ञा दी गई थी । इसके अनुसार जब पोकरन, रास, आसोप और नींबाज के ठाकुर किले पर आए, तब उनके साथ के सारे आदमी किले की पौल के बाहर ही रोक लिए गए, और उनके बाद रानियों के आत्मारामजी के शव के अन्तिम-दर्शन करने को आने का बहाना बना कर उस पौल के द्वार बन्द करदिए गए । अन्त में खीची गोरधन और (धायभाई) जग्गनाथ की सलाह से, रास्ते की कोठरियों में विदेशी सैनिकों को छिपाकर और किले के सब से ऊपर का द्वार बंद करवा कर, सरदारों को ऊपर आने को कहलाया गया । इस पर जैसे ही सब सरदार नक्कार खाने की पौल से आगे बढ़े, वैसे ही मार्ग की कोठरियों में छिपे सैनिकों ने बाहर आकर एकाएक उन पर हमला कर दिया । इससे पोकरन-ठाकुर देवीसिंह, रास-ठाकुर केसरीसिंह, आसोप-ठाकुर छत्रसिंह और नींबाज-ठाकुर दौलतसिंह पकड़े जाकर कैद करलिए गए ।

---

१ किसी किसी ख्यात में इस पौल का नाम अमृती पौल लिखा है ।

२ इनमें से ठाकुर दौलतसिंह बाद में छोड़ दिया गया, परन्तु अन्य तीनों ठाकुरों का अन्त कैद में ही हुआ । इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में प्रसिद्ध है —

केहर देवो छत्रसी, दल्लो राजकुमार ।
मरते मोडे मारिया, चोटी वाला चार ॥

कर्नल टॉड ने ६ ठाकुरों का कैद किया जाना लिखा है । (एनाल्स ऐण्ड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भाग २, पृ० १०७०) परन्तु ख्यातों से यह बात सिद्ध नहीं होती ।

इस घटना की सूचना मिलने पर उक्त सरदारों के बन्धुओं, सम्बन्धियों और मित्रों ने एकत्रित हो मारवाड़ में उपद्रव करने का आयोजन किया। यह देख धायभाई जगन्नाथ, विदेशी सैनिकों और छोटे-छोटे जागीरदारों को लेकर, उनको दबाने के लिये चला। साथ ही रायपुर-ठाकुर माकरसिंह की मातहती में एक सेना नींबाज की तरफ रवाना की गई। इसी बीच सूचना मिली कि मेड़ते में इस समय शत्रु-सैन्य की संख्या बहुत कम रह गई है और रामसिंहजी हरसोर में है। परन्तु उपद्रवियों का विचार उन्हे शीघ्र ही मेड़ते ले आने का है। इस पर नींबाज की तरफ भेजी गई सेना को शीघ्र ही मेड़ते पहुंच उस पर अधिकार करने की आज्ञा दी गई। इसी के अनुसार उस सेना ने दूसरे दिन प्रातःकाल होने के साथ ही मेड़ते पर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही सहायक सेना और रसद का प्रबन्ध कर वहाँ के मोरचे सुदृढ कर लिए।

मेड़ते के इस प्रकार एकाएक हाथ से निकल जाने की खबर मिलते ही रामसिंहजी ने एक बड़ी सेना के साथ आकर उक्त नगर को घेर लिया। यद्यपि कुछ दिनों बाद नगर मे पानी की कमी होजाने के कारण अन्दर वालों को मेड़ते की रक्षा करना कठिन प्रतीत होने लगा, तथापि उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और वे बड़ी वीरता के साथ शत्रुओं के आक्रमणों को रोकते रहे।

इसी बीच, इधर बारिश हो जाने से पानी का कष्ट दूर हो गया और उधर मेड़ते वालों के घिर जाने की सूचना पाकर जगन्नाथ, बागियों के मुखिया चाँपावतों की सेना को जालोर की तरफ भगाकर, वहा आ पहुँचा। उसके दलबल सहित उधर आने की सूचना मिलते ही रामसिंहजी मेड़ते पर का घिराव हटाकर परबतसर की तरफ चले गए। जगन्नाथ ने वहा भी उनका पिछा किया। इस पर रामसिंहजी तो रूपनगर की तरफ चले गए और उनके साथ के सरदारों में से कुछ जगन्नाथ के पास चले आए और कुछ अपनी-अपनी जागीरो मे लौट गए। इस प्रकार जो सरदार जगन्नाथ के पास चले आए थे उनकी जागीरों में महाराज की तरफ से वृद्धि की गई। इसके बाद राजकीय सेना ने फिर बचे हुए बागियों का पीछा किया। बीलाड़ा, सोजत आदि

१ ख्यातों मे लिखा है कि इसके बाद रामसिंहजी जयपुर चले गए। उनके कुछ दिन वहा रहने पर जयपुर-नरेश ने साभर का अपना हिस्सा उनको खर्च के लिए दे दिया।

२ ख्यातों मे लिखा है कि चापावत सबलसिंह आदि सरदारों ने बहुतसी सेना इकट्ठी कर बीलाड़े पर चढाई की। यह देख वहा का हाकिम आगे बढ उनके मुकाबले को आया।

अनेक स्थानो पर दोनो पक्षो के बीच कई युद्ध हुए । अन्त में चापावतो की सेना को सोजत से भागकर घाटे (पहाड़ो) की तरफ जाना पड़ा । इससे डरकर कई अन्य ठाकुर भी महाराज के झडे के नीचे आ गए और महाराज ने भी उन्हे जागीरें आदि देकर शात कर दिया । इसी बीच महाराज के एक सेनापति पचोली रामकरण ने जालोर से शत्रुओ को भगाकर वहा पर भी अधिकार कर लिया ।

वि० स० १८१८ (ई० स० १७६१) में जोशी बालू ने राजकीय-सेना को लेकर इधर-उधर के बागी जागीरदारो को दबाया और उनसे दण्ड के रुपये वसूल किए । वि० स० १८१९ (ई० स० १७६२) मे उसने अजमेर पहुँच उसे घेर लिया । परतु महादजी (माधोजी) सिंधिया के समय पर वहा पहुँच जाने के कारण उसे लौट कर मेडते आ जाना पडा । अन्त में फिर सिंधिया को नौलाख रुपये मिल जाने से उसने महाराज से सधि कर ली ।

कुछ दिन बाद बागियो ने, घाटे से रायपुर की तरफ लाट कर, मारवाड मे फिर लूट-खसोट शुरू की । इस पर जगन्नाथ ने पहले उनके मुखिया चापावत सरदार की जागीर 'पाली' पर चढाई कर उस पर अधिकार कर लिया, और फिर रायपुर, भखरी, गूलर, आदि की तरफ जाकर बागी सरदारो का दमन किया । इससे मारवाड का उपद्रव बहुत कुछ शान्त हो गया ।

जगन्नाथ के वीरता-पूर्ण कार्यो से महाराजा बहुत ही प्रसन्न थे और इसी से राज्य में उसका बडा मान था । परतु अन्त में जोशी बालू के उसकी फजूल खर्ची की शिकायत करने से महाराजा उस (जगन्नाथ) से अप्रसन्न हो गए । इससे उसके मान और प्रभाव को बडा धक्का पहुँचा ।

युद्ध होने पर उक्त हाकिम मारा गया और सबलसिंह के भी कई घाव लगे । इसके बाद सबलसिंह और उसका भाई श्यामसिंह बीलाडे पहुँचे । परतु वहा पर मुह से कुछ अनुचित शब्द निकालने के कारण सबलसिंह कूँपावत राजपूतों के हाथ से सख्त घायल हुआ और खारिया नामक गाव मे पहुँचने पर उसका देहान्त हो गया । किसी किसी ख्यात में सबलसिंह का चादेलाव ठाकुर मोहनसिंह के हाथ से मारा जाना लिखा है ।

१ ख्यातों मे लिखा है कि उसने मेडते के एक व्यापारी की लडकी को अपनी उपपत्नी बना लिया था और उसको प्रसन्न रखने के लिये राजकीय-द्रव्य का बहुत सा भाग खर्च कर दिया करता था ।

२ इसी अपमान से वि० स० १८२१ के सावन (ई० सन् १७६४ के अगस्त) में जगन्नाथ का देहान्त हो गया ।

इसके बाद महाराजा ने जावले के ठाकुर बदनसिंह को मेड़ते मे कैद करे उसकी जागीर जब्त कर ली।

वि० स० १८२२ (ई० स० १७६५) में महादजी (माधवराव) सिंधिया के फिर मारवाड़ पर चढाई करने की सूचना मिली। इस पर महाराजा ने तीन लाख रुपये देकर उसे रोक दिया। परतु फिर भी बागियो का मुखिया चापावत सरदार खानूजी नामक मरहटे को अपनी सहायता के लिये चढा लाया। इसकी सूचना मिलते ही महाराजा की सेना ने आगे बढ़ उसका सामना किया। युद्ध होने पर शत्रुदल की हार हुई। इससे मरहटे अजमेर की तरफ चले गए और चॉपावतो को साभर की तरफ भागना पडा।

इसी वर्ष महाराज ने गायो की चराई पर लगने वाले कर (घासमारी) को उठा कर जागीरदारो पर 'रेखबाब' नामक कर लगाया।

इसी वर्ष महाराजा विजयसिंहजी वैष्णव (नाथद्वारे के गुसाइयो के) सप्रदाय के अनुयायी हो गए, और इन्होने अपने राज्य में मास और मदिरा का प्रचार बिलकुल रोक दिया। इन्होने ही जोधपुर नगर में बालकृष्णजी का नया मन्दिर बनवाया था।

१ कुछ काल बाद आउवे के ठाकुर की सिफारिश से कैद से छूट जाने पर यह रूपनगर चला गया।

२ कहते हैं कि एकबार आसोप-ठाकुर ने अपने गाव से, बोरे मे भरकर, बकरे का मास मगवाया था। परतु जिस ऊट पर वह बोरा बन्धा था, वह ऊट नगर मे आकर किसी तरह चमक गया और घबराकर उछल-कूद मचाने लगा। इससे बकरे का कटा हुआ सिर बोरे से निकलकर बाहर आ पडा। जब इस घटना की सूचना महाराज को मिली, तब इन्होंने ठाकुर को बुलाकर उससे अपनी आज्ञा का उल्लघन करने का कारण पूछा। परतु उसने काली ऊन का एक गोला पेश कर निवेदन किया कि वास्तव मे यह गोला ही बोरे से निकलकर बाजार मे गिर पडा था और सम्भवत. लोगों ने इसी को बकरे का सिर समझ यह शिकायत की है। इस प्रकार की बात बनाकर ठाकुर को अपना बचाव करना पडा।

महाराजा विजयसिंहजी ने कसाइयों की जीविका बन्द हो जाने से उन्हे मकानों पर पत्थर की पट्टिया आदि चढाने का काम सौंपा था। तब से अब तक उनके वशज यही काम करते और चॅवालिए कहाते हैं।

एकबार राजकीय सेना के एक मुसलमान सैनिक ने एक बैल को शस्त्र से जख्मी कर दिया। इसकी सूचना पाकर जब नगर का कोतवाल उसे पकड़ने को गया, तब सारे ही यवन-सैनिक बदल गए। यह देख लोगों ने महाराज को समझाया कि ऐसी हालत मे अपराधी का अपराध क्षमा कर देना ही युक्ति-सगत है। अगर ऐसा नही किया जायगा तो सारी की सारी यवन-सेना नौकरी छोड़कर चली जायगी और इससे सरदारों को फिर से उपद्रव करने का मौका मिल जायगा। परतु महाराज ने इस सलाह के मानने से इनकार कर दिया और अपने नफे-नुकसान की परवा न कर अपराधी और उसका साथ देने वालों को कठोर दण्ड दिया।

वि० स० १८२३ के कार्तिक (ई० स० १७६६ के नवम्बर) में महाराज ने नाथद्वारे की यात्रा की और इनके सेनापतियों ने इधर-उधर के सरकश जागीरदारों को दबाकर उनसे ८५५७ के रुपये वसूल किए।

वि० सं० १८२४ (ई० स० १७६७) में महाराज ने पुष्कर की यात्रा की। वहीं पर इनकी मित्रता भरतपुर के (जाट) नरेश जवाहरसिंहजी से हुई। पहले लिखा जा चुका है कि जयापा की नागोर की चढाई के समय जयपुर-नरेश माधवसिंहजी ने महाराज का साथ देने से इन्कार कर दिया था। इसी से यह उनसे नाराज थे। इसलिए इस वर्ष जब जवाहरसिंहजी और जयपुर-नरेश के बीच मनोमालिन्य हुआ, तब महाराज ने भरतपुर वालो का साथ दिया[1]। इसके बाद यह देवलिये तक जवाहरसिंहजी के साथ जाकर वहा से लौटते हुए साभर और मारोठ होकर मेडते में कुछ दिन ठहर गए।

वि० स० १८२७ (ई० स० १७७०) मे मेवाड़ के महाराना अडसी (अरिसिंह)जी, और उनके भतीजे (महाराना राजसिंहजी द्वितीय) के पुत्र रत्नसिंह[2] व उसके पक्ष के सरदारो के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस पर महाराना ने महाराजा विजयसिंहजी से सहायता मागी। महाराज ने तत्काल अपनी राठोड-सेना भेज कर मेवाड का उपद्रव शात कर दिया। इससे प्रसन्न होकर महाराना अडसीजी ने, आगे भी समय-समय पर होने वाले मेवाड के उपद्रवो को इसी प्रकार दबाने में सहायता देने की प्रतिज्ञा करवा कर, अपने राज्य का गोडवाड़ का प्रात महाराजा विजयसिंहजी को दे दिया[3]। उस समय से ही यह प्रात मारवाड राज्य में मिला लिया गया है।

---

१ ख्यातों में लिखा है कि जिस समय जवाहरसिंहजी जयपुर राज्य मे होकर भरतपुर की तरफ लौट रहे थे, उस समय कछवाहों ने उन पर पीछे से हमला कर दिया। इससे दोनों दलों के बीच घमसान युद्ध हुआ। इस यात्रा मे जोधपुर की कुछ सेना भी भरतपुर वालों के साथ थी। इसके बाद जयपुर वालों ने भरतपुर नरेश को पहुँचा कर लौटती हुई जोधपुर की सेना पर आक्रमण करने का प्रबन्ध किया। परतु इसी बीच जयपुर-नरेश माधवसिंहजी के स्वर्गवास हो जाने से वे सफल न हो सके।

२. किसी किसी ख्यात मे लिखा है कि रत्नसिंह के पक्ष वालों ने भी फौज का खर्च देने की प्रतिज्ञा कर महाराज से सहायता मागी थी। परतु महाराज ने ऐसा करना उचित न समझा।

३ यद्यपि 'राजपूताने के इतिहास' मे जोधपुर-नरेश द्वारा महाराना को दी गई सहायता का उल्लेख छोड दिया गया है, तथापि महाराना अडसीजी के स्वहस्ताक्षरों से लिखे महाराजा

अगले वर्ष (वि० स० १८२८=ई० स० १७७१ मे) महाराज फिर नाथद्वारे की यात्रा को गए । इस बार बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और कृष्णगढ-नरेश बहादुरसिंहजी भी वहा आ गए थे । मौक़ा देख महाराना अडसी (अरिसिंह) जी भी वहा पहुँचे और महाराज से गोडवाड का प्रात लौटा देने का आग्रह करने लगे । परतु इन्होने यह बात स्वीकार न[1] की ।

पहले लिखा जा चुका है कि जयपुर-नरेश ने अपना सामर का हिस्सा खर्च के लिये रामसिहजी को दे दिया था । इसलिये वि० स० १८२९ (ई० स० १७७२) मे उनका स्वर्गवास होते ही उनके अधिकृत उस भाग पर जोधपुर वालो ने अधिकार कर लिया ।

वि० स० १८३१ के भादो (ई० स० १७७४ के सितम्बर) मे आउवा-ठाकुर जैतसिंह जोधपुर के किले मे मारा गया[2] और आउवे पर महाराज की सेनाने अधिकार कर लिया । इसके तीन वर्ष बाद (वि० स० १८३४=ई० स० १७७७ मे) ठाकुर

विजयसिहजी के नाम के पत्र से, जो जोधपुर मे सुरक्षित है, इस सहायता की पुष्टि होती है । उक्त पत्र मे महाराना ने महाराज से बडे ही मर्मस्पर्शी शब्दो मे सहायता की प्रार्थना की है ।

१ कहते हैं कि उक्त प्रात पर अधिकार करने के लिये उदयपुर वालो की तरफ़ से वि० स० १९०७ से १९१० (ई० सन् १८५० से १८५३) तक पूरी कोशिश की गई थी । परतु अन्त मे भारत-सरकार ने भी उनका दावा खारिज कर दिया ।

२. कहते हैं कि लोगों ने महाराज से यह शिकायत की कि जैतसिह महाराजकुमार को भड़काता है और उसे बड़ा घमड हो गया है । ख्यातों मे लिखा है कि महाराजा विजयसिहजी ने वैष्णवमतानुयायी होकर अपने राज्य मे मास और मदिरा का प्रचार रोक दिया था । परतु आउवा-ठाकुर जैतसिह का खयाल था कि मेरे पिता कुशलसिह ने महाराजा बखतसिहजी को जोधपुर का राज्य दिलवाने मे अपने प्राण दिए थे, इसलिये उसका पुत्र होने के कारण महाराज मेरे कार्यों मे विशेष रोक–टोक नही करेगे । इसीसे वह शक्ति का उपासक होने के कारण कभी-कभी पशु-वध कर लिया करता था । महाराज ने शिकायत आने पर कई बार उसे ऐसा करने से मना किया । परतु उसने इनके कथन पर विशेष ध्यान नही दिया । इससे महाराज रुष्ट हो गए और एक रोज उसे किले मे बुलवाकर धोके से मरवा डाला । किले के उत्तर की तरफ़ सिगोरिये की भाकरी के पास, जहा पर उसका दाह सस्कार किया गया था, एक चबूतरा बनाया गया था । लोग उक्त स्थान को जैतसिहजी का थडा कह कर अब तक पूजते है । इस पूजा का कारण शायद उसका अपने शाक्त-धर्म पर दृढ रह कर प्राण देना ही होगा ।

केसरीसिंह के बागी होजाने पर उसकी जागीर रायपुर पर महाराज ने कब्ज़ा कर लिया और कुछ ही दिनों में अजमेर पर भी उनका बहुत कुछ दखल हो गया ।

वि० सं० १८३७ (ई० स० १७८०) में उमरकोट (सिंध) के टालपुरों ने मारवाड़ की सरहद पर उपद्रव उठाया और वे पोकरन आदि पर अधिकार करने का इरादा करने लगे । इस पर महाराज ने माडगोत रत्नसिंह, पातावत मोहकमसिंह, बारठ जोगीदास और सेवग थानू को अपना प्रतिनिधि बनाकर उनके पास नौवारी भेजा । जब मामला सुलझता हुआ नहीं देखा, तब इनमें से पहले तीन पुरुषों ने मिलकर उनके सरदार बीजड़ को धोखे से मार डाला । इस पर उसके अनुचरों ने उन तीनों को मार अपने स्वामी का बदला लिया । इसकी सूचना मिलने पर महाराज ने इन तीनों के पुत्रों को क्रमशः बलाय, फलसू और सिनिया नामक गाँव जागीर में दिए । इसके बाद बीजड़ के भाई-बन्धुओं ने अपने नेता का बदला लेने के लिये फिर से मारवाड़ की सरहद पर उपद्रव शुरू किया । इस पर महाराज ने उनको दण्ड देने के लिये एक सेना रवाना की । इस राठोड़-वाहिनी ने टालपुरों को हराकर उमरकोट पर ही अधिकार कर लिया । यह घटना वि० सं० १८३९ (ई० स० १७८२)

१ वि० सं० १८३६ (ई० स० १७७९) में महाराज ने प्रसन्न होकर रायपुर की जागीर केसरीसिंह के पुत्र फ़तैसिंह को लौटा दी थी ।

२ मारवाड़ की ख्यातों में टालपुरों का सोढा राजपूतों से उमरकोट छीनना लिखा है ।

३ सेवग थानू को इन तीनों ने पहले ही वहाँ से सिंध की तरफ़ भेज दिया था, क्योंकि वह ब्राह्मण था ।

४ ख्यातों के अनुसार उमरकोट पर जोधपुर नरेशों का यह अधिकार वि० सं० १८६६ (ई० स० १८०९) तक रहा था । उमरकोट पर अधिकार करने में पोकरन के ठाकुर सवाईसिंह ने भी वीरता दिखलाई थी । इसी से प्रसन्न होकर वि० सं० १८३९ (ई० स० १७८२) में महाराज ने उसे प्रधान का पद और साथ ही उस कार्य के वेतन स्वरूप (बधारे में) मजल और दुनाड़ा नामक गाँव दिए ।

मिरज़ा कलिचबेग फ़ेदूनबेग की लिखी 'हिस्ट्री ऑफ़ सिंध' के, द्वितीय भाग में, उमरकोट के विषय में लिखा है –

जिस समय सिंध के शासक मियाँ अब्दुलनबी (कल्होरा) के राज्य में मीर बीजड़ का प्रताप बहुत बढ़ा हुआ था, उस समय जोधपुर नरेश के दो राठोड़-प्रतिनिधियों ने सिंध पहुँच, उनके साथ गुप्त परामर्श करने के बहाने से, उसे (बीजड़ को) मार डाला । परन्तु मरने के पूर्व आहत बीजड़ ने अपनी

तलवार से उन दोनों राजपूतों को, मय उनके दो अनुचरों के, वहीं समाप्त कर दिया। यह घटना हि० स० ११६४ (ई० स० १७८१ ?) की है।

कुछ लोगों का अनुमान है कि यह कार्य मियाँ अब्दुलनबी की प्रार्थना पर ही किया गया था। इसीसे उसने, इस कार्य की एवज में, उमरकोट का अधिकार जोधपुर-नरेश को सौंप दिया। परंतु इसके बाद ही उसे (मियाँ अब्दुलनबी को) बीजड के पुत्र मीर अब्दुल्लाखाँ के भय से कलात की तरफ भागना पड़ा और उसी समय उसने अपने पुत्र को जोधपुर नरेश के पास भेज दिया।

कुछ दिन बाद पूर्व की तरफ से महाराजा विजयसिंह की सेना ने और उत्तर की तरफ से कलात की सेना ने सिंध पर चढ़ाई की। इसकी सूचना मिलते ही मीर अब्दुल्लाखाँ ने पहले जोधपुर की सेना का मुकाबला करने के लिये प्रयाण किया। मार्ग में रेगिस्तान को पार कर आगे बढ़ते ही, उसे एक पहाडी-गढी में एक सौ राजपूत सरदार और ठाकुर दिखाई दिए। उनका मुखिया विजयसिंह का पुत्र और दामाद था, और उन सरदारों के अनुयायी पास की समतल भूमि पर ठहरे हुए थे। दोनों सेनाओं के बीच युद्ध होने पर विजय अब्दुल्ला के पक्ष में रही और राजपूतों का बहुत सा माल असबाब भी उसके हाथ लगा।[1]

इसके कुछ काल बाद मीर अब्दुल्ला के मियाँ अब्दुलनबी द्वारा धोके से मरवाए जाने पर मीर फतैअलीखाँ बलोचों का मुखिया चुना गया।

आगे उक्त इतिहास में लिखा है कि मियाँ अब्दुलनबी ने कुछ रुपया लेकर, इसके बहुत पहले ही, खानगी तौर पर, उमरकोट जोधपुर के राजा विजयसिंह को सौंप दिया था। (परंतु 'फ़रे नामा' का लेखक मीर बीजड को मारने की एवज में उमरकोट का दिया जाना लिखता है।) इसीसे उक्त राजा ने वहां के किले में अपनी कुछ फौज रख छोड़ी थी। परंतु जब उसे (राजा की फौज को) मीर के (हि० स० ११६६=ई० स० १७८२ में) मियाँ अब्दुलनबी पर विजय पाने का समाचार मिला, तब उसने शत्रु (मीर) से उस दुर्ग की रक्षा के लिये रसद और नई सेना भेजने के लिये अपने राजा को लिखा। इस पर राजा ने भी शीघ्र ही सामान से लदे १०० ऊंट और २,००० सैनिक उमरकोट की तरफ रवाना किए। मार्ग में उनमें के तीन सौ सैनिकों का सामना (मीर सुहराबखाँ के बन्धु) मीर गुलाम मुहम्मद से, जो शिकार को निकला था, होगया। युद्ध होने पर करीब एक सौ राजपूत मारे गए और बचे हुए पीछे आती हुई अपनी सेना की तरफ लौट चले। बलोचों ने, जिनको पीछे आने वाली राजपूत-सेना का पता न था, इनका पीछा किया। परंतु कुछ ही देर में वे (बलोच), उस विशाल राठोड़-वाहिनी के बीच घिर कर मारे गए। यह घटना हि० स० १२०१ (ई० स० १७८६) की है।[2]

इसकी सूचना मिलते ही मीर सुहराब ने, मीर फतैअली की सहायता से, राजपूतों का पीछा किया और उनके लौटकर अपने मुल्क में पहुँच जाने पर भी उनमें के बहुत से योद्धाओं को मार, उनके मुल्क को लूट और मन्दिरों को गिरा कर बदला लिया। इसके बाद बलोच अपने देश को लौट गए।

(१) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १७८-१८३।

(२) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १६३।

(३) यह मीर चाकर का, जो खैरपुर के मीरों का पूर्वज था, पुत्र था। हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १७१।

यह देख मियाँ अब्दुलनबी तीसरी बार फिर कलात के शासक मुहम्मद नसीर के पास मदद लेने को गया। परन्तु उसने बार-बार बलोचों से झगड़ा करना उचित न समझा। इसी लिये उसने, अब्दुलनबी को अपने यहाँ से टालने के लिये, बलोचों के मुखिया मीर फ़तैअलीख़ाँ से लिखा पढ़ी द्वारा मियाँ को कलात की सेना के साथ खुदाबाद (शिकारपुर) तक लौटा देने की अनुमति माँगी। यद्यपि फ़तैअलीख़ाँ ने यह बात मानली, तथापि कलात की सेना को नदी के उस पार ही रखने की सूचना भी दे दी। यह सब गुप्तरूप से तय हुआ था। इसके बाद अब्दुलनबी कलात के शासक की दी हुई ब्रोहियों की सेना के साथ सीविस्तान के छटरी नामक स्थान पर पहुँच कर ठहर गया और नदी के पार करने के पूर्व जोधपुर के राजा की, जिसको शायद उसने पहले ही गुप्तरूप से मदद के लिये लिख भेजा था, सेना के आने की राह देखने लगा। परन्तु इसी बीच उसके साथ के सैनिक, आस पास के गाँवों को उजड़े हुए देख, रसद और रुपयों के लिये गड़बड़ मचाने और अब्दुलनबी को वहीं छोड़ कर चले जाने का विचार करने लगे। यद्यपि अब्दुलनबी ने राजपूतों की सेना को शीघ्र ले आने के लिये आदमी भेजे थे, तथापि राजपूतों ने कहला दिया कि जब तक वह (मियाँ) नदी पार न करलेगा, तब तक वे उसकी मदद को न आवेंगे। इसी समय ब्रोही सैनिक बागी हो गए और स्वयं अब्दुलनबी के सामान को लूट कर वहीं से अपने देश को लौट गए। इसके बाद अब्दुलनबी अपनी रक्षा के लिये वहाँ से डेराजात प्रांत की तरफ चला गया। जब राजपूत-सेना को, जो अपनी सरहद पर मियाँ का रास्ता देखती थी, उसके नदी के उस पार न ही चले जाने का समाचार मिला, तब वह भी वापस राजधानी को लौट गई। यह घटना हि० स० ११९७ (ई० स० १७८३) की है[2]।

'फ़त्हे नामे' का लेखक लिखता है कि जब हि० स० ११९८ (ई० स० १७८४)[3] में हैदराबाद के किले पर मीर फ़तैअलीख़ाँ का अधिकार हो गया, तब कल्होरा का कुटुम्ब जो वहाँ रहता था, (अबिसीनिया-वासी गुलाम) शालनी के साथ जोधपुर भेज दिया गया क्योंकि यहाँ पर पहले से ही मियाँ अब्दुलनबी का लड़का रहता था।

परन्तु इसमें की कुछ बातें मारवाड़ की ख्यातों से नहीं मिलती हैं और इनके सनों में भी गड़बड़ नजर आती है। उनमें मारवाड़-नरेश का बीजड़ के कुटुम्बियों को हराकर उमरकोट लेना लिखा है और उस समय के कल्होरा शासक की स्थिति से भी इसी बात की पुष्टि होती है, क्योंकि वह स्वयं ही उस समय परमुखापेक्षी हो रहा था। ऐसी हालत में उमरकोट का टालपुरों से लेना और उसकी रक्षा करना बिना तलवार के बल के असम्भव था। हाँ यह सम्भव है कि निर्बल मियाँ अब्दुलनबी ने टालपुरों के प्रभाव से बचने के लिये उनके एक नवीन शत्रु का वहाँ पर पैर जमाना ग़नीमत समझ महाराज से मैत्री करली हो और महाराज ने भी भविष्य की गड़बड़ को मिटाने के लिये उसे कुछ रुपयों की सहायता दे दी हो।

---

(१) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १४२।

(२) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १६५-१६८।

(३) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० २००।

की है[1]।

इसी बीच वि० स० १८३८ (ई० सन् १७८१) में बीकानेर के महाराजकुमार राजसिंहजी, जो अपने पिता से अप्रसन्न हो जाने से देशणोक में रहते थे, जोधपुर चले आए। महाराजा विजयसिंहजी ने उन्हे बडी खातिर के साथ अपने पास रख लिया और वि० स० १८४२ (ई० सन् १७८५) में पिता-पुत्रो में मेल करवाकर उन्हे फिर बीकानेर भेज दिया।

वि० स० १८३९ (ई० सन् १७८२) में फिर टालपुरो ने उमरकोट पर अधिकार करने का उद्योग किया। परन्तु महाराज के जोधों[2] और पातावत सरदारो की सैन्य ने, समय पर पहुँच, उन्हे सफल न होने दिया।

वि० स० १८३६ (ई० सन् १७७९) के करीब जयपुर-नरेश पृथ्वीसिंहजी का स्वर्गवास हो गया और उनके पीछे महाराजा प्रतापसिंहजी गद्दी पर बैठे। इसलिये कुछ सरदारो ने मिल कर पृथ्वीसिंहजी के बालक-राजकुमार मानसिंह को उसके ननिहाल भेज दिया। कुछ वर्ष बाद वह वहाँ से सिंधिया के पास पहुँचा। इसीसे वि० स० १८४४ (ई० सन् १७८७) में मरहटो[3] ने उसको गद्दी पर बिठाने के लिये जयपुर पर चढाई की। इसकी सूचना पाते ही जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी ने महाराजा विजयसिंहजी से सहायता की प्रार्थना की। इस पर महाराज ने सिंघी भीमराज की

इसके अलावा उक्त इतिहास मे, लिखा है कि हि० स० ११९७ (ई० स० १७८३) मे तीमूरशाह ने मीर फतैअलीखॉ को मारे ही सिंध प्रदेश का शासक नियत कर मियॉ अब्दुलनबी को इज्जत के साथ राज-कार्य मे अवसर ग्रहण कर लेने को बाध्य कर दिया और उसके निर्वाह के लिये पैनशन नियत करदी।

१ किसी किसी ख्यात म इस घटना का समय वि० स० १८३७ भी लिखा मिलता है। नहीं कह सकते यह कहा तक ठीक है ?

२ इनमें लाडनू का ठाकुर था।

३ उस समय ये मरहटे दिल्ली के बादशाह शाहआलम द्वितीय के स्वयभू प्रतिनिधि बने हुए थे।

(१) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० २०२।

अधिनायकता में अपनी एक सेना उधर भेज दी[1]। इस राठोड़-वाहिनी ने जयपुर-नरेश की सेना के साथ मिलकर तुंगा नामक स्थान में माधोजी की सेना का सामना किया। घमसान युद्ध होने के बाद मरहटों के पैर उखड़ गए और वे रनवास की तरफ भाग चले। इससे अजमेर पर महाराज का पूरा अधिकार हो गया। इस युद्ध में किशनगढ़-नरेश ने भी राजकुमार मानसिंह का साथ दिया था। इससे मरहटों के परास्त हो भाग जाने पर राठोड़-सेना ने किशनगढ़ और रूपनगर को जा घेरा। सात महीने तक घिरे रहने से किशनगढ़-नरेश प्रतापसिंहजी तंग आगए और अन्त में उन्होंने तीन लाख रुपये दण्ड देना स्वीकार कर महाराज से सन्धि करली। इसके साथ ही उन्हें रूपनगर का अधिकार भी वीरसिंह के पुत्र अमरसिंह को देना पड़ा।

वि० सं० १८४५ (ई० स० १७८८) में किशनगढ़-नरेश प्रतापसिंहजी स्वयं जोधपुर आकर महाराज से मिले और उन्होंने पुराने मनोमालिन्य को दूर कर फिर से मैत्री स्थापित की।

वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) में माधोजी सिंधिया ने, अपनी पुरानी हार का बदला लेने के लिये, तुकोजी को साथ लेकर, मारवाड़ पर चढ़ाई की। यद्यपि यह झगड़ा जयपुरवालों के कारण ही हुआ था, तथापि इस बार वे मरहटों से मिल गए और उनके मुकाबले को सेना भेजने में बहानेबाजी करने लगे। इस पर

---

१ ग्रांट डफ की हिस्ट्री ऑफ मरहटाज, भा० २ पृ० १८१।

२ इस विषय का आधा दोहा प्रसिद्ध है —

'उदलती आमेर राखी राठोड़ां सरो'।

३. ख्यातों में लिखा है कि मरहटों ने, किशनगढ़ वालों की सहायता से अम्बाजी इंगलिया की अधीनता में, एक बार फिर अजमेर पर अधिकार करने की कोशिश की थी। परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके बाद महाराज की सेना ने चांदावतों से रामसर छीन लिया।

४. जिस समय रूपनगर के स्वामी सरदारसिंहजी का स्वर्गवास होने लगा, उस समय उन्होंने अमरसिंह को गोद लेने की इच्छा प्रकट की थी। परन्तु किशनगढ़-नरेश बहादुरसिंहजी ने उसकी एवज में अपने ज्येष्ठ पुत्र बिड़दसिंहजी को उनकी गोद बिठा दिया। इस पर अमरसिंह नाराज होकर महाराजा विजयसिंहजी के पास जोधपुर चला आया। इसीसे किशनगढ़-नरेश प्रतापसिंहजी महाराज से नाराज हो गए थे।

५. ख्यातों में लिखा है कि यद्यपि राठोड़ों ने जयपुर का पक्ष लेकर ही मरहटों से युद्ध किया था, और इन्हीं की सहायता से उस समय जयपुर की रक्षा हुई थी, तथापि कछवाहों के

महाराजा विजयसिंहजी ने बीकानेर और किशनगढ के नरेशो को सहायता के लिये बुलवा लिया।

इधर मेड़ते मे जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ-नरेशों की सेनाए युद्ध के लिये तैयार हो रही थी और उधर महाराष्ट्र-वीर, साभर, नावा और परबतसर पर अधिकार करने के बाद, अजमेर को घेर कर[1], मेडते की तरफ बढ रहे थे। मार्ग मे उनकी सेना के फ्रेंच जनरल (De Boigne) डी. बोइने का तोपखाना लूनी नदी की बालू में फॅस गया। जैसे ही इसकी सूचना महाराज की सेना में पहुँची, वैसे ही कुछ सरदारोने तत्काल उस तोपखाने पर आक्रमण करने की सलाह दी। परन्तु एक तो आपस की फूट के कारण यह मौका आपस के वाद-विवाद और विचार में ही निकल गया और दूसरे उक्त फ्रेंच जनरल ने झूठा सधि का प्रस्ताव भेज कर राठोड-सरदारो को धोके में डाल रक्खा। इसके बाद जब बोइने के तोपखाने ने राठोड-सेना के पड़ाव के पास पहुॅच उस पर गोले बरसाने शुरू किए, तब राठोडो को धोके का हाल मालूम हुआ। इस पर वे भी झटपट तैयार हो कर शत्रु से भिड़ गए। परन्तु शत्रु का आक्रमण होने तक धोके में रहने से इस युद्ध में राठोड सफल न हो सके और इन्हे मैदान से हट कर नागोर का आश्रय लेना पडा। साथ ही मरहटो को विजयी देख बीकानेर और किशनगढ के नरेशो को भी अपने-अपने राज्यो की रक्षार्थ लौट जाना पडा[2]।

चित्त मे अपनी निर्बलता प्रकट होजाने के कारण ईर्ष्या ने स्थान ग्रहण कर लिया था, और वे एक बार राठोडों को भी नीचा दिखाने को तुले हुए थे। इसीसे जयपुर-नरेश प्रतापसिहजी ने सिंधिया को कई लाख रुपये देने का वादा कर जोधपुर पर आक्रमण करने के लिये उत्साहित किया था।

किसी किसी ख्यात मे यह भी लिखा है कि यद्यपि पहले तॅवरों की पाटन के पास जोधपुर और जयपुर की सेनाओं ने मिलकर मरहटों का सामना किया, तथापि कुछ ही देर मे जयपुर वालों ने माधोराव सिंधिया से सधि कर ली। इसीसे ठीक मौके पर अकेली राठोड-वाहिनी को मरहटों का सामना करना पडा। इससे उसके बहुत से सरदार मारे गए और खेत मरहटों के हाथ रहा।

१. खरवे के राव सूरजमल ने घिर जाने पर भी छ. मास तक मरहटों से अजमेर के किले की रक्षा की थी। परतु अन्त मे मरहटों के मेडते के युद्ध मे विजय प्राप्त कर लेने से वह किला उनको सौंप दिया गया (अजमेर, पृ० १७३)।

२. कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि डी बोइने के आक्रमण के पूर्व ही बीकानेर और किशनगढ के नरेशों को अपने-अपने राज्यों की रक्षार्थ लौट जाना पडा था। इससे इस युद्ध मे मरहटों का सामना करने के लिये जोधपुर वाले अकेले ही रह गए थे। 'तवारीख

यह देख मरहटों ने जोधपुर पर कब्ज़ा कर लेने का विचार किया। इस पर देश-काल को अपने विपरीत देख महाराज ने मरहटों से संधि करली। इससे अजमेर प्रान्त और साठ लाख रुपये माधवराव (माधोजी) के हाथ लगे। साथ ही जो कर अब तक दिल्ली के बादशाह को दिया जाता था, वह भी मरहटों को देना तय हुआ। यह घटना वि० सं० १८४७ के फागुन (ई० स० १७९१ की फरवरी) की है।

महाराजा विजयसिंहजी ने एक जाट जाति की स्त्री को अपनी 'पासवान' बना रक्खा था। उसका नाम गुलाबराय था। महाराज की अत्यधिक कृपा के कारण राज्य में भी उसका बहुत प्रभाव था और कभी-कभी वह राज्य के कामों में भी दखल दे दिया करती थी। इससे मारवाड़ के बड़े-बड़े सरदार अप्रसन्न हो गए और अपना विरोध प्रकट करने को जोधपुर छोड़ कर मालकोसनी की तरफ चले गए। यह देख वि० सं० १८४८ के फागुन (ई० स० १७९२ की फरवरी) में महाराज स्वयं उनको लौटा

राज श्री बीकानेर' में के महाराजा सूरतसिंहजी के इतिहास में भी इस युद्ध का उल्लेख नहीं है (देखो पृ० ३६८)।

१ महाराज ने इतने रुपये एक साथ न दे सकने के कारण कुछ तो गहने और जवाहरात आदि के रूप में मरहटों को उसी समय दे दिए, और बाकी रुपयों की एवज़ में जमानत के तौर पर साँभर, मारोठ, नावा, परबतसर, डीडवाना और सोजत की आमदनी उन्हें सौंप दी।

२ राजपूताने में 'पासवान' राजा की उस उपपत्नी को कहते हैं, जिसका दर्जा महारानी से कुछ ही कम होता है।

पासवान गुलाबराय वैष्णव सम्प्रदाय को मानने वाली थी। इसके पुत्र का नाम तेजसिंह था, जिसकी मृत्यु वि० सं० १८४२ में हुई थी।

३. एक बार गुलाबराय किसी बात पर महाराज के प्रधान मन्त्री और कृपापात्र खीची गोबधन (गोवर्धन) से नाराज हो गई। यह देख वह पोकरन ठाकुर सवाईसिंह के डेरे पर चला गया और सब सरदारों को एकत्रित कर पासवान के राज्य कार्य में हस्तक्षेप करने का विरोध करने लगा। इस पर सब सरदारों ने मिलकर महाराज को समझाने का इरादा किया। परन्तु इस गुप्त मन्त्रणा की सूचना गुलाबराय के कानों तक पहुँच जाने से वे सब घबरा कर बीसलपुर की तरफ चले गए।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा मिलता है कि वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) के करीब गुलाबराय ने, महाराज के ज्येष्ठ-पौत्र भीमसिंहजी के होते हुए भी, महाराज के छोटे पुत्र शेरसिंह को युवराज पद दिलवा दिया था। इस से नाराज होकर चांपावत, कूंपावत, ऊदावत और मेड़तिये सरदार मालकोसनी की तरफ चले गए थे।

लाने को चले। जिस समय सरदारों का पड़ाव बीसलपुर मे था, उस समय महाराज भी वहा जा पहुँचे। यह देख सारे सरदार सामने आकर महाराज से मिले और इनके साथ लौटकर जोधपुर की तरफ चले। परन्तु इनके जोधपुर पहुँचने के पूर्व ही, वि० स० १८४९ की वैशाख वदि ७ (ई० स० १७९२ की १३ अप्रेल) को, महाराज के पौत्र भीमसिंहजी[1] ने जोधपुर के किले और नगर पर अधिकार कर लिया।

वि० स० १८४९ की वैशाख बदि १० (ई० स० १७९२ की १६ अप्रेल) को पौकरन-ठाकुर और रास-ठाकुर के आदमी गुलाबराय को, किले पर पहुँचा देने के बहाने से, पीनस में बिठाकर ले गए और मार्ग में उन्होने उसे मार डाला[2]। परन्तु महाराज को इसकी खबर न होने दी।

वि० सं० १८४९ की वैशाख सुदि ६ (ई० स० १७९२ की २७ अप्रेल) को जब महाराज जोधपुर के निकट पहुँचे, तब नगर और किले पर भीमसिंहजी का अधिकार देख बालसमंद के बगीचे में ठहर गए। अन्त में दस महीने बाद रीया, कुचामन[3], मीठड़ी, वलूदा और चंडावल के ठाकुरो ने पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह को समझाया कि महाराज की उपस्थिति मे उनके पौत्र भीमसिंहजी का ज़बरदस्ती राज्याधिकारी बन बैठना शोभा नहीं देता। इस पर उसने महाराज से भीमसिंहजी को खर्च के लिये सिवाना जागीर में देने और महाराज के बाद जोधपुर की गद्दी पर उनका अधिकार क़ायम रखने का वादा करवा कर उन (भीमसिंहजी) को सिवाने भिजवा देने का प्रबन्ध किया। यद्यपि भीमसिंहजी ने ये बाते स्वीकार करलीं, तथापि किला छोड़ने के पूर्व उन्होने सरदारों से यह प्रतिज्ञा करवाली कि सिवाने की तरफ जाते समय मार्ग में उनसे किसी प्रकार की छेड़छाड़ नहीं की जाय। इस प्रकार पूरा प्रबन्ध होजाने पर वह किले से बाहर चले आए और महाराज से क्षमा माग

१. भीमसिंहजी महाराजा विजयसिंहजी के द्वितीय पुत्र भोमसिंहजी के लड़के थे और महाराज के स्वर्गवासी ज्येष्ठ-पुत्र फतैसिंहजी की गोद बिठाए गए थे।

किसी किसी ख्यात मे यह भी लिखा है कि जिस समय सरदार जोधपुर छोड़कर बीसलपुर या मालकोसनी की तरफ़ रवाना हुए थे, उस समय उन्होने भीमसिहजी को समझा दिया था कि महाराज के हमारे पीछे आने पर आप जोधपुर के किले और नगर पर अधिकार कर लेना।

२. यह पली के रूपावत सरदारसिंह के हाथ से मारी गई थी। और उसके पास जो धन था वह पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह और रास-ठाकुर जवानसिंह ने आपस में बाट लिया था।

३. इस कार्य मे मुख्य भाग कुचामन-ठाकुर ने लिया था।

सिवाने की तरफ रवाना होगए । उस समय प्रतिज्ञा करने वाले सरदार भी उन्हें सिवाने तक सकुशल पहुँचा देने के लिये उनके साथ हो लिए । मार्ग में सायकाल हो जाने से इनका पहला पड़ाव भँवर नामक गाँव में हुआ । इसी दिन वि० स० १८५० की चैत्र सुदि ८ (ई० स० १७९३ की २० मार्च) को महाराज किले में दाखिल हुए । यद्यपि सरदारो ने महाराज की अनुमति लेकर ही भीमसिंहजी को मार्ग में किसी प्रकार की छेडछाड न होने देने का वचन दिया था, तथापि क़िले पर पहुँचते ही महाराज का क्रोध भड़क उठा और इन्होने राज्य की विदेशी सेना को महाराज-कुमार भीमसिंहजी को मार्ग में से पकड़ लाने की आज्ञा देदी । इसी के अनुसार उस सेनाने दूसरे दिन प्रातःकाल होते-होते भँवर पहुँच भीमसिंहजी के दल पर आक्रमण कर दिया । यह देख राजकुमार को सकुशल सिवाने तक पहुँचाने के लिये साथ गए राज-भक्त सरदारो को भी, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये, महाराज की सेना से युद्ध करना पड़ा । महाराज की भेजी हुई सेना की सख्या अधिक होने से इधर कुछ सरदार तो उसका मार्ग रोक कर युद्ध मे प्रवृत्त हुए और उधर उनकी सलाह से ठाकुर सवाईसिंह भीमसिंहजी को लेकर पौकरन की तरफ़ चल दिया । दिन भर युद्ध होने के बाद जब महाराज को भीमसिंहजी के निकल कर चले जाने की सूचना मिली, तब इन्होने युद्ध बन्द करने की आज्ञा भेजकर सेना को वापस बुलवा लिया और उन राज-भक्त सरदारो को हर तरह से तसल्ली दिलवाई ।

इसके बाद महाराज ने सिंघी अखेराज को भेजकर गौडावाटी और मेड़ता प्रान्त के उन जागीरदारो से, जो महाराज-कुमार भीमसिंहजी के षड्यन्त्र में सम्मिलित थे, दण्ड के रुपये वसूल किए ।

वि० स० १८५० की आषाढ वदि ३० (ई० स० १७९३ की ८ जुलाई) को[1] रात्रि मे जोधपुर मे महाराजा विजयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया ।

इन्होने करीब ४० वर्ष राज्य किया था । इनके समय एक तो दिल्ली की बादशाहत शिथिल हो जाने से मरहटो का उपद्रव बढ़ गया था और दूसरे महाराजा रामसिंहजी और महाराजा बखतसिंहजी के आपस के झगड़े के कारण, जो उनके बाद वि० स० १८२९ (ई० स० १७७२) तक चलता रहा था, मारवाड़ के सरदारो में स्वतंत्रता आ गई थी । इसी से इनके राज्य में हमेशा एक न एक उपद्रव जारी रहा । यह

१. किसी किसी ख्यात में इस घटना का एक दिन पहले होना लिखा है ।

महाराजा परम वैष्णव थे और इन्होने वि० स० १८१७ (ई० स० १७६०) में जोधपुर नगर में गंगश्यामजी का विशाल मदिर बनवाया था।

महाराजा विजयसिंहजी ने ही पहले-पहल वि० स० १८२२ (ई० स० १७६५) में मारवाड़ में अपने नाम का चादी का रुपया चलाया था[1]। यह 'विजयशाही' रुपये के नाम से प्रसिद्ध था और वि० स० १९५७ (ई० स० १९००) तक प्रचलित रहा[2]।

'मआसिरुल उमरा' के लेखक ने महाराज के विषय में लिखा है —

"उस (बखतसिंह) के मरने पर उसका लड़का विजयसिंह अब तक (मारवाड़ पर) काबिज है। यह राजा रियाया-परवरी, अधीन होने वालो की परवरिश और सरकशों की सर-शिकनी में मशहूर है[3]।"

वि० स० १८३२ की सावन सुदि ११ (ई० स० १७७५ की ७ अगस्त= हिजरी सन् ११८९ की ९ जमादिउस्सानी) की एक शाही सनद से ज्ञात होता है कि दिल्ली के पास का रायसिना नामक गॉव, जहाँ पर इस समय नई दिल्ली बसी है, जोधपुर-नरेशो की परपरागत जागीर में था। यद्यपि बीच में जोधपुर के गृहकलह के कारण वह जब्त होगया था, तथापि उसके शान्त होने पर उपर्युक्त तिथि को फिर से महाराजा विजयसिंहजी को दे दिया गया था[4]।

१ यद्यपि कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास मे लिखा है कि अजितसिंह ने अपने नाम के सिक्के चलाए थे (ऐनाल्स ऐन्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान (क्रुक सपादित), भा० २, पृ० १०२६) परन्तु उनका अब तक कुछ भी पता नही चला है।

२ इसी वर्ष मे मारवाड़ में विजैशाही रुपये की एवज में भारत-सरकार के रुपये का चलन जारी हुआ था।

३ मआसिरुल उमरा, भा० ३, पृ० ७५६।

४ क्षत्रियअन्वेषक पत्रिका, अक १, (अप्रैल १९३०), पृ० ४-१४ और जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी, लदन, (जुलाई १९३१), पृ० ५१५-५२५।

महाराजा विजयसिंहजी के ७ पुत्र थे.—

१ फतैसिंह[1]जी, २ भोमसिंह[2]जी, ३ जालिमसिंह[3], ४ सरदारसिंह[4], ५ गुमानसिंह[5]जी, ६ सावतसिंह और ७ शेरसिंह[6]।

इन महाराज के समय जोधपुर नगर में निम्नलिखित स्थान बनवाए गए थे.—

१ गंगश्यामजी का मन्दिर, २ बालकृष्णजी का मन्दिर, ३ कुंजविहारीजी का मंदिर, ४ गुलाब सागर तालाव[7], ५ गिरदीकोर्ट[8], ६ मायला बाग और ७ उसमें का झालरा[9]।

१. यह विजयसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म वि० स० १८०४ की सावन वदि ४ (ई० स० १७४७ की १४ जुलाई) को हुआ था। परन्तु वि० स० १८३४ की कार्तिक सुदि ८ (ई० स० १७७७ की ८ नवम्बर) को महाराजा की विद्यमानता में ही, निस्सन्तानावस्था मे, इनका स्वर्गवास हो गया। इसी लिये इनके छोटे भ्राता भोमसिंहजी के पुत्र भीमसिंहजी इनकी गोद रक्खे गए थे।

जोधपुर नगर का फतैसागर नामक तालाव इन्हीं के नाम पर बनवाया गया था।

२. इनका जन्म वि० स० १८०६ की द्वितीय भादों सुदि १० (ई० स० १७४९ की १० सितम्बर) को और इनकी मृत्यु, चेचक की बीमारी से, वि० स० १८२६ की वैशाख वदि १३ (ई० स० १७६९ की ४ मई) को हुई थी। भीमसिंहजी इन्हीं के पुत्र थे।

३. इनको महाराज ने पहले नावा और फिर (वि० स० १८४८ के वैशाख=ई० स० १७९१ की मई में) गोडवाड जागीर में दिया था। महाराज की इच्छा इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी बनाने की थी। वि० स० १८५५ (ई० स० १७९८) में इनका स्वर्गवास हुआ।

४. यह १७ वर्ष की आयु में ही चेचक से मर गए थे।

५ इनका जन्म वि० स० १८१८ की कार्तिक सुदि ८ (ई० स० १७६१ की ५ नवम्बर) को हुआ था और वि० स० १८४८ की आश्विन वदि १३ (ई० स० १७९१ की २६ सितम्बर) को इनका स्वर्गवास हो गया। इन्हीं के पुत्र मानसिंहजी भीमसिंहजी के बाद जोधपुर की गद्दी पर बैठे थे।

६ ख्यातों से ज्ञात होता है कि गुलाबराय ने वि० स० १८४७ (ई० स० १७९०) मे महाराज से कहकर इन्ही को युवराज का पद दिलवाया था। इनका देहान्त वि० स० १८५३ (ई० स० १७९६) मे हुआ।

७. यह तालाब वि० स० १८४५ मे बनकर तैयार हुआ था।

८. यही आजकल सरदार मारकेट कहाता है।

९. इनमे के पहिले दो मन्दिरों के अलावा सब स्थान गुलाबराय ने बनवाए थे। पहले झालरे के स्थान पर एक बावली थी। वि० स० १८३३ मे उसी मे परिवर्तन कर झालरा बनाया गया था। उपर्युक्त स्थानों के अलावा फतैसागर, किले मे का मुरलीमनोहरजी का मन्दिर आदि अन्य अनेक स्थान भी इनके समय बनवाए गए थे।

महाराजा विजयसिंहजी ने कई गाँव दान दिए थे[1]।

---

१ १ देवा (बीलाड़े परगने का), २ पेसरवाली ३ नींबोड़ा (जसवन्तपुरा परगने के), ४ चैतिरावास ५ डावराणी-खुर्द ६ दुगोर (मेड़ता परगने के), ७ वासणी-वैदा ८ सागासणी (दुगोर की एवज में) (जोधपुर परगने के), ९ जैतपुरा (मेड़ता परगने का) ब्राह्मणों को, १० भावटा ११ टोडू (नागोर परगने के) पुरोहितों को, १२ नगवाड़ा [illegible] (परबतसर परगने का), १३ भैरूवास (मेड़ता परगने का) चारणों को, १४ [illegible] (नागोर परगने का) (द्वारका के) रणछोड़रायजी के मन्दिर को, १५ पुनास (पुनियावास) (मेड़ते परगने का) जगन्नाथरायजी के मन्दिर को, १६ लाडवा (मेड़ता परगने का), १७ मातावास (परबतसर परगने का), १८ बोइल (बीलाड़ा परगने का) बालकृष्णजी के मन्दिर को, १९ प्रनाली (नागोर परगने का) समनशाह की दरगाह को, २० अजयपुरा (नागोर परगने का) भगतों को, २१ सारड़ा-मेवासा (जोधपुर परगने का), २२ लालणा-खुर्द (परबतसर परगने का) गुसाइयों को और २३ [illegible] (परबतसर परगने का) ढाढियों को।

इनके अलावा महाराज ने [illegible] आदि को और भी बहुत सा दान दिया था।

३१. महाराजा भीमसिंहजी

यह महाराजा विजयसिंहजी के पौत्र और भोमसिंहजी के पुत्र थे, परन्तु इनके बडे चचा फतैसिंहजी और पिता भोमसिंहजी का स्वर्गवास (इनके पितामह) महाराजा विजयसिंहजी के जीतेजी हो जाने से, वि० स० १८५० की आषाढ सुदि १२ (ई० स० १७९३ की २० जुलाई) को, यह अपने दादा के उत्तराधिकारी हुएँ।

इनका जन्म वि० स० १८२३ की आषाढ सुदि १२ (ई० स० १७६६ की १९ जुलाई) को हुआ था। जिस समय महाराजा विजयसिंहजी का स्वर्गवास हुआ, उस समय यह अपना विवाह करने के लिये जयसलमेर गए हुए थे, परन्तु उक्त सूचना के मिलते ही, पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह के साथ, जोधपुर आकर यहाँ की गद्दी पर बैठे।

इसी बीच इनके चचा जालिमसिंह और चचेरे भाई मानसिंहजी भी जोधपुर के करीब पहुँच चुके थे[3]। परन्तु भीमसिंहजी के किले पर चढ जाने के कारण उन्हें, कूँपावत और मेड़तिया सरदारो को साथ लेकर, जोधपुर से लौट जाना पड़ा। इसके बाद उन्होने मारवाड़ में लूट-मार शुरू की। परन्तु शीघ्र ही महाराजा भीमसिंहजी ने उनके उपद्रव को दबाने के लिये एक सेना भेजदी। यह देख जालमसिंह गोडवाड़ की तरफ चला गया और मानसिंहजी ने जालोर के सुदृढ दुर्ग का आश्रय ग्रहण किया।

१. ख्यातों मे भीमसिंहजी का जयसलमेर से पौकरन होते हुए, आषाढ सुदि ६ (१७ जुलाई) को जोधपुर के किले मे पहुँचना लिखा है।

२ एक स्थान पर इनका जन्म वि० स० १८२३ की आश्विन सुदि १२ को होना लिखा है। परन्तु जब इनके पिता का देहान्त वि० स० १८२६ मे ही होगया था, तब यह जन्म सवत् कैसे सही हो सकता है।

३ महाराजा विजयसिंहजी के स्वर्गवास की सूचना पाते ही जालिमसिंह और मानसिंहजी दोनों जोधपुर आकर नगर के बाहर शेखावतजी के तालाब पर ठहरे थे, क्योंकि सरदारोंने उन्हे किले मे जाने से रोक दिया था। उस समय चापावत-सरदार और उनके पक्षके अन्य कई सरदार भी भीमसिंहजी के पक्ष मे थे।

४ किसी-किसी ख्यात मे जालिमसिंह का सोजत पर अधिकार कर लेना लिखा है।



૩૧. મહારાજા ભીમસિહજી

વિ૦ સ૦ ૧૮૫૦-૧૮૬૦ (ઈ૦ સ૦ ૧૭૯૩-૧૮૦૩)

इस प्रकार मारवाड़ में शान्ति हो जाने पर महाराजा भीमसिंहजी ने अपने पक्ष के सरदारों आदि को, जिन्होंने इन्हें भँवर के युद्ध और जोधपुर की गद्दी प्राप्त करने में सहायता दी थी, यथोचित पुरस्कार (जागीरें आदि) देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।[1]

अगले वर्ष (वि० स० १८५१=ई० स० १७९४ में) मरहटों ने (लखबा की अधीनता में) मारवाड़ पर चढ़ाई की[2]। परन्तु महाराज ने भीतरी उपद्रव को दबाए रखने के विचार से उन्हें सेना के खर्च के लिये कुछ रुपये देकर लौटा दिया।

अपनी अनुपस्थिति में जालिमसिंह और मानसिंहजी के राज्य पर अधिकार करने का उद्योग करने के कारण यह उनसे अप्रसन्न होगए थे। इसीसे वि० स० १८५३ (ई० स० १७९६) में इन्होंने अपने चचा जालिमसिंह से गोडवाड़ छीनलिया। परन्तु इनके चचेरे भाई मानसिंहजी, जालोर-दुर्ग[4] का आश्रय मिल जाने से, अपनी स्थिति को सम्हाले रहे। यह देख, वि० स० १८५४ (ई० स० १७९७) में, इन्होंने सिंघी अखैराज[3] को जालोर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। यद्यपि उसने जाकर जालोर के आस-पास के प्रदेश पर अधिकार करलिया, तथापि किला और नगर उसके हाथ न आसका।

इसी वर्ष जालिमसिंह[5] ने, उदयपुर की सहायता प्राप्त कर, मारवाड़ पर चढ़ाई की। परन्तु महाराजा की आज्ञा से सिंघी बनराज ने उसे काछबली की घाटी में रोक दिया। वहीं[6] पर वि० स० १८५५ (ई० सन् १७९८) में जालिमसिंह का स्वर्गवास हुआ। इससे उधर का सारा झगड़ा अपने आप शान्त हो गया।

१. ख्यातों में ज्ञात होता है कि पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह ने अपनी की हुई सेवा के उपलक्ष्य में फलोदी का प्रान्त जागीर में चाहा था और महाराजा भीमसिंहजी ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार भी करली थी, परन्तु सिंघी जोधराज के, सरदारों को परगना जागीर में देने का, विरोध करने से यह कार्य न हो सका। इससे उक्त ठाकुर अप्रसन्न हो गया और उसने तीर्थ-यात्रा के बहाने दिल्ली पहुँच लखवा को जोधपुर पर चढ़ाई करने के लिये तैयार किया।

२ वि० स० १८५२ के चैत्र (ई० स० १७९६ के अप्रेल) में महाराज ने सिंध के भूतपूर्व शासक मियां अब्दुन्नबी के तृतीय पुत्र फ़जलअलीख़ाँ को निर्वाह के लिये जागीर दी।

३ इसी ने वि० स० १८५७ (ई० स० १८००) में जोधपुर के पास का अखैसागर (अखैराजजी का) तालाब बनवाया था।

४ यह प्रान्त महाराजा विजयसिंहजी की तरफ़ से मानसिंहजी को जागीर में दिया गया था।

५ यह उदयपुर महाराना जगत्सिंहजी का दौहित्र था।

६ किसी-किसी ख्यात में इसका मेवाड़ में मरना लिखा है।

इसी वर्ष महाराजा भीमसिंहजी ने सिंघी अखैराज से अप्रसन्न होकर उसे कैद करदिया। इससे जालोर का घेरा शिथिल पड़गया। इसके बाद वि० स० १८५८ (ई० स० १८०१) में जिस समय महाराजा भीमसिंहजी जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी की बहन से विवाह करने को पुष्कर[1] गए, उस समय मानसिंहजी ने चुपचाप जालोर के किले से निकल पाली नगर को लूट लिया[2]। इसकी सूचना मिलते ही महाराज की तरफ से सिंघी चैनकरण[3] और बलूंदा-ठाकुर चांदावत बहादुरसिंह उनको पकड़ने को चले। उन्होने साकदड़ा स्थान पर पहुँच मानसिंहजी को घेर लिया। उस समय उन (मानसिंहजी) के साथ थोड़ीसी सेना होने से सम्भव था कि वह पकड़ लिए जाते, परन्तु उनके साथ के कुछ वीरो ने, राजकीय सेना को सम्मुख-युद्ध में फँसा कर, उनको जालोर पहुँच जाने का मौका देदिया[4]। इस घटना के बाद सिंघी बनराज को फिर जालोर पर घेरा डालने की आज्ञा दी गई।

इसी वर्ष सरदारो में नाराजी फैल जाने से वे कालू नामक गाँव मे इकॅट्ठे होकर आस-पास के प्रदेश में उपद्रव करने लगे। इस पर महाराज की आज्ञा से भंडारी धीरजमल ने वहा पहुँच उन्हे कालू से खदेड़ दिया। अगले वर्ष (वि० स० १८५९= ई० स० १८०२ में) सरदारो के षड्यन्त्र[5] से महाराज का दीवान जोधराज, अपने घरमें सोई हुई हालत में, मारडाला गया। इससे क्रुद्ध होकर महाराज ने आउवा, आसोप, चंडावल, रास, रोयट, लाबियाँ और नींबाज के ठाकुरो की जागीरे जब्त

१ यद्यपि वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) में ही अजमेर पर मरहटों का अधिकार हो गया था, तथापि मसूदा, खरवा सुमेल, भिणाय और पिशागण पर उस समय तक महाराज का ही शासन था।

२ ख्यातों मे इस घटना का समय वि० स० १८५८ की आषाढ सुदि १४ (ई० स० १८०१ की २४ जुलाई) लिखा है।

३ उस समय यही महाराज की जालोर-स्थित सेना का सेनापति था।

४ ख्यातों मे लिखा है कि उस समय खेजड़ला-ठाकुर के भाई भाटी जोधसिंह ने मानसिंहजी से निवेदन किया कि आप तो जालोर चले जायँ और विपक्ष की सेना के मुकाबले का भार हम-लोगों पर छोड़ दें।

५ यद्यपि इस षड्यन्त्र मे पौकरन, रीयां आदि के और भी अनेक सरदार शामिल थे, तथापि वे लोग बाद मे इससे अलग हो गए थे।

करली और साथ ही सिंघी इन्द्रराज को देछू में इकट्ठे हुए सरदारों को मारवाड़ से बाहर निकाल देने की आज्ञा दी। उन दिनों तिंवरी के पुरोहित भी सरदारों से मिले हुए थे। इसीसे इन्द्रराज ने उनके वहाँ पहुँच उनसे बीस हजार रुपये दण्ड के वसूल किए और इसके बाद आगे बढ़ सरदारों का पीछा किया। उसको इस प्रकार अपने पीछे लगा देख वे लोग गोडवाड की तरफ होते हुए मेवाड़ में चले गए। इस काम से छुट्टी मिलते ही इन्द्रराज ने मरहटों के चढ़े हुए रुपये देकर उनसे साँभर, परबतसर, आदि के परगने[2] वापस लेलिए और फिर जालोर पहुँच, वि० स० १८६० की सावन सुदि ७ (ई० स० १८०३ की २६ जुलाई) के आक्रमण में, वहाँ के नगर पर अधिकार करलिया[3]। इससे किले वालों का बाहरी सम्बन्ध बिलकुल टूट गया और थोड़े ही दिनों में रसद आदि की कमी होजाने से मानसिंहजी को किला छोड़ कर निकल जाने का इरादा करना पड़ा। परन्तु इसी समय देवनाथ नाम के एक योगी ने उन्हें कुछ दिन और धैर्य रखने की सलाह दी। यद्यपि उस समय किले में रसद के न रहने से भीतर वालों को हर बात का कष्ट था, तथापि मानसिंहजी ने योगी के कथन का विश्वास कर, कुछ दिन के लिये, किला छोड़कर निकल जाने का विचार स्थगित करदिया।

वि० स० १८६० की कार्तिक सुदि ४ (ई० स० १८०३ की १६ अक्टोबर) को जोधपुर में महाराजा भीमसिंहजी का स्वर्गवास हो गया[4]। इस समाचार के जालोर पहुँचते ही भंडारी गंगाराम और सिंघी इन्द्रराज ने, महाराजा भीमसिंहजी के पीछे पुत्र न होने से, वह चलता हुआ युद्ध तत्काल बंध करदिया।

१ धीरजमल ने लाविया और रास पर पहले ही अधिकार कर लिया था और इस समय वह नींबाज को घेरे था। परन्तु नींबाज-ठाकुर के पुत्र के महाराज से क्षमा माग लेने पर केवल पीपाड़ जब्त किया जाकर बाकी की जागीर उसे लौटा दी गई।

२ वि० स० १८४७ (ई० स० १७६०) में, महाराजा विजयसिंहजी के समय, ये परगने, रुपयों की एवज में, मरहटों को सौंपे गए थे।

३ इसी आक्रमण में सिंघी बनराज मारा गया था। जालोर से मिले लेख में भी उसका सावन सुदि ७ के झगड़े में मारा जाना लिखा है।

४ पीठ में फोड़ा निकलने से इनका स्वर्गवास हुआ था।

महाराजा भीमसिंहजी ने करीब १० वर्ष राज्य किया था। यह महाराजा दानी, वीर और न्याय-प्रिय थे। फिर भी कुछ लोगों के बहकाने से इनका बरताव अपने बान्धवों के साथ बहुत कड़ा रहा था।

यद्यपि इनके कोई पुत्र नहीं था, तथापि इनके स्वर्गवास के बाद कुछ सरदारों ने इनकी रानी के गर्भवती होने की घोषणा करदी और उसी गर्भ से बादमें धौंकलसिंह का जन्म होना प्रकट किया गया। परन्तु अन्त में यह षड्यन्त्र असफल हुआ।

मंडोर में का महाराजा अजितसिंहजी पर का देवल (स्मारक-भवन), जो अधूरा रह गया था, इन्हीं के समय समाप्त हुआ था।

१ महाराजा भीमसिंहजी ने, वि० सं० १८५१ (ई० स० १७९४) में, (जोधपुर परगने का) बघड़ा नामक गाव एक मन्दिर के निर्वाहार्थ दिया था।

शुद्धिपत्र नं० १

श्रावणादि और चैत्रादि संवतों का अन्तर

पृष्ठ	पंक्ति	श्रावणादि संवत्	चैत्रादि संवत्
६५	१-२	वि० स० १४८० की चैत्र-सुदी ३ (ई० स० १४२३ की १५ मार्च)	वि० स० १४८१ की चैत्र सुदि ३ (ई० स० १४२४ की ४ मार्च)
६८	२६	वि० स० १५९५ (ई० स० १५३८)	वि० स० १५९६ (ई० स० १५३९)
७०	४-५	वि० स० १४४९ की वैशाख सुदी ४ (ई० स० १३९२ की २८ अप्रेल)	वि० स० १४५० की वैशाख सुदि ४ (ई० स० १३९३ की १६ अप्रेल)
८३	२-३	वि० स० १४७२ की वैशाख वदी ४ (ई० स० १४१५ की २९ मार्च)	वि० स० १४७३ की वैशाख वदि ४ (ई० स० १४१६ की १७ माच)
१०२	८	वि० स० १५४५ की वैशाख सुदी ५ (ई० स० १४८८ की १६ अप्रेल)	वि० स० १५४६ की वैशाख सुदि ५ (ई० स० १४८९ की ६ अप्रेल)
१०४	२-३	वि० स० १५४५ की ज्येष्ठ सुदी ३ (ई० स० १४८८ की १४ मई)	वि० स० १५४६ की ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १४८९ की ३ मई)
१०५	२४	वि० स० १२३६ (ई० स० ११७९)	वि० स० १२३७ (ई० स० ११८०)
१०६	२	वि० स० १५४८ की चैत्र सुदी ३ (ई० स० १४९१ की १३ मार्च)	वि० स० १५४९ की चैत्र सुदि ३ (ई० स० १४९२ की [illegible] मार्च)
१०७	५-६	वि० स० १५४८ की वैशाख सुदी ३ (ई० स० १४९१ की १२ अप्रेल)	वि० स० १५४९ की— प्रथम वैशाख सुदि ३ (ई० स० १४९२ की ३१ मार्च)
१०९	७-९	वि० स० १५१४ की वैशाख वदी ३० (ई० स० १४५७ की २३ अप्रेल)	वि० स० १५१५ की वैशाख वदि ३० (ई० स० १४५८ की १३ अप्रेल)
१११	३	वि० स० १५४० की वैशाख सुदी ११ (ई० स० १४८३ की १८ अप्रेल)	वि० स० १५४१ की वैशाख सुदि ११ (ई० स० १४८४ की ६ मई)
११४	७	वि० स० १५८८ (ई० स० १५३१)	वि० स० १५८९ (ई० स० १५३२)
११५	१	वि० स० १५८८ की ज्येष्ठ सुदी ५ (ई० स० १५३१ की २१ मई)	वि० स० १५८९ की ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १५३२ की ९ मई)

पृष्ठ	पंक्ति	श्रावणादि संवत्	चैत्रादि संवत्
११६	२-३	वि० स० १५८८ की आषाढ वदी ५ (ई० स० १५३१ की ५ जून)	वि० स० १५८९ की आषाढ वदि ५ (ई० स० १५३२ की २४ मई)
१२०	१	वि० स० १५९३ (ई० स० १५३६)	वि० स० १५९४ (ई० स० १५३७)
१४६	२७	वि० स० १५८८ (ई० स० १५३१)	वि० स० १५८९ (ई० स० १५३२)
१७६	२७	वि० स० १६५०	वि० स० १६५१
१७९	३१	वि० स० १६३९	वि० स० १६४०
१८७	७	वि० स० १६६५ (ई० स० १६०८)	वि० स० १६६६ (ई० स० १६०९)
२८८	१७-१८	वि० स० १७५७ (ई० स० १७००)	वि० स० १७५८ (ई० स० १७०१)
३००	२२	वि० स० १७६६	वि० स० १७६७
३१५	३१	वि० स० १७७५	वि० स० १७७६
३४२	७	वि० स० १७८७	वि० स० १७८८
३४३	२६	वि० स० १७८७	वि० स० १७८८

शुद्धिपत्र नं० २.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	६	"आलमगीर नामे"	"आलमगीर नामे[१]"
२१	७	३५	४३
३१	२	राव सीहाजी	१ राव सीहाजी
३४	२७	पृ० ३०	पृ० ६३०
४२	२	राव सीहाजी	राव सीहाजी[१]
७३	२२	वि० स० १४८५ (ई० स० १४२८)	वि० स० १४८४ (ई० स
७५	१४	थी,	थी,[२]
७७	४-५	वि० स० १५६४ (ई० स० १५३७)	वि० स १४६४ (ई० स
७७	८	पडी	पडी[१] ।
८३	१	राव जोधाजी	१५ राव जोधाजी
८७	१७	चचा	चाचा
८६	३	सके।	सके[१] ।
६१	८	उनके	उनकी
१०७	३	की है।	की है[२] ।
११५	२६	ई० स० १७६०	ई० स० १७६१
१२३	१२	१५४१	१५४२
१२५	६	(ई० स० १५४१)	(ई० स० १५४२)
१३८	१	वि० स० १६१४ (ई० स० १५५७)	वि० स० १६१५ (ई० स
१३८	१३	(ई० स० १५६१)	(ई० स० १५६२)
१३६	२८	इन्ही	इसी
१४३	१४	वि० स० १५४५=ई० स० १४८८	वि० स० १५५५=ई० स
१४६	२७	(हि० स० ६७१	(हि० स० ६७०
१५७	१५	इसी वर्ष (१६३३) के कार्तिक (ई० स० १५७६ के अक्टोबर)	(कही वि० स० १६३२ (ई० स० १५७५ का लिखा है।
१५७	२६	सयम-समय	समय-समय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६१	८	जयपुर के	आमेर के *
१६८	२-३	वि० स० १६३६ (ई० स० १५८२)	वि० स० १६३८ (ई० स० १५८१)
१७७	१५	जगमल	जगमाल
१८१	२१	हैः—	है[४].—
१९०	२४	थी।	था।
१९४	४	लौदी	लोदी
१९५	१४	वि० स० १६७५	(पालनपुर की तवारीख में इस सम्वत् के साथ ही हि० स० १०२६ लिखा है। यह विचारणीय है।
१९८	१	१८ सितम्बर	६ सितम्बर
२०२	५	चैत्र सुदि ६ (११ मार्च)	ज्येष्ठ सुदि १३ (१२ मई)
२०५	७	२६	२८
२०५	२८-३०	फुटनोट २	२ तुजक जहांगीरी पृ० ४३४
२१५	७	(१० दिसम्बर)	(१० नवम्बर)
२१६	२-३	करीब २ या १$\frac{१}{२}$ मास	(करीब २ या १$\frac{१}{२}$ मास ?)
२२०	१	(ई० स० १६५८)	(ई० स० १६५७)
२२८	२	किया।	किये।
२३२	१०	पौष सुदि ६ (२७ दिसम्बर)	वि० स० १७१८ की पौष सुदि ६ (ई० स० १६६१ की २७ दिसम्बर)
२३३	२६	(वि० स० १५१६)	(वि० स० १७१६)
२३३	३०	वि० स० १७१७ की मगसिर सुदि ५ तक गुजरात में रहना	वि० स० १७१८ की पौष वदि ५ या ७ को गुजरात से रवाना होना
२४१	१३	वि० स० १७३३ की चैत्र वदि ३ (ई० स० १६७६ की १२ मार्च)	वि० स० १७३२ की चैत्र वदि ३० (ई० स० १६७६ की ४ मार्च)

* जयपुर नगर वि० स० १७८४ (ई० स० १७२७) में सवाई राजा जयसिंहजी ने बसाया था। इसलिये इस इतिहास के पृष्ठ २०३ (पंक्ति १०), २०५ (पं० ११), २२८ (पं० २७), २६३ (पं० २८), २६४ (पं० २), २६६ (पं० २६), ३०२ (पं० ४, २२, २५), ३११ (पं० १७), ३१३ (पं० १६), ३१५ (पं० १७, १६), ३२४ (पं० २०) ३२५ (पं० १७) और ३३२ (पं० ३०) पर छपे जयपुर शब्द के स्थान पर उक्त राज्य की प्राचीन राजधानी आमेर समझना चाहिए।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४७	८	Jzia	Jazia
२६१	२	वदी	सुदि
२६१	२८	Compaign	Campaign
२६२	१	हिन्दु	हिन्दू
२६५	५	कई महीने	कई दिन
२८४	१०	यह	ये
३०२	२६	(आषाढ)	(श्रावण)
३०५	१	रायसिंहजी	राजसिंहजी
३०८	१६	पृ० २६	पृ० २६०
३१०	२८	वली	करली
३१४	३	दिलवादी।	दिलवादी'।
३१६	१३	दन्ड	दण्ड
३२६	२१	पृ० ३८७	पृ० २६४
३५१	२१	छिन	छीन
३५२	२२	इनका	उनका
३५६	१७	नागोर	जालोर
३६२	२३	पहुँकी	पहुँची
३६४	२७	वदी ७ जून	(कहीं-कहीं सुदि लिखा मिलता है।) २२ जून
३६५	१२	(ई० स० १८५४)	(ई० स० १७५४)
३६८	२	सींघली	सींधोली
३६९	२३	छोटा	कला
३७८	१४	खिची	खीची
३८३	१	ई० स० १७७१ मे)	ई० स० १७७२ मे)
३८४	२३	उसे प्रधान	उसे फिर से प्रधान
३९३	२	ग श्यामजी	गंगाश्यामजी
३९३	३	वि० स० १८२२ (ई० स० १७६५)	वि० स० १८३७ (ई० स० १७८०)
३९४	२४	वि० स० १८४७	वि० स० १८४८
४००	९-१०	फुटनोट १	×